योगसार 'अध्यात्म देशना'

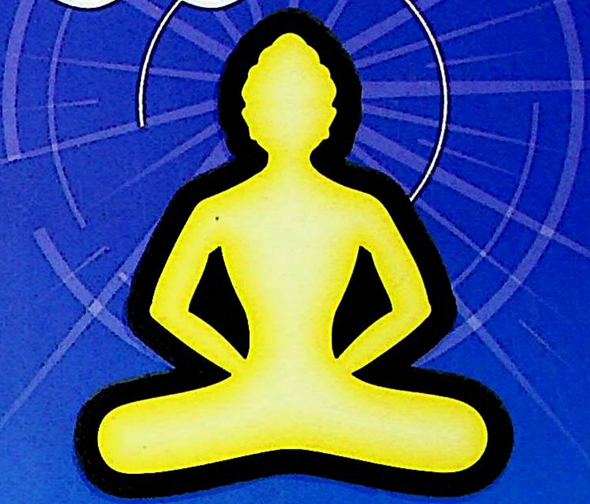

परमात्मा

णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु विण्हु बुद्धु संतु।
सो परमप्पा जिणभणिउ एहउ जाणि णिभंतु॥

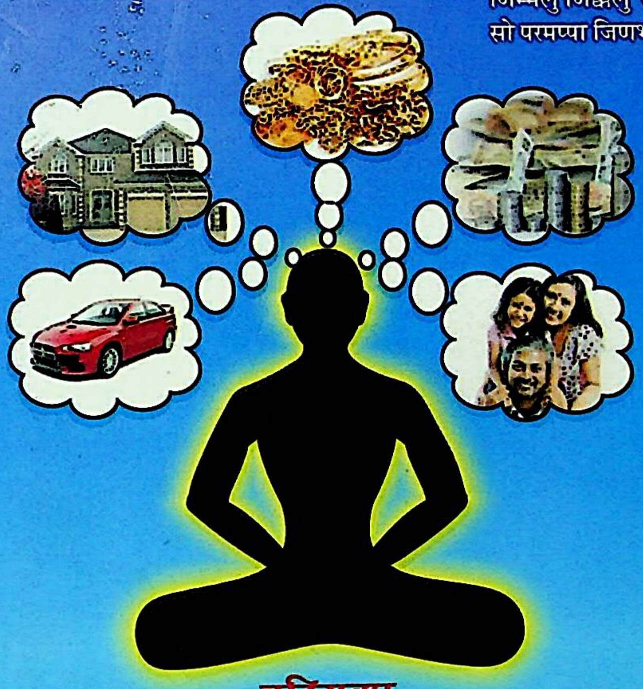

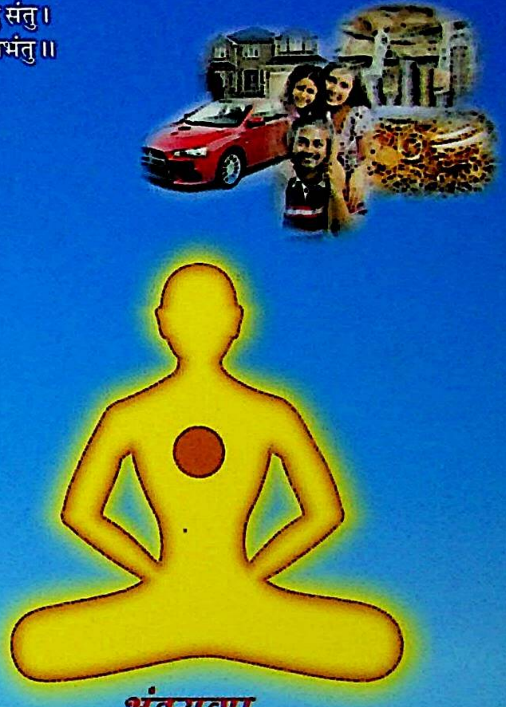

बहिरात्मा

जो परियाणइ अप्प परु जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणद्रिं सो संसार मुएइ॥

अंतरात्मा

मिच्छादंसणमोहियउ परु अप्पा ण मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुण संसारु भमेइ॥

देशनाकार

आचार्यश्री विशुद्धसागरजी

कृतियाँ :

- नियम देशना (भाग 1-3)
- पुरुषार्थ देशना (हिन्दी, अंग्रेजी)
- समय देशना (भाग 1 से 17 तक)
- अध्यात्म देशना
- तत्व देशना
- प्रेक्षा देशना
- सर्वोदयी देशना
- स्वरूप देशना
- श्रावक धर्म देशना
- सागार अनगार धर्म देशना
- सामायिक देशना
- श्रमण धर्म देशना
- सोलह कारण भावना अनुशीलन (अप्रकाशित)
- समाधितंत्र अनुशीलन (हिन्दी, अंग्रेजी)
- इष्टोपदेश भाष्य (हिन्दी, अंग्रेजी)
- स्वरूप सम्बोधन परिशीलन (हिन्दी, अंग्रेजी)
- पंचशील सिद्धांत (हिन्दी, अंग्रेजी)
- शुद्धात्म तरंगिणी (हिन्दी, अंग्रेजी)
- निजानुभव तरंगिणी (हिन्दी, प्राकृत)
- आत्म बोध
- स्वानुभव तरंगिणी
- निजात्म तरंगिणी
- शुद्धात्म काव्य तरंगिणी (हिन्दी, प्राकृत, मराठी)
- सद् देशना (भाग 1-6)
- सद् ज्ञान देशना
- प्रकृष्ट देशना
- प्रवचन प्रभा
- तत्त्वार्थ देशना
- परमार्थ तत्त्वदेशना
- विशुद्धवाणी

श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान
सं०पुस्तक ....
वाराणसी

श्रीगणेश वर्णी दि०जैन संस्थान
नरियाँ वाराणसी-5

अध्यात्म देशना

श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित 'योगसार' पर
परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्धसागर मुनिराज के

टीकात्मक प्रवचन

- प्रकाशक -
अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति

- **मूलकृति** – **श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित 'योगसार'**
- **कृति** – **योगसागर अध्यात्म देशना**
  (योगसागर पर आचार्यश्री विशुद्धसागरजी के टीकात्मक प्रवचन)
- **संस्करण** – पंचम्, सन् 2016, 2200 प्रतियाँ
- **संकलन/सम्पादन** – मुनिश्री विश्ववीरसागरजी
- **संकलन-सहयोग** – पंडित नेमीचंद जैन, छतरपुर (म.प्र.)
- **संपादन-सहयोग** – इंजी. जिनेन्द्र जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल, मो.: 89894-05479
  प्रो. शांतिलाल बड़जात्या, इंदौर, मो.: 99260-70008
- **न्यौछावर राशि** – एक सौ रुपये (100 रुपये) पुनः प्रकाशन हेतु
- **प्राप्ति स्थान** –
  - श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
  - श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
  - महावीर पाटनी, भिलाई, मो. 08959990000
  - नेमीचंद जैन बड़कुल, इन्दौर मो. 09425053171
  - श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
  - मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
  - नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204
- **मुद्रक** – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
  45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
  फोन : 0755-2601952, 9425005624

आचार्य परम्परा

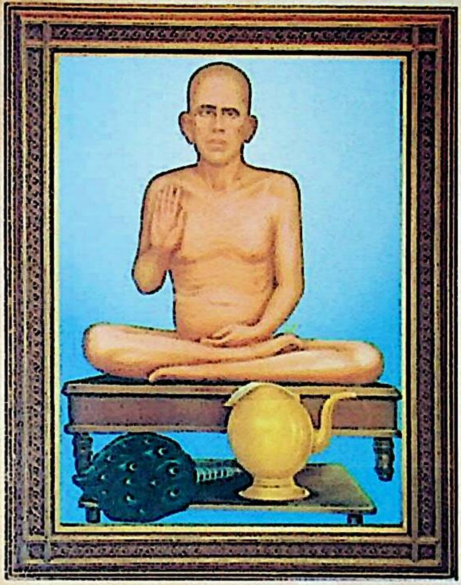

प.पू. 108 आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर)

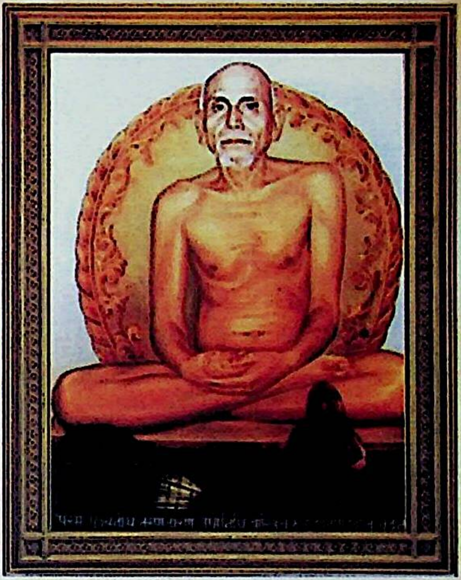

प.पू. 108 आचार्यश्री महावीर कीर्तिजी महाराज

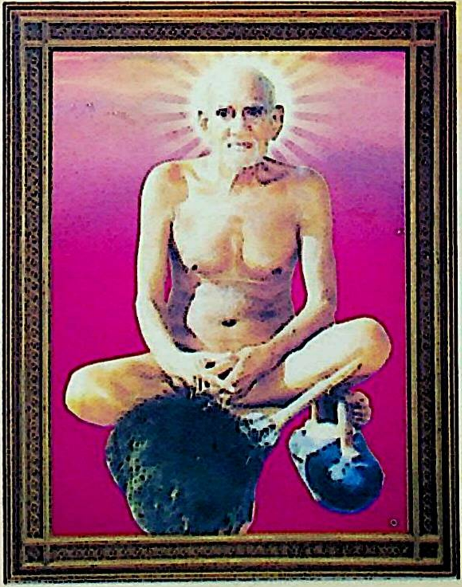

प.पू. 108 आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज

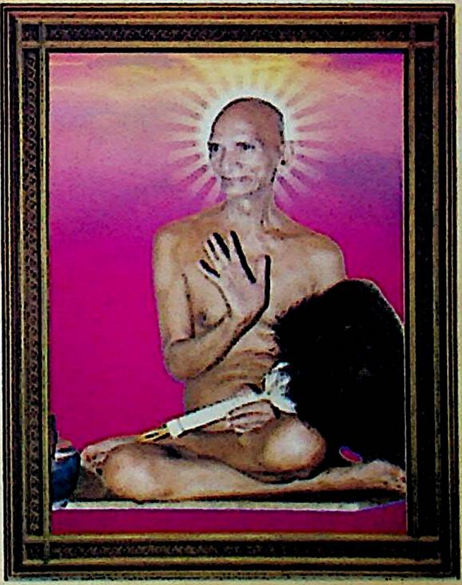

प.पू. 108 आचार्यश्री सन्मतिसागरजी महाराज

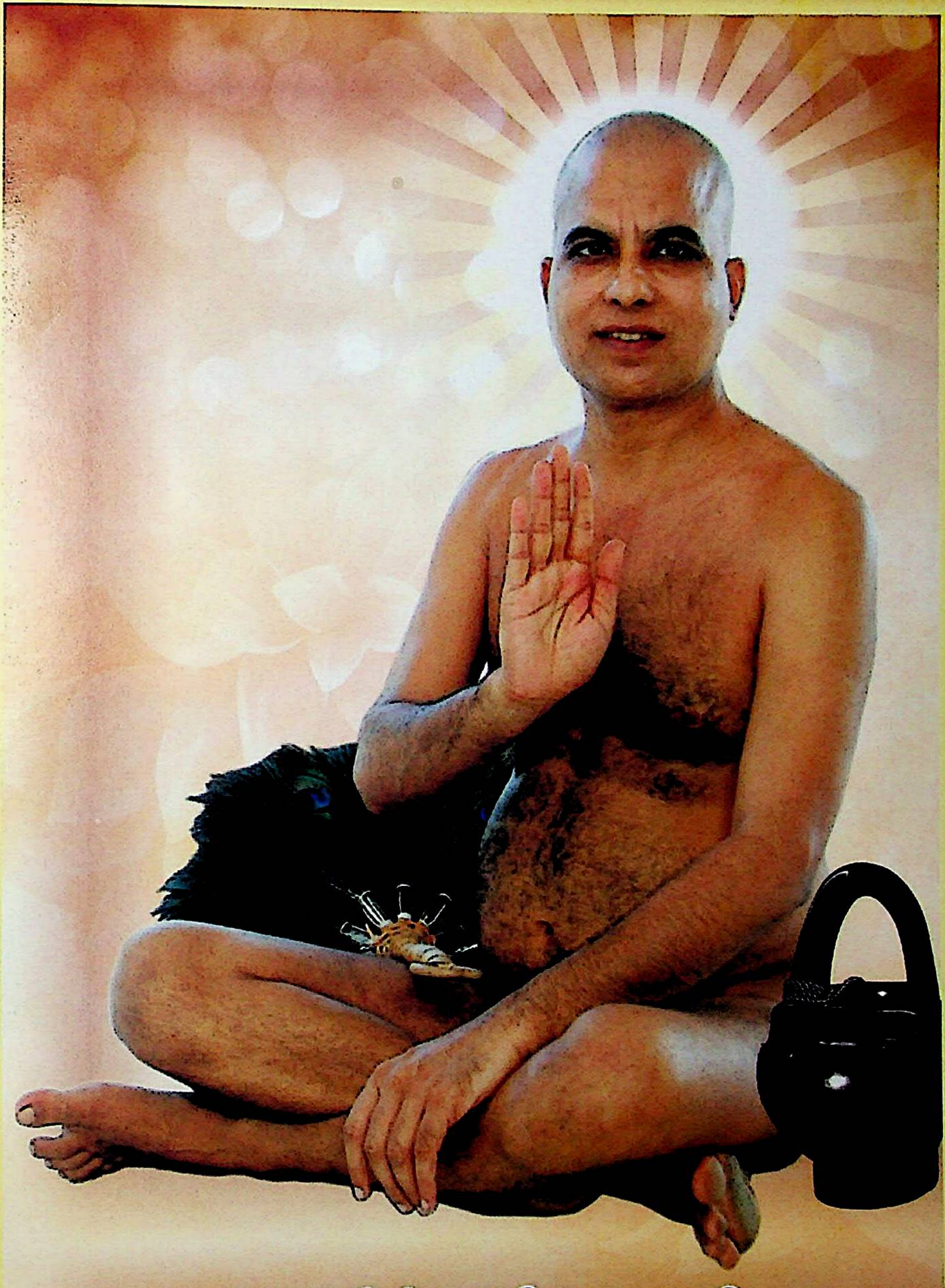

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

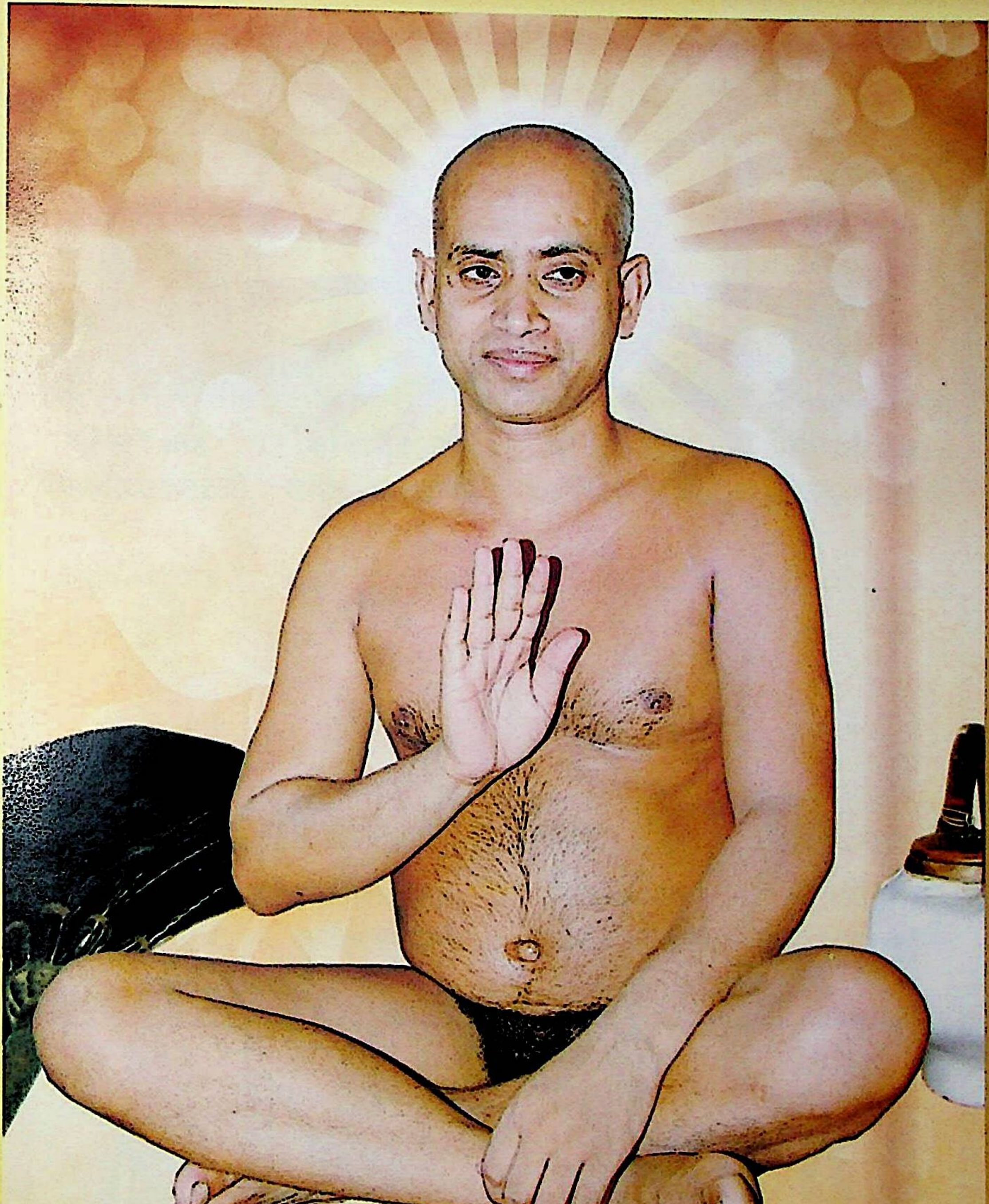

परम पूज्य आचार्य श्री 108 विशुद्धसागरजी महाराज

चेतन कृतियाँ

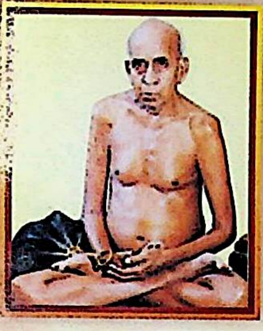
मुनिश्री 108
विश्ववीरसागरजी

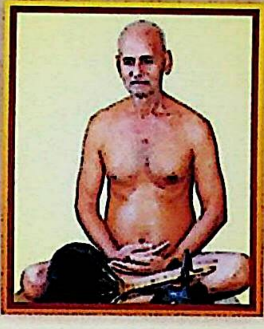
मुनिश्री 108
मनोज्ञसागरजी

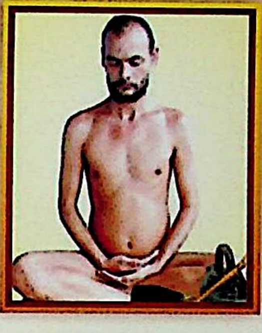
मुनिश्री 108
प्रशमसागरजी

मुनिश्री 108
प्रत्यक्षसागरजी

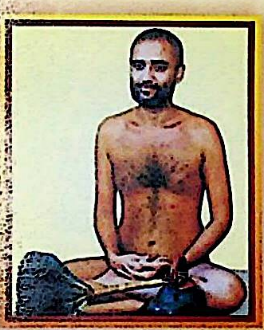
मुनिश्री 108
सुप्रभसागरजी

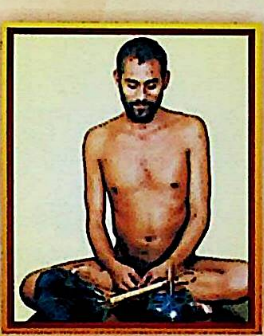
मुनिश्री 108
सुव्रतसागरजी

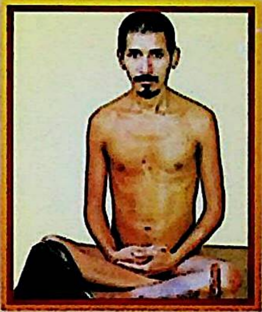
मुनिश्री 108
सुयशसागरजी

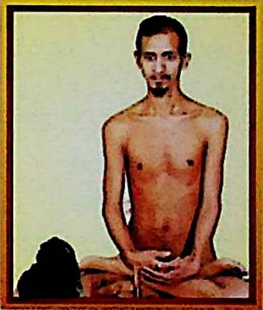
मुनिश्री 108
अनुत्तरसागरजी

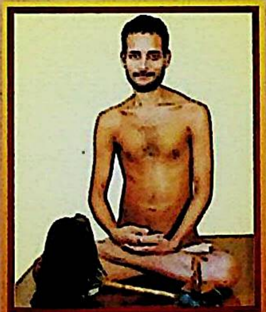
मुनिश्री 108
अनुपमसागरजी

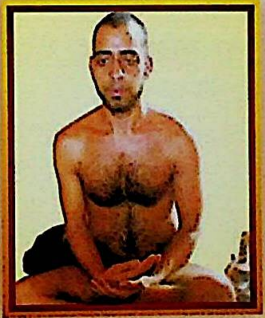
मुनिश्री 108
अरिजितसागरजी

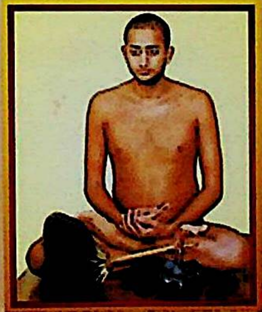
मुनिश्री 108
आदित्यसागरजी

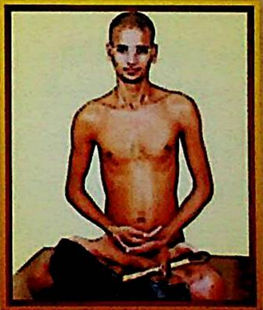
मुनिश्री 108
अप्रमितसागरजी

चेतन कृतियाँ

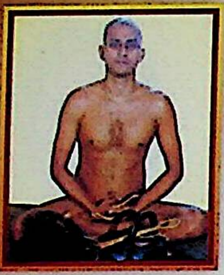

मुनिश्री 108
आस्तिक्यसागरजी

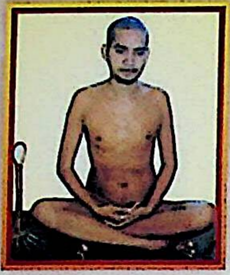

मुनिश्री 108
आराध्यसागरजी

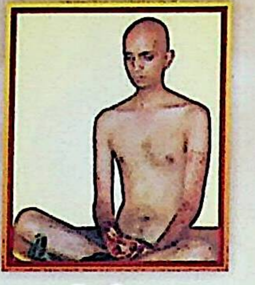

मुनिश्री 108
प्रणेयसागरजी

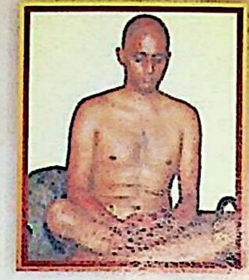

मुनिश्री 108
प्रणीतसागरजी

मुनिश्री 108
प्रणवसागरजी

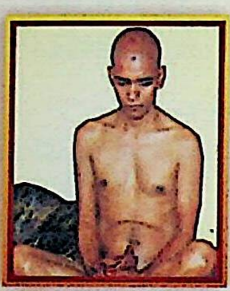

मुनिश्री 108
प्रणतसागरजी

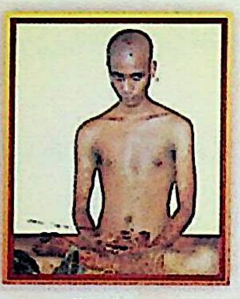

मुनिश्री 108
प्रणुतसागरजी

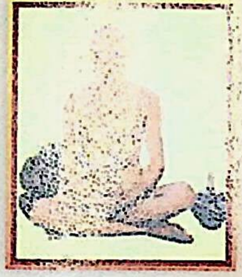

मुनिश्री 108
सर्वार्थसागरजी

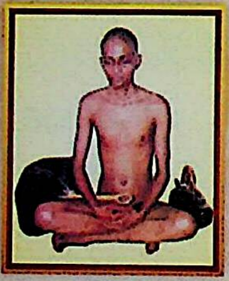

मुनिश्री 108
साम्यसागरजी

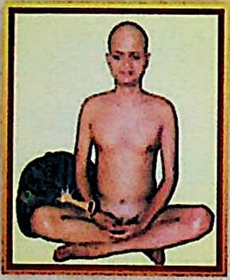

मुनिश्री 108
समर्थसागरजी

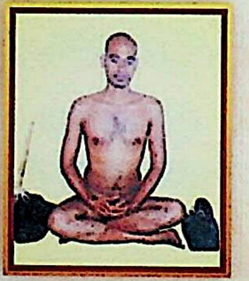

मुनिश्री 108
सहजसागरजी

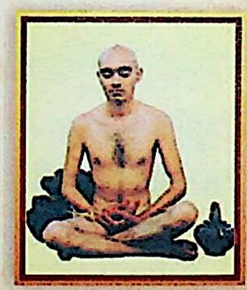

मुनिश्री 108
समत्वसागरजी

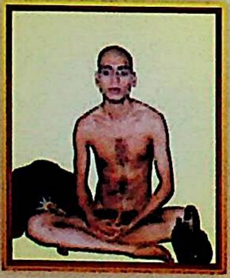

मुनिश्री 108
सम्पूर्णसागरजी

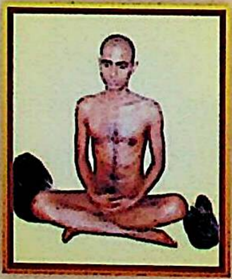

मुनिश्री 108
सदयसागरजी

प्राक् प्रमेय

श्रुत की आराधना ही अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग है, जो सातिशय-पुण्य तीर्थंकर-प्रकृति के आस्रव में एक महत्वपूर्ण आधारशिला रखता है। वैसे तो भारतीय तत्त्व-मनीषा में सभी दर्शनों ने श्रुत का अपने-अपने ज्ञान के अनुसार कथन किया है, परंतु जैन-दर्शन अपनी सर्वोत्तम अध्यात्म-विद्या के लिए विश्वगुरुता को प्राप्त है। सच तो यह है कि जिनागम एक ऐसा दर्पण है जिसमें भूत, भविष्यत, वर्तमान तथा उर्ध्व, मध्य, अधोलोक के सारे पदार्थ प्रत्यक्ष/स्पष्ट दिखाई देते हैं। अखिल विश्व के प्राणिमात्र को तत्त्वों का सच्चा ज्ञान कराती जिनवाणी जयवंत हो।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी का प्रमुख ग्रंथ श्री 'समयसार' जी अध्यात्म से सराबोर कराता हुआ शाश्वत सत्यं-शिवं-सुन्दरं सुखधाम के दर्शन कराता है। आचार्य भगवंतों की पवित्र श्रृंखला में आचार्य पूज्यपाद स्वामी कृत 'इष्टोपदेश' एवं 'समाधितंत्र', आचार्य देवसेन स्वामी कृत 'तत्त्वसार', आचार्य योगीन्दुदेव कृत 'परमात्म प्रकाश', 'योगसार', 'अमृताशीति', 'नौकार श्रावकाचार' में समस्त तत्त्वों का सार संग्रहित है। आध्यात्मिक-जगत् के अत्यंत ख्यातिलब्ध विद्वान् आचार्य योगीन्दुदेव की अनुपम मौलिक रचना अध्यात्मसंदोह, सुभाषित रत्नावली, तत्त्वार्थ टीका, दोहा पाहुड़ और निजात्माष्टक अपने ढंग के निराले अद्वितीय एवं सुसम्बद्ध-पल्लवित स्तुतिपरक ग्रंथ है।

'योगसार' ग्रंथ में आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव ने 'समयसार' जी के गूढ़ रहस्यों को जितनी सरल भाषा में समाविष्ट किया है, उतना ही दर्शन-पक्ष को सरल, सुबोध, सहज भाव से प्रतिपादित किया है। ग्रंथ-रचना के सौष्ठव एवं प्रौढ़ चिंतन के सम्मुख संत व श्रावक का हृदय अत्यंत श्रद्धा से अभिभूत हो उठता है। अपने सच्चे स्वरूप का दर्शन कराता, अध्यात्म-विज्ञान से ओतप्रोत इस ग्रंथ में मानो गागर में सागर ही भर दिया हो। ऐसे अत्यंत परिष्कृत ग्रंथ में एक ओर जहाँ जीवन का सौम्य विकास है, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक जीवन को ऊँचा उठाने के लिए समस्त तत्त्वों का सार संग्रहित है। आचार्यों की लुप्त होती वाणी को सम्पादित कर आपने पूर्वाचार्यों की धरोहर को सुरक्षित कर स्तुत्य कार्य किया है। ऐसे जिनशासन के सिरमौर आचार्य श्री योगीन्दुदेव जी ने आज से लगभग 1400 वर्ष पूर्व भारतीय वसुंधरा को गौरवान्वित किया था। अपनी सतत् ज्ञानाराधना, संयम-साधना में तल्लीन महामुनिराज आचार्य योगीन्दुदेव जी ने 108 दोहा-छंदों में अपभ्रंश भाषा में 'योगसार' ग्रंथ की रचना की है। आपके आध्यात्मिक ग्रंथ 'परमात्म प्रकाश' में अध्यात्म के साथ-साथ नीति, न्याय, नय आदि का विशद् कथन रत्नमय ज्योति प्रज्वलित करता है। ऐसी ही प्रतीति ग्रंथराज योगसार में है।

जैनदर्शन में आत्मोत्कर्ष की चरमसीमा संसारातीत सिद्ध-अवस्था स्वीकार की गई है, जो सर्व कर्म-कल्मषरहित, अष्टगुणयुक्त, सुखस्वरूप, शाश्वत है। उसके पूर्व आत्मा की सर्व 4 पदवियों (अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु) से सिद्ध भगवंत अतीत होते हैं।

प्राक् प्रमेय

विश्व के सम्पूर्ण जीव 3 श्रेणी में ही आते हैं- बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। भव्य जीव उत्तरोत्तर अध्यात्म के शिखर पर चढ़ता अपना लक्ष्य परमात्मा/परमधाम पा लेता है, शाश्वत सुख व शांति पा जाता है। श्रमण-परम्परा के समुज्ज्वल नक्षत्र मेरे अग्रज तपोमूर्ति मुनि श्री विशुद्धसागरजी महाराज ने वीर-निर्वाण-संवत् 2531 में छतरपुर के धर्मवत्सल, संयमी श्रावकों को अपनी अमृतमयी वाणी में ग्रंथराज योगसार पर जो टीकात्मक प्रवचन दिए, वे अपने आप में अनुपम/अनूठे हैं। उन्हें मैंने संकलित कर ''अध्यात्म देशना'' के माध्यम से सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। मुनिश्री की दिव्य देशना प्रस्तुत करने की मात्र यही मनोभावना है कि सुधीजनों को जीवन-निर्माण के विचार-मोती प्राप्त हों। भव्यजन ''अध्यात्म देशना'' से अपने विवेक से उपादेय विचारों को श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर अपना, जीवन सफल बनाएँ।

तीर्थंकर भगवंत के श्रीमुख से प्रवाहित श्री वाणीरूप गंगा को गणधररूपी कुंड ने धारण किया, जिसे आचार्यों ने निबद्ध किया। निरंतर ज्ञानाराधना व संयम-साधना में लीन आचार्यभगवंतों की महती करुणाकृपा से इस विषमकाल में पतितपावनी जिनवाणी की शीतल धारा प्राप्त हो रही है, यह हमारा भाग्योदय है।

ऐसे ही कुन्दकुन्ददेव की आचार्य-परम्परा के एक देदीप्यमान रत्न संतशिरोमणि आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज जिनकी धर्मतरुछाया का संबल पाकर यह जीवन-पुष्प खिला, उनकी करुणा-कृपा से रत्नत्रय-ज्योति जली तथा यह 'अध्यात्म देशना' का संग्रहण/सम्पादन कार्य करने में समर्थ हो सके। आचार्यश्री के चरण-कमल में कोटिशः नमोऽस्तु।

'अध्यात्म देशना' के संकलन में कर्त्तव्यनिष्ठ, देव-शास्त्र-गुरु भक्त पं. श्री नेमीचन्द जी जैन छतरपुर ने सराहनीय सहयोग प्रदान किया। पद्मनाभनगर भोपाल के इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन ने इस कृति में संपादन-सहयोग का श्रमसाध्य कार्य संपादित कर इस कृति को पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है। उनके लिए आशीर्वाद है। धन्य हैं वे जो इस तरह जिनवाणी का प्रचार/प्रसार करते हैं। वे साधुवाद के पात्र हैं। वे आगे भी इसी तरह जिनवाणी के प्रचार/प्रसार में सहयोग करते रहें ताकि आचार्यों की लुप्त होती वाणी धरोहर के रूप में सुरक्षित बनी रहे।

''अध्यात्म देशना'' सृजित होकर अब सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत है। मनोभाव यही है कि आत्मार्थी/भव्यजन आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ जागृत कर परमसिद्धि प्राप्त करें। सब सुखी रहें, सबका कल्याण हो, इस मंगल भावना के साथ-

इति अलम्, शुभम् भूयात्

मुनि विश्ववीरसागर
धन्य तेरस (कार्तिक वदी 13)
वीर निर्वाण संवत् 2032
वर्षायोग, शाहपुरा (भिटौनी) म.प्र.

योगसार का रहस्य

श्रीमद् 108 आचार्यश्री योगीन्दुदेव विरचित योगसार लघुकाय अवश्य है, परन्तु द्वादशांग का सार और सम्यक पुरुषार्थ की प्रेरणा देने वाला अध्यात्म से सरोबार ग्रन्थराज है। निर्ग्रन्थ संतों को ध्यान हेतु परम उपयोगी है। प्रमाद को दूर करने का अमोघ उपाय बताने वाले इस ग्रन्थ में निर्विकल्प समाधि का ही बारम्बार गुणगान किया गया है।

योगसार ग्रन्थराज की महिमा अवर्णनीय है, एक-एक गाथा महामंत्र रूप है और महामंत्र के समान कंठस्थ करके प्रतिदिन पाठ करने योग्य है। जो भव्य श्रावक इसका पठन-श्रवण-मनन और चिंतवन करते हैं और उन्हें अपूर्व आनन्दानुभूति होती है।

ऐसे ग्रन्थराज की प्रत्येक गाथा पर परमपूज्य 108आचार्यरत्न श्री विशुद्धसागरजी के प्रवचन शांति के लिये परम उपयोगी और हितकर हैं एवं आकुलता को दूर कर सहज सुखों को प्रकट करने वाले हैं। संतों के भावों को संत ही अनुभव कर सकते हैं, एक बार एकाग्रता के साथ जो भव्य जीव आचार्य रत्न की देशना का श्रवण कर चिंतवन करते हैं उन्हें अतीन्द्रिय सुख प्राप्त होता है।

पूज्य श्री की साधना अद्भुत है। परम पूज्य आचार्य परमेष्ठी श्री विद्यासागरजी के संयमी जीवन को ही अपना आदर्श मानकर आप अहर्निश ध्यानाध्ययन में संलग्न रहते हुए ''विषयों की आशा नहीं जिनके... उन्ही जैसी चर्या में निश दिन तत्पर रहते हैं।'' ऐसे ग्रन्थराज का तथा उस पर पूज्य आचार्य मुनिराज के प्रवचन संकलन का प्रकाशन इन्दौर के परम धर्मनिष्ठ, संस्कारवान बीड़ी वाला परिवार के सौजन्य से हो रहा है ताकि आचार्यश्री की देशना का लाभ पुस्तक के रूप में भी भव्यात्माओं को प्राप्त हो और जन-जन का कल्याण हो।

मैं और अधिक क्या लिखूं, ग्रन्थराज, उसके रचयिता, उसके उपर प्रवचनकार तथा उसके प्रकाशन करनहार सभी प्रशंसनीय हैं। भव्य श्रावक ग्रन्थराज (योगसार अध्यात्म देशना) का बारम्बार परम विशुद्धि के साथ स्वाध्याय, पठन-पाठन-मनन-चिंतवन करके अपने भावों को उज्ज्वल बनाएं और अल्पकाल में ही परम आत्मीय आनंद को प्राप्त करें, यही मंगल भावना भाते हुए यथा योग्य भक्तिपूर्वक पूज्य आचार्य परमेष्ठी को शतवार नमोस्तु और प्रकाशन कराने वालों का अभिनंदन।

अलमिति विस्तरेण।

इन्दौर
दिनांक 9.8.2008

सहज सुख का अभिलाषी
पं. रतनलाल जैन शास्त्री
इन्द्र भवन, तुकोगंज, इन्दौर

प्रस्तावना

आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने दो हजार वर्ष पूर्व 'समयसार' में व्यवहार और निश्चय नयों द्वारा शुद्ध आत्मतत्त्व का निरूपण किया। इसी श्रृंखला में 1400 वर्ष पूर्व आचार्य श्री योगीन्दुदेव ने अपभ्रंश भाषा में 108 गाथाओं का अनुपम 'योगसार' ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि शुद्धात्म तत्त्व का प्रतिपादन सुगम, बोधगम्य एवम् धाराप्रवाही भाषा में किया गया है। इस वजह से सामान्य प्रज्ञा के श्रावकों को आत्म-तत्त्व तथा मोक्षमार्ग का समीचीन ज्ञान उपलब्ध हुआ है और इस वर्तमान युग में 'योगसार' जैसे अध्यात्मदर्शी ग्रंथ पर अपने विचक्षण प्रज्ञा से अध्यात्मरसिक, अनेक आर्ष ग्रंथों के ज्ञाता, द्वादशांग-वाणी के अध्येता मनीषी, ओजस्वी प्रवचक, तपोनिधि, वीतरागस्वभावी मुनिश्री विशुद्धसागरजी महाराज द्वारा 'योगसार' वाचना के अंतर्गत दिए गए प्रवचन मानों अध्यात्म का अमृत-कुंभ है।

मुनिश्री की प्रवचनशैली अत्यंत सरल एवम् युक्तिसंगत है। हर एक प्रवचन में मानो अध्यात्म-रस की गंगा अवतीर्ण हो रही है। गूढ़ अध्यात्म में भावुकता का सृजन तो मुनिश्री की शैली की विशेषता है। ग्रंथ के प्रारम्भ में ही 'मंगलाचरण' की जो व्याख्या की है, वह स्वयमेव मांगल्य का प्रतीक है। मुनिश्री कहते हैं- "जहाँ आचरण मंगल है, वहीं मंगलाचरण है। दूसरों को दूषण लगाने से अपनी शब्दवर्गणाएँ विपरीत होती हैं, अपना ही नुकसान होता है। जीवन में मौन-साधना श्रेष्ठ साधना है" और ऐसा ही रस-प्रवाह चलते रहता है। प्रवचन कब सम्पन्न हुआ, मालूम नहीं पड़ता। यहाँ तत्त्वचिंतक की आत्मानुभूति का जो साक्षात्कार होता है, वह सम्पूर्ण ग्रंथ में स्थान-स्थान पर दृष्यमान होता है।

आचार्य श्री योगीन्दुदेव ने 'योगसार' ग्रंथ-रचना का उद्देश्य विशद् करते हुए कहा है- संसार के दुःख से भयभीत मुमुझु जीवों को संबोधन करना यही हेतु है, तथापि मुमुक्षु जो स्वयं को 'मैं शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, टंकोत्कीर्ण हूँ' ऐसी धारणा किए बैठे हैं, उन्हें सर्वप्रथम 'मैं पृथक् हूँ' को अपनाना चाहिए। शब्दों से नहीं, आचरण से। इस मौलिक तत्त्व का सारगर्भित विवेचन इस अद्वितीय द्वितीय प्रवचन में किया गया है, जो हर मोक्षमार्गी को प्रेरक होगा।

अब मोक्षमार्ग पर जिन्हें आगे बढ़ना है, उन्हें आचार्य योगीन्दुदेव सावधान करते हुए बताते हैं कि- आज तक इस जीव ने मिथ्यादर्शन से मोहित होकर दुःख ही पाया। अब सुख चाहता है, तो निर्मल आत्मा का ध्यान ही उपाय है। इस तत्त्व को श्रावक के मन पर उत्कीर्ण कराते हुए ग्रंथराज 'योगसार' के प्रवचन 'अध्यात्म देशना' में कहा गया है कि अब तक हम

'अपनों' के साथ रहे, पर एक बार तो 'अपने' साथ रहने का प्रयास करें। 'मोह महा-मद पियो अनादि' को त्यागो। आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है द्रव्यदृष्टि से, पर्यायदृष्टि से नहीं, यह जानो। 'गुणपर्ययवद्द्रव्यम्' सूत्र को यथार्थ मानो। इस प्रवचन में जिनागम का सार अंतर्भूत है, जो अभेद षट्कारक है-

समय ने समझा - आत्मा ने समझा।
समय को समझा - जिनवाणी को समझा।
समय के द्वारा समझा - निर्ग्रंथ गुरुओं के द्वारा समझा।
समय के लिए समझा - रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति के लिए समझा।
समय से समझा - आयु क्षीण होने के पहले समझा।
समय में समझा - निज आत्मा में समझा।

बस यही समयसार है। मनीषियो! जिन्होंने समझा, वे योगीराज हैं और जो समझा गया, वह "योगसार" है। इतनी-सी काव्यमय भाषा में अध्यात्म का सार अन्यत्र दुर्लभ है।

बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का विवेचन करते हुए मुनिश्री विशुद्धसागरजी द्वारा प्रवचन में स्थान-स्थान पर उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। काँटों में उलझी पूँछ के बालों की रक्षा या प्राणों की रक्षा? बहिरात्मा विषयरूपी बाल की रक्षा के पीछे प्राण-सिंधु समाप्त कर देता है। घास को दूध में परिवर्तित करने की शक्ति गाय में ही होती है। इस शक्ति को हमें विकसित करना चाहिए। इस तथ्य को मुनिश्री ने मिथ्यात्व त्याग कर सम्यक्त्व ग्रहण करने की प्रेरणा देते हुए कहा है- "सम्यक्त्व से सुख, ज्ञान से ख्याति, चारित्र से पूज्यता और तीनों मिलें तो शिवत्व की प्राप्ति होती है।"

ज्ञानीजीव का लक्षण यही है कि-सद्भाव या अभाव में वह समभाव से रहे। वह परमात्मा को निर्मल, निष्कलंक, शुद्ध रूप में जाने, फिर उसे जिन, विष्णु, बुद्ध, शिव ऐसी भिन्न-भिन्न अपेक्षा से माने। अंततः शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है, यह समझाया गया है। देहादि पर-पदार्थों को जो आत्मा अपना समझता है, उसे जिनेंद्र भगवान् ने बहिरात्मा कहा है। वह पुनः पुनः भव-भ्रमण करता है।

दुनियाँ में भोगियों की संख्या अनंत है। इनमें मत रहो। योगियों की श्रेणी में आओ। योगी बनो, यही 'योगसार' का संबोधन है। मोक्ष पाना है तो तप करना पड़ेगा और तप यदि ज्ञानसहित होगा तो वह लाभदायक होगा। इच्छारहित तप सम्यक्-तप है, क्योंकि मोक्षमार्ग को जानने के बाद उसपर चलने का नाम मोक्षमार्ग है। आत्मानुभूति का अनुभवन करना ही मोक्षमार्ग है।

गृहस्थ व्यापार-धंधा करते हुए भी हेयाहेय समझकर जिन भगवान् का निरंतर ध्यान करे तो वह भी निर्वाण पा सकता है। आचार्य योगीन्दुदेव कहते हैं कि जिनभक्ति मुक्ति दे

सकती है। महामंत्र की महिमा अपार है।

जिण सासणस्य सारो चउदस पुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे णमोक्कारो संसारो तस्य किंकुणदिता।

यह जिनशासन का सार है। ज्ञानीजीव पुण्य क्यों करता है? पाप से बचने के लिए। जबकि अज्ञानी भोगाकांक्षा की पूर्ति हेतु पुण्य करता है। पुण्य हेय नहीं है। पुण्य से तो ये सब सामग्रियाँ मिलती है। परंतु आचार्य आगे कहते हैं कि पुण्य में ही लीन न हो जाना, उस पर शुद्धोपयोग का ब्रेक लगाना जरूरी है। परिणाम कर्मबंध के कारण हैं, परिणामों से ही मोक्ष मिलेगा, यह सत्य है। आत्मदर्शन ही मोक्ष है, दृष्टि उसी पर रखना। यह सोदाहरण 'अध्यात्म देशना' में विशद् किया गया है।

आचार्य योगीन्दुदेव ने आत्मा का स्वरूप समझाते हुए 'योगसार' में कहा कि- ''शुद्धात्मा और भगवान् में कुछ भेद नहीं। आत्मा, वही भगवान् एवं मैं भी वही परमात्मा।'' आत्मा के विस्तार का वर्णन अत्यंत गूढ़ है तथापि मुनिश्री ने सरल सुबोध भाषा में बताया कि- ''आत्मा निश्चयनय से लोकप्रमाण, परन्तु व्यवहारनय से शरीरप्रमाण है। परमार्थदृष्टि से अरहन्त भगवान् का स्वभाव और मेरा स्वभाव एक ही है। मैं लोक में हूँ, अरहन्त भी लोक में है। फर्क इतना ही है कि हम राग से युक्त हैं, वे वीतराग हैं। हमारी चेतना अशुद्ध है, उनकी चेतना शुद्ध है।'' यह तथ्य आत्मार्थी जीव का मार्गदर्शन करने में समर्थ है।

मुनिश्री ने एक अति सरल प्रमाण प्रस्तुत करते हुए सभी भ्रांतियों का निराकरण किया है। वे कहते हैं:-

स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥भावना द्वात्रिंशतिका॥

आज तक अनन्त भवों से 84 लाख योनियों में भ्रमण करते हुए हमें मुक्ति क्यों नहीं मिली? हम क्यों भटक रहे हैं? हमने एक बार भी 'योगी' बनने का पुरुषार्थ नहीं किया, सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं किया। हमनें जो कर्म किए उनका फल हमें ही भोगना पड़ता है, अन्य को नहीं। ऐसे कई उदाहरणों से, दृष्टांतों से मुनिश्री ने श्रावक के लिए योगी बनने की प्रेरणा देते हुए ''योगसार'' की 'तत्त्वदेशना' कही है।

तप, संयम, व्रत-नियम, शीलको धारण तो करना पड़ेगा ही, तथापि निर्मल आत्मा के स्वरूप को जो पहचानेगा वह शीघ्र ही सिद्धपद को प्राप्त होगा। आत्मस्वरूप को जाने बिना यह सब व्यर्थ है, ऐसी सुस्पष्ट चेतावनी गुरुदेव ने दी है। पाप से जीव नरक जाएगा तथा पुण्य से स्वर्ग, परंतु जब ये दोनों छूट जाएँगे तभी मोक्ष की प्राप्ति होगी। निर्मल आत्म की प्राप्ति ही अंतिम ध्येय है।

जिनेंद्र भगवान् ने छः द्रव्य, नौ पदार्थ, सात तत्त्व कहे हैं। इनका प्ररूपण संक्षेप में कर

मुमुक्षु को मोक्षमार्ग में उन्नत कराने में योगसार की तत्त्व-देशना पूर्णरूपेण यशस्वी हुई है। जीव व अजीव के स्वरूप का ज्ञान, वस्तुस्वरूप का भान, भेद-विज्ञान यही मोक्षमार्ग में सहायक है।

अब इस स्वरूप को जानना है तो गुरु के प्रसाद से जानो। गुरु-उपदेश सर्वोपरि है। गुरुचरण को मत छोड़ना, इस तत्त्व को मुनिश्री ने गुरु गोविंद, गुरु द्रोणाचार्य आदि के लोकप्रसिद्ध उदाहरण देकर समझाया है। लोकापवाद में आकर वीतराग धर्म एवं गुरुभक्ति न छोड़ने का संकेत श्रावकों को धर्ममार्ग में स्थिर रखने में समर्थ है।

सामान्यतः भक्त भगवान् को देवालयों में, मंदिरों में, तीर्थों में ढूँढ़ते हैं, परंतु भगवान् तो वास्तव में देह-मंदिर में विराजमान है। इस सत्य-तथ्य को मुनिश्री ने यथोक्त दृष्टांत तथा कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। मुनिश्री की काव्यात्मक शैली का अनुभव उपादान-योग्यता का विश्लेषण करते हुए दृष्टिगोचर होता है। मुनिश्री कहते हैं-निज देह में विराजित अनंत-ज्ञायक-स्वभावी निजप्रभु को जाना नहीं, यह कितनी मूढ़ता है? अरे! सूर्य मेघों से ढँका है, तो क्या सूर्य नहीं है? आत्मा कर्मों से ढँकी है, तो क्या आत्मा नहीं है? वैराग्य-वायु से कर्मबादलों को दूर भगाओ, आत्म-सूर्य प्रकट होगा। वह तो उसके अंदर विद्यमान ही है।

हम धर्म को बाहर खोजने का प्रयास करते हैं, धर्म को बाह्य वस्तुओं शास्त्र, पीछी, केशलोंच में मानते हैं, परंतु धर्म इन बाह्य क्रियाओं में नहीं है। धर्म तो अंतरात्मा की अनुभूति का विषय है। यह अनुभूति कब होगी? जब हम राग-द्वेष छोड़ेंगे, तब ही 'आत्मधर्म' यानी वास्तविक धर्म प्रकट होगा। इसकी चर्चा करते हुए मुनिश्री ने हमारी अनेक गलत धारणाओं की ओर निर्देश करते हुए हमें सावधान किया है। कितनी भ्रांतियों, गलत परंपराओं को हम पकड़े बैठे हैं, इसका ज्ञान कराया है। मुनिश्री का सूक्ष्म निरीक्षण तथा समान संपर्क की महत्ता इससे ध्यान में आती है।

मुनिश्री निर्देश देते हैं कि गलतियों को सुधारा जा सकता है। क्रियाकांड से परे रह सकते हैं। राग-द्वेष को छोड़ना यह सच्चा धर्म है। 'रागद्वेष के त्याग बिना परमात्मा-पद नहीं' इस उक्ति को साकार करना सीखो। रागद्वेष छोड़ना, इसी से मोक्ष है।

शास्त्र पढ़ने से कुछ नहीं होता। शास्त्र नहीं, आत्मा पढ़ो। पंडित मन-इंद्रिय से छुटकारा पा जाए तो उन्हें और किसी से पूछने की, करने की जरूरत नहीं है। आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव द्वारा निर्वाणपद का निरूपण करते हुए 'योगसार' में सूत्रों से जो कहा गया है मुनिश्री विशुद्धसागर जी द्वारा उसका सूक्ष्मता से अनुशीलनपूर्ण संप्रेषण इस 'अध्यात्म देशना' में हुआ है। नासाग्रदृष्टि, परमदिगम्बरमुद्रा, अशरीर से सुन्दरता का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है कि-धन्य है वह ध्यानमुद्रा, जिस मुद्रा से आत्मा स्वयं झलकती है। यह निर्ग्रंथ मुनि की मुद्रा कैसी है? जो आत्मा से आत्मा को जानती है। यही मुद्रा सिद्धपद प्राप्त

करने में समर्थ हो सकती है, केवलज्ञान को प्राप्त कर सकती है।

मुनि हो या गृहस्थ, जो आत्मा से आत्मा को जानते हैं, वे ही सिद्धपद पाते हैं। जो निजात्मा में निवास करते हैं, वे ही मुक्ति पाते हैं। विरले मनुष्य ही तत्त्व समझते हैं, विरले ध्यान करते हैं, और विरले मुनिमुद्रा धारण करते हैं। इन्द्र-नरेंद्र से मुनि-पद श्रेष्ठ है। जो जानते हैं कि लोहे की हो या सोने की, श्रृंखला तो श्रृंखला ही है। वह बंधन है। उसे वे त्याग देते हैं, तोड़ देते हैं। जिनका मन निर्ग्रंथ होता है, वे ही निर्ग्रंथ होते हैं।

मोक्ष का कारण राग-द्वेष का त्याग ही है। वटवृक्ष के उदाहरण से आचार्यदेव ने आत्मा का स्वरूप बताया है। अन्त में आचार्यभगवान् द्वारा केवलज्ञान-लक्ष्मी का स्वरूप विशद् किया गया है। मुनिश्री ने इस स्वरूप का वर्णन करते-करते आत्मा को रोमांचित कर दिया है। वे कहते हैं-सम्यक्त्व आधारभूत तत्त्व है। जो उसे प्राप्त कर लेता है, उसकी आत्मा अजर-अमर गुणों में स्थिर हो जाती है। उसके सभी कर्मों का नाश हो जाता है। वह कमलपत्र के समान जल से भिन्न वैसे सभी कर्मों से भिन्न होकर निर्मल स्वरूप में स्थिर रहता है। अशुचि शरीर से अलग, शुद्ध स्वरूप में, शाश्वत सुख में लीन हो जाता है, सकल ज्ञान का स्वामी बन जाता है। राग-द्वेष एवं हिंसादि पापों से पूर्णतः निवृत्ति होती है। मिथ्यात्व समाप्त होकर सम्यदर्शन की विशुद्धि प्रकट होती है।

अन्त में आचार्यश्री योगीन्दुदेव कहते हैं-निश्चयनय से आत्मा ही अर्हन्त है, सिद्ध है, उसे ही आचार्य, उपाध्याय और साधु जानो तथा आज तक जो सिद्ध हुए, वर्तमान में हो रहे हैं तथा भविष्य में होंगे वे सभी ''आत्मदर्शन'' से ही सिद्ध हैं, यह भ्रांतिरहित जानो।

'योगसार' ग्रंथ का प्रजोयन स्वानुभूति द्वारा शुद्धात्म-स्वरूप अनुभव करना और स्वयं में स्थिर हो जाना है। लोगों की मिथ्या निर्माण हुई भ्रांति, देहादिक में अनुराग और उसे पुण्य का साधन मानना, इसे दूर कर देहालयरूपी देवालय में चैतन्यस्वरूप आत्मा की प्रतीति करना और वर्तमान में देहादि को आत्मा से भिन्न जानना और वर्तमान पर्याय की वास्तविकता/यथार्थता जानकर ध्रुवरूप सिद्धों के गुणों की प्रतीति करना, इसी उद्देश्य को लेकर आचार्य योगीन्दुदेव ने स्वपर कल्याणार्थ इस ग्रंथ की रचना की।

इसे अध्यात्मदर्शी, प्रवचन-केसरी मुनिश्री विशुद्धसागर महाराज ने सदय-हृदय होकर इस रहस्य को अपनी अमोघ वाणी से मुखरित किया, इसलिए इस ग्रंथ की उपादेयता और भी वृद्धिंगत हुई है।

दि. 10.11.2006

1. डॉ.कुलभूषण लोखंडे,
   संपादक 'दिव्यध्वनि' एवं सेवानिवृत्त प्राचार्य,
   शासकीय महाविद्यालय,सोलापुर (महाराष्ट्र)
2. पं. मोहन जैन गाँधी, धरणगाँव (महाराष्ट्र)

प्रस्तुति

संस्कृत के 'योगीन्दु' का अपभ्रंश भाषा में समानार्थी शब्द 'जोइन्दु' है। योगीन्दुदेव के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण नहीं मिलता, फिर भी ''कृतिकार की कृति ही उसका वास्तविक परिचय है।''-इस कहावत के अनुसार वे महान् अध्यात्मवेत्ता थे। वे आचार्य-भगवान् कुंदकुंद की अध्यात्म-परम्परा के अत्यंत विरक्तचित्त आचार्य थे। 'परमात्मप्रकाश' योगीन्दुदेव की रचनाओं में सबसे उत्कृष्ट है। आचार्यभगवान् पूज्यपाद के 'समाधिशतक' और 'परमात्मप्रकाश' में घनिष्ठ समानता है। आचार्यभगवान् देवसेन स्वामी के 'तत्त्वसार' और 'परमात्मप्रकाश' में भी काफी समानता है।

योगीन्दुदेव विरचित 'योगसार' का मुख्य प्रतिपाद्य विषय भी वही है जो 'परमात्मप्रकाश' का है अर्थात् आत्मदर्शन। संसार से भयभीत और मोक्ष के उत्सुक प्राणियों को मोहनिद्रा से जगाने के लिये उन्होंने 108 दोहों में 'योगसार' की रचना की। यह रचना अपभ्रंश भाषा में निबद्ध है। शुद्ध एवं मिश्रित संस्कृत तथा प्राकृत शब्दों का समानुपातिक एवं आनंददायक सम्मिश्रण है यह अपभ्रंश भाषा। ईसा की आठवीं शताब्दी तक यह जनप्रचलित 'अपभ्रंश भाषा' पद्य-रचना का एक आकर्षक माध्यम समझी जाती थी।

आचार्य योगीन्दुदेव की अन्य रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे संस्कृत और प्राकृत की काव्य-रचना में भी सिद्धहस्त थे परन्तु उन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत जैसी विद्वद्-ग्राह्य भाषा के स्थान पर अपभ्रंश-जैसी लोकग्राह्य एवं जनप्रचलित भाषा में इस 'योगसार' को रचा ताकि जनसामान्य को भी अपने आत्मस्वरूप का बोध हो और वे आत्महित में प्रवृत्त हो सकें।

एक गूढ़वादी के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह बहुत बड़ा विद्वान् हो और न वर्षों तक व्याकरण और न्याय में सिर खपाकर उसमें सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किंतु मानव-समाज को दुःखी देख आत्म-साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिये प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों पर विशेष विचार किये बिना जनता के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अतः उच्च कोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को छोड़कर समय की प्रचलित भाषा को अपनाना काफी महत्व रखता है।

अध्यात्म के तलस्पर्शीवित्ता प.पू. आचार्यश्री विशुद्धसागर जी की भावना, श्रीमद् योगीन्दुदेव की भांति, जनसामान्य को आत्मस्वरूप का बोध कराकर आत्महित में प्रेरित करने की रही है। इसीलिये उनके प्रवचनों की भाषा जनसामान्य में प्रचलित बोलचाल की सरल सहज आमभाषा है। प्रस्तुत कृति 'अध्यात्म-देशना' आचार्यश्री विशुद्धसागर जी द्वारा 'योगसार' पर उनकी उसी सहज-सरलआम बोलचाल की भाषा में दिये गये प्रवचनों का लिपिकरण है। स्वाध्याय कर आत्मलाभ लें।

हृदय की भावना कितनी ही विशाल क्यों न हो, उस भावना की विशालता को व्यवहारिक जीवन में जब तक समन्वित न कर पायें और वास्तविक जीवन में कार्यान्वित कर व्यवहार्य न बनावें तो उससे लाभ ही क्या? कार्यान्वित करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध दृढ़ता की जरूरत है। यह दृढ़ता न हो तो कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि उस सहज अध्यात्म-मार्ग पर आगे बढ़ने का यह पहला कदम है। धर्म कुछ शब्दों के अर्थ समझ लेने या कुछ क्रियायों के दोहरा लेने से समझ में आने वाला नहीं है। वह शब्दातीत है। धर्म का रहस्य अनुभवन और चिंतन से ही खुलता है। धर्म आत्मशांति की प्राप्ति का विज्ञान है, आत्मखोज का विज्ञान है। धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है। पर यह भी सच है कि शब्दातीत और अनुभवगम्य धर्म का क-ख-ग सीखने में शब्द मदद करते हैं और अनुभवन की ऊँचाइयाँ छूने के लिये श्रेष्ठ विचारों की ठोस जमीन पर पैर टिकाना पड़ता है। इसलिये जैन दर्शन एवं अध्यात्म के अनुभवी आचार्य-भगवंतों द्वारा कथित शब्दों और उनके भावों का परिचय कराने का प्रयास है प. पू. आचार्यश्री विशुद्धसागर जी द्वारा छतरपुर प्रवास में दिये गये प्रवचनों का यह संकलन 'अध्यात्म-देशना'।

स्वाध्याय का अर्थ स्वयं के लिये बोध लेना है। स्वयं का निरीक्षण करके ही जीवन में रूपान्तरण होता है। अपने जीवन-निर्माण के अनुरूप जो भी, जितने भी विचार पसंद आयें, उपादेय एवं प्रयोगात्मक लगें, पाठक उसे ही समादर के साथ अपनायें और अपनी जीवन-यात्रा को सही दिशा दें। जीवन जीने की कला एवं जीवन-विज्ञान का दिग्दर्शन है यह 'अध्यात्म-देशना'।

सर्वस्व भीतर है, बाहर कचरा है। अपने अंदर के सर्वस्व को कभी निहारा नहीं, इसलिये बाहर का वह कचरा ही सर्वस्व लगता है। एक बार अंदर के सर्वस्व को निहारो तो बाहर का मोह स्वयं टूट जायेगा और जीवन में अहोभाव का झरना फूट पड़ेगा। चिंतन के धरातल पर उतरे बिना चिरंतन को नहीं पाया जा सकता है।

भव-भव में आज तक हमने 'पर' ही को जानने का पुरुषार्थ किया, मिला क्या? दुःख और क्षणिक सुखाभाष। अब अपने को जानने का पुरुषार्थ करिये इस कृति के माध्यम से और पाइये अनंत सुख का कोष। यही नहीं, अनंत दर्शन-ज्ञान-वीर्य भी।

ज्ञान प्राप्त करके जो मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर नहीं हो पाता, वह तो एक नए परिग्रह को प्राप्त हो गया। आचार्य भगवंतों ने कहा-चारित्र शून्य-ज्ञान कोरा परिग्रह है, अहं को बढ़ाने वाला है। ज्ञानी वह है जो विनय, भक्ति व चारित्र से युक्त है।

प्रमादवश या अल्पज्ञतावश टंकण/मुद्रण/शब्द संयोजन/शब्द विन्यास में त्रुटि होना संभव है। सुधी विद्वद्जनों से विनती है कि वे यथा-स्थान शुद्धि कर लेवें और मुझ अल्पज्ञ को उन त्रुटियों से अवगत करावें ताकि उनका निराकरण किया जा सके। त्रुटियों से अवगत कराने वाले साधु/श्रावक का मैं आभारी होऊँगा।

- इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन, पद्मनाभनगर, भोपाल

आद्य वचन:

'योगसार' की टीका 'अध्यात्म देशना'

जैन परम्परा के अनुसार तीर्थंकर भगवन्तों की वाणी तो निरक्षरी थी, किंतु समवसरण में उपस्थित समस्त भव्य जीव उसे अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते थे। पूज्य गणधरों ने हृदयंगम कर उसे श्रुतधराचार्यों को उपलब्ध कराया, जो श्रुत रूप में अनेक दशकों तक प्रवाहित होती रही। कालक्रम से क्षीण होती श्रुत परम्परा की रक्षा हेतु विशिष्ट ज्ञान के धारी आचार्यों ने इसे सूत्र रूप में लिपिबद्ध किया। पूज्य आचार्य गुणधर, आचार्य धरसेन एवं आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित इन ग्रंथों में संरक्षित जिनवाणी के मर्म को समझना अत्यंत दुष्कर होता यदि आचार्य यतिवृषभ, वीरसेन, जिनसेन, अमृतचंद्र, जयसेन आदि आचार्य इन ग्रंथों की टीकाएँ न रचते। मूल आगम ग्रंथों पर टीका-साहित्य रचने वाले आचार्यों की श्रृंखला अत्यंत विशाल है। चंचल चित्त को स्थिर करने अथवा भक्तों के प्रति वात्सल्य भाव से अनुप्राणित होकर स्वतंत्र रूप से अध्यात्मपरक ग्रंथों की रचना करने वाले आचार्यों में आचार्य योगीन्दुदेव (जोइन्दु) का नाम सर्वप्रमुख है। 6ठी शताब्दी ईस्वी के अपभ्रंश भाषा में रचना करने वाले आचार्य जोइन्दु जैन-परम्परा के महान रहस्यवादी कवि हैं। यह हमारी उदासीनता ही है कि आज जोइन्दु से प्रभावित होकर रहस्यवाद पर काव्य रचना करने वाले 'कबीर' को तो जग जानता है, किंतु योगीन्दु के इस पक्ष को हमने भुला दिया।

आपकी निम्नांकित 6 कृतियाँ विद्वानों में मान्य हैं:

1. परमात्मप्रकाश	2. नौकारश्रावकाचार	3. योगसार
4. अध्यात्मसंदोह	5. सुभाषित तंत्र	6. तत्त्वार्थटीका

युग बदला, भौतिक संसाधन बढ़े, धन के प्रति तृष्णा बढ़ी, व्यक्ति की व्यस्तता बढ़ी, किंतु मन की शांति, घटी, समाज में प्रेम, सद्भाव एवं ममत्व घटा, नैतिकता एवं मानवीयता घटी। समाज के एक वर्ग के पास भौतिक एवं आर्थिक संसाधनों का अंबार लग गया, किंतु मानसिक शांति एवं संतोष पता नहीं कहाँ तिरोहित हो गए। आपाधापी भरे इस युग में प्रभु भक्ति के लिए लोगों के पास समय नहीं, कर्मसिद्धांत का ज्ञान नहीं। कर्मन की गति मालूम न होने से कामकाजी मध्यम वर्ग में निराशा, हताशा, अवसाद बढ़ने लगा है। इस स्थिति में न केवल वृद्ध अपितु युवा भी धर्म के प्रति विमुख होने लगे हैं। अब बारी धर्माचार्यों की है जो इन पीड़ित, दुःखी, निराश युवाओं को धर्म का संबल प्रदान करें। वैज्ञानिक अभिरुचि सम्पन्न इन युवकों को तर्क एवं विवेकपूर्ण ढंग से कर्म-सिद्धांत एवं धर्म का मर्म समझाने पर वे दृढ़ श्रद्धावान् श्रावक बन सकते हैं। बाह्याडम्बरों एवं कर्मकाण्ड में इनकी स्वाभाविक रुचि नहीं है, भले ही परिस्थितिवश वे इसे अपना लें।

महान् दिगम्बर जैनाचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज की यशस्वी परम्परा में गणाचार्य श्री विरागसागरजी से दीक्षित युवा मुनि एवं प्रभावक संत आचार्य श्री विशुद्धसागरजी ने अपभ्रंश भाषा के योगसार ग्रंथ के 108 दोहों में विभिन्न विषयों पर प्रवचन दिए हैं। वस्तुतः यह अध्यात्म विषयक कृति है, जिसका मूलाधार पूज्य जोइन्दु की ही पूर्व कृति 'योगसार' है।

आचार्य विशुद्धसागरजी ने 2005 की ग्रीष्मकालीन वाचना में छतरपुर में इसी 'योगसार' पर विस्तृत प्रवचन दिए। आचार्यश्री के प्रवचनों का यह वैशिष्ट्य है कि वे हस्तगत विषय को स्पष्ट करने हेतु विभिन्न ग्रंथों से उद्धरणों को संकलित कर जहाँ इसे प्रमाणिकता प्रदान करते हैं वहीं समकालीन परिवेश से विषय को सम्बद्ध कर उसे सरल, सहज एवं बोधगम्य बना देते हैं। समाज में प्रचलित रूढ़ियों पर तीखे प्रहार किए हैं जिससे न केवल अध्यात्म-रसिक संतुष्ट होते हैं अपितु युवा भी उसे तार्किक एवं उपयोगी स्वीकार कर आनंदानुभूति करते हैं।

'अध्यात्म देशना' शीर्षक से संकलित 'योगसार' के प्रवचनों का यह संकलन एक आधुनिक, उपयोगी टीका है इसका समाज में जितना पठन-पाठन होगा उतना समाज में सामंजस्य बढ़ेगा, भ्रांतियों का निरसन होगा। मुमुक्षु भी संतुष्ट होंगे एवं धर्म का ककहरा सीख रहे युवा भी। इस टीका में जीवन जीने की कला भी है, प्राथमिकताएँ भी हैं एवं इस भव एवं परभव दोनों की चर्चा है, साथ ही वह सब कुछ जो हम किसी गुरु या ग्रंथ में पाना चाहेंगे।

ऐसी श्रेष्ठ कृति का सृजन कर हम श्रावकों पर महान् उपकार करने वाले पूज्य गुरुदेव के चरणों में शतशः नमन्।

डॉ. अनुपम जैन
प्राध्यापक-गणित
इंदौर

तृतीय संस्करण से साभार...

प्रकाशकीय

–: नमोस्तु शासन जयवंत हो :–

अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों के सर्जक आचार्य योगीन्दुदेव विरचित ग्रन्थ योगसार अपभ्रंश भाषा के 108 दोहों में रचित आध्यात्म विषयक कृति है, जिसमें आध्यात्मिक जीवन को ऊँचा उठाने के लिये समस्त तत्वों का सार समाहित है। इसी योगसार कृति पर आध्यात्मयोगी परमपूज्य आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज द्वारा वर्ष 2005 में छतरपुर (म.प्र.) प्रवास के दौरान वहाँ ग्रीष्मकालीन वाचना में दिये दिव्य प्रवचनों का संकलन है ''अध्यात्म देशना'' जिसमें आचार्यश्री ने योगसार के वैभव को उद्घाटित किया है।

परमपूज्य गणाचार्यश्री विरागसागरजी महाराज के आज्ञानुवर्ती शिष्य और नमोस्तु शासन को गौरवांवित करने वाले आचार्य श्री विशुद्धसागरजी महाराज एक असाधारण संत हैं और वीतरागता से विभूषित उनके व्यक्तित्व में गुरु गोविन्द दोनों के दर्शन होते हैं, वहीं उनकी आगम अनुकूलचर्या में उनके दीक्षा गुरु गणाचार्य श्री विरागसागरजी के साथ-साथ संत शिरोमणी आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज की छवि भी परिलक्षित होती है

आत्मरस के मर्मज्ञ आचार्य श्री विशुद्धसागरजी गहन तात्विक चिंतक एवं उत्कृष्ट क्षयोपशम धारी है और उनके ध्यान में न केवल तीनों लोकों का ज्ञान झलकता है वरन उनका ज्ञान घट भी जगत कल्याणी जिनेन्द्र की वाणी और श्रमण संस्कृति के महान आचार्यों द्वारा सृजित ग्रन्थों के ज्ञान से भी लबालब भरा है। ऐसी अनुभूति वर्ष 2007 में छत्रपति नगर इन्दौर में सम्पन्न, आचार्यश्री के चातुर्मास के दौरान न केवल मुझे वरन हजारों श्रोताओं ने भी आचार्य श्री की दिव्य देशना सुनते हुए की है, इसलिए यहां यह उल्लेख करना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा कि इस पंचमकाल में भी आचार्य श्री के श्रीमुख से आगम का विवेचन दिव्य ध्वनि स्वरूप ही है।

आचार्य श्री आगम के किसी भी ग्रन्थ की वाचना करें अथवा किसी भी विषय पर प्रवचन दें, उनके प्रवचनों की यह विशेषता है कि वे बोलचाल की आम भाषा में प्रवचन देते हैं और आगम के विभिन्न ग्रन्थों के उद्धरणों के माध्यम से विषय/कथन को प्रमाणिकता प्रदान करते हुए उसे बोधगम्य बना देते हैं , जिससे अध्यात्म रसिक श्रोता संतुष्ट और आनन्दित हुए बिना नहीं रहता और यही कारण है कि आचार्यश्री जहां भी होते हैं वहाँ बचपन से पचपन की उम्र के हजारों लोग उनकी दिव्य देशना सुनने प्रवचन सभा में स्वतः ही चले आते हैं और हजारों लोग उनके प्रवचन संकलनों को पढ़ने के लिये भी लालायित रहते हैं।

धन्य हैं, उनके गुरु आचार्य विरागसागरजी महाराज उन्हें बारंबार नमोस्तु जिन्होंने इतनी दक्षता से अपने शिष्य रूपी इस हीरे को तराशा है कि आज वह नगर-नगर और डगर-डगर

और आध्यात्म की सुरभि फैलाते हुए श्रमण संस्कृति को गौरवान्वित कर रहे हैं। मुगलों एवं अंग्रेजों के समय मुनियों के दर्शन कुछ काल के लिये दुर्लभ हो गये थे लेकिन आचार्य शांतिसागरजी महाराज के समय उनकी प्रेरणा और प्रयासों से निर्ग्रन्थ मुनि परम्परा पुनः दृष्टिगोचर हो रही है और उसी का यह सुफल और हमारा सौभाग्य है कि हमें आज अल्प प्रयासों से ही मुनियों के दर्शन सुलभ हो रहे हैं।

वर्तमान युग के महान आचार्यों के जितनी सहजता से दर्शन हमें मिल रहे हैं, यह इस पीढ़ी के श्रावकों का परम सौभाग्य है, कामना है कि पंचम काल के अंत तक इसी प्रकार इन ''धरती के देवताओं'' के दर्शन होते रहें एवं निर्ग्रन्थ दिगंबर मुनि परंपरा अक्षुण्ण बनी रहे ताकि धर्म पिपासु श्रावकों के लिए सदैव कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता रहे।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं वर्ष 2007 में आचार्य श्री विशुद्धसागरजी महाराज के छत्रपति नगर इन्दौर में सम्पन्न चातुर्मास के दौरान उनके संपर्क में आया और मुझे न केवल उनका चरण सान्निध्य और आशीर्वाद प्राप्त हुआ वरन् वर्ष 2005 में आचार्यश्री के छतरपुर प्रवास के दौरान वहाँ उनके द्वारा ग्रीष्मकालीन वाचना में योगसार ग्रन्थ पर जो विस्तार से प्रवचन दिये गये उन प्रवचनों का संकलन योगसार अध्यात्म देशना के तृतीय संस्करण को अपने माता-पिता की स्मृति में प्रकाशित करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ, पुनश्च अत्यन्त हर्ष है कि अध्यात्म-प्रेमियों की जिज्ञासा एवं योग के कारण चतुर्थ संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। स्वाध्याय-प्रेमी सुधीजन अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे। ग्रंथ के मुद्रक डीसेन्ट ग्राफिक्स के श्री जैन राजेश कानूगो का हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

पुनः प्राणी मात्र के कल्याणकारी जिनेन्द्र वाणी को सरल, सुबोध भाषा में जन-जन तक पहुँचाने वाले धरती के देवता परम पूज्य आचार्य श्री 108 विशुद्धसागरजी महाराज एवं संघस्थ मुनिराजों के चरणों में नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु।

जिसके लिये मैं आचार्य श्री के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और भावना भाता हूँ कि सुधीजन अध्यात्म देशना के इस संस्करण का भी भरपूर समादर करेंगे और इसका स्वाध्याय करते हुए अध्यात्म के मर्म को समझने में सक्षम बनेंगे।

अध्यात्म देशना के प्रकाशन/सम्पादन में इंजी. श्री जिनेन्द्र कुमारजी भोपाल के प्रशंसनीय पुरुषार्थ और ग्रन्थ में शब्द शुद्धि के लिये प्रो. शांतिलालजी बड़जात्या इन्दौर के द्वारा किये गये सम्यक पुरुषार्थ के लिये मैं हृदय से आभारी हूँ एवं सभी सहयोगियों का हृदय से आभार मानता हूँ।

अंत में जगत कल्याणी जिनेन्द्र की वाणी के समर्थ उद्घोषक परम पूज्य आचार्यश्री विशुद्धसागरजी महाराज ससंघ के चरणों में शत् शत् नमन्।

नमोस्तु शासन जयवंत हो...

आशीर्वाद अभिलाषी - आजाद कुमार जैन

मंगल हो आचरण, यही मंगलाचरण।

अध्यात्मदेशना जिनेन्द्रदेव की जगतकल्याणी है।

योगसार

णिम्मल-झाण-परिट्ठिया, कम्म-कलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु, ते परमप्प णवेवि॥1॥

अर्थ-जो निर्मल ध्यान में स्थित हैं, और जिन्होंने कर्म-मल को भस्म कर परमात्मपद को प्राप्त कर लिया है, उन परमात्माओं को नमस्कार करता हूँ।

घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ णंत-चउक्कु पदिट्ठु।
तह जिणइंदहँ पय णविवि अक्खभि कब्बुसु-इट्ठु॥2॥

अर्थ-जिसने चार-घातिया-कर्मों का नाश कर अनन्त चतुष्टय को प्रगट किया है, उस जिनेन्द्र के चरणों को नमस्कार कर, यहाँ अभीष्ट काव्य को कहता हूँ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

श्रमणसंस्कृति में महान् आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी हुए, जिन्होंने तीर्थंकर महावीरस्वामी की दिव्यदेशना को हम सभी के बीच प्रसारित किया। उन्होंने ऐसे ग्रंथ का सृजन किया, जो कि भोगी को योगी बना देता है और योगी को भगवान् बना देता है। जिनवाणी का श्रवण पंचपरमेष्ठी की आराधना-सदृश है। आचार्यभगवान् नागसेनस्वामी कहते हैं-

ध्यातोअर्हत्सिद्धरूपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये।
तद्ध्यानोयात्त पुण्यस्य स एवान्यस्य मुक्तये॥197॥तत्त्वानुशासन॥

यदि कोई जीव परमागम यानी तीर्थंकर की देशना का पान अंतःकरण से करता है, तो वह मुक्ति और भुक्ति दोनों को प्राप्त करता है। यदि कोई चरमशरीरी पंचपरमेष्ठी और जिनवाणी की आराधना करता है तो वह मुक्ति को प्राप्त करता है और यदि कोई अचरम-शरीरी पंचपरमेष्ठी की आराधना और जिनवाणी की साधना करता है तो भुक्ति को प्राप्त करता है। मुक्ति यानी मोक्ष और भुक्ति यानी भोगसामग्री। शास्त्रीयभाषा में कहेंगे-निःश्रेयस सुख और अभ्युदय सुख। निःश्रेयस यानी मोक्षसुख तथा अभ्युदय यानी संसार का सुख। जो जीव चरमशरीरी यानी तद्भव मोक्षगामी होता है, उसके लिये पंचपरमेष्ठी की आराधना साक्षात् मोक्ष का हेतु बनती है और जो जीव अचरमशरीरी यानी तद्भव मोक्षगामी नहीं होता है, उसके लिये संसार के भोगों को प्रदान कराकर परम्परा से मोक्ष प्रदान करती है।

भो ज्ञानी ! आज सर्वप्रथम मंगलाचरण करेंगे और मंगलाचरण भी जैसे आज तक करते

आए, वह मंगलाचरण नहीं होगा। जिसका मंगल आचरण ही नहीं, वह क्या करेगा मंगलाचरण? जिसका मंगल है आचरण, वह है मंगलाचरण। जिससे उत्तम सुख की प्राप्ति हो, दुःखों का परिहार हो-उसका नाम है मंगल, ऐसे मंगलमय आचरण को मंगलाचरण कहते हैं। मंगलाचरण नाममंगल, स्थापनामंगल, द्रव्यमंगल, क्षेत्र मंगल, कालमंगल और भावमंगल के भेद से छः प्रकार का होता है।

(1) नाममंगल-मांगलिक/निर्मल नाम लेना, जैसे भगवान् महावीरस्वामी की जय हो। बस हो गया मंगलाचरण। यह नाम-मंगल है। किसी का नाम मंगल था, मगर उसे बिगाड़कर आप दूसरा नाम लेने लगे, तो अमंगल कर दिया। ध्यान रखना, किसी का गलत नाम नहीं लेना। उसके परिणाम बिगड़ें या न बिगड़ें, लेकिन आप की शब्द-वर्गणाएँ विपरीत हो गई। अहो मुमुक्षु ! जैसे-एक लोभी एक-एक पैसे की कीमत करता है, वैसे ही मुमुक्षु ज्ञानीजीव अपनी वाणी की कीमत करता है। आज तुम्हारा पुण्य का योग है, इसलिए व्यर्थ की बातों में लगे हो। जब एकेन्द्रिय वृक्ष बनोगे तो बोलने को नहीं मिलेगा। आज मंगलाचरण के दिन कुछ मंगल करके उठना कि, भगवन् ! ज्यादा होगा तो मैं मौन रहूँगा और बोलने को हुआ तो उतना ही बोलूँगा, जितना अनिवार्य है। कुतीर्थों का नाम नहीं लेना, खोटे नाम नहीं लेना। प्रभु से प्रार्थना करना-'हे पारसनाथ स्वामी ! आपके चरणों में आया हूँ। मेरी वाणी से निकले तो जिनवाणी निकले।' उस जीव के पुण्य को निहारना जो मुख से मात्र जिनवाणी निकालता है, अन्य हर समय मौन रखता है। जीवन में ध्यान रखना, जिसने मौन साधना की है, उसके सर्वांग से वाणी खिरती है। तीर्थंकर महावीर स्वामी ने दीक्षोपरांत बारह वर्ष तक सिर्फ मौन-साधना की, तभी तो दिव्य-देशना खिरी थी। यहाँ तो आप दो मिनिट बिना बोले नहीं बैठ पाते हो। आज से इतना ध्यान रखना कि विश्व की सम्पूर्ण साधनाएँ एक तरफ और एकांत मौनसाधना एक तरफ। इसी बात को पुष्ट करते हुये आचार्यभगवान् अमृतचंद्रस्वामी ने ग्रंथराज ''अध्यात्म-अमृत कलश'' में लिखा-'अहो ज्ञानी! छह मास तक एकांत में मौन होकर बैठ जाओ, तुम्हें भेद-विज्ञान की अनुभूति हो जायेगी।' पर मौन यानी मौन, मूक नहीं। मूक तो पशु होते हैं, जो बोलना चाहते हैं किन्तु बोल नहीं पाते और जो यहाँ बोल सकते हैं, किन्तु बोलते नहीं है-वह होता है मौन। यह महान् अंतर है मौन और मूक में।

(2) स्थापनामंगल-पंचपरमेष्ठी की स्थापना करना, अरहंत प्रतिमा की स्थापना करना-ये स्थापना मंगल है। ध्यान रखना, जिसकी मंगल भावना होगी, वही नाम-मंगल और स्थापना-मंगल कर पायेगा।

(3) द्रव्यमंगल-मांगलिक द्रव्य-आचार्य, उपाध्याय साधु आदि के शरीर द्रव्य-मंगल हैं। इसके तीन भेद हैं - (1) सचित्त द्रव्य मंगल जैसे कि साधु आदि (2) अचित्त द्रव्य मंगल जैसे

कि जिनवाणी आदि (3) सचित्ताचित्त मंगल जैसे कि हाथ में जिनवाणी लिए साधु।

(4) क्षेत्रमंगल-जिनमंदिर, जिनतीर्थ, जिस स्थान पर पंचपरमेष्ठी विराजमान हों, पंच-कल्याणकभूमि हो-ये सब क्षेत्र-मंगल हैं। भो ज्ञानी! मंगल-क्षेत्र में आने से अमंगल-भाव भी टल जाते हैं। जब आप टेलीविजन के सामने बैठे होते हैं, तब भाव कैसे आते हैं? जैसा चित्र होता है, वैसा चित्त हो जाता है और जैसा चित्त होता है, वैसा चारित्र बनता है। यह जैनदर्शन की विशेषता है, श्रमणसंस्कृति की मूल परम्परा है कि जब बच्चा 45 दिन का होता है तो उसको जिनालय में लाया जाता है। माँ कहती है-बेटे! तू वीतराग भगवान् को निहार और उस मुद्रा को देखकर तू अपने जीवन में कभी वीतरागी मुनि बन जाना। आचार्य कुंदकुंद स्वामी की माँ ने क्या सिखाया था और आप अपने बेटे को क्या सिखा रहे हो? आचार्य कुंदकुंद की माँ जब अपने बेटे को पालने में सुला रही थी तो क्या कह रही थी? चुन्नू-मुन्नू नहीं कह रही थी और न ही फिल्मी गीत सुना रही थी। "बेटे! शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि। अहो मेरे लाल! तू शुद्ध है, तू बुद्ध है, तू नित्य है, तू निरंजन है। अपने इस स्वभाव पर दृष्टि डाल।" यही परिणाम था कि सात बेटों को मुनि बना दिया। पति को चिन्ता हो गई कि राज्य कौन करेगा? पत्नी से बोले-तूने सातों-के-सात पुत्र मुनि बना दिये, तो पत्नी बोली-आप चिंता नहीं करो। माँ ने आठवें पुत्र के लिए संस्कार दिये-"बेटा! तू वीरपुरुष है।" राजा बना दिया उसको। जीवन में ध्यान रखना-ये संसार की माताएँ तो संसार के शत्रुओं से लड़ना सिखा सकती हैं परंतु वीतराग जिनवाणीमाँ कर्म-शत्रुओं से लड़ना सिखा रही है। इसलिए स्थापना-मंगल के दर्शन तो करना, किन्तु अमंगल वस्तु के दर्शन नहीं करना।

(5) कालमंगल-जिस काल में तीर्थंकर के पंच-कल्याणक होते हैं, जिस काल में तुम्हारे परिणाम निर्मल होते हैं, जिस काल में तुम्हें गुरुओं की सेवा करने के भाव आते हैं, जिनवाणी सुनने के भाव आते हैं और जिनदेव की आराधना करने के भाव आते हैं-यह काल-मंगल है।

अहो मुमुक्षु आत्माओ! जो देव, शास्त्र, गुरु को देखकर आँखें बंद कर लेते हैं, जो धर्मात्मा को देखना पसंद नहीं करते, उनके लिए ऐसे कर्म का बंध होता है कि वे किसी पुराने भवन के कोने में उल्टे लटके मिलेंगे, वे चमगादड़ होते हैं। जिन जीवों के परिणाम जिनवाणी सुनने के नहीं आते हैं, प्रभु की आराधना करने के नहीं आते हैं, गुरुओं को आहार देने के भाव नहीं आते हैं- ये ध्यान रख लेना, उनकी परिणति यही होगी, उन्हें उल्टे मुँह ही लटकना पड़ेगा। उल्टा मत सीख लेना। आज पुण्य का योग है तो समझ में नहीं आता। यदि इस समय मंगलकार्य नहीं कर पाए तो अमंगल सुनिश्चित है। कालमंगल कह रहा है कि जिस काल में सुकृत के परिणाम हों- उसका नाम कालमंगल है। जैसे-पंचकल्याण तिथियाँ, अष्टाह्निका, दशलक्षण पर्व आदि।

(6) भावमंगल-यह नहीं, तो सब अमंगल है। भो ज्ञानी! भाव है तो सबकुछ है और भाव नहीं है तो कुछ नहीं है। एक सज्जन के यहाँ ज्योंनार थी, बहुत से लोग खाने पहुँच गए। एक बोला-भैया! क्या चाहिए?- चटनी, मिर्च, नमक क्या चाहिए? कुछ तो बोलो। वह भैया बोले - सब कुछ रखा है, पर वह नहीं है। क्या नहीं है? भूख नहीं है। ऐसे ही, मनीषियो! ध्यान रखना-जिनदेव विराजमान हैं, जिनवाणी विराजमान है, निर्ग्रन्थ गुरु भी तुम्हें मिल गये, लेकिन वो नहीं है, तो कुछ नहीं है। क्या नहीं है? श्रद्धा नहीं है तो कुछ भी नहीं है। विश्व में सबकुछ खरीदकर ला सकते हो, मँगा सकते हो, दे सकते हो; लेकिन विश्वास रखना, तुम न तो किसी को श्रद्धा दे सकते हो और न किसी की श्रद्धा ले सकते हो। किन्तु निमित्त बन सकते हो प्रेरणा देकर, प्रवचन देकर सम्यग्दर्शन पैदा करा सकते हो, भाव मंगल कर सकते हो।

ये ध्यान रखना-ये श्लोक नहीं हैं, गाथाएँ भी नहीं हैं; ये दोहा हैं। ये प्राकृतभाषा नहीं है, ये पाली, संस्कृत भी नहीं है, अपितु अपभ्रंशभाषा है। दिगम्बर आम्नाय में अपभ्रंशभाषा का सबसे प्राचीन ग्रंथ कोई है, तो उसका नाम है- ''परमात्मप्रकाश'' और ''योगसार''। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी के इस ग्रंथ की जो भाषा है, वह अपने आप में रसयुक्त है। यह उस समय के जन-सामान्य की भाषा थी। जो भाषा ग्रंथ में लिपिबद्ध हो जाती है, वह भाषा जीवन्त रहती है और जिस भाषा को लिखा नहीं जाता, वह भाषा समाप्त हो जाती है।

मनीषियो! आचार्यभगवान् मंगलाचरण करते हुए कह रहे हैं-हे प्रभु! मैं वंदना कर रहा हूँ। पर किसकी और क्यों? भो ज्ञानी! वन्दना यानी बंध न। जहाँ बंध नहीं है, उसी का नाम है- वन्दना। किसकी वन्दना? व्यवहारनय से पंच परमेष्ठी की वंदना, निश्चयनय से निज की वंदना और परम् शुद्ध निश्चयनय से न वंदक है, न वंदनीय है और न ही वंदना है। उभय नयों को लेकर चलना, क्योंकि जो निश्चय मात्र को मान रहा है, वह मिथ्यादृष्टि है और जो व्यवहार मात्र को मानता है, वह भी मिथ्यादृष्टि ही है। जिनवाणी कहती है कि दोनों ही नय मोक्षमार्ग के साधन हैं, साध्य नहीं। तब किसे नमस्कार किया आपने? जिन्होंने निर्मल ध्यान के द्वारा अपने आपको प्रतिष्ठित किया है और कर्मरूपी कलंक को ध्वस्त कर दिया है। देखिए, ध्यान से सब कुछ मिल जाता है। ध्यान से निर्वाण प्राप्त होता है और ध्यान से नरक भी मिलता है। यदि आपने धर्मध्यान व शुक्लध्यान का आश्रय लिया है तो निर्वाण की प्राप्ति होगी और यदि आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान का अवलम्बन लिया तो नरक या निगोद में चले जाओगे। आचार्यभगवान् पूज्यपाद स्वामी महान् ग्रंथ ''इष्टोपदेश'' में कह रहे हैं-

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियंतां विवेकिनः ॥20॥

अहो विवेकी आत्माओ! एक ओर चिंतामणि रत्न है और दूसरी ओर खली का टुकड़ा है। बताओ, आप क्या चाहते हो? अहो ज्ञानियो! एक हंस पक्षी है और एक काक है। जब हंस बैठता है तो कहाँ बैठता है और काक बैठता है तो कहाँ बैठता है? हंस चुनता तो क्या चुनता है और

कौआ चुनता तो क्या चुनता है? आप तो स्वयं निर्णय कर लेना। एक ओर रत्न (मोती) पड़े हुए हैं और दूसरी ओर विष्टा पड़ी है। कौए को मोती नजर नहीं आता है, विष्टा को ही देखता है, जबकि हंस मोतियों को ही चुनता है।

बस, मुमुक्षु आत्माओ! एक ओर स्त्री, पुत्र, भोग-ये विष्टा है और दूसरी ओर निर्मल आत्मा का योग ये मोती हैं। आप स्वयं निर्णय कर लीजिए कि आप कहाँ बैठना चाहते हैं? हंसपरिणति है, कि काकपरिणति है? तुम योगी बनो या न बनो, पर यह तो अनुभव कर लेना कि योग कौन-सी वस्तु है। एक बार भोगों से ग्लानि तो हो जाए, फिर शीघ्र ही चिंतामणि रत्न एवं खली के टुकड़े में अंतर समझ में आ जायेगा।

आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने सर्वप्रथम सिद्धभगवान् को नमस्कार किया है, जिन्होंने शुक्ल ध्यान में स्थित होते हुए कर्मसमूह को नष्ट कर आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया है। ग्रन्थकर्ता ने सिद्धों को सबसे पहले इसीलिए नमस्कार किया है कि भावों में सिद्ध-समान आत्मा का बल आ जावे और परिणाम शुद्ध/वीतराग हो जावें।

अब आचार्यभगवान् अर्हन्तों की वंदना कर रहे हैं। जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्यरूपी अनंतचतुष्टय को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है- ऐसे जिनेन्द्रदेव को प्रणाम करके मैं निर्मल काव्य को कहूँगा। ग्रन्थकर्ता ने शास्त्रज्ञान के मूलस्रोतरूप सर्वज्ञदेव अरहंत भगवान् को परोपकारी मानकर नमस्कार किया है। अभी तो आचार्यभगवान् ने मात्र प्रतिज्ञा की है, वंदना की है कि मेरा ग्रंथ निर्मलरूप से प्रारंभ हो। मंगलाचरण तो हो गया, अब मंगलआचरण करना है आपको। आचार्यश्री ने हम सभी के ऊपर अति-अनुकम्पा की है, जिनेन्द्रवाणी प्रदान करके हम सभी की भवावली को चुल्लुप्रमाण कर दिया है। ऐसे आचार्यपरमेष्ठी को नमस्कार कर लेना और भावना भाना कि, प्रभु! यदि मैंने एक बार भी जीवन में योग को धारण कर लिया तो योगसार का सार प्राप्त हो जाएगा।

- भगवान् महावीर की जय।

मुमुक्षु होता है संसार से भयभीत

योगसार

संसारहँ भय-भीयहँ, मोक्खहँ लालसियाहँ।
अप्पा-संबोहण-कयइ कय, दोहा एक्कमणाहँ ।।3 ।।

अर्थ- जो संसार से भयभीत हैं और मोक्ष के लिये जिनकी लालसा है, उनके सम्बोधन के लिये एकाग्रचित से मैंने इन दोहों की रचना की है ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना का हम सभी पान कर रहे हैं । यह जिनदेशना ही भव्यों के भव-क्षय का हेतु है । यह ग्रंथ संसार में लिप्त रागियों के लिंए नहीं है । जिन्हें संसार से भय हो चुका है, उनके लिए है । विश्व में आप किसी से नहीं डरना, क्योंकि सम्यग्दृष्टि किसी से भयभीत नहीं होता, पर भय उसे लगता है पापों से । आप भी पापों से डरते रहना तो परमात्मा बन जाओगे ।

इस अध्यात्मग्रंथ में आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने एक योगी की दशा बतलाई है । मूलाचार और श्रावकाचार में तो मुनि और श्रावक की देह-संबंधी चर्या का वर्णन है, किंतु योगसार ग्रंथ में योगी के परिणामसम्बन्धी चर्या की चर्चा है । एक साधक का अंत:करण, उसकी आत्मा की आवाज और आत्मा का स्वरूप कैसा होता है, इस विषय की मार्मिक विवेचना इस ग्रंथ में की गई है । अध्यात्म, अधि+आत्मा इन दो शब्दों से बना है । अधि यानी नजदीक । जो विद्या आत्मा के निकट पहुँचा दे, आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और भान करा दे, उस विद्या का नाम अध्यात्म विद्या है । भो ज्ञानी! आज तक जीव ने ज्ञान किया कि मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, निरंजन हूँ, टंकोत्कीर्ण हूँ । इन सब बातों से तो शब्दजाल-सा महसूस हो रहा है । लेकिन ऐसा है नहीं । 'शुद्ध-बुद्ध' शब्द से पहिले 'पृथक् हूँ' - ये शब्द अनिवार्य है । 'मैं भिन्न हूँ' - ये शब्द बहुत अनिवार्य है । शुद्ध-बुद्ध अनंत बार कहा, परंतु समझ में नहीं आया । अनुभव करो, जहाँ आप रह रहो हो, उसमें और आपमें क्या एकीभाव है? जिस आकाश में हो आप, जिस भवन में हो आप, उस भवन में रहकर वेदन करो- मैं भवन में हूँ या भवन अपने में है? आप अनुभव करके देखें, दृष्टि को व्यापक करके देखें । भवन अपने आप में है और आप अपने आप में हो-यह यथार्थ है । लेकिन रागदशा कहती है कि भवन मेरा है,

ममत्व कहता है कि भवन मेरा है, परंतु जिनवाणी कहती है कि ये भवन भवन में है, निज-भाव निज-भवन में है। जैसे ही आपको यह समझ में आ गया कि यह भवन मेरा नहीं है- यही सत्य की अनुभूति है।

भो ज्ञानी! अब चलिए देह की ओर। अरे! फोड़ा हो गया, 'मैं' में फोड़ा हो गया? ऐसा कौन-सा जीव है जो यह कहता है कि 'मैं' में फोड़ा हो गया। 'मैं' में कभी फोड़ा होता नहीं, मेरे फोड़ा अवश्य होता है। जो मेरा है, वह भिन्न है और जो मैं है, वह भिन्न है। क्यों, भैया! समझ में आ रहा है कि नहीं मैं और मेरा? मेरे शरीर में फोड़ा हुआ, कि 'मैं' में फोड़ा हुआ? मेरे शरीर में फोड़ा हुआ। इसका तात्पर्य है कि फोड़ा भिन्न में हुआ है और तू भिन्न है। यही भेद-विज्ञान है। मैं और मेरे का भान नहीं है। तूने 'मेरे' को 'मैं' मान लिया है और 'मैं' को 'मेरा' मान लिया है- यही अज्ञानदशा है। आचार्यभगवान् इस मैं और मेरे की दृष्टि पर 108 सूत्र लिख रहे हैं।

मनीषियो! समझो, जैनदर्शन के ग्रंथों की वह निर्मल भाषा अरहंत की मूल वाणी है। चुटकीली भाषा से मुस्करा सकते हो, हँस सकते हो, लेकिन अनुभूति नहीं कर सकते हो। जिस आगम की भाषा में इतना माधुर्य है, उस आगम की अनुभूति का माधुर्य क्या होगा? अब आज से अपनों के साथ नहीं बैठना, अब अपने साथ बैठना है- यही जिनवाणी का सार है, यही तत्त्वज्ञान है और यही तत्त्वदृष्टि है।

आचार्यभगवान् यहाँ कह रहे हैं कि जो संसार के भय से भयभीत हैं, जिसे मोक्ष की लालसा है, वह सच्चा मुमुक्षु है। अहो ज्ञानियो! यह अज्ञानता मत कर देना कि अमुक मुमुक्षु है और अमुक मुमुक्षु नहीं है। सच्चा मुमुक्षु तो वीतरागी मुनि ही होता है और जो सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रतिक्षण/प्रतिफल मोक्ष की भावना भा रहा है- वह भी अपने आपमें मुमुक्षु है। जो संसार के भय से भयभीत है, वही ज्ञानीजीव है। जैसे आपको भोगों की लालसा होती है, वैसे ही यदि निर्ग्रन्थ मुनिराज बनने की लालसा हो जाए, तो आपको ज्ञानी बनते देर नहीं लगेगी। आगे आचार्यभगवान् संसार से वैरागी, मोक्षपद के लिए उत्सुक प्राणियों के लिए आत्मा का स्वभाव समझायेंगे क्योंकि आत्मा के ज्ञान से ही आत्मानुभव होता है, यही मोक्ष का उपाय है।

- भगवान् महावीरस्वामी की जय।

शिवत्व की सिद्धि आत्मध्यान से

योगसार

कालु अणाई अणाई जिउ, भव-सायरु जि अणंतु।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु ।।4।।

अर्थ-काल अनादि है, जीव अनादि हैं और भवसागर अनन्त है। उसमें मिथ्यादर्शन से मोहित जीव ने दुःख-ही-दुःख पाया है, सुख नहीं पाया।

जई बीहउ चउ-गइ-गमण तव पर-भाव चएहि।
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव-सुक्ख लहेहि ।।5।।

अर्थ- हे जीव! यदि तू चतुर्गति भ्रमण से भयभीत है, तो परभाव का त्याग कर, और निर्मल आत्मा का ध्यान कर, जिससे तू मोक्ष/शिवसुख को प्राप्त कर सके।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश भगवान् महावीरस्वामी के शासनकाल में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर भगवान् की पावन पीयूष वाणी जन-जन की कल्याणी है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने अमूल्य/अमोघ रत्नों को हमें प्रदान किया है। मंगल दोहासूत्रों के उपरांत वे यह संकेत कर रहे हैं कि यह जीव अनादिकाल से संसार में भटक रहा है। आचार्यश्री बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से यह बताना चाहते हैं कि भटकाव पूर्व से है और जीव भी पूर्व से है। भटकाव भी अनादि है और जीव भी अनादि है। इतना बड़ा सिद्धांत यहाँ रख दिया, ताकि जीव के अन्तर में भूल खड़ी न हो जाए कि मैं कभी शुद्ध था। भो ज्ञानी! एक पुद्गल शुद्ध होकर पुनः अशुद्ध हो जाता है और अशुद्ध से शुद्ध हो जाता है, लेकिन जीवद्रव्य कभी शुद्ध से अशुद्ध नहीं होता है। जीव के अंदर यह जो भ्रम खड़ा हो जाता है कि "आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है" - ऐसा नहीं है। द्रव्यदृष्टि भिन्न है और द्रव्य भिन्न है। दृष्टि यानी आँख, दृष्टि यानी देखने की स्थिति और द्रव्य यानी वस्तु। वस्तु, वस्तु है; दृष्टि, दृष्टि है। दृष्टि वस्तु नहीं, वस्तु दृष्टि नहीं। दृष्टियाँ अनेक हैं, परन्तु वस्तु एक है। राम पुत्र है, राम पिता है, राम भाई है, राम पति है; पर राम एक ही है। राम को देखने की दृष्टियाँ अनेक हैं, उन दृष्टियों की अपेक्षा से राम भी अनेक हैं, लेकिन वस्तु अपेक्षा से राम एक ही है। इसी प्रकार से द्रव्यदृष्टि से मैं त्रैकालिक शुद्ध हूँ, परन्तु पर्यायदृष्टि से मैं वर्तमान में

अशुद्ध हूँ। अहो! एक शुद्धद्रव्य में अशुद्ध पर्याय कैसी? एक शुद्ध पर्याय में अशुद्ध द्रव्य कैसा? आप मनुष्य हो, संसारी हो कि मुक्त? यदि तू त्रैकालिक शुद्ध है तो संसारी और मुक्त-ये दो शब्द क्यों? हम नवीन-अध्येता बनकर नवीनता को नहीं समझ रहे हैं। अहो! जिसे तुम त्रैकालिक शुद्ध कहते जा रहे हो, उस जीव से यह तो पूछ लो कि, भैया! तुम्हारी क्षमता क्या है? हमने आपको त्रैकालिक शुद्ध कह दिया। सोचना है- वही विषय, वही वासनाएँ, वही कामनाएँ, वही कषायें; फिर मैं शुद्ध कैसा? मैं त्रैकालिक शुद्धत्व-सत्ता से युक्त हूँ, मेरे अंदर सिद्ध बनने की सामर्थ्य है, लेकिन मैं वर्तमान में शुद्ध नहीं हूँ- यह यथार्थ है, ये द्रव्यदृष्टि है। आप द्रव्यदृष्टि से भी शुद्ध नहीं मानोगे तो शुद्ध कभी बन भी न सकोगे। शुद्धता की पात्रता है, परन्तु अभी पात्र शुद्ध नहीं है। दुग्ध में मक्खन है, लेकिन दुग्ध मक्खन नहीं है।

भो ज्ञानी! आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने गहरा सूत्र दिया है। यदि कोई अर्हत्-दर्शन को मानकर भी अपनी आत्मा को बिना नय के शुद्ध मानता है तो उससे आप बड़े प्रेम से कह देना-अहो मिथ्यादृष्टि सदाशिवमति! तू यदि शुद्ध ही है, तो यहाँ कहाँ से आ गया? सदाशिवदर्शन माननेवाला आत्मा को हमेशा मुक्त ही मानता है। यदि आत्मा को सर्वथा मुक्त ही मान लिया जाये तो संसार का अभाव हो जायेगा और संसार का अभाव होगा तो मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा। बिना संसार के मोक्ष होता नहीं है। इसलिए पहले आपको संसार स्वीकार करना चाहिए, फिर आपको मुक्ति की चर्चा करना चाहिए। वह बैल श्रेष्ठ है, जो कि बन्ध को बन्ध ही मानता है। यदि बन्ध का दुःख आपको महसूस न हो, तो एक खूंटे से बंधे बैल को देख लेना। वह बैल आपको बता देगा कि बंधन में कष्ट है। हरी घास रखी हुई है, दाने रखे हुए हैं, लेकिन जब भी मौका देखता है तो वह खूँटा तोड़ने का प्रयास करता है। अहो ज्ञानी आत्माओ! यहाँ न कोई खूँटा दिख रहा है और न कोई रस्सी दिख रही है, फिर भी बिना पूँछ के, बिना सींग के कैसे बैल हैं कि फिर घर पहुँच जाते हैं। बैल रस्सी को तोड़ने का पुरुषार्थ करता है। बस, आप समझ लीजिए कि वह क्यों तोड़ रहा है? वह बन्ध को बन्ध स्वीकार कर रहा है और यह जानता है कि जब इसको तोडूँगा तब मैं स्वतंत्र हो जाऊँगा। भो ज्ञानी! राग की रस्सी और द्वेष के खूँटे से तुम बंधे हो। जब तक रागद्वेष का खूँटा-रस्सी नहीं उखाड़ोगे, तब तक भगवान्-आत्मा/ध्रुव-परमात्मा नहीं बन सकते। तोड़नेवाला भगवान् नहीं होगा, तोड़ने वाला मैं ही होऊँगा। जैनदर्शन स्वतंत्र दर्शन है, यह कर्तावादी नहीं है।

मनीषियो! आचार्यमहाराज यहाँ समझा रहे हैं कि तू अनादि से पुरुषार्थपूर्वक बंधा है। नरक में जाने को भी पुरुषार्थ करना पड़ता है। प्रभु से प्रार्थना कर लेना : हे भगवान्! आज तक मैंने तत्त्व को नहीं सुना और अध्यात्म को हौआ बनाकर रखा है। लोग वस्तुस्वरूप को

समझ नहीं रहे हैं और वास्तविक क्रियायें भी नहीं कर पा रहे हैं। भैया! अपनी विद्या को आपने पराई वस्तु कह दिया और अपनी निधि को तू समझ नहीं पाया है। बंध तो आपने किया था, छुड़ाएगा कौन? आप ही छुड़ाओगे न? कब से बंधे हो? तब यह कह देता है कि आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है। भो ज्ञानी! इस भूल को सुधार लेना। द्रव्य शुद्ध हो और पर्यायें अशुद्ध हों, ये त्रैकालिक संभव नहीं है। आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थ-सूत्र में कहा है- ''गुणपर्ययवद् द्रव्यम्'' अर्थात् जो गुण व पर्यायों से युक्त होता है- उसका नाम द्रव्य है। आम से रस अलग कर दीजिए और छिलका अलग कर दीजिए। इन सब सामग्री को अलग कर दिखाइए? आम क्या है? आम में आम 'द्रव्य' है। आम में खट्टा-मीठा, 'गुण' है और पीला-हरा 'पर्याय' है। अब ऐसा करिये कि उसकी पर्याय को अलग कर दीजिए, उसके गुण को अलग कर दीजिए और आमद्रव्य मुझे दे दीजिए। जब हम एक आम को द्रव्य, गुण, पर्याय से भिन्न नहीं कर पा रहे हैं, तो आपने आत्मा के द्रव्य को शुद्ध कह दिया और पर्यायों को अशुद्ध कह दिया- ये कैसे संभव है? जिस दिन द्रव्य शुद्ध होगा, उस दिन गुण व पर्याय भी नियम से शुद्ध होंगे और जिस दिन पर्याय अशुद्ध होगी, उस दिन द्रव्य व गुण भी शुद्ध होगा। जिस दिन गुण शुद्ध होगा, उस दिन द्रव्य व पर्याय भी शुद्ध होगी। यह संज्ञा की अपेक्षा से भेद है, वस्तु-भेद नहीं। अत: ध्यान रखना, आपको सम्यक् पुरुषार्थ करना पड़ेगा तथा शुद्धीकरण की विधि को समझना पड़ेगा।

अहो मुमुक्षु आत्माओ! आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी बड़ी करुणा दृष्टि से चौथी कारिका में समझा रहे हैं- अहो जीव! काल अनादि है, जीव अनादि हैं और भवसागर अनंत है। काल को यदि समझ लिया तो परमात्मा बन जाओगे। काल यानी समय, समय यानी आत्मा। समय यानी शास्त्र, समय यानी रत्नत्रयधर्म। समय को समझो। समय को चाहते हो तो समय में लग जाओ, समयसार बन जाओगे। जिसने समय को समझा, समय से समझा, समय के लिए समझा, समय में समझा-वह समयसार (भगवान्) बन गया। वे अभेद षट्कारक हैं। समय ने समझा, आत्मा ने समझा समय को समझा, जिनवाणी को समझा। समय के द्वारा समझा, निर्ग्रन्थ गुरुओं के द्वारा समझा। समय यानी पंच परमेष्ठी। समय के लिए समझा, रत्नत्रयधर्म प्राप्ति के लिए समझा। समय से समझा, आयु क्षीण होने के पहले समझा। समय में समझा, निज आत्मा में समझा। बस, यही समयसार है। मनीषियो! जिसने समझा, वे योगीराज हैं और जो समझा गया, वही 'योगसार' है।

भो ज्ञानी! आचार्यभगवान् उमास्वामी महाराज से हम लोग पृच्छना कर लें- हे प्रभु! मैं संसार में कब से बंधा हूँ? तब वे बड़े सहज भाव से एक सूत्र धीरे से बोल देते हैं- 'अनादि संबंधे

च'। तैजस और कार्माण शरीर के साथ अनादि से सम्बद्ध हैं। महान् ग्रंथराज 'कार्तिकियानुप्रेक्षा' में आचार्य कार्तिकेय स्वामी अज्ञानियों को संबोधन दे रहे हैं-

जइ पुण सुद्धसहावा, सव्वे जीवा अणाइकाले वि।
तो तवचरणविहाणं, सव्वेसिं णिप्फलं होदि ।।200 ।।

हे मूढ़! तू यह मानता है कि मैं अनादि से शुद्ध हूँ, यदि जीव सर्वकाल से शुद्ध ही है, तो आगम में जो करणानुयोग की चर्चाएँ हैं, वे सभी निष्फल हो जाएँगी, व्यर्थ हो जाएँगी। पहले आप ये स्वीकार करो कि मैं अनादिकाल से कर्म से बंधा हूँ, पश्चात् बंध को तोड़ दो तो ध्रुवसिद्ध बन जाओगे। बिना बंध को तोड़े ध्रुव-सिद्धसत्ता प्रगट नहीं होगी। मिथ्यादर्शन से मोहित होकर यह जीव पंच-परावर्तन-संसार में भटक रहा है और यह पंच-परावर्तन-संसार अनंत है। आप महापापी को अज्ञानी कह देते हो, क्योंकि वह हेय व उपादेय को नहीं समझता है। एक बार मदिरा का नशा तो उतर जाता है, उसकी तो काल की सीमा भी है, परन्तु आपका मद कैसा है?

''मोह महामद पियो अनादि'' ।।छहढ़ाला।।

तू अनादिकाल से मोहरूपी मदिरा का पान कर रहा है। कुट रहा है, पिट रहा है, फिर भी वहीं पहुँच जाता है। देखो, यह वास्तविकता है। आपके बेटे कभी-कभी क्या-क्या नहीं बोल देते हैं। फिर सोचता है कि, हे भगवान्! इससे अच्छा है कि नरक में चला जाता। और जैसे ही बेटे ने चरण छू लिए पिताजी के, वैसे ही पिताजी को स्वर्ग दिखने लगा। यह तुम्हारी दशा है।

भो मुमुक्षु आत्माओ! एकलाख परस्त्रियों का सेवन एकसाथ कोई जीव करे, उससे जितने पाप का आस्रव होगा उससे चार गुना पाप का आस्रव एक बार मिथ्यात्व को नमस्कार करने में होगा। तत्त्व को समझो, एकलाख वेश्यावृत्ति से जो पाप का बंध होता है, ऐसे पाप का बंध एक बार के मिथ्यात्व को सिर टेकने में होता है। पूछो अपनी आत्मा से। तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की शरण में आप विराजते हैं, लेकिन आपको पार्श्वनाथ पर विश्वास नहीं है। महाराज श्री! हम लोग रोज पूजा करते हैं। पर आपको श्रद्धा नहीं है। बेटे को जरा-सी फुंसी हो जाती है तो पत्नी कहती है- झड़ा लाओ, फुँका लाओ, भभूत लगा लाओ। अहो भगवान्-आत्माओ! क्या तुम को कर्मसिद्धान्त पर विश्वास नहीं है? यदि असाता का उदय है, तब कोई झाड़ा-फूँकी भी काम में आनेवाली नहीं है। पर एक क्षण में तुम कहाँ-कहाँ जाने का सोच लेते हो, कितने चबूतरों के चक्कर काटकर आ जाते हो?

एक उदाहरण आता है कि भारतदेश के सम्राट का एक भृत्य (नौकर) बहुत ईमानदारी से काम करता था। उसके लिए सम्राट ने प्रसन्न होकर अपनी पगड़ी उतारकर दे दी। वह नौकर

पगड़ी को लेकर घर आ गया। कुछ समय पश्चात् वह नौकर विदेश में अन्य राजा के यहाँ जाकर नौकरी करने लगा। विभिन्न देशों की परम्परा भिन्न होती है। जिस देश में वह नौकर गया था, वहाँ राजसभा में सिर को ढ़ँककर जाने की परम्परा थी। लेकिन जैसे ही नौकर राजसभा में प्रवेश करता है, उसने अपनी पगड़ी उतारकर हाथ में ले ली, फिर राजा को नमस्कार किया। राजा आगबबूला हो गया और बोला-तुमने राजसभा की गरिमा को समाप्त कर दिया, तुमने बंधी पगड़ी को उतारकर नमस्कार करने की हिम्मत कैसे की? नौकर खड़ा होकर कहता है-राजन्! मैं आपका सेवक हूँ, परंतु ये पगड़ी आपकी नौकर नहीं है। मुझे क्षमा करना, मुझे अभयदान दो। ये भारतदेश के सम्राट की पगड़ी है, यह पगड़ी आपके चरणों में नहीं झुकेगी। मैं आपका सेवक हूँ, मैं आपके चरणों में झुक सकता हैं, परंतु यदि मेरी पगड़ी झुक जायेगी तो मेरा भारतदेश झुक जायेगा। मैं अपने देश को सेवक के रूप में नहीं देखना चाहता। राजा यह सुनकर दंग रह गया। इतनी देशभक्ति कि सिर झुका लिया, परंतु पगड़ी नहीं झुकने दी। अहो मुमुक्षु आत्माओ! जब तुम किसी चबूतरे के चक्कर काटने जाते हो, वहाँ किसी ने तुमसे पूछ लिया-भैया! कहाँ से आये हो? कौन हो? आपने कहा-मैं जैन हूँ। अहो!आपने भगवान् अरहंतदेव की श्रद्धा कहाँ पटक दी? एक नौकर ने अपने देश की पगड़ी को नहीं झुकने दिया और एक आप अरिहंतदेव के भक्त होकर इस सिर को कहाँ-कहाँ टेकने पहुँच गये? क्या सोच है तुम्हारा? क्या विश्वास है तुम्हारा? क्या श्रद्धा है तुम्हारी? अभी बहुत समझना होगा, बहुत सम्हालना पड़ेगा, बहुत सुनना पड़ेगा। भो ज्ञानी! यदि तुम घबड़ा रहे हो तो मैं कहूँगा कि तुम मिथ्यात्व से घबड़ा रहे हो। कह देना अपनी माँ, पत्नी व पिता से, कि मृत्यु सुनिश्चित है। मैं आप सभी का इलाज कराऊँगा, प्रभु के चरणों में ले जाऊँगा, लेकिन मिथ्यात्व में नहीं भटकने दूँगा। आपको जो रोग/पीड़ा हुई है, वह असातावेदनीय कर्म के उदय से हुई है। इतनी दृढ़ श्रद्धा है तो असाता के शमन के उपाय करो। रोते क्यों हो? दर-दर की ठोकरें क्यों खाते हो? आज से अपनी-अपनी दृष्टि को टटोल लेना।

आचार्य-भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी पुनः कह रहे हैं कि पूरे विश्व का खेल आँख है। यदि आँख साफ हैं तो सब साफ है। यदि आँख में कंकड़ घूमे तो क्या होगा? ध्यान रखना, जिसके नेत्रों में पीलिया रोग है, उसे चूने से पुती हुई सफेद दीवाल भी पीली नजर आती है। जिसकी दृष्टि में मिथ्यात्व है, उसे देव-शास्त्र-गुरु भी नजर नहीं आते। जिसकी दृष्टि निर्मल है, वह पाषाण में भी परमेश्वर को ढूँढ़ लेता है और जिसकी दृष्टि खोटी है, वह पार्श्वनाथ में पत्थर को देखता है। भो ज्ञानी! सम्यक्त्व से युक्त होकर प्रभु से प्रार्थना कर लेना-हे भगवन्। मैं

सम्यक्त्व के साथ नारकी बनना पसंद करता हूँ, परंतु मित्यात्व के साथ मैं स्वर्ग का देव बनना भी पसंद नहीं करता हूँ। एक सम्यक्दृष्टि- नारकी मोक्षमार्गी है और एक मिथ्यादृष्टि-देव संसारमार्गी है, क्योंकि मिथ्यात्व के साथ नियम से ऊपर से नीचे की ओर आना है और सम्यक्त्व के साथ नियम से ऊपर की ओर ही जाना है। श्रद्धा को खोखला मत कर देना। जिसके अन्दर गंदगी भरी हो, कूड़ा-कर्कट भरा हो, तो वह अपने घर की लिपाई-पुताई करके कूड़ा-कचरा बाहर फेंकता है। पर तुम्हारे द्वार पर कोई अपने घर का कचरा फेंक जाये, तो तुम्हें कैसा लगेगा? अहो मोक्षप्रेमी आत्माओ! जब तुम्हें बाहर का कचरा बाहर रखवाने में गुस्सा आता है, तो जिसके अंदर कषायें, आलोचनाएँ, मिथ्यात्व बैठा है और वह तुम्हें आकर सुनाता है, तो तुम अपने घर में उन्हें कैसे रख लेते हो? कह देना कि मैं नहीं सुनना चाहता हूँ तुम्हारी इन बातों को , क्योंकि मैं अपने निर्मल चैतन्यभवन को तुम्हारे विष से लिप्त नहीं करना चाहता। अगर तुम्हारे पास सुभाषित है, तब सुनाओ, प्रभु के गुणों का व्याख्यान करो। मेरे निर्मल शुभ्रमहल में तुम कहाँ से कालिमा लेकर आ गये हो? इस आत्म-भवन को साफ करो, अन्यथा भवन में भटकते रहोगे, भुवन में भटकते रहोगे। मनीषियो! जिसका आत्म-भवन साफ नहीं है, उसे तीनभुवन में भटकना पड़ता है और जिसका आत्मभवन साफ है, वह तीनभुवन के शिखर पर तिलक बनकर बैठ जाता है।

आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने पाँचवीं कारिका में गहरी बात कही है। अनादि से इस जीव ने दुःख ही पाया, सुख को किंचितमात्र भी प्राप्त नहीं किया। क्यों? मिथ्यात्व के कारण। परभाव के कारण तुम चतुर्गति में भ्रमण कर रहे हो। यदि तुम चतुर्गति के भ्रमण से बचना चाहते हो, तो परभाव को समझो। भो आत्मन्! सरसों को कोल्हू में पिलना क्यों पड़ता है? क्योंकि उसमें स्नेह है, स्निग्धता है, तेल है। संसार में तुम्हें रोना क्यों पड़ता है? क्योंकि माया का, मोह का स्नेह है। राग है, इसलिए तुमको पिसना पड़ता है। यदि तिल में तेल न हो तो कभी न पिलना पड़े। यदि आत्मा में राग न हो तो कभी न भटकना पड़े। अतः परभावों को छोड़ दो, निर्मल आत्मा का ध्यान करो, जिससे मोक्ष को प्राप्त कर सको।

अहो भव्य आत्माओ ! लोहे (कुधातु) के संयोग से अग्नि को भी पिटना पड़ता है। अहो ! इस जड़ शरीर के संयोग से इस चेतन भगवतीआत्मा को संसार में पिटना पड़ रहा है। अब आपको क्या करना है, सो समझ लेना। इसका निर्णय आप करो।

- भगवान् महावीर स्वामी की जय।

पर-द्रव्यदृष्टि ही बहिरात्मदृष्टि

योगसार

ति-पयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु।
पर जायहि अंतर-सहिउ, बाहिरु चयहि णिभंतु ॥6॥

अर्थ-परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा इस तरह आत्मा के तीन प्रकार समझने चाहिये। हे जीव! अन्तरात्मा सहित होकर परमात्मा का ध्यान कर और भ्रान्तिरहित होकर बहिरात्मा को त्याग।

मिच्छा-दंसण-मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ, पुणसंसार भमेइ ॥7॥

अर्थ-जो मिथ्यादर्शन से मोहित जीव परमात्मा को नहीं समझता, उसे जिन भगवान् ने बहिरात्मा कहा है, वह जीव पुन-पुनः संसार में परिभ्रमण करता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश भगवान् महावीरस्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने मंगलाचरण के उपरांत आत्मदशा का व्याख्यान किया है।आचार्य-भगवान् कह रहे हैं कि ये आत्मा तीन प्रकार की है-बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। अन्तरात्मा होकर, भ्रांतिरहित होकर बहिरात्मभाव को छोड़ दो, क्योंकि बहिरात्मभाव हेय है, अन्तरात्मभाव और परमात्मभाव उपादेय है। आपको चिंतन करना है कि मैं बहिरात्मा हूँ या अन्तरात्मा हूँ? यदि बहिरात्मा हूँ, तब अन्तरात्मा कैसे बनूँ और फिर परमात्मा कैसे बनूँ?

भो ज्ञानी! राग व द्वेष की अनुभूतियों से हम चिरकाल से परिचित हैं। साथ ही प्रत्येक जीव राग-द्वेष के विपाक का अनुभव भी कर रहा है और उसके फल को भी भोग रहा है। मोह की महिमा की विचित्रता देखो-कि प्राण भले चले जायें, पर पूँछ का बाल न टूटे। अहो आत्मन्! भले बाल चला जाता, किंतु प्राण तो बच जाते। उस चामरी गाय से पूछना, जहाँ उसकी पूँछ का बाल झाड़ी में उलझ गया। सामने से आखेटक(शिकारी) धनुष बाण लिये आ गया। गाय आँखों से निहार रही है कि मेरा शत्रु सामने खड़ा है, लेकिन सोचती है कि मेरी पूँछ का बाल टूट न जाये। परिणाम यह होता है कि शिकारी अपने बाण से उसके प्राण छीन लेता है, लेकिन बाल नहीं गया, प्राण भले ही चले गये। अहो मुमुक्षुओ! मृत्युरूपी शिकारी तेरे सामने खड़ा

है, लेकिन एक विषयरूपी बाल छूट न जाये, चाहे प्राण का सिंधु समाप्त हो जाय। एक बूँद के पीछे तुमने पूरे जीवन को समाप्त कर दिया-ये मोह की दशा है।

भो ज्ञानी ! बड़े ध्यान से सुनना और पीछे मुड़कर किसी अन्य को नहीं निहारना। ये दशा सबकी है। अन्तर इतना है कि कोई विराटमय है और कोई लघुमय है। वटवृक्ष का बीज दीखता तो छोटा है, पर वृक्ष के उगने पर वह पर्वत के भी टुकड़े कर देता है। जैसे वह छोटा-सा वट का बीज विशाल पर्वत को भी फाड़ देता है, वैसी ही मोह की दशा है। यदि आत्मा में जरा-भी मोह का अंश लगा हो, तब वह चारित्र के विशाल पर्वत को गिरा देगा, चाहे वह मोह विशाल हो या अल्प हो। घर में जब दूध आता है तो आप जिस बर्तन में कल का दूध रखा था, उसी में आज का दूध नहीं रखते, क्योंकि खटास आ जायेगी। अरे मुमुक्षु आत्माओ ! एक दूध को तो तुम खटास से बचा लेते हो, परंतु इस चेतन निर्मल क्षीर को तुम मोह की लगार से नहीं बचा पा रहे हो। तुम दूध की कीमत देकर आ रहे हो, परंतु इस अशरीरी भगवान्-आत्मा की कीमत तुझे नजर नहीं आती। दूध के बर्तन को बार-बार साफ करते हो, क्योंकि कहीं दूध फट न जाये। परंतु बिचारी बिलख रही आत्मा को साफ करने की ओर ध्यान नहीं जा रहा है। कभी नेत्र बंद करके नरकपर्याय का भी वेदन कर लिया करो। किन्तु बहिरात्माजीव इतना भी नहीं सोच पाता है।

भो ज्ञानी ! जानना-मात्र मोक्षमार्ग नहीं है। एक कसाई को क्या हिंसा का ज्ञान नहीं है? एक व्यभिचारी को क्या पता नहीं है कि व्यभिचार पाप होता है? कसाई को भी तड़फते जीव की वेदना का ज्ञान होता है, लेकिन वेदन नहीं होता। अज्ञानी को वेदना का ज्ञान होता है, पर ज्ञानी वेदना का वेदन करता है। अर्थात् ज्ञानी किसी की वेदना को ज्ञान से नहीं, वह दूसरे की वेदना को वेदन करके जानता है, उसके दुःख को दूर करने का प्रयास भी करता है। यह नमोस्तुशासन है, यह जिनशासन है। इस शासन (दर्शन) में ज्ञान की पूजा नहीं है। यदि होगी, तो सम्यक्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र की पूजा होगी। जैन दर्शन में कहा गया है कि सम्यक्त्व से सुख की प्राप्ति होती है, ज्ञान से विश्व में ख्याति हो जाती है, चारित्र से पूज्यता आ जाती है और यदि तीनों मिल जायें तो शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है।

भो ज्ञानी आत्माओ ! ये 'योगसार' है। जब तक योग नहीं मिलेगा, तब तक आपको योगी मिलनेवाले नहीं हैं। संसार की वधू के साथ सम्बन्ध करने जाते हो तो अनेक बार योग मिलाते हो, कुंडली मिलाते हो, कुछ नहीं तो दिन व तारीख जरूर मिला लेते हो। यदि मुक्ति-वधू का वरण करना चाहते हो तो मन-वचन-काय के योग मिला लो, तुम योगी बन जाओगे और मुक्तिवधू के साथ तुम्हारी शादी हो जायेगी। पर योग (सम्बंध) तो मिलाना ही पड़ेगा। यदि मन कहीं जा रहा हो, वचन कुछ कहते हों और शरीर कुछ कर रहा हो, तो उस परमरमणी का तेरे साथ सम्बन्ध नहीं हो पायेगा।

भो ज्ञानी ! योग की चर्चा योगी बनकर की जाये तो कुछ और ही स्वरूप बनेगा, क्योंकि चर्चा में हो और चर्या में न झलके तो अश्रद्धा होने लगती है ।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि एक ही आत्मा तीन दशा(अवस्था) को प्राप्त होती है-(1) अन्तरात्मा, (2) परमात्मा और (3) बहिरात्मा । जब परद्रव्य में आस्था है तो बहिरात्मा, जब 'निजधर्म' को समझ रहे हो तो अन्तरात्मा और जब कर्मकलंक से रिक्त है तो वह परमात्मा । सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धा है, आस्था है, तो आप सम्यक्दृष्टि हो । यदि तुम्हारे सामने एक हजार सिरवाला व्यक्ति खड़ा हो जाय,यक्ष खड़ा हो जावे और कहे कि मैं आपका भक्षण करना चाहता हूँ, अभी मैं आपका घात करता हूँ अन्यथा आप मुझे नमस्कार करिये, अहो सम्यक्दृष्टि आत्माओ ! क्या करोगे आप? कह देना-'मृत्यु निश्चित है, एक दिन होना ही है । यदि मृत्यु होगी तो पुनः जन्म मिल जायेगा, परन्तु सम्यक्त्व चला गया, तब पुनः मिलना कठिन है । अतः मैं मृत्यु को वरण करूँगा, परंतु तुम्हें नमस्कार नहीं करूँगा ।' आचार्यभगवान् समंतभद्र स्वामी कह रहे हैं-

भयाशास्ने हलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ।।30।।र.क.श्रा. ।।

शुद्ध सम्यक्दृष्टि जीव भय से, आशा से, राग से, स्नेह से और लोभ के वश होकर वीतराग मुद्रा के अलावा कहीं नहीं झुक सकता, किसी को अपना सिर नहीं झुका सकता । कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु को हमारा सिर झुकता है तो कहीं न कहीं तो हमारी कमजोरी अंतरंग में अवश्य है, वह हमें स्वीकार करना पड़ेगी; क्योंकि धर्म तो बड़ा निर्मल है, शुष्क है और सरस भी है । ध्यान से समझना, धर्म शुष्क भी है और सरस भी है । देखो, दूब (घास) में दुग्ध है, पर आँखों से निहारो, तुम्हें कहीं दूध नहीं मिलेगा । यदि उस घास को कहीं मनुष्य ने चबा लिया तो मलमूत्र बन जायेगा, यदि उसी दूब को किसी गाय ने खा लिया तो दूध बन जायेगा, यदि कहीं बैल को दूब खिला दिया तो मलमूत्र ही बनेगा । धर्म को गाय की दृष्टि से देखा तो धर्म है । मिथ्यादृष्टिजीव जिनवाणी को भोगरूप में परिवर्तित कर लेता है और सम्यक्दृष्टिजीव जिनवाणी को योगरूप बनाता है ।

भो ज्ञानी ! यदि चतुर्विधसंघ मोक्षमार्ग का उपदेश देता है तो संघ है । यदि इसमें भी ममत्व है, तो संग है । संघ यानी मुनिसंघ और संग यानी परिग्रह । यदि कल्याण की दृष्टि से है तो संघ है, किन्तु यदि इनमें भी राग हो गया तो संग है । अन्तरात्मभाव, वैराग्यभाव को समझो । द्रव्य के होने पर भी बहिरात्मा और द्रव्य के न होने पर भी बहिरात्मा है । एक चक्रवर्ती 96 हजार रानियों के साथ रह रहा है, तो भी अंतरात्मा है और एक के पास एक भी रानी नहीं है, वह बहिरात्मा है । बात को समझो । अंतरात्माजीव इस वैभव को भी अपने पुण्य का मल स्वीकारता है, जबकि बहिरात्मा पुण्य को भी परमात्मभाव समझता है तथा यह

सोचता है कि इसके बिना मैं जी नहीं सकता। अहो मुमुक्षु आत्माओ ! इस देह के लिए अनंत भव दे दिये, अब निजदेव के लिए एक वर्तमान की देह दे दो। अनेक भिखारियों की तूने झोली भर दी, लेकिन तेरा निजात्मा भिखारी बना भटक रहा है। उसे तू एक बार एक पर्याय भी नहीं दे पा रहा है। एक बार तो मुनि बन जा। तेरी आत्मा कब से तड़फ रही है कि मुझे योग चाहिए, परन्तु तू भोग देता है। मनीषियो ! जब तक तुम्हारे जीवन में भाव नहीं आ रहे हैं, निर्मल परिणति नहीं है, तब तक भेष मोक्ष नहीं दे पायेगा। तुम भले ही तीर्थंकर का भेष बनाकर बैठ जाना, परन्तु भव का नाश नहीं होगा। आचार्यभगवान् कुंदकुंददेव ग्रंथराज 'प्रवचनसार' में कह रहे हैं-

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥80॥

जो अरिहंतदेव को द्रव्य-गुण-पर्यायसहित जानता है, वह निज द्रव्य-गुण-पर्याय को भी जानता है। जो अरिहंतदेव के द्रव्य-गुण-पर्याय को नहीं जानता, वह निज द्रव्य-गुण-पर्याय को भी नहीं जानता है, उसका मोह कभी विलय को प्राप्त नहीं होता है। जबकि जो अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, उसका मोह विलय को प्राप्त हो जाता है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं कि जो मिथ्यादर्शन से मोहित है, वह परमात्मभाव को नहीं जानता तथा जो परमात्मभाव को नहीं जानता, वह आत्मभाव को भी नहीं जानता, यह सिद्धांत है।

अहो मनीषियो! आचार्यमहाराज यहाँ वही बात कह रहे हैं कि मिथ्यात्व के उदयसे यह जीव कितना दुःखी है, जबकि पूरा जैनदर्शन सुख की बात कर रहा है। दुःख है ही कहाँ? एक सज्जन को कुर्सी पर बिठाया, खुश हो गया। दूसरे क्षण उसे कुर्सी से हटा दिया, दुःखी हो गया। अरे भाई! तुम जैसे पहिले थे, वैसे अभी भी हो। अब दुःख कहाँ से, किस बात का आ गया? जबकि एक घंटे पहले न कुर्सी थी, न दुःख था। ज्ञानीजीव सद्भाव व अभाव दोनों में समभाव से जीता है। सद्भाव और अभाव अपनी सत्ता के सद्भाव में त्रैकालिक रहता है, किन्तु अज्ञानी अपनी स्वभाव की सत्ता के तो अभाव में रहता है और परभाव की सत्ता के सद्भाव में रहता है। जहाँ परसत्ता के सद्भाव को निज का स्वभाव मान लेता है, इसी का नाम बहिरात्मभाव है। जहाँ निजसत्ता के स्वभाव की निज स्वभावरूप सद्भाव की दृष्टि है-यही अन्तरात्मभाव है। ये मकान मेरा है, ये दुकान मेरी है, ये मंदिर मेरा है-इसका नाम बहिरात्मभाव नहीं है। इन सबको अपना मान लेना बहिरात्मभाव है।

भो ज्ञानी ! मोह, राग, मिथ्यात्व का त्याग करो, अन्यथा बहिरात्मा कहलाओगे और संसार में पुनः-पुनः भ्रमण करते रहोगे।

- भगवान् महावीरस्वामी की जय।

अंतरात्मा, परमात्मा का स्वरूप

योगसार

जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु, सो संसारु मुएइ ॥8 ॥

अर्थ-जो परमात्मा को समझता है और जो परभाव का त्याग करता है,उसे पंडित-आत्मा (अन्तरात्मा) समझो । वह जीव संसार को छोड़ देता है ।

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु विण्हु बुद्धु सिव संतु ।
सो परमप्पा जिण-भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ॥9 ॥

अर्थ-जो निर्मल, निष्कल, शुद्ध, जिन, विष्णु, बुद्ध, शिव और शान्त है, उसे जिनभगवान् ने परमात्मा कहा है-इसमें कुछ भी भ्रान्ति नहीं करनी चाहिए ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अंतिम तीर्थेश भगवान् महावीर की पावन देशना को हम सुन रहे हैं। आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने आत्मा के प्रकारों का वर्णन करते हुये बहिरात्मा के स्वरूप का व्याख्यान किया। असद्भूत-व्यवहारनय के सजातीय, विजातीय और सजातीय-विजातीय ये तीन भेद कहे गये हैं। 'ये मंदिर मेरा है', यदि ऐसा किसी जीव ने कहा तो लोग उसे मिथ्यादृष्टि कहेंगे। ऐसा सही नहीं है, क्योंकि विजातीय-उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय की अपेक्षा से 'ये मंदिर मेरा है', ऐसा ही कहेंगे। इसी तरह 'ये पुत्र मेरा है'। यदि नहीं, तो जन्म किसने दिया? सजातीय-उपचरित-असद्भुत-व्यवहारनय की अपेक्षा 'ये पुत्र मेरा है।' सजातीय क्यों? क्योंकि वह भी जीवद्रव्य है। मंदिर विजातीय क्यों? क्योंकि वह चेतन नहीं है। ये नगर मेरा है, भारतदेश मेरा है, तीर्थभूमि मेरी है। सजातीय-विजातीय उपचरित-असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा से ये सब मेरे हैं। यह बहिरात्मा नहीं कह रहा है, यह अन्तरात्मा बोल रहा है, क्योंकि मैं इन सबको नयदृष्टि से कह रहा हूँ। ये स्वभाव से मेरे में एक भी नहीं है, ऐसी अन्तरंग में श्रद्धा है । लेकिन बहिरात्मा मान रहा है कि मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ। ओहो ! प्रसन्न हो रहे हो, गद्गद हो रहे हो, चर्म की परतों को देखकर तुम अपने परमात्मा को भूल रहे हो। जिसमें तुम राग कर रहे हो, वह कुछ ही दिन में राख हो जायेगा।

भो ज्ञानी ! जिसको सिंहासन पर चमर ढोरे जा रहे थे, सम्राट था, आज उसकी खोपड़ी पर बांस मारे जा रहे हैं। अतः सबको सम्बन्ध-मात्र स्वीकारो, इन्हें स्वभाव मानकर मत बैठ जाना।

भो मुमुक्षु आत्माओ ! जो परमात्मा को समझता है, परभाव को छोड़ देता है, परमतत्त्व को समझता है, आत्मा के स्वरूप को समझता है और बाह्य द्रव्यों से ममत्व को छोड़ देता है, वही अन्तरात्मा है। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि जिसने अन्तरात्मभाव को समझ लिया है, उसका नाम पंडित है। इसलिए मिथ्यादृष्टि को मात्र ज्ञान से पंडित मान लिया है, परन्तु वास्तव में सम्यग्दृष्टि ही पंडित है, अन्तरात्मा ही पंडित है, बहिरात्मा पंडित नहीं है। जो आत्मा को एवं परमात्मा को जानता है, वही जीव संसार को छोड़ देता है। अन्तरात्मा हमेशा निज को निज समझता है और पर को पर समझता है। वह लोकव्यवहार को लोकव्यवहार देखता है और परमार्थ को परमार्थ देखता है। परन्तु,मनीषियो ! कल्याण लोकाचार से नहीं होगा,कल्याण लोकोत्तराचार से होगा। लोकाचार की दृष्टि भी राग-दृष्टि ही है, ये बन्ध करायेगी।

भो ज्ञानी ! तीर्थंकरों को नमोस्तु करो, किन्तु वे जिनेन्द्रदेव हाथ उठाकर आशीर्वाद भी नहीं देते, क्योंकि जो रागी हों वे श्राप दें, आशीर्वाद दें, वरदान दें। जो वीतरागी होते हैं वे न श्राप देते हैं, न वरदान देते हैं, न आशीर्वाद देते हैं। वे अपने स्वभाव में लीन रहते हैं। ये धर्म तो वीतराग है, किन्तु आशीर्वाद धर्मानुराग है। वह छठवें गुणस्थान तक तो रहेगा ही। लेकिन वह भी शुद्धोपयोग को छीन रहा है। जहाँ पर ध्यान, ध्येय का कोई विकल्प नहीं है, मात्र एक निर्मल चेतनापिण्ड में निमग्न दशा है, इसी का नाम शुद्धस्वरूप की दशा है। जीव तो एकदम टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावी है। आनंदकंद ज्ञानघन में लवलीन, परमानंदशालिनी, चेतनमालिनी आत्मा है और ऐसी ही योगी की दशा है। जो आत्मा बहिरात्मा थी, वही आत्मा अन्तरात्मा हो गई तथा वही आत्मा परमात्मा बनेगी। भव्य बहिरात्मा ही परमात्मा बनेगा, किंतु अभव्य बहिरात्मा न कभी अन्तरात्मा बनेगा और न कभी परमात्मा बनेगा।

मनीषियो ! एक गीदड़ धोबी के नील के बर्तन में गिर गया, उसने अपनी जाति छुपा ली। वह जंगल में जाकर कहता है कि मैं जंगल का राजा शेर हूँ। अहो गीदड़ ! जब तक तू बोला नहीं है, तभी तक अपने आपको राजा कह सकता है। जैसे ही पर्वत के नीचे गीदड़ों ने एक दिन आवाज लगाई, तो वह गीदड़ भी बोल पड़ा। जैसे ही बोला, तो शेर ने कहा-अरे ! ये छुपा था आज तक, यह तो गीदड़ है। ऐसे ही आप कितने ही छुपे होकर परमात्मा बने बैठे रहो,लेकिन जो वस्तु का स्वरूप है, वह सब यथार्थ है। भगवान् महावीर के काल में छह

व्यक्ति ऐसे और थे जो अपने आपको तीर्थंकर कहते थे, परन्तु जैसे ही भगवान् महावीरस्वामी को कैवल्यज्योति प्रकट हुई, उन पाँचों का पता नहीं चला कि कहाँ चले गये?

भो ज्ञानी ! आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी नौवीं कारिका में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं-जो निर्मल है, निष्कलंक है, जिन है, विष्णु है, शिव है, शांत है, वही परमात्मा है। इसमें किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं रखना। वे परमात्मा कर्ममल से रहित हैं, सो निर्मल हैं। कर्म की कालिमा को वे समाप्त कर चुके हैं, सो निष्कलंक हैं। जो पूर्ण शुद्ध हो चुके हैं-ऐसे जितेन्द्रिय जिनदेव हैं। उनके ज्ञान में विश्व व्याप्त है, इसलिए विष्णु हैं। चराचर को जाननेवाले हैं, सो बुद्ध हैं। जिन्होंने परम्‌सत्ता, परम्‌सुख, मुक्ति-अवस्था को प्राप्त कर लिया है, सो परम् शिव हैं। उनको स्मरण करने से हमारा कल्याण होता है। वे परमात्मा परम् शांत हैं, परम् वीतराग हैं। जिन्होंने सम्पूर्ण संकटों का शमन कर दिया है, वे शंकर हैं। शिव त्रिशूलरूप होते हैं। कुण्डलपुर में बड़े बाबा आदिनाथ स्वामी की मूर्ति के नीचे त्रिशूल बना है। 'षट्खण्डागम' में अरहंत के लक्षण में त्रिशूल बतलाया गया है। ये त्रिशूल के धारी अरिहंतदेव हैं, ये ही शंकर हैं। त्रिशूल क्या है? माया, मिथ्यात्व, निदान ये तीन शल्य हैं। हे प्रभु ! इन शल्यों को आपने सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी त्रिशूल से शमन किया, इसलिए आप त्रिशूलधारी हैं। ग्रंथराज 'तिलोयपण्णत्ति' में महान् आचार्य यतिवृषभ स्वामीं ने भगवान् आदिनाथ स्वामी की स्तुति करते हुये उन्हें 'त्रिनेत्री' कहकर नमस्कार किया है। अरहंतदेव की ऐसी एकमात्र प्रतिमा पूरे देश में मात्र पन्ना जिले में सलेहा ग्राम में विराजमान है। उस प्रतिमा का तीसरा नेत्र खुला हुआ है। प्रतिमा तो अतिशयक्षेत्र श्रेयांसगिरि की है, जो सलेहा में सुरक्षित है।

हे प्रभु आदिनाथ स्वामी ! अहो नाभिपुत्र ! आपका तीसरा नेत्र केवलज्ञान का प्रतीक है। वह किसी को भस्म करने के लिए नहीं, अपितु विश्व को दिखाने के लिए और विश्व को देखने के लिए है, इसलिए आप परमात्मा हो-इसमें किसी प्रकार की भ्रांति नहीं रखना चाहिए। इस नौवीं कारिका के आधार से जो आधारित होते हैं, वे ही परमात्मा हैं और जो इस कारिका के आधार से आधारित नहीं होते, वे सब बहिरात्मा हैं। जो परमात्मशक्ति से युक्त माने गये हैं, वे ही अन्तरात्मा हैं और वे ही कालांतर में परमात्मा बनते हैं। इस प्रकार समझना।

-भगवान् महावीरस्वामी की जय।

निजात्मा को पहिचान

योगसार

देहादिउ जे परि कहिया, ते अप्पाणु मुणेई।
सो बहिरप्पा जिणभणिउ, पुणु संसारु भमेइ ।।10 ।।

अर्थ- देह आदि जो पदार्थ 'पर' कहे गये हैं, उन पदार्थों को ही जो 'आत्मा' समझता है, उसे जिनभगवान् ने बहिरात्मा कहा है। वह जीव संसार में फिर-फिर से परिभ्रमण करता है।

देहादिउ जे पर कहिया ते अप्पाणु ण होहिं।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ अप्पा अप्प मुणेहि ।।11 ।।

अर्थ- देह आदि जो पदार्थ 'पर' कहे गये हैं, वे पदार्थ 'आत्मा' नहीं होते-यह जानकर, हे जीव! तू आत्मा को आत्मा पहिचान।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने भी इसी तरह अध्यात्म की चर्चा करते हुए हमें संकेत दिया है कि राग की दशा से विराग की दशा कितनी निर्मल है? राग आँखों से आँखों को दिखाता है, पर विराग विराट्ज्ञान से युक्त होता है। जीवन में ध्यान रखना, व्यक्ति की दृष्टि व्यक्ति की सृष्टि का अनुभव करा देती है। वर्तमान में तुम्हारी दृष्टि जैसी होगी, भविष्य का निर्माण भी वैसा ही होगा। जो भविष्य की बात करता है, और वर्तमान में निर्मलरूप से नहीं जी पा रहा है, उसका भविष्य क्या होगा? यह भगवान् से पूछने की आवश्यकता नहीं है, यह तो आपका भगवान् ही बता देगा कि यदि आप अभक्ष्य का सेवन कर रहे हो, मादक द्रव्य का सेवन कर रहे हो, धूम्रपान कर रहे हो तो केंसर ही जायेगा- यह सहज बात है। जैसे किसी ने मदिरा का पान किया, शरीर तो झूमेगा ही। वैसे ही जिसने मोहमद का पान किया है, वह संसार में तो झूलेगा ही, इसमें क्या संशय है? भो ज्ञानी! बहिरात्माजीव मोह से युक्त होता है। जीवन में यह मोह ऐसा शत्रु है जो लोक में अनेक शत्रुओं का जन्म करा देता है। नारायण का प्रतिनारायण शत्रु कब बना और क्यों बना? कुछ नहीं, पर की वस्तु को निजरूप मानने की चेष्टा ही शत्रु को जन्म देती है। पर की वस्तु की प्राप्ति की चेष्टा करना ही शत्रु को जन्म देना है। एक व्यक्ति

की साइकिल है, उसकी साइकिल लेने का आपने विचार किया, किन्तु उस व्यक्ति ने कह दिया कि साइकिल नहीं है। थोड़ी देर बाद वह व्यक्ति उस साइकिल पर घूमते हुए आपको मिल गया, आपका मन क्या कहेगा? अब मैं देखूँगा कि मुझे मना कैसे कर दिया? यानी ध्वनित होता है कि एक पाप करने में अनेक पाप हो जाते हैं।

मनीषियो! कौन, किसको खिला रहा है? कौन, किसको पिला रहा है? ये अहंकार छोड़ दीजिए कि मैं परिवार को पाल रहा हूँ, क्योंकि प्रत्येक जीव अपने पुण्य से खा रहा है, अपने पुण्य से पी रहा है। जब पुण्य क्षीण हो जाता है तब बगल में भाई रसगुल्ले खाता है, पर भाई को खिलाने के भाव नहीं आते। अरे! मैं तो आपसे कहता हूँ कि आप मुझे आहार नहीं देते। यदि मेरे लाभांतराय कर्म कर क्षयोपशम नहीं होता, सातावेदनीय कर्म का उदय नहीं होता और भोगांतराय कर्म का उदय होता, तब आपको मुनि के हाथ में ग्रास देने के भाव नहीं आते। यदि मेरे अंतराय कर्म का उदय चल रहा है, तुम दो, कितना देते हो? पहिले ही ग्रास पर बाल आ गया और अंतराय हो गया। उन तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ स्वामी से प्रश्न कर दो-

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलितकरः किंकर इव,
स्वयं स्रष्टा सृष्टेः पतिरथ निधीनां निजसुतः।
क्षुधित्वा षण्मासान् स किल पुरुरप्याह जगती-
महो केनाप्यस्मिन् विलसितमलङ्घ्यं हतविधेः ॥119॥ आ.शा.॥

जो स्वयं तीर्थंकर, जिनका बेटा चक्रवर्ती, जिनका बेटा कामदेव, जिनके गर्भ-कल्याणक, जन्म-कल्याणक और दीक्षा-कल्याणक के लिए किंकर के समान देव खड़े थे, फिर भी क्षुधा शमनार्थ वे छह महिने तक घूमे और सौधर्म इन्द्र भी किसी को बतला नहीं सका कि ऐसी विधि बना लो।

हे सौधर्म इन्द्र! आप पन्द्रह महिनों से रत्नों की वर्षा करवा रहे थे, उस समय कहाँ चले गये जब एक तीर्थंकर-जैसे महामुनि घूम रहे थे, तब अपने अवधिज्ञान से किसी श्रावक के मन में आहारदान के भाव उत्पन्न नहीं करा सके? इससे लगता है कि इन्द्र सेवा नहीं करता, धरणेन्द्र सेवा नहीं करता, स्वयं का पुण्य ही सेवा करता है। भो ज्ञानी! संसार में कोई किसी का सगा नहीं है। बेटे अपने पिता को घर से बाहर निकालते देखे जाते हैं। जिसने अपने सम्पूर्ण राज्य का स्वामी बेटे को बना दिया, फिर भी बेटा शत्रु हो गया। पूछ लेना राजा उग्रसेन से, तुम्हारे बेटे कंस ने तुम्हें छींके पर क्यों टांग दिया था? पूछ लेना राजा श्रेणिक से, तुम्हारे बेटे कुणिक ने तुम्हें जेल में क्यों डाल दिया था? फिर भी दोष बेटों का नहीं था, क्या गजब का जैनदर्शन है ? हे पिताश्री! तुमने पूर्व में ऐसा कर्म का बंध किया था, जो आज उदय में आया है।

महामुनि आदिनाथ छह महिने घूमे, परन्तु कोई देव नहीं आया और जैसे ही कर्म का उदय पूर्ण हुआ, विधि मिल गई, राजा श्रेयांस के यहाँ आहार हो गया और फिर वही देवता रत्न बरसाने आ गये। अहो दान, अहो दाता, अहो पात्र कहकर प्रसन्न हो रहे हैं।

मनीषियो! आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ज्ञानी व अज्ञानी की पहिचान बतला रहे हैं कि जो देह आदि को अपना मानता है और संसार में पुनः परिभ्रमण करता है, वह अज्ञानी है, बहिरात्मा है। देहादि 'पर' कहे गये हैं, वे अपने नहीं हैं- ऐसा ज्ञानी अर्थात् अन्तरात्मा सोचता है। इनको जानकर, हे जीव! तुम अपनी आत्मा को ही अपना मानो। जो अपनी आत्मा को अपना मानता है, वह अन्तरात्मा है और जो 'पर' को भी अपना मानता है, वह बहिरात्मा है। भो ज्ञानी! सहज समझना, बहिरात्मभाव इतना गहरा है कि कभी-कभी वह अन्तरात्मारूप झलकता है। चर्या तो अन्तरात्मारूप झलकती है और परिणति बहिरात्मारूप होती है। इसलिए ध्यान रखना, फल का पीला होना फल के पके होने का द्योतक नहीं है! आँखें पीले फल को देख सकती हैं, परन्तु उसे खा नहीं सकती। पके फल की गंध अलग होती है, इसके लिए तुम्हें नाक का उपयोग भी करना होगा। पके पीले फल को देखकर, पका मान करके जो विश्वास कर लेता है, वह अपने जीवन में हर पल धोखे को प्राप्त होता है। वनपाल ने उद्यान से पका आम्रफल लाकर सम्राट को भेंट किया। हे स्वामिन्! हमारे देश का अमृत फल है, आम्रफल है। यह वर्तमान मौसम का पहला फल आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। जैसे ही उस पीले फल को देखा, खेल रहे राजकुमार को बुलाकर सम्राट ने वह आम्रफल अपने बेटे को दिया। जैसे ही बेटे ने आम को मुख से लगाया, वह मूर्च्छा खाकर गिर गया। राजा ने विवेक का उपयोग नहीं किया और आदेशित कर दिया कि बगीचे में जितने आम के वृक्ष हैं, सब काट दिये जावें। बेटे के उपचार हेतु वैद्य को बुलाया गया। वैद्य कहता है कि ये आम्र फल से तो मूर्च्छित नहीं हुआ है। पहिले खोज की जाय कि फल कैसा था? सम्राट बोले कि फल तो पका था। 'महाराज! क्षमा करो, फल पका नहीं होगा, फल पीला होगा।' खोज की गई, खोज करते-करते देखा गया कि एक खेत में एक चील सर्प को लिए बैठी थी। वह चील जब भूमि से सर्प को उठाकर आकाशमार्ग से गमन करके जा रही थी, तो सर्प के मुख का जहर आम्र के फल पर पड़ गया और जहर के प्रभाव से आम पीला पड़ गया। कर्म की योग्यता से वही आम का फल बागवान् ने राजा को सौंप दिया और राजा ने राजकुमार को दे दिया। फल कैसा था? जहर आम में नहीं था, जहर तो सर्प में था, पर सर्प का जहर आम पर गिरने से आम भी जहरीला हो गया। ऐसे ही मिथ्यात्वरूपी जहर आत्मा में नहीं होता है और आत्मा मिथ्यात्व में नहीं होती है। मिथ्यात्व के सद्भाव में

आत्मा भी जहरीली हो जाती है, इसका नाम है- बहिरात्मभाव। लेकिन फल भिन्न था, विष भिन्न था, फिर भी फल ने बेटे को मूर्च्छित किया कि नहीं किया? ऐसे ही कर्म भिन्न हैं, आत्मा भिन्न है, फिर भी कर्म आत्मा को बाँधे बैठे हैं। स्वभाव से भिन्नत्व है, पर संश्लेष संबंध से विकारीभाव तो है। समझो, यही तो पकड़ना है। तत्त्व समझने की यही भूल चल रही है। जहर का धर्म भिन्न था, आम का धर्म भिन्न था, लेकिन उस आम के खाने से बेटा मूर्च्छित हुआ। ऐसे ही कर्म भिन्न हैं, आत्मा भिन्न है, फिर भी कर्म के जहरीलेपन से आत्मा विषाक्त हो गई।

भो ज्ञानी! यह योगसार ग्रंथ कह रहा है कि संसार में भोगियों की संख्या अनंत है, जबकि योगियों की संख्या अंगुलियों पर गिनने लायक है। अरे! इन अनंतों के बीच में तुम कैसे रह पाओगे? इसलिए योगी बनकर जियो। कर्म एक पौद्गलिक वस्तु है। यश-अपयश भी पुद्गल की पर्याय है और जो पर्याय होती है, वह नियम से परिमित होती है। तुम शाश्वत् होकर पर्यायों के पीछे परिणामों को क्यों बिगाड़ रहे हो? मैंने इस मंदिर में इतना काम किया, किन्तु किसी ने नाम तक नहीं लिया। ठीक तो है, यदि आज नहीं लिया तो कल ले ही लेंगे। अपने प्रभु से पूछो- यशः कीर्ति का द्रव्य तुम्हारे पास है ही नहीं, तो नाम आता कहाँ से? इन्होंने मंदिर में कोई काम नहीं किया, फिर भी इनका बहुत नाम हो रहा है। उसका नाम इसलिए हो रहा है कि उनके पास यशः कीर्ति का जो द्रव्य रखा है, वह कर्म तो उदय में आयेगा ही। आज के लाभ में हर्षित मत हो जाना और अलाभ में बिलखना भी नहीं- यही ज्ञानी का लक्षण है। ज्ञानी अनुकूलताओं में फूलता नहीं है और प्रतिकूलताओं में कूलता नहीं है। जबकि अज्ञानी अनुकूलताओं में तुरन्त फूल जाता है और प्रतिकूलताओं में कूलने लगता है। जो रोटी जल्दी फूल जाये, समझो अभी कच्ची है। वह फूल भले ही गई, मगर अभी सिकी नहीं है, कच्ची है। उसको पिचकाना पड़ता है, पलटना पड़ता है। ऐसे ही कुछ जीव जल्दी फूल जाते हैं, वे कच्चे रहते हैं, उन्हें दबा दिया करो। भो ज्ञानी! यदि मन को निर्ग्रन्थ बनाकर ग्रन्थ सुने जायें तो प्रत्येक ग्रंथ सरल होते हैं और मन को ग्रंथ बनाकर तुम पढ़ोगे, तो प्रत्येक ग्रंथ कठिन हो जायेगा। जीवन में ध्यान रखना कि कुण्ठित व्यक्ति को कुछ समझ में नहीं आता, यानी मन को खाली करके पढ़ोगे तो सब समझ में आएगा। कुण्ठित व्यक्ति तीर्थंकर के समवसरण में भी पहुँचेगा तो उसे अपनी कुण्ठा ही नजर आयेगी, उसे भगवान् दिखेंगे ही नहीं। मारीचि से पूछ लेना- भले ही भगवान् बन गए, परंतु भगवान् तब ही बने जब कुण्ठा समाप्त हो गई थी।

मनीषियो! जीवन में कभी गाँठ बाँधकर नहीं चलना। यहाँ की गाँठ यहीं खोलकर

जाना। यदि हीनभावना/कुण्ठा आपके अंतरंग में बैठी हुई है, तो आप कुछ कर नहीं सकते। आपको याद हो या न हो, जब आप पैदा हुये थे तब कोई गाँठ नहीं थी और आप जब जाओगे तो समाज तुम्हारी सब गाँठें खोल देगी। समाज गाँठें खोले, इसके पहिले तुम खोल दो तो मुनिराज कहलाओगे। भो ज्ञानी! दृष्टि बनाकर द्रव्य छोड़ो तो प्रसन्न रहोगे। जो जीव सल्लेखना करने बैठता है वह दृष्टि बनाकर बैठता है, प्रसन्न होकर जाता है। परन्तु जिसको लगता है कि अब मरे, तो मरना तो उन्हें भी है, परन्तु रो-रो कर मरे-यही बहिरात्मभाव है। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि इस पर्याय से ममत्व छोड़ दो, क्योंकि रो-रोकर मरे तो बहिरात्मा और हँस-हँसकर मरे तो अन्तरात्मा। जो कभी न मरे, वह परमात्मा। देहादिक जो द्रव्य हैं, पर हैं, परिग्रह हैं। उन्हें जो अपना मानता है, आत्मा कहता है- वह बहिरात्मा है।

"देह जीव को एक गिने, बहिरातम-तत्त्व मुदा है।" (छहढाला)

अहो मूढ़! 'मुदा' कह दिया। जो पर्याय में मूढ़ है, वह पर-समय में ही है। इतना ही नहीं, ये मेरी देह है, मेरे पुत्र की देह है, ये मेरा घोड़ा ऐसा है, ये मेरा कुत्ता ऐसा है- वहाँ भी राग है। ओ हो! इतना ही नहीं, कितने ही पिताजी ऐसे बैठे हैं जो बेटे को तो नहीं खिलाते, पर सुबह से श्वानों को घुमाने ले जाते हैं। अरे, कहाँ-कहाँ तुम घुमा रहे हो? मैं गोरा हूँ। ये गोरा कौन है? देह गोरी है। तुझे मालूम है कि देह गलते देर नहीं लगेगी। तुम बहिरात्मभाव में जी रहे हो, जबकि अन्तरात्मा की दृष्टि एकमात्र शुद्ध आत्मतत्त्व पर जम जाती है। वह यथार्थ ज्ञान से व परम्वैराग्य से पूर्ण होता है। उसके भीतर से विषय-भोग-जनित सुख की श्रद्धा मिट जाती है, वह एक आत्मानुभवन को ही अपना कार्य समझता है। जबकि बहिरात्मा अन्धा-मोही होकर संसार-वन में भटकता रहता है। इसलिए ज्ञानी व अज्ञानी की पहिचान कर अपने लक्ष्य को ध्यान में रखो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

-भगवान् महावीर की जय।

निर्वाण-मार्ग

योगसार

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि, तउ णिव्वाणु लहेहि।
पर अप्पा जई मुणहि, तुहुँ तो संसार भमेहि ॥12॥

अर्थ-हे जीव ! यदि तू आत्मा को आत्मा समझेगा, तो निर्वाण प्राप्त करेगा तथा यदि तू पर-पदार्थों को आत्मा मानेगा, तो तू संसार में परिभ्रमण करेगा।

इच्छा-रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि।
तउ लहु पावहि परम-गइ, फुडु संसारु ण एहि ॥13॥

अर्थ-हे आत्मन् ! यदि तू इच्छारहित होकर तप करे और आत्मा को समझे, तो तू शीघ्र ही परमगति को पा जाय और तू निश्चय से फिर संसार में न आवे।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अंतिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमानस्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। बहुत संक्षेप में आचार्यभगवान् ने आपको बहिरात्मा व अन्तरात्मा के विषय में समझा दिया। अब बारहवीं कारिका में कह रहे हैं कि जो आत्मा को अपना मानता है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है और जो पर-पदार्थों को अपना मानता है, वह संसार में भटकता है। अब निर्णय आपके ऊपर है, कि क्या चाहिए आपको? संसार चाहिए है, तो पर को अपना स्वीकार लो, और अपने को छोड़ दो। भो ज्ञानी ! आप मंदिर में जितना समय देते हो, यदि कभी 10-15 मिनिट का समय मिले तो वह श्मशान-घाट को भी दिया करो। घबड़ाना नहीं। देखिए, स्वाध्याय के लिये स्थान मंदिर, धर्मशाला आदि को तो कहा गया है, श्मशान को नहीं गया है। श्मशान में स्वाध्याय नहीं किया जाता, क्योंकि वह क्षेत्र अशुद्ध है, लेकिन वहाँ ध्यान किया जा सकता है।

भो मुमुक्षु आत्माओ ! वास्तविकता समझो तुम। एक सम्राट की राख को देखकर आना और उस राख से कहना- अहो राख! इसके पीछे तुमने कितनी आत्माओं को क्लेश दिया? आज तू राख बन चुकी है और जिसने पीड़ित किया था, वह चला गया। अब मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि इस देह के पीछे कितने देहियों को हम सताते हैं? मुझे माला नहीं पहिनाई, मुझे तिलक नहीं लगाया। अरे ! कब लगता है तुझे तिलक? तिलक भी लगेगा तो पुद्गल में लगेगा, माला भी पहिनोगे तो पुद्गल में ही पहिनोगे। इतना सब कुछ होने पर भी फोटो छपेगा तो किसमें,

किसका? पर्याय की पर्याय में क्या आनंद? फोटो तेरी पर्याय भी नहीं है, वह तो पर्याय की पर्याय है और पर्याय की पर्याय में क्या आनंद? सोचना, गहरे वैराग्य की आवश्यकता है। हम कहाँ जा रहे हैं, कहाँ नहीं जा रहे हैं? जबकि मुमुक्षु जीव अपनी दृष्टि को लेकर चलता है। वह सोचता है कि मैं तो मोक्षमार्ग की ओर जा रहा हूँ, ये बीच के दल-बल कहाँ मिल गए? ध्यान रखना, आम फल बड़ा मधुर होता है, पर जितना मीठा होता है, उतने ही फोले पड़ते हैं। वही संसार की दशा है। देखो, आम जो मधुर फल है, उसका छिलका उतार दो तो दल-ही-दल है। छिलका उतारने के बाद जो दल में फँस जाता है, उसको फोले पड़ते हैं। भो ज्ञानी ! ये पूजा-प्रतिष्ठा तो दल है। देह का वस्त्र उतर गया, किंतु पूजा-प्रतिष्ठा के दल-दल में फँस गए। ध्यान रखो, जब गर्मियों में आम के फोले पड़ते हैं, तो बताओ मिटते किससे हैं? बोले-महाराज श्री! उसी आम की गुठली को तोड़कर अंदर की बिजी को घिसकर लगाने पर फोले ठीक हो जायेंगे। ऐसे ही मुमुक्षुजीव वस्त्र को उतारकर, पूजा के फल को फेंक कर, अंदर में बारहवें गुणस्थान में जो मोह की गुठली है, उसे तोड़ देता है तो परम-पारिणामिक-भाव केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है, उससे फोले मिटते हैं। भो ज्ञानी ! गुठली फोड़नी ही पड़ती है, दवाई तो उसी में है। रोग की बहुत सारी दवाइयाँ इसी शरीर में हैं। रोग भी शरीर में हैं और दवाइयाँ भी शरीर में हैं, पर आप लोग उसका उपयोग नहीं करते हो।

मनीषियो ! कर्म का बंध और कर्म की निर्जरा निज परिणामों से होती है। आपने निज परिणामों से बंध किया है, निज परिणामों से मोक्ष होगा। आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव स्वामी बहुत ही सहज कथन कर रहे हैं कि यदि तुम निर्वाण की प्राप्ति चाहते हो तो पर-द्रव्यों से अपने आपको हटा लो। यदि संसार ही चाहते हो तो कहीं से हटने की आवश्यकता नहीं है। परंतु यह सत्य है कि बंध में सुख है ही नहीं, बंध में आनंद है ही नहीं, ममत्व में शांति है ही नहीं। जिसके पीने पर शांति हो और बाद में भी शीतलता हो-उसका नाम नीर है।

आरंभे तापकान् प्राप्तावतृप्ति प्रतिपादकान्।
अंते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः ॥17॥ इष्टोपदेश॥

जिसकी प्राप्ति के लिए संताप हो, जिसके सेवन में आकुलता हो और सेवन के बाद पश्चात्ताप हो, वह सुख कैसा? जिसकी प्राप्ति में सहजता हो, जिसके भोग में आनंद हो, जहाँ विच्छेद भी न हो, उसका नाम सुख है। वह अतीन्द्रिय सुख ही शाश्वत् सुख है। इंद्रियसुख कभी सुख नहीं है, सुखाभास है। सुखाभास को सुख की मान्यता देना मिथ्यात्व है। सुखाभास में सुख की मान्यता को स्वीकार कर लेना बहिरात्मभाव है। यदि ज्ञायकभाव को जाना,समझा, परंतु अज्ञानभाव नहीं गया तो ज्ञायकभाव समझा कहाँ? ज्ञायकभाव को

समझते हुए और परम-पारिणामिक-अवस्था को जानकर भी यदि परम-पारिणामिक-अवस्था की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं बनाया, तो तू बहिरात्मा ही रहेगा। जैसे कि सड़क किनारे लगे बोर्ड पर लिखा था-पुलिया संकीर्ण है और कुछ आगे एक गड्ढा भी है, आप वाहन को सम्हालकर धीरे-धीरे ले जाना। आपने पढ़ लिया था, परंतु तुम्हारी रफ्तार में कोई अंतर नहीं आया। अहो ज्ञानी! तू पुलिया के नीचे होगा कि ऊपर होगा? ऐसे ही आपने भगवान् जिनेन्द्रदेव के परम-पारिणामिक भाव को, सिद्धों की सत्ता को समझ लिया,जान लिया, लेकिन तुम्हारी भोगों की संकीर्ण पुलिया पर जो वाहन चल रहा था, उसकी रफ्तार को मंद नहीं किया तो तू नीचे निगोद में ही होगा, सिद्धालय में नहीं पहुँच पायेगा। जानकारियाँ होने पर भी सही राह पर गमन करनेवाले जीव संसार में बिरले ही होते हैं।

मनीषियो! जो जिस विद्या का ज्ञाता हो और उस विद्या का कहीं उपयोग नहीं करता हो, तो वह विद्या भी पलायन कर जाती है। आप व्यापारी हैं, किसी नगर में आपका व्यापार यदि नहीं चले तो आप स्थानांतरण कर लेते हो। इसी तरह पुण्यप्रकृति भी एक द्रव्य है और जिस द्रव्य का उपयोग समीचीन नहीं होता है, तो वह द्रव्य परिणमन कर जाता है। जिनके यहाँ बहुत वैभव था, यदि उन्होंने वैभव को विषय-वासनाओं में लगाया, तो पूरा द्रव्य परिवर्तित हो गया। सातावेदनीय असाता में संक्रमित हो गया, मालूम चला कि देखते-ही-देखते करोड़पति अब सड़कपति बन चुके हैं। जीवन में ध्यान रखना, इन सारे-के-सारे सम्बंधों को संयोग मानकर चलो। सारे-के-सारे सम्बन्धों का वियोग होना है। कोई भी मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा मानकर चलो यह अन्तरात्मा की सोच है। जबकि बहिरात्मा क्या समझता है-

तन उपजत अपनी उपज जान,
तन नशत आपको नाश मान ।।छहढाला।।

मैं जैन हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ और तू शूद्र है। भो ज्ञानी! उस शूद्र ने अणुव्रतों का पालन किया और देव बन गया, फिर देवपर्याय से च्युत हुआ, क्षत्रियकुल में जन्म ले लिया और निर्ग्रन्थ योगी बनकर तुम्हारे द्वार पर आ गया। जिसे तुम शूद्र कह रहे थे, उसे आज नमोस्तु-नमोस्तु कहकर पुकार रहे हो।

भो ज्ञानी! आचार्यमहाराज ने निर्वाण की चर्चा करके अन्तरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा की चर्चा कर दी, अब विधि बता रहे हैं कि परमात्मा बना कैसे जाता है? हम चाहें तो ज्ञायकस्वभाव को जानकर परमनिर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं। उस परमनिर्वाण प्राप्ति की दशा निर्ममत्वभाव से ही होगी। साथ ही परमगति की प्राप्ति का उपाय यदि कोई है तो वह

परमतप है। तप को 'जानना' अलग है और तप को 'करना' अलग है। एक ज्ञानी तप को जानता है और एक तपस्वी तप को करता है। एक पुत्र को जन्म 'दिला' रही है और एक पुत्र को जन्म 'दे' रही है-बताओ, पीड़ा किसको होगी? दाई (नर्स) को होगी या जन्म देनेवाली माता हो होगी? इतना ही अन्तर है कि एक ज्ञान करा रहा है और एक ज्ञान पर चल रहा है। मोक्षमार्ग जानकारी मात्र का नहीं है, अपितु जानने के बाद चलने का है। यदि अज्ञानतापूर्वक चले, तो भी गलत है।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं, हतं च ज्ञानीनो क्रिया।
धावन्तं किलान्धको दग्धा पश्यन्नपि च पंगुला ।। तत्त्वार्थ राजवार्तिक ।।

जैनदर्शन के महान् तार्किक आचार्य अकलंकदेव स्वामी 'राजवार्तिक' ग्रंथ में लिख रहे हैं कि एक अंधा था और एक लंगड़ा था। गंगाराम अंधा था, वंशीधर लंगड़ा था। दोनों मेला देखने जाना चाहते थे। वे दोनों जंगल में बैठे हुये थे और ग्रीष्मकाल में बांसों के घर्षण से अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई, जंगल जलने लगा। एक व्यक्ति दौड़ते-दौड़ते जल रहा था और दूसरा व्यक्ति देखते-देखते जल रहा था। अंधा जो था, वह दौड़ रहा था, लेकिन मार्ग न सूझने से जल रहा था और लंगड़ा जो था, वह देख तो रहा था, पर चल नहीं पा रहा था, इसलिए जल रहा था। इसी तरह जो कोरे ज्ञानी हैं, वे पंगु हैं और जो कोरे क्रियावान् हैं, वे अंधे हैं। तो क्या करें? अंधे के कंधे पर जब लंगड़ा बैठ जाता है, तो एक चलता है और दूसरा मार्ग दिखाता है, दोनों मेले में पहुँच जाते हैं। ऐसे ही चारित्र के कंधे पर यदि ज्ञान विराजमान हो जाए, तो दोनों मोक्ष के मेले में जाकर अनंतकाल के लिये प्रसन्न हो जायेंगे। जब तक दोनों अलग-अलग बैठे रहेंगे, तब तक दोनों एक दूसरे की टांगें खीचेंगे और अंत में दोनों मर जायेंगे। इसी तरह क्रियाहीन ज्ञान नष्ट हो जाता है। अहो ज्ञानी! श्रद्धा, ज्ञान एवं क्रिया तीनों की एकता का नाम ही मोक्षमार्ग है।

मनीषियो! तेरहवें दोहासूत्र में आचार्यभगवान् बड़ी गहरी बात कह रहे हैं- जो आत्मा को पतन से बचाये, तपन से बचाये, उसका नाम तप है। जहाँ इच्छा का निरोध है, आकांक्षाओं का अभाव है-उसका नाम तप है। ऐसे ही किसी लौकिक उद्देश्य को लेकर नहीं, अपितु कर्मक्षय के लिए जो तप किया जाता है, उसका नाम सम्यक् तप है। यदि कर्मक्षय का उद्देश्य नहीं है और आप तप कर रहे हो, तो वह संसार की वृद्धि का ही हेतु होगा, कर्मक्षय का हेतु नहीं बनेगा। जो इच्छा से रहित होकर तप करता है, आत्मा को आत्मा के द्वारा समझता है, वह जीव शीघ्र ही परम्गति को प्राप्त करता है। आगम में यह कहीं नहीं लिखा कि जानने मात्र से मोक्ष होता है। आगम कह रहा है कि तप करने से मोक्ष होता है। इसलिए ध्यान रखना, कभी

भी संयम को क्रियाकाण्ड कहकर मोक्षमार्ग को न भुला देना। पंडित टोडरमल जी ने 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में लिखा है-हे मूढ़ ! अपने प्रभाव की वृद्धि के लिये शुद्धात्मा कहकर अपनी आत्मा से छल कर रहे हो। आचार्यभगवान् अमृतचंद्र स्वामी ने 'अध्यात्मअमृतकलश' में लिखा-अहो योगी ! तू यह कहता है कि मैं तो निर्विकल्प-ध्यान में जा रहा हूँ, इसलिए प्रतिक्रमण, प्रायश्चित नहीं करना चाहता हूँ। अरे, गल्तियों को छिपाने के लिए अध्यात्म की बात कर रहे हो। अध्यात्म में जिओगे तो कोई विकल्प नहीं होगा और यदि विकल्प है तो तुम अध्यात्म में नहीं हो। इसलिए प्रतिक्रमण करो, संयम पालो। भो ज्ञानी ! जिस मछली के लिए स्थल ही मृत्यु का कारण है, उस मछली को अग्नि का अंगारा जीवित कैसे रखेगा? जिस योगी को अध्यात्मविद्या में शुभ-उपयोग भी जलाता हो, उस अध्यात्म-विद्या में अशुभ-उपयोग उपादेय कैसे होगा? जिस आगम में शुभ-उपयोग को भी हेय कह दिया है, उस आगम में अशुभ-उपयोग में लीन को परमानंदी कैसे कहा जायेगा? जीवन में अध्यात्म के साथ कभी भूल नहीं करना चाहिए। मनीषियो ! जहाँ पूजा को भी हेय कहा हो, वहाँ विषय-भोग को उपादेय कैसे कहा जायेगा? शुद्धोपयोग की दृष्टि से पूजा हेय है, परंतु अशुभ-उपयोग से हटने के लिये पूजा उपादेय ही है। अशुभ-उपयोग हेय ही है, विषय-कषाय हेय ही हैं। अंत में आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि सुख प्राप्त करना चाहते हो तो इच्छा से रहित तप करो, तभी आपको संसार में पुनः गमन नहीं करना पड़ेगा।

-भगवान् महावीरस्वामी की जय।

भावों से बन्ध, भावों से मोक्ष

योगसार

परिणामे बन्धु जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि।
इउ जाणे विणु जीव तुहुँ, तहभाव हु परियाणि ।।14।।

अर्थ-परिणाम से ही जीव को बन्ध कहा है और परिणाम से ही मोक्ष कहा है-यह समझकर, हे जीव ! तू निश्चय से उन भावों को जान।

अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु जि करहि असेस।
तो वि ण पावहि सिद्धि-सुहु, पुणु संसारु भमेस ।।15।।

अर्थ-हे जीव! यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और सब पुण्य-ही-पुण्य करता रहेगा, तो भी तू सिद्धसुख नहीं पा सकता, संसार में ही पुनःपुनः भ्रमण करेगा।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना का हम सभी पान कर रहे हैं। जिनवाणी माँ कह रही है-यदि आप मुझे स्थापित कर रहे हो तो उर्वरा भूमि में ही डालना। उस उर्वरा भूमि की मिट्टी कितनी ईमानदार है कि एक बूँद पानी को भी व्यर्थ नहीं जाने देती, अर्थात् यदि एक बूँद भी पानी गिरता है तो उसको भी फसल के रूप में पल्लवित/पुष्पित कर देती है। अहो मुमुक्षु आत्माओ ! आपकी ये आत्मभूमि कितनी बंजर बन चुकी है? आप कितने दिनों से जिनवाणीरूपी बूँदों से आत्मभूमि को सींच रहे हो, फिर भी कोई संयम की बाल उगती नजर नहीं आ रही है। भूमि बंजर हो चुकी है, इसे उर्वरा बनाओ और इसमें भेदविज्ञान की खाद दो, अन्यथा ध्यान रखना कि ज्ञान तो बढ़ जायेगा, परन्तु संवेदनाएँ मर जायेंगी।

भो ज्ञानी ! एक बार घड़ी की ओर निहार लो, वह तुमको बता रही है कि मेरा काँटा कभी छः पर होता है, तो कभी बारह पर होता है अर्थात् समय बदलता रहता है, मेरा काँटा भी नीचे गिरता रहता है। इसी तरह जीवन में भी पुण्य-पाप के काँटे घड़ी की भांति ऊपर नीचे होते रहते हैं। ज्ञानी तटस्थ होकर निहारता रहता है, परन्तु अज्ञानी ऊपर जाने में प्रसन्न होता है और नीचे आने में रोता है, जबकि जो कुछ होता है, वह तो सहज है। मनीषियो ! झूला जब नीचे आता है, तब कैसा लगता है और झूला जब ऊपर जाता है, तब कैसा लगता है? बता

सकते हैं आप? पर पालकी धुरी के बाहर नहीं है। जैसे पालकी चाहे ऊपर जाये, चाहे नीचे जाये,परन्तु धुरी के बाहर कुछ नहीं है। इसी तरह तुम ऊर्ध्वलोक में जाओ, मध्य लोक में जाओ या अधोलोक में जाओ, परन्तु जीवद्रव्य अपनी धुरी के बाहर है ही नहीं। पालकियों के ऊपर जाने को ऊपर कह रहा है, नीचे आने को नीचे कह रहा है, लेकिन तू जो जहाँ बैठा है वहीं है। जीव कभी एक इंद्रिय के तन में चला गया तो एकेन्द्रिय बन गया, दो-इंद्रिय के तन में चला गया तो दो-इंद्रिय बन गया। देखो, जल एकेन्द्रिय जीव है, वह शूद्र के मटके में भर गया तो जल अछूत हो गया और यदि जैन के घर में रख दिया तो वही जल शुद्ध मान लिया। भैया ! भर के कहाँ से आया? कुआँ वही था, बावड़ी वही थी, पर जिनके मटके में भर गया वे कह रहे हैं-हमारा पानी है। अहो मुमुक्षु ! ये आत्मरूपी नीर शूद्र के घर में जन्म गया तो शूद्र बन गया, पर नीर कहाँ का है? मटकों को देखकर नीर को तुमने क्या बना डाला है? पात्र को देखकर परिणामों को मत बिगाड़ो, पात्र को देखकर परिणामों को सुधार लो-यही अन्तरात्मभाव है। परन्तु बहिरात्मा यह नहीं देखता है, वह कितने भाव बना लेता है?

भो ज्ञानी ! एक साथ बैठने से मोक्ष नहीं होगा, परंतु एकभाव से मोक्ष हो जायेगा। यदि एक जगह बैठकर भी एकभाव-रूप नहीं बैठे, तब एकत्व-भाव नहीं आयेगा। इसलिए ध्यान रखना, देहों को देखकर मत रोओ। देखो तो देही को देखो, क्योंकि देह की महिमा बड़ी विचित्र है। जब तक तुम देह को देखते रहोगे, तब तक तुम्हें आँखों से नीर ही बहाना पड़ेगा। हे राम ! विदेही के पीछे आप इतने रोये कि विदेह तुम्हें नहीं दिखी। विदेही यानी सीता और विदेह यानी आत्मा। हे राम ! जब तक तुम सीता की देह को देखते रहे, तब तक विदेह नहीं दिखी। आप तो एक सम्यग्दृष्टि जीव थे, किन्तु राग ने इतना बाँधा कि पत्ते-पत्ते से सीता का पता पूछते घूमे। परंतु जिस दिन तुम योगी बनकर खड़े हो गये, उस दिन विदेह आ गई। देखो, एक विदेही को देखने में आँखें रो रही थीं और एक विदेही के देखने में आँखे हँस रही थीं-यही अंतर है। यदि अपनी विदेही को देखोगे और आँखे बंद होंगी, तो भी वह दिखेगी, परन्तु संसार की विदेही को देखोगे तो आँखें खोलकर भी तुम रोओगे। यथार्थ मानिये कि जो देह के पीछे चल रहा है, वह बहिरात्मभाव में चल रहा है।

भो ज्ञानी ! आचार्यभगवान् साधक को समझा रहे हैं कि जब तुम तपस्वी नहीं बने थे, तब हम आपसे कहते थे कि पाप छोड़ो, साधु बन जाओ। अब साधु बन गये, तो सुनो, अभी आपकी इतिश्री नहीं हो गई। तुमने शरीर को तो साधु बना लिया,अब मन को साधु बनाओ। हे जीव ! परिणामों ही से बंध होता है और परिणामों ही से मोक्ष होता है। जैसे आपके यहाँ यदि कीचड़ हो गई, तो कीचड़ को साफ किससे किया जाता है?

चित्तेन जनितं पापं, चित्तेन परिशुद्धति।
जलेन जनितं पङ्कं, जलेन परिशुद्धति ॥

भो ज्ञानी ! पंक उत्पन्न हुआ है तो जल से उत्पन्न हुआ है और पंक साफ होगा तो जल से ही साफ होगा। इसी तरह पाप का आस्रव तूने चित्त से किया है, तो पाप का नाश भी तुझे चित्त से करना होगा, यह बात हमेशा याद रखना। एकांत में गर्भाधान हो सकता है, पर जब गर्भ बढ़ेगा तो एकांत नहीं रह जायेगा। पाप का बंध आप एकांत में कर सकते हो, पर पाप का फल सारे विश्व के सामने मिलेगा। स्नानघर में तुम छिपकर धूम्रपान कर सकते हो, लेकिन कैन्सर का फोड़ा तो सबको दिखेगा। अब आप अपने से पूछ लेना कि हमारे जीवन में फोड़ा होने वाला तो नहीं है? एक काम कर लो, एक उपाय है, फोड़ा होने के पहिले ही तुम मलहम लगा लो। छोटी-सी फुंसी होने पर तुरन्त घिसकर लौंग लगा लेते हो, फुंसी वहीं पर बैठ जाती है। तुम भी प्रायश्चित्त की लौंग घिसकर लगा लो, आलोचना कर लो, तपस्या कर लो, फोड़ा बैठ जायेगा। इसलिए, हे जीव ! ऐसा जानकर तू निश्चय से उन भावों को जान, जिन भावों ने बंध किया है। आचार्यभगवान् कुंदकुंददेव ने 'समयसार' जी में लिखा है-प्रज्ञा से ही बंध होता है, प्रज्ञा से ही मोक्ष होता है। पाप करने के लिए प्रज्ञा चाहिए और पुण्य करने के लिए भी प्रज्ञा चाहिए।

मनीषियो ! देखो आचार्यमहाराज की शैली, वह तुम्हें कहीं भटकने नहीं देगी। एक ओर कह दिया कि पुण्य करो, लेकिन ध्यान रखो, पुण्य क्यों करो? मुमुक्षुजीव पुण्य-फल की प्राप्ति के लिए पुण्य नहीं करता है, वह तो पाप से बचने के लिए पुण्य करता है। पुण्य का फल स्वयमेव मिलता ही है। जब भी आप बीमार होते हो तो औषधि खाने के लिए औषधि नहीं खाते, अपितु रोग के परिहार के लिए औषधि खाते हो। ज्ञानीजीव इसलिए पुण्य करता है कि मैं पाप से बच जाऊँ, विषय-कषायों से बच जाऊँ और मुझे संसार में परिभ्रमण न करना पड़े। जबकि अज्ञानी पुण्य के फल की प्राप्ति के लिए पुण्य करता है। दोनों में यही अंतर है। आप भगवान् की पूजा तो करना ही, पूजा को मत छोड़ना, मगर पुण्य की या पूजा के फल की आकांक्षा मत चाहना। 'पूजा' बंध का हेतु नहीं है, 'पूजा के फल की आकांक्षा करना' बंध का हेतु है।

मनीषियो ! पुण्य को कभी हेय मत कह देना। थोड़ा विवेक से सोचिये। पैर में अगर काँटा लग जाये, तब दूसरा काँटा लेकर उससे निकालते हो। अब बताओ, पैर का काँटा हेय है या उपादेय? हेय है। और हाथ का काँटा हेय है कि उपादेय? जब तक पैर का कांटा नहीं निकला, तब तक हाथ का काँटा उपादेय है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कोई हमारा काँटा निकाले

और उसे हम अपनी जेब में सुरक्षित रख लें। जब पैर का काँटा निकल जाये तो हाथ का काँटा हेय ही है। ऐसे ही जब पाप का काँटा लग जाये, तो पुण्य के काँटे से निकाल लेना। मगर जिस दिन तुम्हें मोक्ष हो जायेगा तो दोनों ही छूट जायेंगे। यह चिंता कभी मत करो कि हमें पुण्य करना छोड़ना है। जो यह कहता है कि पुण्य छोड़ना है, यह तुम्हारा पुण्य ही कहलवा रहा है। यदि तुम्हारा पुण्य नहीं होता, तो तुम एकेंद्रिय होते और बोलने की सामर्थ्य नहीं होती। ये वचनवर्गणाएँ पुण्य के योग से ही मिली हैं।

आचार्य श्री योगीन्दुदेव स्वामी 15 वीं कारिका में गहरी बात कह रहे हैं। अहो ज्ञानी ! तू पुण्य तो कर रहा है, परंतु जब तक आत्मा को जानेगा नहीं, तब तक पुण्य करता रहेगा और पुण्य-ही-पुण्य में लीन रहेगा। आत्मतत्त्व को जाने बिना सिद्धसुख को प्राप्त नहीं कर सकेगा और संसार में भटकता रहेगा। देखो, साइकिल कैसे चलती है? एक पैडल मारा, दूसरा पैडल खड़ा हो गया, उसको नीचे गिराया तो पहला ऊपर आगया। अतः पैडल से पैडल, गति से गति, कर्म से कर्म समझना। इस जीव ने पुण्य किया, सो पुण्य से इसे भोगसामग्री मिली, फिर इसको पुण्य से शरीर मिला, इंद्रियाँ मिली, इंद्रियों के भोग मिले, भोगने की शक्ति मिली। यह सब पुण्य से मिला । फिर जीव ने उनका भोग किया, फिर नीचे चला गया। ऐसा पुण्य हमें नहीं चाहिए, जिस पुण्य से भोग मिले। भोगसामग्री मिली और सामग्री का सेवन किया सो पुनः कर्म का बंध हुआ, तो पुनः गति, पुनः पुण्य, पुनः गति। अरे ! आगम कहता है कि शुद्ध-उपयोग का ब्रेक लगाओ, पुण्य में ही मस्त मत हो जाओ। लेकिन जब तक हम परम्-पारिणामिक भाव को प्राप्त न कर लें, तब तक पुण्य को मत छोड़ देना। शुद्धोपयोग की दशा में पुण्य तो स्वयमेव छूट जायेगा। भो ज्ञानी ! सराग अवस्था में आपको पुण्य उपादेय है, जबकि वीतराग अवस्था में पुण्य हेय है, परन्तु पाप तो सर्वदा हेय ही है। अतः पुण्य के फल में मस्त मत हो जाना तथा पुण्य के योग में पाप का बंध नहीं कर लेना।

-भगवान् महावीर की जय।

अक्ष पर लक्ष्य रख परमेष्ठीपद की प्राप्ति के लिए

योगसार

अप्पा-दंसणु एक्कु परु, अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एहउ जाणि ॥16॥

अर्थ-हे योगिन् ! ऐसा परम् आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है, अन्य कुछ भी मोक्ष का कारण नहीं, यह तू निश्चय समझ।

मग्गण-गुण-ठाणइ कहिया विवहारेण वि दिट्ठि।
णिच्छय-णइँ अप्पा मुणहि जिम पावहु परमेट्ठि ॥17॥

अर्थ-मार्गणा और गुणस्थान का व्यवहार से ही उपदेश किया गया है। निश्चय नय से तो तू आत्मा को ही (सब कुछ) समझ, जिससे तू परमेष्ठी पद को प्राप्त कर सके।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अंतिम तीर्थेश भगवान् महावीरस्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किया है। जिन भावों से बंध हुआ है, वे ही भाव बंध को छुड़ा सकेंगे। भगवान् बंध नहीं छुड़ायेंगे, भाव ही बंध छुड़ायेंगे। अतः अपने बंधन को तोड़ने का पुरुषार्थ करो।

भो ज्ञानी ! भगवान् किसी के पाप छुड़ाने नहीं आयेंगे। अगर पाप छोड़ना है तो भगवान् की वंदना जरूर कर लेना, लेकिन यह कभी मत कहना कि, हे प्रभु ! मेरे पाप आप छुड़ा दो। वे परमेश्वर आपसे कहेंगे-अपने परिणाम सुधार लो तो पाप आपके छूट जायेंगे। हे जीव ! परिणामों से बंध है और परिणामों से ही मोक्ष है। जैसे-जैसे परिणाम होंगे, पर्याय वैसी-वैसी चलेगी। इंद्रियों को कभी दोष नहीं देना, क्योंकि इंद्रियाँ जड़ हैं, वे पाप नहीं कराती, अपितु इंद्रियों से पाप किया जाता है; अर्थात् पाप करानेवाला कोई दूसरा ही बैठा है। सेना ने चढ़ाई की, लेकिन विजयश्री किसको प्राप्त हुई? बेचारी सेना को तो युद्ध में मरना ही है, परन्तु विजयी तो सम्राट को ही कहा जायेगा। ध्यान रखना, देह पापी नहीं, इंद्रियाँ पापी नहीं, मन भी पापी नहीं। पापी कोई है तो आत्मा है। मन तो जड़ है। जैसे पाँच इंद्रियाँ शरीर में हैं, ऐसे ही द्रव्य-मन भी शरीर में है। अतः आत्मा की उपभोग-शक्ति कम मत करो।

भो ज्ञानी ! कानों के प्रवचन कम सुना करो, आँखों के प्रवचन ज्यादा सुना करो। एक बार हम तालाब के पास से निकल रहे थे। देखा कि एक सज्जन ने मछलियों को चुगने के लिए दाने डाले। भाव आये, देखो-एक यह जीव है जो मछलियों को भोजन दे रहा है और ऐसे भी जीव हैं जो मछलियों को पकड़कर उनको खा रहे हैं। इस संसार की दशा देखो, एक भोजन दे

रहा है और एक उनका भोजन कर रहा है। तट पर बैठा हुआ तटस्थ व्यक्ति सोच रहा है कि कोई बदल नहीं पा रहा है। भो ज्ञानी ! बदलनहारा अन्य कोई नहीं है, बदलाव आप स्वयं ही ला सकते हो। अतः प्रत्येक जीवद्रव्य को अपनी स्वतंत्र सत्ता का वेदन करना चाहिए कि 'मैं स्वतंत्र हूँ'। कर्ता भी मैं स्वतंत्र हूँ और भोक्ता भी मैं स्वतंत्र हूँ। घर में दस सदस्य हैं,लेकिन प्रत्येक सदस्य की प्रवृत्ति आपको भिन्न नजर आयेगी। उनके चेहरे को देखकर तुम उनका भविष्य बता सकते हो तथा भविष्य में आनेवाले जीवों को भी बता दोगे। आचार्य भगवान् उमास्वामी महाराज 'तत्त्वार्थ सूत्र' में कह रहे है कि जो वर्तमान में परिग्रह बढ़ाते जा रहे हैं, भंडार भर गये पर भावना नहीं भर रही है, उनको तो नरक ही जाना है। यह प्रकृति का नियम है कि जिस वस्तु में वजन होता है, वह वस्तु नीचे जाती है। सिद्धांत कहेगा-

'बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः' ॥(तत्त्वार्थ सूत्र) ॥

जो व्यक्ति बहुत आरम्भ व परिग्रह में लीन है, एक पैसा भी दान नहीं दे पा रहा है और प्रतिक्षण तीव्र लालसा में लिप्त है, उसको नरक आयु का बंध सुनिश्चित है। मनीषियो! यह बात ध्यान रखना। इस पर्याय में तुम इतने स्वतंत्र हो कि जहाँ की व्यवस्था कराना चाहते हो, करा सकते हो। यदि हाथी बनना हो, सूँड चाहिए हो तो छल कपट करो और नरक जाना हो तो बहु आरंभ-परिग्रह प्रारंभ कर दो। यदि मनुष्य बनना हो तो स्वभाव में मृदुता लाओ और अगर देवत्व की प्राप्ति करना है तो सम्यक्त्व की प्राप्ति करो। यदि इन सबसे रहित होना चाहते हो, तो सन्यास को प्राप्त करो, शिवत्व की प्राप्ति हो जायेगी। इसलिये, परिणति ही स्वर्ग देगी, परिणति ही नरक देगी और परिणति ही सिद्ध बनायेगी। अहो ज्ञानी! कर्म-बंध अंतर्मुहूर्त में भी उदय में आ सकता है, लेकिन जितना अधिक स्थिति का लंबा कर्म-बंध होगा वह उतने ही अंतराल से उदय में आयेगा।

मनीषियो! आचार्य भगवान् कह रहे हैं कि मोक्ष का कारण परिणाम है और बंध का कारण भी परिणाम है, लेकिन निश्चय से आत्मा ही सब कुछ है। उस उत्कृष्ट दृष्टि को देखो। यदि दृष्टि निर्मल है, तब सभी द्रव्य निर्मल हैं। यदि आँख में कीचड़ है तो एक पदार्थ के दो रूप नजर आते हैं और यदि आँख में मोतियाबिन्द है तो पदार्थ धुँधले नजर आते हैं। पदार्थों को दोष मत देना, दोष तुम्हारी दृष्टि का है। यदि तुम्हारे भावों में विशुद्धता है, तो प्रत्येक जीव के अन्दर तुम्हें भगवान् नजर आते हैं। एक व्यक्ति को स्त्री 'माँ' नजर आती है और दूसरे व्यक्ति को वही 'पत्नि' नजर आती है। वस्तु एक ही है, दृष्टि दो हैं। बंध कैसा होगा? आज इतना नियम ले लो कि मैं सबको माँ की दृष्टि से ही देखूँगा। हर दृष्टि से आप उसकी रक्षा करोगे, उसके साथ छल नहीं करोगे, द्वेष नहीं करोगे, क्योंकि माँ है। हमेशा प्रभु से यही प्रार्थना करना-हे प्रभु! या तो सबकी माँ बन जाऊँ या फिर सब मेरी माँ बन जायें। ऐसा निर्मल भाव यदि मन में आता है, तो समझना कि-हाँ, ज्ञान के कुछ नजदीक आ रहा हूँ।

भो ज्ञानी! एक आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है। बस, वस्त्र देखो, वस्त्र का मल देखो।

लेकिन ध्यान रखना, वस्त्र में मल देखने वाला साबुन लगाता है और वस्त्र को निर्मल देखने वाला भी साबुन लगाता है। व्यवहारी मल देखकर साबुन लगाता है और निश्चय वाला निर्मलता देखकर संयम का साबुन लगाता है, साबुन दोनों लगाते हैं। अहो! समल वस्त्र में ही निर्मल वस्त्र झलकता है, तभी साबुन लगाया जाता है। समल-आत्मा में निर्मल-परमात्मा झलकता है, तभी संयम का साबुन लगाया जाता है। यदि समल आत्मा में निर्मलता न होती तो साबुन लगाने को हम व्यर्थ क्यों बैठते, क्योंकि ''वह तो जैसा है वैसा ही हैं।'' यही द्रव्यदृष्टि-पर्यायदृष्टि है। क्या वास्तव में वस्त्र मलिन है? वस्त्र में मल तो है, पर वस्त्र मलिन नहीं है, निर्मल वस्त्र त्रैकालिक शुद्ध है। मलिन स्वभाव होता तो साबुन से मल हटा कैसे? आत्मा कर्म-स्वभावी नहीं है, आत्मा में कर्म-मल है। जब साबुन लगता है तो वस्त्र का मल बाहर निकल जाता है, ऐसे ही जब संयम का साबुन लगता है तो आत्मा का कर्म-मल बाहर निकल जाता है और त्रैकालिक ध्रुव परमात्मा प्रकट हो जाता है। मेघ भले ही सूर्य को ढँके हैं, परन्तु सूर्य का अभाव नहीं है। जीवन में ध्यान रखना, ये कर्म के मेघ आत्मा के उस केवलज्ञान सूर्य को आच्छादित किये हैं, परन्तु उसका नाश नहीं कर रहे। हे योगी! इसलिये उस दृष्टि से देखो। मेरी आत्मा अचल है, ध्रौव्य है और भगवत्ता की शक्ति से युक्त है। निश्चयनय से वस्त्र में मल है, पर वस्त्र 'मल' नहीं है। आत्मा में कर्म-बंध है, पर आत्मा 'कर्म' नहीं है। आत्मा का दर्शन ही मोक्ष का कारण है, निर्मल दृष्टि ही मोक्ष का कारण है, अन्य कुछ भी मोक्ष का कारण नहीं है। सम्यक्दर्शन जहाँ कह दिया, वहाँ अध्यात्म-दृष्टि से दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों लेना है। निर्मल देखो, निर्मल सोचो, निर्मल चलो-यही मोक्ष का कारण है अर्थात् यही सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। निर्मल देखो यानी निर्मल दृष्टि, निर्मल विचार यानी निर्मल ज्ञान और निर्मल चलो यानी निर्मल संयम।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव अब परम निश्चय की दृष्टि से कह रहे हैं कि मार्गणास्थान, गुणस्थान-ये व्यवहार दृष्टि है। निश्चय नय से वे वास्तव में देह जन्य हैं, पर्याय जन्य हैं, परन्तु परमात्मा इन सबसे शून्य है। मार्गणा स्थान मेरा धर्म नहीं है, गुणस्थान मेरा धर्म नहीं है, जीवसमास मेरा धर्म नहीं है, अध्यवसाय मेरा धर्म नहीं है। मेरा धर्म तो इन सबसे अलग है। यह त्रैकालिक-शुद्ध सत्ता की चर्चा है। जो निश्चय नय से आत्मा को समझता है, वही परमेष्ठी पद को प्राप्त होता है। जो व्यवहार दृष्टि से रहित होकर निश्चय दृष्टि में सापेक्ष दृष्टि से निहार रहा है, वही परमात्म पद को प्राप्त होता है। व्यवहार नय पराश्रित है, निश्चय नय स्वाश्रित है। व्यवहार नय दूसरे द्रव्य की अपेक्षा से आत्मा को कुछ-का-कुछ कहने वाला है, जबकि निश्चय नय आत्मा को यथार्थ/जैसा-का-तैसा कहने वाला है। अपने को शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध रूप ध्याना ही साक्षात् परमात्मा होने का उपाय है, यही मोक्षमार्ग है।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

ध्यान से निर्वाण

योगसार

गिहि-वावार-परिट्ठिया, हेयाहेउ मुणंति ।
अणुदिणु झायहिं देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहन्ति ।।18 ।।

अर्थ- जो गृहस्थी के धन्धे में रहते हुए भी हेयाहेय समझते हैं और जिनभगवान् का निरन्तर ध्यान करते हैं, वे शीघ्र ही निर्वाण को पाते हैं ।

जिणु सुमिरहु जिण चिंतहु, जिण झायहु सुमणेण ।
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण ।।19 ।।

अर्थ- शुद्ध मन से जिन का स्मरण करो और जिन का ध्यान करो, उनका ध्यान करने से एक क्षण भर में परम्पद प्राप्त हो जाता है ।

अध्यात्म देशना

तत्त्वपिपासु मनीषियो!

वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं । सर्वज्ञ-देशना का निर्मल भाव से पान कर रहे हैं । आचार्य श्री योगीन्दु देव महाराज अध्यात्म की अपूर्व धारा में हम सभी को सराबोर कर रहे हैं । क्या अपूर्व शैली है आचार्य भगवान् की, कि लघु कृति में आत्मविद्या का सार भर दिया है ।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवान् श्रावकों को संबोधित करते हुये कह रहे हैं- उत्कृष्ट यही है कि आप योगी बनो । यदि योगी नहीं बन पा रहे हो तो कम-से-कम गृहस्थ-अवस्था में व्यापार करते हुये भी अपनी दृष्टि के निज व्यापार को नहीं छोड़ देना । ये उदरपूर्ति का साधन तो है, परन्तु उद्धार करने का साधन नहीं है । यह धन-पैसा, व्यापार आदि उदर का पोषण तो करा देगा, लेकिन आत्मा का उद्धार नहीं करा पायेगा । आत्मज्ञान से विशुद्ध, प्रज्ञा से निःस्रत भेद-विज्ञान के अलौकिक रत्न को अंतःकरण की करंडिका में सुरक्षित रखने की आवश्यकता है । विषय-कषाय, अध्यवसाय भाव रूप तस्करों के द्वारा आत्मज्ञान छीन न लिया जावे, लूट न लिया जाये, अतः मुमुक्षु प्रतिक्षण स्व में जाग्रत रहता है, अपने लक्ष्य को नहीं भूलता है । ज्ञानियों का यही तो ज्ञानभाव है । वे दुःख में, सुख में, वन में, भवन में, अरि में, मित्र में, लाभ में, अलाभ में सर्वत्र अपने ध्येय को नहीं भूलते । सम्पूर्ण विषमताओं में भी अंतरंगदृष्टि श्रद्धावान् के प्रति ही रहती है । गृही व्यापार करते हुए भी सम्यक्श्रद्धा से च्युत नहीं होता । अहो! सम्यग्ज्ञान की महिमा तो देखो, पूर्वकृत अशुभ कर्मों के विपाक में कदाचित् घोर नरक में भी जाना पड़े, परन्तु वहाँ पर भी वह अपने पंच परमगुरू की आराधना

को नहीं छोड़ता। अहा! क्या दर्शन की महिमा कहूँ-शरीर पर बाण चल रहे हैं, कड़ाही में डाला जा रहा है, करोंत से काटा जा रहा है, वसूले से छीला जा रहा है, शरीर के टुकड़े-टुकड़े किये जा रहे हैं, फिर भी अंदर की ज्योति प्रकाशमान है। दूसरी ओर जब तिर्यंचों की ओर देखते हैं तो ऐसे-ऐसे तिर्यंच भी हो चुके हैं जिन्होंने अणुव्रतों का पालन कर स्वर्गादि के वैभव को प्राप्त किया है और परम्परा से मुक्ति को प्राप्त होंगे। अनेक अंतिम श्वासों में महामंत्र का श्रवण कर, भावों की विशुद्धिपूर्वक प्राणों को त्यागकर महाऋद्धिधारी देव हुये, यह बात ध्रुव-सत्य है। आस्था कष्टों को नहीं देखती, वह प्रतिक्षण जीवंत रहती है।

मनीषियो! जीव यदि सम्यक्त्व से युक्त है तो, वह व्यापारादिक में कितना ही व्यस्त हो, लेकिन वह देव-शास्त्र-गुरु के प्रति निर्मल आस्था को प्रतिफल बनाकर चलता है। आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जो गृहस्थी के धंधे में रहते हुये भी उपादेय को समझते हैं और जिनभगवान् का निरंतर ध्यान करते हैं, वे शीघ्र ही निर्वाण को पाते हैं। अहो! अरहंत-भक्ति की महिमा अनुपम है। जिनभक्ति के प्रभाव से मेढ़क जैसा (छुद्र) जीव स्वर्ग-पद को प्राप्त हुआ, महान् सतियों के शील की रक्षा हुई। सीता, द्रोपदी, सोमा, मैनासुंदरी आदि ने जिनभक्ति के प्रभाव से अपने धर्म में दृढ़ होकर अपनी पर्याय को धन्य किया। एक क्षण भी जिनभक्ति से शून्य नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार शून्य-भवन में भूत-व्यंतरों का वास बन जाता है, उसी प्रकार अरहंत-भक्ति से शून्य हृदय-भवन में विषय-कषाय रूप भूत-व्यंतरों का वास हो जाता है। जटिल-से-जटिल कर्म-संघात का घात पंचपरमेष्ठी के प्रसाद से दूर हो जाता है। कर्मों के सताए अज्ञानी जीव तीव्र कर्मोदय से नाना प्रकार के मिथ्या देवों की आराधना करके अपने को सुखी करना चाहते हैं, परन्तु जो स्वयं संसार में रुल रहा हो, वह अन्य को क्या पार करायेगा? सम्पूर्ण विकल्पों का शमन अरहंत-भक्ति से होता है। महामंत्र णमोकार के प्रति आस्था जिसकी है, वह कभी भी संकट को प्राप्त नहीं होता। तीन लोक में पूज्य परमेष्ठियों को एवं महामंत्र को छोड़ देवी-देवताओं की आराधना मिथ्यात्व से युक्त जीव ही करते हैं, जिन्हें कर्मों के भूत सता रहे हैं। अहो ज्ञानी आत्माओ! क्या अरहंतदेव की शक्ति पर विश्वास नहीं है, क्या महामंत्र पर विश्वास नहीं है?

आचार्य योगीन्दु देव महाराज कह रहे हैं कि जो जिनभक्ति निर्वाण को प्राप्त कराती है, जिससे पूर्व बद्ध कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तो क्या सामान्य संसार के दुःख/क्लेश शांत नहीं होंगे? अवश्य होंगे। महामंत्र की महिमा एवं जिनभक्ति के प्रभाव को देख। कहा भी है:-

जिण सासणस्स सारो, चउदस पुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे णमोक्कारो, संसारो तस्स किं कुणदि॥

जो जिनशासन का सारभूत है, ग्यारह अंग व चौदह पूर्वों का उद्धाररूप है, ऐसा णमोकार मंत्र जिसके हृदय में है, संसार उसका क्या कर सकता है? सुधर्म की महिमा देखो-

अग्गी वि य होदि हिमं, होदि भुयंगो वि उत्तमं रयणं।
जीवस्स सुधम्मादो, देवा वि य किंकरा होंति ।।432।। कार्तिकेयानुप्रेक्षा।।

उत्तम धर्म के प्रभाव से अग्नि शीतल हो जाती है, महा विषधर सर्प रत्नों की माला हो जाता है और देव भी दास हो जाते हैं। अतः जिनदेव की महिमा अपूर्व है। सम्पूर्ण दुःखों के नाश का कारण जिनाराधना है। निधत्ति, निःकाचित जैसे कर्मों के बंधन को शिथिल करनेवाली जिनभक्ति ही है।

आचार्य कुमुदचंद्र स्वामी ने 'कल्याणमंदिर स्तोत्र' में लिखा कि, हे प्रभु! आपकी भक्ति की आवाज कर्मरूपी भुजंग के बंधन को आत्मा से शिथिल करा देती है, जैसे मयूर की आवाज से चंदन के वृक्ष से लिपटे भुजंग वृक्ष को छोड़कर चले जाते हैं-

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निबिड़ा अपि कर्म-बन्धाः।
सद्यो भुजंगममया इव मध्यभाग-
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ।।8।।

मनीषियो! आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी लिख रहे हैं कि धीर को भी मरना पड़ता है, अधीर को भी मरना पड़ता है, जब दोनों को मरना ही है तो क्यों न धीरता के साथ मरण करें! शील का भी मरण होता है, दुःशील का भी मरण होता है, जब दोनों की मृत्यु सुनिश्चित है तो क्यों न मैं शील के साथ मरूँ? मरना तो पड़ेगा ही। इसलिए आचार्यश्री पुनः समझा रहे हैं कि अपने परिणामों को सम्भाल लो और आज से आप तन को मित्र कम बनाना, मन को मित्र बना लेना, क्योंकि तन के साथी छूट जायेंगे। अगर मन तेरा साथी बन गया तो विश्वास रखो, महा जंगल में भी मन तेरा साथ देगा। मन के बिना कोई भगवान् बनता नहीं है। जब भी भगवान् बनेगा, संज्ञी ही बनेगा। असंज्ञी कभी भगवान् नहीं बनता, क्योंकि हेय-उपादेय का विवेक, आपा-पर का भेदविज्ञान मन से ही होता है। मन अमूल्य वस्तु है। मन को बांधना नहीं है, उसको परिवर्तित कर लेना है। आचार्य श्री नागसेन स्वामी 'तत्वानुशासन' ग्रंथ में कह रहे हैं-

इन्द्रियाणां प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च मनः प्रभुः।
मन एव जयेत्तस्माजिते तस्मिन् जितेन्द्रियः ।।76।।

इंद्रियों की प्रवृत्ति व निवृत्ति में कोई प्रभु है, स्वामी है, तो वह मन है। जिसने मन को जीत लिया हो, वही जितेन्द्रिय होता है। ग्रंथकार पुनः पुनः प्रेरणा कर रहे हैं- अहो प्रज्ञात्माओ! शुद्ध मन से जिनेन्द्र का स्मरण करो। जिनेन्द्रदेव का चिंतवन एवं ध्यान करने से एक क्षणभर में परमपद प्राप्त हो जाता है।

मनीषियो! यह परमार्थदशा है। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि कहीं एक श्रावक अपने

मन में यह न सोचने लगे कि सारा विषय योगी के लिये है, मेरा तो कोई स्थान ही नहीं है। अहो श्रावको! उत्कृष्ट यही है कि आप योगी बनें। यदि योगी नहीं बन पा रहे हो तो कम-से-कम गृहस्थ-अवस्था में व्यापार करते हुये भी अपनी दृष्टि के निज-व्यापार को नहीं छोड़ देना। यह धन, पैसा, व्यापार उदर का पोषण तो करा देगा, लेकिन आत्मा का उद्धार नहीं करा पायेगा। खाना अच्छा नहीं है, खिलाना अच्छा नहीं है। खाना व खिलाना जब समाप्त हो जाता है, वह सबसे अच्छी अवस्था है, वह अरिहंत-अवस्था है। जहाँ न खिलाते हैं और न खाते हैं, वह सिद्ध-अवस्था है, अपनत्व दशा है। छठवें गुणस्थान तक ही आहार-संज्ञा चलती है, सातवें गुणस्थान से खाना-खिलाना बंद हो जाता है।

भावी भगवान् आत्माओ! अपने भगवान् को प्रकट करना है तो सर्वप्रथम पंचपरमेष्ठी भगवान् की शरण को प्राप्त करो। पंचपरमेष्ठी की शरण प्राप्त किये बिना संसार-सागर से उत्तीर्ण होना बहुत ही कठिन कार्य है। अत: अशुभ उपयोग से रक्षा का सुंदर उपाय जिनभक्ति एवं धर्माचरण है। उस जिनभक्ति में अपने आपको लगाओ, आत्महित अवश्य होगा।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

सिद्धान्त का सार:- आत्मा ही परमात्मा, जो परमात्मा है वह ही आत्मा है

योगसार

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ म किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारणे जोइया, णिच्छहँ एउ विजानीहि ।।20 ।।

अर्थ- हे योगिन! मोक्ष प्राप्त करने में शुद्धात्मा और जिन भगवान् में कुछ भी भेद न समझो-यह निश्चय मानो।

जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इहु सिद्धंत हँ सारु।
इउ जाणेविण जोइ यहो, छंडहु मायाचारु ।।21 ।।

अर्थ- जो जिन भगवान् हैं, वही आत्मा है-यही सिद्धान्त का सार समझो। इसे समझकर, हे योगीजनो! मायाचार को छोड़ो।

जे परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ।।22 ।।

अर्थ- जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है- यह समझकर, हे योगिन्! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

सर्वज्ञ अरहंतदेव की पावन पीयूष वाणी का हम सभी श्रवण कर रहे हैं। विश्वकल्याणी जिनेन्द्रवाणी परम् सौभाग्य से प्राप्त हुई है। वे जीव धन्य हैं जो समय निकालकर समय को समझने हेतु समयसार को समझकर निजसमय को प्राप्त हुए हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दु देव ने 'योगसार' ग्रंथ में तत्त्व का अभूतपूर्व कथन किया है। उन्होंने अध्यात्म के मर्म का आगम एवं स्वानुभव से प्रतिपादन कर मुमुक्षु जीवों पर महान् उपकार किया है।

आचार्य देव समझा रहे हैं- अहो प्रज्ञात्माओ! संसार में मोक्ष प्रदान कराने वाले न कोई देव हैं, न देवी। संसारी भोले प्राणी सरागता में ही धर्म मान बैठे हैं। निर्मल अनेकांत, परमार्थ दृष्टि से तत्त्वज्ञान को जाननेवाले जीव लोक में बहुत ही अल्प हैं। अर्हत् प्रवचन को कहने-सुननेवाले बड़ी कठिनता से प्राप्त होते हैं, जो कि अर्हंत प्रवचन को भूतार्थनय से समझते हैं। अधिकांशत: श्रोता-वक्ता अपने अनुसार सुनना/कहना चाहते हैं परन्तु ध्यान रखना कि स्वयं का चिंतन वीतरागी वाणी नहीं हो सकती।

वर्तमान नमोऽस्तु शासन में अनेक मत भिन्नताएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। यही कारण है कि जन सामान्य के मध्य जिनशासन का प्रभाव अल्प होता दिखता है। स्वयं के अहंकार के पीछे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

सर्वज्ञ शासन के प्रभाव पर किसी की भी दृष्टि नहीं जा पा रही है। कोई पंथों में, तो कोई संतों में, तो कोई नयों में उलझा है, जबकि शुद्ध दृष्टि से देखें तो यह सब गौण बातें हैं, कोई मोक्षमार्ग नहीं। रत्नत्रय की निर्मल साधना ही मुक्ति का मार्ग है।

आचार्य समंतभद्र स्वामी ने 'युक्तानुशासन' ग्रंथ में भगवान् महावीर स्वामी का स्तवन करते हुए कहा कि ''भगवन्! आप महान् हैं, आपका शासन निर्मल है, फिर भी वह लोक में एकाधिपत्य रूप लक्ष्मी को प्राप्त क्यों नहीं है? इसका कारण यही समझ में आता है कि कलिकाल है, साथ ही लोगों के आशय कालुष्य से युक्त हैं। श्रोता/प्रवक्ता नय-विवक्षा से रिक्त हैं, अतः विश्वकल्याणी सर्वज्ञशासन विश्व के जीवों के अंदर प्रवेश नहीं कर पा रहा है।''

काल: कलिर्वा कलुषाऽऽशयोवा, श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनाऽनयो वा।
त्वच्छासनेकाधिपतित्वं लक्ष्मी, प्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥5॥ युक्तानुशासन॥

आचार्य समंतभद्र स्वामी को याद कर, अपने अंदर की कलुषता को दूर कर, तत्त्व-ज्ञानियों को चाहिये कि वे निर्मल भाव से नय, न्याय, सिद्धांत, व्याकरण का अध्ययन कर भोले प्राणियों को सम्यक् उपदेश करें, जिससे स्व-पर का दीर्घ संसार समाप्त हो सके।

मनीषियो! ग्रंथराज योगसार में आचार्य भगवान् अभूतपूर्व बात करते हुये कहते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति तभी होगी, जब अशुभोपयोग से परे होकर शुभ एवं शुद्धोपयोग के पुरुषार्थ में लीन होंगे। पंचपरमेष्ठी की आराधना, विषयों से परे वृत्ति, कषाय की मंदता, शील, उपवास, दानादि प्रवृत्ति, यह शुभोपयोगी की चर्या है। विषय-कषायों से रहित, संयमी, तपोधन जो सूत्र एवं पदार्थों के निर्मल ज्ञाता हैं, ऐसे भेदाभेद रत्नत्रयाराधक श्रमण शुद्धोपयोगी होते हैं।

आगम में शुभोपयोगी की चर्या को सराग और शुद्धोपयोग को वीतराग संज्ञा दी है-ऐसी विवक्षा समझना।

भो ज्ञानी! सम्यक्दृष्टि जीव परस्पर में लोक व्यवहार का भी ध्यान रखता है, परन्तु लोकरूढ़ि को नहीं स्वीकारता।

ध्यान रखना, वह लोकरूढ़ि भी स्वीकारने योग्य है जिससे हमारे सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में बाधा न आती हो, ऐसा आचार्य सोमदेव सूरि का मत है।

ज्ञानी आत्माओ! लोकव्यवहार में इतने नहीं चले जाना कि परमार्थ का भान ही न रहे। पर के सम्मानों में संयम के सम्मान को ध्यान में रखना। कहीं पर के सम्मान के पीछे हृदय में कषाय स्थान न पलने लगें। जिन शासन देवों की आराधना को लेकर सर्वत्र विसंवाद देखे जा रहे हैं। किसी भी सम्यग्दृष्टि देव ने क्या कभी यह कहा कि मेरी भक्ति करो? वह तो जिनभक्ति से प्रभावित होकर पुण्यवानों के पुण्ययोग से उनकी सहायता करते हैं, परंतु अशुभ के योग में वे देव भी रक्षा नहीं कर पाते हैं। अतः आवश्यकता है शील व संयम की निर्मलता की, तो देव स्वयमेव रक्षा करेंगे। उनका सम्मान/आदर तो यथायोग्य करें, परंतु

मोक्षमार्ग साक्षात् उपादेय पंचपरमेष्ठी की आराधना में ही है।

देव, शास्त्र, गुरु और उनके भक्त 'आयतन' कहलाते हैं तथा इन आयतनों की आराधना सम्यक्त्व का हेतु है। आयतनों को सम्मान दें, इसमें विकल्प नहीं है; परंतु पद/मर्यादा का ध्यान अवश्य रखें। पूजन-पाठ आगमोक्त विधि से अशुभोपयोग से बचने के लिए करना, कभी विसंवाद नहीं करना।

पंचपरमेष्ठी की आराधना सराग भक्ति है और निज शुद्ध परम्-पारिणामिक ज्ञायक-स्वभावी आत्मा का ध्यान करना वीतराग भक्ति है। इसे ही क्रमशः द्वैतभक्ति और अद्वैतभक्ति के नाम से जाना जाता है। अद्वैत-भक्ति निज शुद्धात्माराधक यतिजन ही करते हैं; जहाँ ध्यान, ध्याता का विकल्प समाप्त हो जाता है- यह अवस्था ही परम्-उपादेयभूत है।

आचार्य भगवान् योगीन्दु देव बीसवीं कारिका में समझाते हुए कहते हैं- हे योगिन्! मोक्ष प्राप्त करने में शुद्धात्मा और जिन-भगवान् में कोई भी भेद न समझो, यह निश्चय जानो। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेव सम्पूर्ण ममकार, अहंकार से रहित होते हैं, उसी प्रकार शुद्धोपयोगी मुनि सम्पूर्ण विकल्पों, काषायिक-भावों से परे होते हैं। जो कषाय आगम में दसवें गुणस्थान में कही है, वह कर्मसत्ता की अपेक्षा है, क्योंकि कषायादिक विकल्प छठवें गुणस्थान तक ही होते हैं। परम्-ज्ञायक-स्वभाव में विराजी आत्मा को जिनेन्द्र-सदृश ही समझें। शुद्धात्म तत्त्व का ध्याता परम् योगी ही अर्हत्-अवस्था को प्राप्त होता है। बिना जिन मुद्रा स्वीकार किए परम् निर्वाण दशा की प्राप्ति असंभव है।

मनीषियो! यदि स्वरूप दृष्टि से देखें तो सिद्ध भगवान् तथा संसारी आत्मा में कोई भेद नहीं है। अंतर केवल इतना ही है कि सिद्ध भगवान् प्रगट परमात्मा हैं और संसारी जीव परमात्म-शक्ति से युक्त हैं। जिस प्रकार कर्दम युक्त नीर एवं स्वच्छ जल में शीतलता की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है। वह जो मलिनता है, वह पर-संयोगी मृणतृण के कारण है। स्व-स्वभाव से तो निर्मलता ही है। इसी प्रकार समझना कि मेरे अंदर जो मलिनता दिख रही है, वह कर्मजनित है। कर्म और आत्मा का एक-क्षेत्रावगाही संश्लेष-सम्बंध होने पर भी वह अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। स्वभाव तो द्रव्य में त्रैकालिक होता है।

आचार्य भगवान् योगीन्दु स्वामी इक्कीसवीं कारिका में यही समझा रहे हैं कि जो जिन भगवान् हैं, वही आत्मा है-यही सिद्धांत का सार है। इसे समझकर, हे योगी! तू मायाचार को छोड़। अहो! आचार्य महाराज की करुणा देखो कि पुनः पुनः जाग्रत कर रहे हैं। साधक कहीं कषाय की निद्रा में न चला जाये, विषयों में सुख न देखने लगे, अतः धीरे से कहते हैं कि मायाचार को छोड़ो। यह ध्रुव-सत्य समझना कि छद्म चर्या, वक्र परिणामी-साधना कभी सत्यरूप नहीं होती तथा लोकेषणा से युक्त साधना अशुभ रूप ही फलित होती है। साधना अल्प भले ही क्यों न हो, परन्तु कृत्रिम नहीं होना चाहिये। माया धर्म से युक्त होकर की गई

बहुत साधना भी तिर्यंचगति का ही साधन है और निर्मल भावों से की गई अल्प साधना स्वर्ग/मोक्ष रूप फलित होती है। यहाँ आचार्य महाराज वक्र परिणति के त्याग की बात कर रहे हैं। अनादि अविद्या के वश होकर इस जीव ने अनेक बार मायाचारी करके संसार चक्र में ही भ्रमण किया है। अब तो एक बार स्वतः के ऊपर करुणा करो। कुटिल भावों से अशुभ आस्रव कर संसार-लता की वृद्धि मत करो। यह माया कषाय नागिन के तुल्य है, जो हृदयरूपी बामी में कुंडली लगाकर बैठी है, जो समय पाकर चारित्र रूप गुणों को डस लेती है।

भो ज्ञानी ! वीतराग धर्म तो सरल स्वभावी जीव के अंदर ही होता है। आचार्य श्री शुभचंद्र स्वामी ने भी कहा है:

मुक्तेरविप्लुतैवौक्ता, गतिर्ऋज्वी जिनेश्वरै :।
तत्र मायाविभिः स्थातुं न, स्वप्नेऽप्यस्ति योग्यता ।।993 ।।ज्ञानार्णव ।।

अर्थात् वीतराग सर्वज्ञ भगवान् ने मुक्तिमार्ग की सरल गति कही है,उसमें मायावी जनों के लिये स्थिर रहने की योग्यता स्वप्न में भी नहीं है।

माया, मिथ्यात्व, निदान इन तीन शल्यों से रहित ही व्रती होता है। जहाँ अनंतानुबंधी माया हो, वहाँ सम्यक्त्व है ही नहीं, फिर चारित्र की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है। अतः, त्यागियों को चाहिए कि वे प्रतिक्षण अपने परिणामों को मापते रहें। कहीं मेरी परिणति मायाधर्म में तो नहीं जा रही है-ऐसा विचार कर निज भावों को मायाचारी से पृथक् रखें।

मनीषियो ! बाइसवें दोहा-सूत्र में पुनः करुणाबुद्धि से यतीश्वर आदेशित कर रहे हैं-अहो प्रज्ञ ! जो परमात्मा है, वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है। यह समझकर, हे योगिन ! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो। जीवत्व दृष्टि से एकेन्द्रिय निगोदिया से लेकर सिद्ध-परमात्मा में कोई अंतर नहीं है। जो चैतन्य धर्म सिद्धों में है, वही मेरे अंदर है। कर्मोपाधि-निरपेक्ष शुद्ध-द्रव्यार्थिक-नय से संसारी जीव भी सिद्ध समान शुद्धात्मा है:-

कर्मोपाधि निरपेक्षःशुद्धद्रव्यार्थिकःयथा संसारीजीवः सिद्धसदृश शुद्धात्मा ।।41।।
-आलापपद्धति ।।

भो ज्ञानी ! वर्तमान में विभाव-अवस्था की दृष्टि डालने पर संसारीजीव अशुद्ध जीवद्रव्य है एवं सिद्ध भगवान् शुद्ध जीव द्रव्य हैं। शुद्धात्मा अशुद्ध-पर्याय में निवास नहीं करती। शुद्धात्मा तो अशरीरी-अबंधदशा को प्राप्त हो चुकी है, शुद्ध चैतन्यप्राणों से युक्त है, संसारातीत है। जब तक नर-नारकादि पर्यायों में जीव है, तब तक अशुद्ध ही है, परन्तु अशुद्धता जीव का धर्म नहीं है। शुद्ध परम्-पारिणामिक-स्वभाव ही जीव का सत्यार्थ स्वरूप है। कोई अज्ञानी ऐसा ही न समझ ले कि मैं तो अशुद्ध ही हूँ, उसे आत्मबोध कराने हेतु आचार्य महाराज ने कहा-नहीं, तेरे अंदर भी सिद्ध परमेश्वर विराजा है।

मलरहिओ णाणमओ णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो परमो बंभो मुणेयव्वो ।।26।। तत्त्वसार ।।

अर्थात्, जैसा कर्ममल से रहित ज्ञानमय सिद्धात्मा सिद्धलोक में निवास करता है, वैसा ही परम् ब्रह्म स्वरूप आत्मा अपनी देह में स्थित जानना चाहिये। इस प्रकार जो शुद्ध प्रदेशों से पूर्ण लोकाकाश-प्रमाण है,उसे सदा ही आत्मा समझो और शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करो।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

आत्मा निश्चयनय से लोकप्रमाण, व्यवहारनय से स्वदेहप्रमाण

योगसार

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ, लोयायास-पमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु ।।23।।

अर्थ-जो शुद्ध प्रदेशों से पूर्ण लोकाकाश प्रमाण है, उसे सदा आत्मा समझो और शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करो।

णिच्छइँ लोय-परमाणु मुणि, ववहारे सुसरीरु।
एहउ अप्प-सहाउ मुणि, लहु पावहि भव-तीरु ।।24।।

अर्थ-जो आत्मस्वभाव को निश्चयनय से लोकप्रमाण और व्यवहार नय से स्वशरीर प्रमाण समझता है, वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। यह जिनेन्द्र की पावन वाणी जन-जन की कल्याणी है। जिस जीव ने इस परम् श्रुत का पान किया है, वह परम्पद को प्राप्त हो गया। आचार्य भगवान् योगीन्दु देव ने पूर्व सूत्र में संकेत दिया है कि वास्तव में आत्मा चिदानंद-चैतन्य रूप है, उसकी प्राप्ति के लिए लक्ष्य करो और मायाचारी छोड़ दो। यह मायाचारी पूजा/प्रतिष्ठा दिला सकती है, परंतु छल से नहीं, यशः कीर्ति कर्म के उदय से होगी। ध्यान रखना, यदि यशः कीर्ति कर्म का उदय है, तो तेरी पूजा लाभमय हो जाएगी, भले ही पूजा में तुमने छल किया हो। यदि यशः कीर्ति कर्म का उदय नहीं है, तो पूजा नहीं होगी। किसी को ऊँचा दिखाना या नीचा दिखाना-ये सब निमित्त दशायें हैं, परंतु वास्तविकता यह है कि ये सब तेरे पुण्य-पाप के उदय से है।

भो ज्ञानियो! कूप में पटक दिया जाता है और मिलते हैं हीरे मोती। देखो, धन्यकुमार को मारने के लिए उनके भाइयों ने षड्यंत्र रचे। लेकिन ध्यान रखना, पुण्य के प्रबल योग में पुण्यात्मा का कोई बाल बाँका नहीं कर पाता है और पाप के उदय से भवन भी समरभूमि बन जाता है। जहाँ प्रबल पुण्य का योग है, वहाँ श्मशान घाट में भी पालनहार मिल जाते हैं। जीवंधर कुमार को उसकी माँ श्मशान में छोड़ गई थी, वहाँ पर भी पालने वाला मिल गया था। जब पुण्य योग क्षीण हुआ, तब राजभवन में जन्म लेने वाले को उठाकर शिला के नीचे दबा दिया था। यह भी सत्य है कि तुम देह को दबा सकते हो, परन्तु देही को नहीं दबा सकते। इसलिए छल/कपट वाली दृष्टि को छोड़ देना। प्राप्ति की भावना में पुण्य और पुरुषार्थ दोनों ही

चाहिए। कोरा भाग्य या कोरा पुरुषार्थ कुछ नहीं कर पायेगा,क्योंकि भाग्य और पुरुषार्थ दोनों के संयोग से कार्य की सिद्धि होती है। सम्यक्-पुरुषार्थ और सम्यक्-पुण्य दोनों ही कार्य की सिद्धि के लिये परम्-रसायन है। इसलिए आचार्य भगवान् योगीन्दु देव ने कहा है- बाहरी छलकपट को छोड़कर अपने शुद्ध आत्मतत्त्व पर दृष्टिपात करो।

आचार्य भगवान् पुनः कहते हैं कि इस देह को देही मत समझना। देह यानी शरीर और देही यानी आत्मा। यह आत्मा तो मेहमान है, पाहुना है। जितने दिन के लिए आया है, उतने दिन रहेगा और फिर भवन(शरीर) से चला जायेगा। यदि अपने घर में कोई मेहमान आता है तो तुम भी उसे अच्छी तरह से रखते हो। अहो ज्ञानी! इस मनुष्य-पर्याय में ये भगवान् हमारे मेहमान बनकर आये हैं, तुम इनको भोग में लगाओ, चाहे योग में लगाओ। ये स्वयं के स्वयंभू भगवान् हैं तथा ये देह-देवालय में मेहमानी करने आये हैं। ये निश्चित ही चले जायेंगे, क्षण नहीं लगेगा-यह सत्य है। कोई इन मेहमान को पर्याय में विराजमान करता है, तो कोई भवनों में, तो कोई राजभवनों में-यही परिणमन है। ये परमात्मा सबके यहाँ जाते हैं, कभी भील के घर पहुँचे तो कभी सम्राट के घर। यह आत्मदेव हैं, कभी पुत्र की पर्याय में पहुँच गये, कभी सम्राट के घर में जन्म ले लिया, किन्तु ये तो पाहुने हैं। ये कभी चींटी के शरीर में पहुँच गये, कभी हाथी के शरीर में पहुँच गये। सिद्धान्त कहता है-आत्मा स्वदेह प्रमाण है।

आचार्य भगवान् योगीन्दु देव ने 23 व 24वीं गाथा में बहुत ही गहन सूत्र भर दिये हैं। अहो ज्ञानी! अनंतकाल से तू चौरासी-लाख योनियों में भटक रहा है, तू यह जान। व्यवहार नय से आत्मा शरीर प्रमाण है, किन्तु निश्चय नय से आत्मा लोकप्रमाण है। यह ही आत्मा का स्वभाव है। जो इसे शीघ्र ही जान लेता है, वह संसार से पार हो जाता है। यह आत्मा विस्तार-संकोच स्वभावी है, अर्थात् संकोच-विस्तार आत्मा का धर्म है। जिस प्रकार रबड़ को खींचो तो लम्बी हो जाती है और यदि छोड़ दो तो छोटी हो जाती है, लेकिन उसके प्रदेश जितने हैं, उतने ही हैं। उसके प्रदेशों में अंतर नहीं आता है। इसी तरह आत्मा असंख्यात प्रदेशी है। कोई आत्मा को राई-प्रमाण मानता है, तो कोई अंगुल-प्रमाण, तो कोई लोक-प्रमाण,तो कोई सर्वव्यापी मानता है। इन सब शंकाओं का समाधान आचार्य योगीन्दु देव बड़ी शालीनता से कर रहे हैं-यदि आप कहते हैं कि आत्मा राई-प्रमाण है, तो सारे शरीर का संचालन कैसे होगा? यह सैद्धान्तिक/तार्किक विषय है,संभलकर समझो। सिद्धांत नहीं मानता है कि आत्मा राई-प्रमाण है,अंगुल-प्रमाण है, लोकप्रमाण है या विश्वव्यापी है। हाँ, कथंचित जगत्व्यापी भी है। जैसा लोग कहते हैं कि आत्मा सर्वव्यापी ही है,परन्तु ब्रह्म नहीं। यदि मैं एक ब्रह्म हूँ तो मेरी सत्ता की संख्या समाप्त हो जाती है। यदि कोई यह कहे कि मैं ईश्वर का अंश हूँ, तो कोई सुखी-दुःखी, राजा-रंक क्यों? ये ईश्वर इतने सुख-दुःख में क्यों व्याप्त है? वह अपने आपको पर में सुखी-दुःखी क्यों किये है? भो ज्ञानी! प्रत्येक जीव अपने कर्मों से

सुखी-दुःखी है। परमेश्वर न किसी को सुखी करता है और न दुःखी। देखो, गीता में भी नारायण श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-हे पार्थ! जीव का स्वयं का कर्म ही इस जीव को सुख-दुःख का दाता है।

आचार्यभगवान् अमितगति स्वामी ने 'सामायिक-पाठ' में उल्लेखित किया है-

स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥30॥

भो ज्ञानी आत्माओ! यदि बेटा रोगी है तो उसकी सेवा करो, यदि वह तुम्हें पीड़ा पहुँचा रहा है तो सहन करो, क्योंकि वह शत्रु के रूप में आया है। वह पूर्व-पर्याय का शत्रु है, पर तुम उसे शत्रु का रूप मत मानो, तुम उसे कर्मों का विपाक मानो। यदि तुम उसे शत्रु मानोगे तो द्वेष आयेगा और द्वेष से उसके प्रति बैर-भाव कर नवीन कर्मों का बंध करोगे।

कर्म-सिद्धांत कितना गहन है? लोग कहते हैं कि भीष्म पितामह सर-शैय्या पर पड़े हैं, किसी के बाणों की वेदना को सह रहे हैं। परन्तु वे गैर के बाण नहीं थे, अपनों के ही बाण थे। वहाँ सिद्धांत कहता है-हे भीष्म पितामह! तुम आँखों से आँसू मत गिराना, ये अर्जुन के बाण निमित्त मात्र हैं। तुमने कई भव पहिले सम्राट की अवस्था में अहंकार में आकर धनुष की नोक से काले नाग को फेंक दिया था, वह भी कांटों पर पड़ा तड़प रहा था। वह पीड़ा/कराहना तुम्हारे उदय में आ गई है और आज तुम्हें बाणों की शैय्या पर सोना पड़ रहा है। ऐसा महाभारत में उल्लेख है।

मनीषियो! इस पर्याय के अहंकार में मत जाना। यह पर्याय का अहंकार ही है जो तुझे पापी बना रहा है। यदि तुमने परिणामों को निर्मल कर लिया तो निश्चित ही परमात्मा बन जाओगे। यहाँ किंचित या कदाचित् कुछ नहीं है, सब सुनिश्चित है। यह आत्मा तिर्यंच के शरीर में पहुँच गई, तो तिर्यंच प्रमाण हो गई। यह आत्मा चींटी के शरीर में पहुँच गई तो चींटी-प्रमाण और हाथी के शरीर में गई तो हाथी प्रमाण हो गई। जब केवली लोकपूरण-समुद्घात करते हैं तो आत्मा के प्रदेश सम्पूर्ण लोकप्रदेश में व्याप्त हो जाते हैं, इस अपेक्षा से कहना कि ईश्वर जगत्व्यापी हो गया। आचार्य भगवान् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज 'पंचास्तिकाय' में आत्मा के स्वदेह प्रमाण का बड़ा सुन्दर दृष्टांत दिया है। पद्मराग मणि को दुग्ध से भरे बड़े बर्तन में डाल दो, उसकी आभा उस बर्तन-प्रमाण हो जायेगी और यदि उस मणि को दुग्धयुक्त छोटे बर्तन में डाल दिया जाये, तो उसी प्रमाण आभा हो जायेगी, परन्तु वह मणि तो जितनी है,उतनी ही है। इसी तरह तेरी आत्मारूपी पद्मरागमणि जितने छोटे/बड़े शरीर में जाती है, उतनी छोटी/बड़ी हो जाती है, लेकिन आत्मा तो स्वदेह-प्रमाण है।

इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को समझो, तभी संसार-सागर से पार हो सकोगे। घनांगुल के असंख्यातवें भाग में विराजमान आत्मा सिद्ध-सत्ता से युक्त है और आपके शरीर

में विराजमान आत्मा भी सिद्ध-सत्ता से युक्त है। दोनों में भेद नहीं मानना।

भो ज्ञानी ! आप सुबह घूमने को निकले, मौसम सुहावना था। शस्य श्यामला भूमि और घास पर ओस की बूंदें मोती-जैसी चमक रही थी, आपने घास पर चलना प्रारंभ कर दिया। आगम कहता है कि प्रत्येक पत्ते में, प्रत्येक वनस्पति में जीवत्व है और वह जीव सिद्ध बनने की शक्ति से युक्त है। अहो ! तूने एक भावी सिद्ध-भगवान् पर पैर रख दिया है। यहाँ लगाना अध्यात्म। जिंदगी में कभी किसी को हीन मत समझना। हाथ में डंडा लेकर रास्ते में जा रहे थे, जितनी वनस्पति मिली, उसे तोड़ा, मोड़ा। अरे ! सोचो, कितनी आत्माओं को रोते-बिलखते छोड़े जाते रहे हो। ये कर्म का विपाक कभी तुम्हारे उदय में आयेगा, तभी देखने को मिलेगा कि किसी की टांग टूटी, किसी का हाथ टूटा, क्योंकि जब तुमने किसी का हाथ-पैर तोड़ा था, सो तुम्हारा टूटा। इसलिये हमें प्रत्येक जीव के अंदर भगवान् नजर आना चाहिए। हे आत्मन् ! आज से ध्यान रखना, निष्प्रयोजन वनस्पति को मत तोड़ना, व्यर्थ में पानी मत फैलाना, व्यर्थ में झाड़ू मत लगाना, चींटियों को मत मारना, क्योंकि 'योगसार' सुन रहे हो। अतः योग को स्थिर कर चलना तथा अपने परिणामों की परिणति को देखना।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

सम्यक्त्व के अभाव में चौरासी-लाख योनियों में भ्रमण

योगसार

चउरासी लक्खहि फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिय, एहउ जाणि णिभंतु ।।25 ।।

अर्थ-यह जीव अनादि-अनन्तकाल तक चौरासी-लाख योनियों में भटका है, परन्तु इसने सम्यक्त्व नहीं पाया, हे जीव! यह निस्संदेह समझ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

भगवान् जिनेन्द्रदेव की पीयूषवाणी जगत् कल्याणी है। भो ज्ञानी! आज से ध्यान रखना, वनस्पति को निष्प्रयोजन मत तोड़ना, व्यर्थ में पानी मत फैलाना, व्यर्थ में झाड़ू मत लगाना, चीटियों को मत मारना, क्योंकि योगसार सुन रहे हो। योग को स्थिर कर चलना है। ऐसा क्यों करना? क्योंकि 'चौरासी-लाख फिरो, काल अनादि अनंत'। अहो मनीषियो! अनादि-अनंत काल तक तुमने क्या किया? अभी तक चौरासी-लाख योनियों में घूम रहे हो। कैसे घूमे? रहट की घड़ी को देखो। एक खाली, एक भरी। सबका अपना-अपना पुण्य का योग है। "होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।" आपने बच्चों को जन्म दिया या बड़ा किया? भैया जी कहते हैं कि बड़ा किया। किसी के घर बौना लड़का हुआ, उसे बड़ा कर दिखाओ, तब जानें। बेटे के शरीर की उत्पत्ति के निमित्तकर्ता तो आपको मान सकता हूँ, लेकिन बेटे की आत्मा के कर्ता नहीं हो। उसकी देह के कर्ता माता-पिता हो सकते हैं, वह भी निमित्तकर्ता के रूप में। उसकी देह बढ़ाने वाले आप नहीं हो। उसकी देह तो उसकी अपनी योग्यता से बढ़ती है। मनीषियो! जीवन में ध्यान रखना, तुम किसी की देह को छोटा या बड़ा नहीं कर सकते। तुम किसी बेटे को जिसकी लम्बाई सात फुट हो उसे कम नहीं कर सकते हो। यानी ये जीव का स्वतंत्र परिणमन है, "होता स्वयं जगत् परिणाम।" मैं जगत् का ज्ञाता ही हूँ, किन्तु आप जगत् के कर्ता बनकर रो रहे हो, चौबीस घंटे रोकर आँखें फोड़ रहे हो। इसलिए यह ध्यान रखना, निमित्त सभी बन सकते हैं, लेकिन कार्य की सिद्धि तभी होगी जब उपादान की योग्यता होगी। बिना निमित्त के उपादान की योग्यता कुछ नहीं कर सकती। प्रत्येक जीव का परिणमन स्वतंत्र था, स्वतंत्र है और स्वतंत्र रहेगा। इसे कोई टाल नहीं सकता। यह स्वतंत्रता का सिद्धान्त है। पराधीन दर्शन नहीं है, ये स्वाधीन दर्शन है। जीव चौरासी-लाख योनियों में फिरा क्यों? कारण सुना? 'पर सम्मत्तु ण लद्धु,' सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया। 'दंसण मूलो धम्मो' सूत्र याद कर लेना। यदि भवन की नींव नहीं है, वृक्ष की

मूल (जड़) नहीं है, तो भवन/वृक्ष टिक नहीं सकता । ऐसे ही धर्म का मूल श्रद्धा है, धर्म का मूल आस्था है। आचार्य भगवान् समंतभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्ड-श्रावकाचार' में सम्यक्त्व का निर्मल कथन किया है-

न सम्यक्त्व समं किंचित् त्रैलोक्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व समं नान्यत्तनुभृताम् ॥ 34 ॥

लोक में सम्यक्त्व के समान किंचित् भी श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है और मिथ्यात्व के समान अशील कोई पदार्थ नहीं है । तीन-लोक में, तीन-काल में सम्यक्त्व ही महान् है । सम्यक्त्व है तो सम्यक्दर्शन है, सम्यक्ज्ञान है और सम्यक्चारित्र है । (जिय एहउ जाणि णिभंतु ।) हे जीव ! इसे निःभ्रान्त होकर जानो । आप लोगों से कोई कहता है कि धर्म पर श्रद्धा करो, पर सम्यक्दृष्टि की चर्या को भी समझो । सम्यक्दृष्टि का प्रथम लांछन यानी चिह्न है- प्रशम-भाव, क्षमा-भाव । आपकी बहू के द्वारा दूध से भरा गिलास गिर गया । क्या कहोगे? अहो ! कितना कहोगे? एक ग्लास भरे दूध के गिरने-मात्र से आपने भगवान्-आत्मा को नहीं देखा । आपका बस चल जाये तो आहुति तक दे देते हो । परन्तु सम्यक् दृष्टि क्या कहेगा? दूध गिर ही गया, अब हम अपने भाव को क्यों बिगाड़ें? आप मंदिर में जाओगे, समाज के बीच बैठोगे, तब क्या चर्चा करते हो? 'सुखी रहें सब जीव जगत के', मेरी भावना सुनाते हो । मैं पूछता हूँ-उन जीवों में तुम्हारी बहू एक जीव है कि नहीं? 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे भवन्तु निरामया' गोष्ठी में बैठकर सुन्दर सूत्र बोलते हो । लेकिन जब एक इंच भूमि भाई ने दबा ली तब भाई को किस रूप में देखते हो? अब वहाँ तुम्हारा सूत्र नहीं गूँज पाता कि संसार के सभी जीवों में भाई भी एक जीव है ।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी ने पूर्वगाथा में संकेत दिया था कि यह जीव 84 लाख योनियों में भटक रहा है । अनादिकाल से अनंत संसार में भ्रमण कर रहा है । भटकने का एकमात्र हेतु क्या था? इसे निज की प्रतीति का अनुभव नहीं मिला, सच्ची श्रद्धा का उद्भव नहीं हुआ, सच्ची आस्था का उद्भव नहीं हुआ । हम जिनालयों में भी गये, जिनदेव के चरणों में विराज गये, वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओं के चरणों में विराज गये, वीतराग वाणी का पान भी किया, परन्तु अंतरंग से देव-गुरु-शास्त्र के प्रति आस्था पैदा नहीं हुई । एक नमक की डल्ली पर पानी की बूँद गिरे तो वह पानी-पानी हो जाती है । अहो ज्ञानी! कितने भवों से हमने जिनवाणी की बूँदों को अपने अन्दर डाला, फिर भी हम पानी-पानी नहीं हुए । लगता है नमक की डली से भी कठोर इस जीव का हृदय है कि मिथ्यात्व के पटल को नहीं तोड़ सके । निर्मल श्रद्धा के अभाव में अनादिकाल तक मिथ्यात्व का ही सेवन किया है । राग के स्थानों को ही हमने वीतरागता का स्थान मान लिया । किसी ने बाहरी लोगों को देखकर मिथ्यात्व का सेवन किया, किसी ने राग के वशीभूत मिथ्यात्व का सेवन किया और किसी ने निज

आत्मदेव के भ्रमवश मिथ्यात्व का सेवन किया। हमने श्रद्धा को इतना कमजोर किया कि जरा-से विकल्प ने हमारे मन में विकल्प बना दिया। लाखों, करोड़ों जीवों के मोक्षमार्ग से पतित होने पर भी सम्यक् दृष्टि जीव अपनी श्रद्धा से पतित नहीं होता। गहरे से समझो, गहरे से। जीव रागवश, अज्ञानतावश, क्रोधवश अपने संयममार्ग से पतित हो रहा है। उसे देखकर पतित होने की आवश्यकता नहीं है। जैसे रेलगाड़ी के गिरने से पटरी समाप्त नहीं हो जाती, वैसे ही मोक्षमार्ग समाप्त नहीं होगा। चार बालकों ने रात्रिभोजन का त्याग किया। दो बालक रात्रिभोजन करने लगे, तो क्या आपके मन में ये भाव आयेंगे कि अपने को भी रात्रिभोजन का त्याग नहीं करना है? अरे भाई!यह उनका विकल्प था, उनकी मर्जी थी। इसे हम मार्ग नहीं बना सकते। दूसरे की गलती को मार्ग नहीं बना सकते। कमी को कमी स्वीकार कीजिये, लेकिन इच्छा को दृढ़ बनाकर चलिये। यदि हमने प्रशम भाव छोड़ दिया तो क्रोध की वह नृत्यांगना हमारी नाक पर नाचने लगती है। एक क्षण पूर्व शान्त थे, भोले थे। सम्यक्दृष्टि का पहला लक्षण प्रशम भाव है। यहाँ व्यवहार-सम्यक्त्व की चर्चा चल रही है और व्यवहार-सम्यक्त्व का लक्षण प्राप्त नहीं हो रहा है।

यदि आपके शत्रु का प्रबल पुण्य का योग है तो उसे मारने का मौका कभी नहीं मिलेगा। लेकिन जिस दिन से आपने मारने का विचार किया, उसी दिन से कर्मबन्ध कर रहे हो। अहो लंकेश! प्रकृति के परिणमन को और सिद्धान्त को बदल नहीं सकते हो। कितना पुरुषार्थ किया आपने राम को मारने का, लेकिन क्या तुम पुण्यात्मा को मार सके? किन्तु जिस दिन से तुमने मारने का विचार प्रारंभ किया, उसी दिन से तुम्हारा मरण प्रारंभ हो चुका था। सम्यक्दृष्टि का चिंतन सम्यक् होता है। जिसका सम्यक्-चिन्तन नहीं, जिसकी सम्यक्-प्रकृति नहीं, तो वह सम्यक्दृष्टि कैसा? पहले दृष्टि सम्यक् नहीं होती है, पहले सम्यक् वृत्ति होती है, सम्यक् सोच होती है। जिसकी सम्यक्-सोच होगी, सम्यक्-वृत्ति होगी, तभी उसकी दृष्टि सम्यक् होगी। समीचीन-दृष्टि नहीं, निश्चल-दृष्टि नहीं, तो सम्यक्दृष्टि हो ही नहीं सकती। इसलिए, मनीषियो! सम्यक्दर्शन के लिए भी पुरुषार्थ करना होगा और आज से पुरुषार्थ ऐसा करना जिससे सहज-भाव से देखना सीख लो। यदि क्रोध के निमित्त भी मिल रहे हैं तो निमित्त मिलना ये सोपाधिक अवस्था है। निमित्त मिलना-यह प्रारंभिक अवस्था है। निमित्तों का होना, ये परपुरुषार्थ है; क्रोध के साधनों को उत्पन्न कराना, गाली दे देना, ये दूसरे का पुरुषार्थ है, पर क्रोधी होना दूसरे का पुरुषार्थ नहीं है। यहाँ यह कहना है कि धर्म के क्षेत्र में निमित्त को नहीं छोड़ना। यहाँ यह ही कहना कि जब कषाय के निमित्त खड़े हों, तब भी कषाय को मत लाना। यहाँ कहना कि निमित्त ने क्या किया? मेरा उपादान निर्मल था।

यदि आप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर पाओगे तो जैनधर्म में कोई जीव वीतरागी

नहीं बन पायेगा। जितने वीतरागी हुए, सर्वज्ञ हुए, सिद्ध हुए, वे सभी इन्हीं रागी-द्वेषी जीवों के बीच से ही हुए। राग के निमित्तों के बीच रहकर भी उपादान की निर्मलता ने राग को स्पर्श कहाँ किया है? इसलिए निमित्त को दोष नहीं देना, अपने उपादान को दोष देना। भैया! रसगुल्ला रखा था, वह जड़ था कि चेतन? जड़ था। आप कह रहे हैं कि इन्होंने रसगुल्ला दिखा दिया तो मेरा मन खाने को हुआ, इसलिए मैंने खा लिया। यदि न दिखाते तो मैं क्यों खाता? इसमें मेरा क्या दोष? अहो भोली आत्मा! इस रसगुल्ले ने तुझसे कब कहा था कि आइये, मुझे खा लीजिये? अपनी कषाय से क्यों नहीं कहते? अपनी राग/वासना से क्यों नहीं कहते कि हाथ किसका चला, दृष्टि किसकी गई, जिह्वा किसकी हिली, राग किसका हिला? तेरी राग-दशा न होती तो रसगुल्ला तुझसे कभी न कहता कि मुझे खा लीजिये। यदि द्रव्यों के होने से भोग होते तो भोग भोगना ही पड़ते। द्रव्यों का होना निश्चित/नियत है और निमित्तों का होना नियत है। लेकिन निमित्त के होने पर उपादान को बदलना पड़ेगा, अगर ऐसा है, तब संयम नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाएगी, क्योंकि निमित्त तो सर्वत्र रहते हैं। जिन्होंने उपवास किया है, क्या उनके घर भोजन नहीं था? क्या उन्हें थाली नहीं दिखती? लेकिन जब थाली दिखे और भोजन करना पड़े तो क्या भोग-सामग्री होने से भोगना ही पड़ती है? भगवान् शान्ति, कुन्थु, अरहनाथ से कह देना-प्रभु! आप तो चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थेश थे, छियानवे हजार रानियों के सम्राट, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी और ये सभी तृण के समान त्याग दीं। इन द्रव्यों के होने से भोग होता है, तो कभी योग नहीं होगा। इस भ्रम को भूल जाना। 18 करोड़ घोड़े और 84 लाख हाथियों को छोड़ दिया। यह हकीकत है, शायद तुम्हारे घर में गधा भी न हो। देखो बुरा तो नहीं कहा, यथार्थ है। गधा भी नहीं है, फिर भी आप घर में क्यों बैठे हो?

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

तू ही तो है शुद्ध, बुद्ध, जिन, केवली, ज्ञानमयी

योगसार

सुद्धु सचेयणु बुद्धु जिणु, केवल-णाण-सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु ।।26 ।।

अर्थ- यदि मोक्ष पाने की इच्छा करते हो, तो निरन्तर ही आत्मा को शुद्ध, सचेतन, बुद्ध, जिन और केवलज्ञान-स्वभाव मय समझो।

जाम ण भावहि जीव तुहुँ णिम्मल अप्प-सहाउ।
ताम ण लब्भइ सिव-गमणु जहिँ भावइ तहि जाउ ।।27 ।।

अर्थ- हे जीव! जब तक तू निर्मल आत्म स्वभाव की भावना नहीं करता, तब तक मोक्ष नहीं पा सकता। अब जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ जा।

जो तइलोयहँ झेउ जिणु तो अप्पा णिरु बुत्तु।
णिच्छय-णइँ एमइ भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ।।28 ।।

अर्थ- जो तीनलोक के ध्येय जिन भगवान् हैं, निश्चय से उन्हें ही आत्मा कहा है-यह कथन निश्चय नय से है। इसमें भ्रांति न करनी चाहिए।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना का हम सभी पान कर रहे हैं। यह जिनदेशना ही भव्यों के भव-क्षय का हेतु है। ग्रंथराज योगसार जी में आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी ने जिनोपदेश को अपने अनुभव के द्वारा सरल सुबोधरूप से प्रतिपादित किया है। यह तो हम सभी जीवों का प्रबल पुण्य का योग है तथा आचार्य महाराज की असीम अनुकम्पा समझें, जिन्होंने अपने एकत्व-विभक्त स्वभाव लीनता में से अमूल्य समय निकालकर यह महान ग्रन्थ भव्यों के सामने रखा, यही महापुरुषों की महिमा है। सन्त जन सम्पूर्ण जीवों के अनुग्रह की दृष्टि रखते हैं। इसी निर्मल भावना की पूर्ति आचार्य जी यहाँ कर रहे हैं और परम करुणा भाव से भव्यों को समझा रहे हैं।

भो ज्ञानी! राग की दृष्टि से तूने आज तक स्वयं को जाना है, विषयों में लिप्त रहा। मोह के मद में अनन्त ज्ञायक-स्वभावी निज देह में विराजे निज प्रभु को जाना ही नहीं। अब तो स्वविवेक ज्ञान का प्रयोग कर, भूतार्थ दृष्टि से देख, यदि तेरी कल्याण की भावना है, तो 26वीं कारिका में आचार्य देव समझा रहे हैं:

अहो ज्ञानी! (जइ सिवलाहु चाहहु) यदि मोक्ष जाने की इच्छा है तो (अणुदिणु सो अप्पा)

निरंतर आत्मा को (सुद्धु सचेयणु बुद्धु जिणु) शुद्ध, सचेतन, बुद्ध, जिन और (केवलणाण सहाउ मुणहु) केवलज्ञान स्वभाव मय समझो। जिन्होंने कर्मशत्रुओं पर विजयश्री को प्राप्त किया है, ऐसे जिनदेव होते हैं। वह जिनत्व शक्ति तेरे अन्दर भी त्रैकालिक शक्तिरूप से विराजमान है। तुझे अपने जिन का भान नहीं है। अज्ञानी पूर्णरूपेण भूल ही गया है कि मैं भी शक्तिरूप भगवान् हूँ। यदि सम्यक्/उचित पुरुषार्थ कर लिया होता तो शीघ्र ही सर्वज्ञता को प्राप्त कर लिया होता। व्यर्थ के अध्यवसाय भाव में बैठकर अपने अशरीरी भगवान् को तो नहीं भूल जाता? अहो! क्या आनन्दकंद सहज अवस्था है मेरे निज भगवान् की। जहाँ राग नहीं, द्वेष नहीं, विषय नहीं, विकार नहीं, जन्म नहीं, मरण नहीं, सोना नहीं, जागना नहीं, आहार-निहार की बाधा नहीं, सुंदर-असुंदर आदि की कल्पना नहीं। ज्ञानानंद में सतत् लीन। भोगों का भोगना तो बहुत ही लाघवपना होगा, परन्तु भोगों की भावना का ही जहाँ पर अभाव है-ऐसी है वह परम वीतराग दशा। परम् तपोधन गात्र-मात्र परिग्रह के धारक, शेष सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी, धरती के देवता निज स्वभाव में सदा लीन रहते हैं।

आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी 27वें दोहा में सहजभाव से, बिना किसी प्रेरणा के सूत्र प्रदान कर रहे हैं। यदि लोक में कोई उत्कृष्ट पदार्थ है तो वह एक मात्र निर्मल आत्म स्वभाव ही है। इससे भिन्न जो-जो पदार्थ हैं, वे सब पर हैं, अन्य हैं, भिन्न हैं। निज का उनमें लेशमात्र भी भाव नहीं है। अज्ञानी, मोही, मूढ़मति विभक्त पदार्थों में भी आत्मबुद्धि रखता है। तीव्र राग के आवेश में तत्त्वनिर्णय, तत्त्वविवेक से शून्य हो जाता है। फिर यह भी ध्यान नहीं रख पाता कि जड़ कभी चेतन नहीं होता और चैतन्य भी कभी जड़ नहीं होता। अज्ञानी जीव चैतन्य को भी जड़रूप मानता है, शरीर के धर्म को भी आत्मधर्म मान लेता है। क्या कहूँ? मोह का महात्म्य ही ऐसा है। मोही जीव अत्यन्त भिन्न द्रव्यों में आत्मबुद्धि रखकर व्यर्थ में दुःख का वेदन कर रहा है। क्या आश्चर्य! जो व्यक्ति तेरे से कोई प्रयोजन नहीं रखते, फिर भी तू उनके पीछे अपने शुभ-परिणामों का विघात कर, कर्मबंध कर संसार की वृद्धि में लगा है। क्या आप लोगों को स्वयं के प्रति लेशमात्र भी करुणा के भाव नहीं आते? जैसे, मेघ से आच्छादित सूर्य दिखता नहीं है, उसी प्रकार मोह के बादलों से आच्छादित विवेकरूपी ज्ञान-सूर्य प्रकट नहीं हो रहा है। कितने भव व्यतीत हो गये संकल्प-विकल्पों में, अब तो आत्मकल्याण का दृष्टिकोण होना चाहिए।

मनीषियो! आचार्यदेव कितने वात्सल्य भाव से सम्बोधन दे रहे हैं, हे जीव! (जाम तुहुँ) जब तक तू (णिम्मल अप्प-सहाउ) निर्मल आत्म स्वभाव की (ण भावहि) भावना नहीं करता (ताम) तब तक (सिव-गमणु ण लब्भइ) मोक्ष नहीं पा सकता। (जहिं भावइ तहि जाउ) अब जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ जा। ओहो! क्या सम्बोधन दिया! उपदेश देते-देते भी कर्त्तापन नहीं है।

भो भव्यात्माओ! उपादान की योग्यता पर आचार्य प्रवर की कितनी पावन-दृष्टि है? वे कह रहे हैं कि मेरा उपदेश उसी के लिए निमित्त है जिसके उपादान में योग्यता है। उपादान की योग्यता के अभाव में उपदेशभूत निमित्त कार्यकारी नहीं होता है। आचार्यश्री बड़े ही सहजभाव से समझा रहे हैं कि मैं तो निमित्त मात्र हूँ, आपकी स्वयं की योग्यता के आधार से कल्याण होगा, फिर भी सम्यक् पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। विवेकी जीवों को पुनः समझाते हुए 28 वें दोहा में परम्-ध्येयभूत अरिहन्त भगवान् की मुख्यता से कथन कर रहे हैं। ध्यान, ध्याता, ध्येय ये तीन प्रमुख हैं। जिसे किया जा रहा है, वह ध्यान है अथवा चित्त की एकाग्रता व ज्ञान की एकाग्रता ध्यान है। जिसका चिंतवन चल रहा है यानी जिस पदार्थ में चित्त स्थिर है, वह ध्येय है। जो ध्यान कर रहा है, वह ध्याता है। व्यवहार दृष्टि से पंचपरमेष्ठी ध्येय हैं, सम्यग्दृष्टि जीव ध्याता है और पंचपरमेष्ठी व पंचपरमेष्ठी-वाचक मंत्रों का चिंतवन तथा उन्हीं में चित्त को एकाग्र कर देना, ध्यान है। निश्चय नय से तो निज-आत्मा ही ध्यान, ध्याता, ध्येय है। परम् शुद्ध निश्चय नय से आत्मा सम्पूर्ण विकल्पों से परे शुद्ध चिद्रूप परमात्मा है। यहाँ पर आचार्य- प्रवर (जो तइलोयहँ झेउ जिणु) जो तीन-लोक के ध्येय जिन-भगवान् को बतला रहे हैं, (णिरू सा अप्पा वुत्तु) निश्चय से उन्हें ही आत्मा कहा है। (एमइ भणिउ णिच्छय-णइँ) यह कथन निश्चयनय से है। (एहउ णिभंतु जाणि) इसमें भ्रांति नहीं करनी चाहिए।

भो ज्ञानी! जब परमार्थदृष्टि से देखते हैं, तो जो अरिहंत देव का स्वभाव है, वही मेरा है। मेरे अंदर एवं अरिहन्त या सिद्ध भगवान् के अन्दर कोई अन्तर नहीं है। वे भी लोक में हैं, हम भी लोक में हैं। लेकिन अन्तर मात्र इतना ही है कि हम राग से युक्त हैं, हमारी चेतना अशुद्ध है, जबकि उनकी चेतना शुद्ध है। चैतन्यस्वभाव की अपेक्षा संसार के प्रत्येक प्राणी शुद्ध नय से सिद्ध-सदृश शुद्धात्मा हैं। इस प्रकार भूतार्थरूप से तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर राग-द्वेष से रहित होकर परमात्म पद को प्राप्त करो।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

टङ्कोत्कीर्ण निज ज्ञायक भाव पर लक्ष्य रखने वाला ही सच्चा व्रती

योगसार

वय-तव-संजम-मूलगुण, मूढहँ मोक्खण वुत्तु।
जाव ण जाणइ इक्क पर सुद्धउ भाउ पवित्तु ।।29 ।।

अर्थ- जब तक एक परम शुद्ध पवित्र भाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक मूढ़ लोगों के जो व्रत, तप, संयम और मूलगुण हैं, उन्हें मोक्ष (का कारण) नहीं कहा जाता ।

जइ णिम्मल अप्पा मुणइ वय-संजमु-संजुत्तु।
तो लहु पावइ सिद्धि-सुह इउ जिणणाहहँ उत्तु ।।30 ।।

अर्थ- जिनेन्द्र देव का कथन है कि यदि व्रत और संयम से युक्त होकर जीव निर्मल आत्मा को पहिचानता है, तो वह शीघ्र ही सिद्धि सुख को पाता है ।

वउ तव संजमु सीलु, जिय ए सव्वइँ अकयत्थु।
जांव ण जाणइ इक्क परु सुद्धउ भाउ पवित्तु ।।31 ।।

अर्थ- जब तक जीव को एक परम शुद्ध पवित्र भाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक व्रत, तप, संयम और शील ये सब कुछ भी कार्यकारी नहीं होते ।

पुण्णि पावइ सग्ग जिउ पावएँ णरय-णिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ तो लब्भइ सिववासु ।।32 ।।

अर्थ- पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है और पाप से नरक जाता है । जो इन दोनों को (पुण्य और पाप को) छोड़कर आत्मा को जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं । यह विशुद्ध जिन देशना ही आत्म विशुद्धि का हेतु है । सम्पूर्ण कार्यों का विराम कर अर्हत् प्रवचन में मन लगाना चाहिए । क्या मालूम कौन-सा शब्द तुम्हारे मिथ्यात्व, असंयम के मल के उपशमन का हेतु बन जाए, एक क्षण में जीव मोक्षमार्ग में लग जाए ।

आचार्य भगवान् अपूर्व-अपूर्व सूत्र प्रदान कर रहे हैं ग्रंथराज योगसार जी में । वे अध्यात्म की सरिता में डुबकियाँ लगा-लगाकर अमूल्य अनुभव के मोती जन-जन को भेंट में दे रहे हैं । 29वीं कारिका में तो, अहो! क्या अलौकिक बात बता रहे हैं । (जाव) जब तक (इक्क पर सुद्धउ भाउ पवित्तु) एक परमशुद्ध पवित्र भाव का (ण जाणइ) ज्ञान नहीं होता, तब तक (मूढहँ वय-तव-संजम-मूलगुण) मूढ़ लोगों के जो व्रत, तप, संयम और मूलगुण हैं, उन्हें (मोक्खण वुत्तु) मोक्ष का कारण नहीं कहा जाता ।

भो ज्ञानी! यहाँ आचार्य महाराज का उद्देश्य व्रत, संयम के प्रति उदास व निषेध वृत्ति नहीं है, अपितु निर्दोष भाव-संयम की ओर इंगित किया है। द्रव्य-भेष धारण कर द्रव्य-व्रतों का पालन करने मात्र को ही जिन्होंने मोक्षमार्ग मान लिया है, उन्हें समझा रहे हैं- अरे भाई! क्या द्रव्य-भेष ही मोक्षमार्ग है? भावों में विशुद्धता का अभाव है तो द्रव्य-लिङ्ग मात्र से आत्म कल्याण नहीं होगा। द्रव्य भेष के साथ निर्दोष मूलगुणों के पालन के साथ परमार्थ दृष्टि भी बनाना पड़ेगी, विशुद्धि-स्थानों को प्राप्त करना होगा। ख्याति, लाभ, पूजा की भावना से दुर्द्धर उपवास, कायक्लेशादि तप भी किया तो उससे आत्महित सम्भव नहीं है। रागदशा में आत्म विशुद्धि कहाँ? आत्म विशुद्धि के अभाव में भी मोक्षमार्ग लेशमात्र नहीं सधता। लोकाचार में संयम भाव जीवित नहीं रह सकता। एक आत्म साधक सम्पूर्ण बाह्य-प्रपंचों से परे रहता है। आडम्बरों में जीनेवाले को 'स्व' के लिए समय कहाँ? परम ज्ञायक-भाव में लीन सच्चे भावलिंगी निर्ग्रन्थों के ही मोक्षमार्ग, मोक्ष का उपाय सधता है। रागी-द्वेषी, वस्त्रादि धारण करने वाले के संयम भाव ही नहीं है, तो मोक्षमार्ग कैसे होगा? जो जीव वस्त्रधारी को मोक्षमार्गी व सद्गुरु स्वीकारता है, वह विपरीत-मिथ्यात्व से दूषित है। अहंकार कितना प्रबल हुआ करता है कि साक्षात् अरहंत-वाणी को असत्य घोषित करने में किंचित भी भय नहीं लगता। अध्यात्म के नाम पर वर्तमान में तीन परमेष्ठी का ही अभाव करने का विचार कर लिया। पंचमकाल के अंत तक सम्यग्दृष्टि श्रावक व साधु रहेंगे। सच्चे वीतरागी दिगम्बर मुनिराज की चर्या ही मोक्षदायिनी है, अन्य नहीं, अन्यथा नहीं। अतः सम्यक् चिन्तवन के साथ, भावसंयम के साथ व्रताचरण करना मुमुक्षु जीव को उपादेय है।

भो ज्ञानी! आचार्यश्री 30वें दोहा-सूत्र में यही तो समझा रहे हैं- (जइ वय-संयम संजुतु) यदि व्रत और संयम से युक्त होकर जीव (णिम्मल अप्पा मुणइ) निर्मल-आत्मा को पहिचानता है, (तो लहु सिद्धि सुह पावइ) तो वह शीघ्र ही सिद्धि-सुख को पाता है, (इउ जिणणाहहँ उत्तु) ऐसा जिनेन्द्रदेव का कथन है। यहाँ पर आचार्य महाराज ने विशेष बात यह कही कि व्रत, संयम से युक्त होकर जीव निर्मल आत्मा को पहिचानता है। अहो! व्रती/संयमी तो अनेक बार बना, परन्तु आत्मतत्त्व नहीं समझने के कारण बार-बार भव-भव में भटक रहा है। मोही जीव निज-टंकोत्कीर्ण ज्ञायक-भाव से अनादि से अपरिचित है परन्तु दृष्ट, श्रुत, अनुभूत भोगाकांक्षाओं से अनादि से परिचित है। यही कारण है कि आत्मधर्म से शीघ्र दूर भाग जाता है, विषय-नगर को दौड़-दौड़कर पहुँचता है। अपनी पहिचान भी बतलाई तो शरीर से। देह को अपना सब कुछ मान लेना ही मिथ्या-धारणा है। धर्म भी किया, तप भी किया, शास्त्र-स्वाध्याय भी किया तो सभी शरीर की पहिचान के लिए। लोक में मेरी देह कैसे जानी जाय। तन की प्रसिद्धि के निमित्त आत्म-विशुद्धि का नाश करना, यह विज्ञता का प्रतीक नहीं है, परम् अज्ञता का ही द्योतक है। जितनी लिप्सा शरीर के प्रचार की है, वैसी रुचि

आत्म-विकास की हो जाये, तो अनन्त संसारीपना नहीं बच सकेगा और शीघ्र ही परमात्म-रसायन का पान करेगा। जब तक जीव को एक परम् शुद्ध/पवित्र भाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक व्रत, तप, संयम और शील ये सब कुछ कार्यकारी नहीं होते। आचार्य भगवान् योगीन्दु देव द्वारा कथित 31वीं कारिका का अभिप्राय भी ऐसा ही है। त्रय कर्म (द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म) रहित,अखण्ड ध्रौव्य, ज्ञायक-स्वभावी भगवती आत्मा का प्रतिक्षण भान होना अनिवार्य है। जब चैतन्य आत्मा का ही ज्ञान नहीं तो मोक्षमार्ग में लगना या न लगना एक समान है। क्रिया के साथ प्रयोजन में दृष्टि रखना अनिवार्य है। जब तक प्रयोजन नहीं, तो क्रिया क्यों? कोई भी कार्य करते हैं, उसके पूर्व उस कार्य का लक्ष्य क्या है-इस बात का ध्यान अवश्य रख लेते हैं। निष्प्रयोजन प्रवृत्ति तो उन्मत-सदृश कहलाएगी। इस सूत्र में आचार्य महाराज का उद्देश्य भी यही है। वे साधक से पृच्छना कर रहे हैं-

अहो प्रज्ञ! आप यह तो बतलाओ कि आपने यह घोर साधना का पथ क्यों स्वीकार किया है? क्या लक्ष्य था आपका? नग्न भेष, शीत, उष्ण, भूख, प्यास, दंशमशकादि की पीड़ा सहन कर रहे हैं, एक बार भोजन-पानी ले रहे हैं, केशलोंचादि कर रहे हैं, ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन भी कर रहे हैं। यदि ख्याति, लाभ, पूजा, मठ-मंदिरों के लिए कर रहे हैं, तो ध्यान रखना, आपकी साधना राख हेतु मणी-मुक्ता जलाने के तुल्य है। अहो! यह कार्य तो किसी भी भेष में पूर्ण किये जा सकते थे, परन्तु स्वात्म-तत्त्व की सिद्धि एकमात्र दिगम्बर भेष में ही सम्भव है। इसलिए इस मुद्रा का प्रयोजन मात्र परम् शुद्धात्म-तत्त्व की प्राप्ति ही रखो।

ज्ञानी आत्माओ! तत्त्वज्ञान की महिमा है कि तत्त्वज्ञानी जीव सम्पूर्ण विकल्पों से शून्य हो जाता है। संसार की सम्पूर्ण वस्तुएँ उसे लीला-मात्र दिखती हैं। पुण्य-पाप, सुख-दुःख ये कर्म-विपाक भी ज्ञानी जीव को लुभा नहीं पाते। उन्हें भी नित्य/ध्रुव नहीं स्वीकारते। सुख-दुःख पर्याय एवं परिणाम कर्मजन्य अवस्था हैं, त्रैकालिक नहीं हैं; यह तो तात्कालिक अवस्था है। अज्ञानी इनमें आत्मबुद्धि स्वीकार कर सुख-दुःख का वेदन करता है, जबकि ज्ञानी मध्यस्थ होकर अपने समय को स्व-समय की प्राप्ति में लगता है, पुण्य व पाप दोनों से परे जो अवस्था है, उसकी अनुभूति का सम्यक् पुरुषार्थ करता है।

आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी 32 वें दोहा-सूत्र में भव्य पुण्डरीक जीव को समझा रहे हैं। (पुण्णि जिउ सग्ग पावइ) पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है और (पावएँ णरय-णिवासु) पाप से नरक में जाता है। (बे छंडिवि अप्पा मुणइ) जो इन दोनों को (पुण्य और पाप को) छोड़कर आत्मा को जानता है, (तो सिववासु लब्भइ) वह मोक्ष प्राप्त करता है।

भो ज्ञानी! आत्मा के प्रतिक्षण उपयोग की धारा प्रवाहित होती रहती है-अशुभ, शुभ और शुद्ध। विषय-कषाय, राग-द्वेष, मोहरूप परिणाम अशुभ-उपयोग है-इसे पाप समझना चाहिए। इस पापोपयोग से जीव नरक, तिर्यंच पर्याय को प्राप्त करता है। मंदकषाय, भद्र

परिणाम, देव-शास्त्र-गुरु की भावपूर्वक भक्ति करना, चारित्र की ओर अग्रसर होना, संयम का पालन, निर्दोष सम्यक्त्व की आराधना, दयारूप परिणाम-यह सब शुभोपयोगी जीव की वृत्ति है, इसे ही पुण्य-परिणाम कहते हैं। इन परिणामों से देवपर्याय की प्राप्ति होती है। पुण्य और पाप के मिश्र परिणामों से मनुष्यपर्याय की प्राप्ति होती है। पुण्य व पाप के विकल्पों से रहित, अभेद रत्नत्रय से परिणत, आत्मानंद में लीन, संयम-साधक, वीतरागी मुनि शुद्धोपयोगी होता है। यह शुद्धोपयोग साक्षात् निर्वाण का हेतु है- ऐसा आचार्य देव का अभिप्राय है।

अतः, मुमुक्षु जीवो! सर्वप्रथम अशुभ का त्याग करना चाहिए तथा शुभ में लगना चाहिए, फिर शुद्धोपयोग का पुरुषार्थ करना चाहिए। बिना शुद्धोपयोग के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। अतः त्रय उपयोग की व्यवस्था समझकर निर्दोष सम्यकज्ञान-दर्शन-चारित्र का पालन ही आत्मकल्याण करेगा।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

आत्मभाव ही निजभाव

योगसार

वउ तउ संजमु सील जिया इउ सव्वइँ ववहारु।
मोक्खहँ कारणु एक्कु मुणि जो तइलोयहँ सारु ।।33 ।।

अर्थ- व्रत, तप, संयम और शील ये सब व्यवहार से ही माने जाते हैं। मोक्ष का कारण तो एक ही समझना चाहिए और वही तीनलोक का सार है।

अप्पा अप्पइँ जो मुणइ जो परभाउ चएइ।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु जिणवरु एम भणेइ ।।34 ।।

अर्थ- जो आत्मा को आत्मभाव से जानता है और जो परभाव को छोड़ देता है, वह शिवपुरी को जाता है-ऐसा जिनवर ने कहा है।

छह दव्वइँ जे जिण-कहिया णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया ते जाणियहि पयत्त ।।35 ।।

अर्थ- जिन भगवान् ने जो छह द्रव्य, नौ पदार्थ और सात तत्त्व कहे हैं, वे व्यवहार नय से कहे हैं। प्रयत्नशील होकर उनका ज्ञान प्राप्त करो।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी ने अन्तस् में उतरकर निजानुभव के मोतियों को योगसार ग्रंथ में ग्रन्थित किया है। मन के अन्दर यदि मार्दव भाव है, तो वह मनुष्य है और यदि मार्दव भाव का अभाव है, तो मनुष्य के आकार में पुतला तो हो सकता है, लेकिन मनुष्य-हृदय नहीं है। इस जीव को सन्त-हृदय बनने के पूर्व मानव-हृदय बनने की आवश्यकता है। जहाँ मानव-हृदय ही नहीं है, वहाँ सन्त-हृदय कहाँ रह सकता है। इसलिए तत्त्व मनीषियों ने उल्लेख किया है कि पहले मानवता को अर्जित करो, फिर साधुता को अर्जित करो, फिर एक सन्त-हृदय को जन्म दो। मानवता, साधुता और सन्तता इन तीनों में महान् अन्तर है। जो ऋजु परिणामी है, जिसके भावों में निर्मलता है, कर्तव्य परायणता है- वह मानव है। हेय-उपादेय का जिसे विवेक है, कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान है, कथनी-अकथनी का विवेक है; द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की दृष्टि को जो समझता है- उसका नाम साधु-स्वभाव है। संस्कृत भाषा में साधु का अर्थ सज्जन होता है। जिसके संयम में जागृति है, विषयों में अरुचि है, भोगों से अरुचि है और योगों में लीनता है- उसका नाम सन्त-हृदय है। अब खोज करना कि महाराज! मैं मनुष्य के स्थान तक पहुँचा हूँ कि सज्जन के स्थान तक पहुँचा

हूँ। सन्त का स्थान बहुत ऊँचा है। एक बार पानी में उष्णता आ जाए अग्नि के संयोग से, लेकिन सन्त के मन में उष्णता न आए। कितने ही विकारों का संयोग हो, फिर भी ये साधुहृदय है, सन्तहृदय है। सहजता, सरलता, निष्कपटता यदि अन्तरंग में आपके पास है, तब आप मन बना लेना मुनि बनने का और अगर ये न हो तो कभी मुनि बनने का मन न बनाना, क्योंकि आपके ये दोष मुनिवेश को लजा देंगे।

आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी कह रहे हैं कि 32-वीं कारिका में आप से कुछ कहा था, आप ने शुभ- परिणाम भी कर लिए, शुभ-आस्रव करके स्वर्ग भी पहुँच गए और अशुभ परिणामों से नरक पहुँच गए, लेकिन ध्यान रखो, भव का विनाश नहीं होगा। जब आपके शुभ व अशुभ दोनों से रहित शुद्धोपयोग की दशा बनेगी, तब आपके भव का विनाश होगा। आचार्यश्री तेतीसवीं कारिका में बहुत कुछ गहरा कहने वाले हैं। मनीषियो! जीवन में ध्यान रखना कि श्रद्धा से सिर झुकाना श्रेष्ठ है, पर झुकते सिरों को जो दूर हटा दे-ऐसी चर्चा करना श्रेष्ठ नहीं है। यदि हम श्रद्धा से भरे हैं, श्रद्धा से युक्त हैं, तो हमारा कल्याण सुनिश्चित है और आपने श्रद्धा से शून्य संयम स्वीकार कर भी लिया तो, मनीषियो! ध्यान रखना, वह निर्ग्रन्थ रहेगा उस पुष्प के समान जो सुगन्ध से रहित है। खेत में एक पुतला खड़ा होता है, जो कभी खाता भी नहीं है और किसी को खाने भी नहीं देता है, उसका नाम बिजुका होता है। यदि आपने संसार के भोगों को छोड़ दिया है, तब आप भोग तो भोग नहीं पा रहे हो और ऐसा लगता है जैसे बहुत बड़े योगी बने बैठे हो, सो आपको देखकर दूसरे को भी लगता कि ठीक है। लेकिन ये तेरी परिणति संसार की ही है कि न तू खा पा रहा है, न खाने दे रहा है। न इस लोक का है, न पर लोक का है। क्योंकि साधु-स्वभाव कहता है कि यदि अन्तर में निर्मलता है और वाणी में विशुद्धता है, तब उसका नाम साधुता है। तैंतीसवीं कारिका को साधु बनकर ही समझना।

मनीषियो! आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी इस निर्ग्रन्थ परम् तपोधन को लक्ष्य करके कह रहे हैं-हे मुनीश्वर! आपने संसार का बहुत कुछ छोड़ दिया है। जो एक टूटे-फूटे, पानी टपकते भवन को नहीं छोड़ पाता है; फटी चादरों का त्याग नहीं कर पाता है; चने चादर में से टपक रहे हैं, दाने गिर रहे हैं, फिर भी एक फटा कपड़ा नहीं छूटता है, ऐसे भिखारी से ज्यादा श्रेष्ठ तो आपको योगी नजर आते हैं। इन्हें कहीं माँगना नहीं पड़ता है। फिर भिखारी भी योगी क्यों नहीं बन जाता है? एक योगी के चारों ओर भक्तों की भीड़ लगी है और एक बेचारा भिखारी वहीं बगल से गुजर रहा है, उसे गरीब कहा जाता है। लेकिन आज तक किसी योगी को गरीब नहीं कहा गया। जिसके पास वस्त्र फटे हैं, वह तो गरीब है और जिसके पास वस्त्र ही नहीं है, वह महाराज है। ये संसार की दशा तो देखो। ओहो! उनको महाराज आज कहा जा रहा है। भिखारी उस फटे वस्त्र को फेंक देता तो आज नमोस्तु होने लगती। यह

नमोस्तु-शासन है। पर नमोस्तु हो कैसे? भिखारी फटे वस्त्र पहनकर डोलता है, क्योंकि विकारी न होता तो भिखारी न बनना पड़ता। अहो मनीषियो! वह भिखारी है। विकारी न होते तो आज तुम ऐसे बने क्यों बैठे होते। ये श्रमण संस्कृति विकारियों और भिखारियों की नहीं है, यह भिक्षुओं की संस्कृति है। इनको जिनागम में भिक्षु तो कहा है, परन्तु विकारी और भिखारी नहीं कहा है।

अहो योगी! जब तुमने भवन छोड़े, वाहन छोड़े, वासनाएँ छोड़ीं, कामनाएँ छोड़ीं तो एक अहंकार को और छोड़ दो। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने 'परमार्थ प्रकाश' ग्रन्थ में बड़ी गहरी बात कही है। भैया! ध्यान से समझना। अहो मुमुक्षु! एक महासागर में व्यक्ति ने प्रवेश किया, अपनी भुजाओं से सागर को पार कर लिया, लेकिन आश्चर्य है कि एक गोसपाद में भरे पानी में डूबकर मर गया। समुद्र को तो भुजाओं से पार कर लिया और गोसपाद (यानी जहाँ गाय कीचड़ में पैर रखती है तो खुर का चिह्न अंकित हो जाता है,उसे शास्त्र की भाषा में 'गोसपाद' कहा जाता है।) में जो पानी भरा हुआ था उसमें जाकर डूब गया। अहो मुमुक्षु! तूने परिवार रूपी महासागर के मोह को छोड़ा, कुटुम्ब रूपी मगरमच्छों के बीच से तू निकलकर आ गया और ये ख्याति-लाभ-पूजा के गोसपाद में आकर तू डूब गया, यह तूने क्या किया? ये तैंतीसवीं कारिका बड़े गहन तथ्य की बात कह रही है। अभी तक तो आपसे कहा जाता था कि व्रती बनो, पहले व्यवहार व्रत की चर्या करो। अब आपसे कहा जा रहा है कि व्रतों में ही मत उलझ जाओ। अपने व्रत से भी ऊपर उठने का जो लक्ष्य है, उस पर भी दृष्टिपात करो। क्रियाओं-क्रियाओं में तूने स्वभाव को छोड़ डाला। ऐसा करो, वैसा करो। अरे! क्यों करो? जिसके करने के लिए क्रियाएँ थी, उसको तूने निहारा ही नहीं। ये परम् सार है।

अहो! धन्य उस योगी की निर्मल दशा को । जिस दिन जैन योगी की अहिंसा को समझोगे, आप आश्चर्य करोगे। जीव का वध न करना, जीव की रक्षा करना, यह तो बहुत स्थूल बातें है। किसी को बदनाम करने के भाव नहीं लाना, उसका नाम अहिंसा है। यदि आपको किसी को बदनाम करने के भाव मन में आते हैं, मनीषियो! ध्यान रखो, तुम अहिंसक नहीं हो, महाव्रत तुम्हारे पास बचा ही नहीं। वध करने से बदनाम करने वाला ज्यादा पापी है। वध करने वाले ने तो मात्र एक पर्याय का नाश किया है, परन्तु बदनाम करने वाले ने कितने भवों के परिणामों का नाश किया है।

मनीषियो! ध्यान रखना, जीवन में किसी के चारित्र पर अँगुली मत उठा देना। साधु के पास यदि कोई सम्पत्ति है तो एकमात्र संयम है। यदि किसी श्रावक से तुम्हें द्वेष हो जाए तो तुम उसके घर को लूट लोगे, परिवार को लूट लोगे, संतान को लूट लोगे, परन्तु साधु पर भी तुम्हें शत्रुता आ जाए तो तुम उसका क्या लूटोगे? उसके संयम पर अँगली उठा दो बस, तुमने सब

लूट लिया उसका। अहो लुटेरे ! तुमने जीवन में लूटा भी तो क्या लूटा? यदि लूटना चाहिए था, तो आत्मा के आनंद को लूटना चाहिए था।

यहाँ कह रहे हैं अहिंसा महाव्रत की सूक्ष्मता। जब वह जैन योगी छाया से धूप में जाता है, या धूप से छाया में आता है, तब भी यों ही नहीं, जैसे आप चलते हो। पिच्छी से मार्जन करता है शरीर का। यदि मैं छाया में चला जाऊँगा सीधा, तब इन धूप के जीवों की हिंसा हो जाएगी। इसलिए इन जीवों को यहीं धूप में छोड़ दो। जब धूप से छाया में आएँ तो धूप के जीव धूप में ही छोड़ दो और छाया के जीव छाया में ही छोड़ दो। महाव्रतियों की चर्या है। गमन करते-करते लाल खेत से निकल रहे थे, मिट्टी लाल थी। सामने देखा कि वहाँ काली मिट्टी नजर आ रही है। तो ये योगीराज वहाँ खड़े हो जाएँगे और लाल मिट्टी को वहीं झड़ाएँगे। वहाँ के परमाणु वहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि उन जीवों का यहाँ पर घात हो जाएगा। ऐसी घोर साधना कर रहे हैं, फिर भी कह रहे कि अभी दूर हो। सुनते जाओ अभी, तैंतीसवीं कारिका बहुत गहरी है। ऐसे अहिंसा में लीन हैं, फिर भी आचार्य योगीन्दुदेव कह रहे कि अभी भी तुम दूर हो।

भगवान् लोग तो जरा-सा किसी के सिर पर हाथ फेर देते हैं उसे सन्त/महासन्त कहा जाता है और यहाँ तो अभी यों कह रहे हैं कि हाथ फेरने की दृष्टि भी तुमने यदि बनाई है तो तुम अभी दूर हो। क्योंकि हाथ उठा तो राग उठा। राग उठा तो, मनीषियो ! सुख हुआ। 'यह राग-आग दहे सदा' यह राग तो आग है, जला रही है। इसका रिश्ता सदा मृत्यु से ही है। मनीषियो! ध्यान से समझना। 'चिर भजे विषय-कषाय'। कब से भज रहे हो आप? चिरकाल से तुमने भजा है। किसको? विषय-कषाय को। और उन्हीं विषय-कषाय के संस्कार को शमन करने का साधु-स्वभाव था और वह यहाँ नहीं है, समाप्त हो गए। तब, मनीषियो ! कहीं स्थान ही नहीं है। 'चिर भजे विषय-कषाय तातैं समामृत सेइये'। किसी जीव को मारने के भाव नहीं हैं, नवकोटि से हिंसा का त्याग है।

अहो ज्ञानी ! सत्यव्रत के पालन हेतु असत्य का त्याग किया है, सम्पूर्ण कटु-कर्कश, अश्लील भाषण छोड़ दिया है आपने। हित-मित-प्रिय वचन का उपयोग कर रहे हो और यह भी दूर है। श्रेष्ठ है कि अधिकांश रूप से तुम मौन ही रहो। बोलना भी पड़े तो हित-मित-परिमित बोलो। आज से, ज्ञानी आत्माओ ! जैसे आप घर में अर्थ का उपयोग करते हो सम्हल-सम्हल के, घी-दूध का उपयोग करते हो सम्हल-सम्हल के, तेल का उपयोग करते हो सम्हल-सम्हल के, ऐसे ही वाणी का उपयोग करो सम्हल-सम्हल कर। यह तो जड़-द्रव्य है, खर्च हो जाएगा, कोई दिक्कत नहीं है, पर आज तुमने ये भाषा-वर्गणाओं का दुरुपयोग किया तो कल तुम्हें मूक एकेन्द्रिय बनना पड़ेगा। यदि एकेन्द्रिय बनने के परिणाम हों, वनस्पति बनने के भाव हों, पत्थर/पाषाण बनने के भाव हों, तो तुमको जिसके भी प्रति जो बोलना हो वह कहो, लेकिन ध्यान रखो, एकेन्द्रिय आदि बनने के भाव न हों तो भाषा

समिति पूर्वक बोलो ।

अभी तुमने सत्य का प्रयोग किया, अब अचौर्य व्रत है । योगी को चोरी का कोई प्रसंग ही नहीं है । एक श्रावक को अगर पानी चाहिए तो किसी के कुएँ से ले लेता है, मिट्टी चाहिए तब किसी के खेत से ले लेता है और क्या-क्या सामग्री का उपयोग आप लोग कर लेते हो? पर, अहो जैन योगियो ! आपको तो आदेश है 'जल-मृण हू बिना दियो न गहें ।' मिट्टी भी हाथ साफ करने के लिए चाहिए है तब वह भी नहीं उठा सकते, जल भी नहीं स्वीकार कर सकते हो, ऐसे महान् अचौर्य महाव्रत के आप धारी हो ।

अहो ज्ञानी! शीलधर्म कहता है कि स्त्री-पुरुष के संयोग का त्याग करना, ये कोई शील नहीं है, ये तो पशु-वृत्ति का त्याग है । यहाँ तो महाव्रत की चर्चा है । शील-धर्म कहता है कि निजस्वभाव में लीन होकर रहना ही शील है । जितने अशुभ कर्म हैं, जितने अशुभ परिणाम हैं, ये सारे-के-सारे कुशील हैं । इनसे भी आप विरक्त हो चुके हो ।

अहो योगी ! अपरिग्रह महाव्रत का पालन चल रहा है । परिग्रह के नाम पर आपके पास एकमात्र शरीर बचा है । गात (शरीर) मात्र परिग्रह का धारी जैनयोगी होता है । कहाँ भवन, कहाँ मठ, कहाँ मंदिर? मनीषियो ! ये सब संसार बढ़ानेवाले हैं । द्रव्यदृष्टि है, पर-द्रव्यदृष्टि नहीं है । अहो योगी ! द्रव्यदृष्टि तो रखना, परन्तु पर-द्रव्यदृष्टि नहीं रखना ।जो मात्र आत्मद्रव्य पर ही दृष्टि रखते हैं, संसार के अन्य द्रव्यों पर दृष्टि नहीं रखते हैं, उनका नाम साधु है । निजद्रव्य को छोड़कर पर-द्रव्य पर दृष्टि जहाँ है , उसका नाम साधु नहीं है । यह योगसार है । अभी तो प्रारंभ है । जैसे कहा, गात-मात्र परिग्रह है और चारित्र की अपेक्षा से पिच्छी, कमण्डल और शास्त्र ये तीन ही उपकरण हैं साधक के। कोई चौथा उपकरण जिनवाणी में स्वीकार नहीं किया है। ज्ञानोपकरण, संयमोपकरण और शौचोपकरण, मनीषियो ! ये यतियों के तीन उपकरण होते हैं। उसके अलावा, श्रावको ! ध्यान रखना, अन्य सभी परिग्रह साधु तो छोड़कर आता ही है, पर आपका शिथिलाचार यह तो कहने लगता है कि अमुक-अमुक सामान रखे थे । लाकर किसने दिया है? दोष तुम्हारा ही है । जो सामग्री उनके योग्य नहीं है, वह कहीं लेने जाते ही नहीं हैं, कहीं से लेकर नहीं आते हैं, लाकर तुम ही अन्ध-भक्त होकर देते हो, इसलिए दोष तुम्हारा ही है । इतना विवेक रखना चाहिए कि कौन वस्तु देय है, कौन देय नहीं है। इसलिए जीवन में ध्यान रखना। अहो! धन्य हो, जिन्होंने शरीर के राग को भी छोड़ दिया हो, परिग्रह के नाम पर मात्र देह ही है । अहो ! ऐसे योगी के मन में भाव आते हैं कि प्रभु ! ये चर्म की चादर का ओढ़ना भी मेरी आत्मा से कब समाप्त हो जाए। देखो, क्या सुन्दर चर्या, क्या सुन्दर सहज वृत्ति, क्या निर्मल/स्वच्छ वृत्ति है। भोजन भी किसी के भाजन में नहीं करते हैं । यानी किसी के बर्तन में आहार नहीं करते हैं । अपना ही हाथ बर्तन है, डाल दो भैया जो डालना हो । तुम्हारा बिगाड़ेंगे नहीं । भाजन

में क्यों नहीं? यदि थाली में रखोगे और नहीं ले सके, तब उनकी तो थाली का भोजन खराब हो जाएगा। भइया ! दूर से ही रख दो आप, तुम्हारी थाली नहीं बिगाड़ना चाहते। पर एक बात जरूर याद रखना-प्रभु। वह घड़ी कैसी लगती है जब एक श्रावक ऊपर हाथ करता है और योगी नीचे हाथ करके आहार लेता है? वह आधा घंटा कष्ट का जरूर होता है, परन्तु शेष साढ़े तेवीस घंटे तो स्वतन्त्र (आशीर्वाद मुद्रा करके) रहते हैं। इस शरीररूपी परिग्रह की रक्षा के पीछे एक निर्ग्रन्थ योगी को हाथ नीचे करना पड़ता है। तुम इतने सारे परिग्रह रखे हो, इसलिए तुमको नीचे बैठना पड़ता है, क्योंकि वजनदार नीचे जाता ही है। ऊपर अगर आना है तो हल्के हो जाओ। हल्के हुए बिना तुम ऊपर जा नहीं सकते हो। पतंग कहाँ जाती है? ऊपर जाती है। और, मनीषियो ! मिट्टी का ढेला कहाँ जाता है? नीचे जाता है। अब समझ में आया भइया, कहाँ जाना है? लेकिन याद रखना, उस पतंग में धागा नहीं है तो कहीं भी गिर जाएगी, फट जाएगी। पतंग उड़ती तो है, पर धागे के साथ उड़ती है। ये साधु-स्वभाव उड़ता है तो ऊपर की ओर जाता है, लेकिन संयम के धागे के साथ है तो ऊपर की ओर जाओगे, संयम का धागा नहीं है तो पतंग कहीं भी झाड़ी में गिर जायेगी।

इस बात को आचार्य-भगवान् कह रहे हैं-तो आपने ऐसे घोर महाव्रतों को स्वीकार किया है। ऐसा लगता है जैसे एक योगी के सामने बैठे हुए आचार्य-भगवान् सम्बोधन दे रहे हैं, उन्हें व्रतों का भान करा रहे हैं कि देखो तुमने ऐसे पाँच व्रतों को स्वीकार किया है और बारह तपों को भी तुम तप रहे हो। विश्व में चमत्कार क्या घटित होते हैं? मैं नहीं जानता हूँ। पंचमकाल में तो एक ही चमत्कार मेरे सामने आता है कि ऐसे कलिकाल में भी लोग जिनमुद्रा धारण करते हैं, जहाँ बच्चों से लेकर वृद्धों तक को वासनाएँ सता रही हैं, कामनाएँ सता रही हैं, एक छोटे से एक वर्ष के बालक की चड्डी तुम खिसकाओ तो वह हाथ पकड़ लेता है। सुबह भोजन नहीं मिलता, भैया ! तो कैसा लगता है? और शाम को नहीं मिलता है तो कैसे भाव आते हैं? पर आचार्य भगवान् सोमदेवसूरि लिखते हैं-

काले कलौ चले चित्ते, देह चान्नादिकीटकै :।
एतद्चिद्चमत्कार, जिनरूप धरा नराः॥ यशस्तिलक चम्पू॥

इस पंचमकाल में चित्त चलायमान है, जैसे मंदिर के शिखर पर लहराता ध्वज। मनीषियो ! एक क्षण को मंदिर का ध्वज तो स्थिर हो जाएगा, पर पंचमकाल की आत्माओं का चित्त स्थिर नहीं हो पा रहा है। देह अन्न का कीड़ा बना हुआ है। आचार्य भगवान् कह रहे हैं-अहो ! आश्चर्य है कि ऐसे कलयुग में भी जिनेन्द्र के रूप को धारण करनेवाले नर हमें दिख रहे हैं। ये पंचमकाल का सबसे बड़ा चमत्कार है। इससे बड़ा कोई चमत्कार नहीं है। फिर भी योगीन्दु देव स्वामी कह रहे हैं-अभी कमी है बारह तपों में जो कर रहे हो। जब लोग तड़पते हैं भूख से, वे योगी अनशन-स्वभाव में लीन हैं। जड़-पुद्गल को बहुत खाया, अब

चैतन्य का भोग करो। ऐसा विश्व में कोई कण नहीं बचा जिसको आज तक तूने कभी खाया न हो। अब कोई ऐसा द्रव्य अवशेष नहीं जो तेरे खाने को नया हो। नया नहीं है, सब पुराना है, वमन-सा है। अनशन कर रहे हैं। ऊनोदर, भूख से कम खा रहे हैं। मन करता है कि और मिल जाता, पर वे कह रहे हैं कि नहीं, अब नहीं दूँगा। सामने भोजन रखा है, पर वे कह रहे हैं कि और नहीं दूँगा। ये ऊनोदर तप है। विधि लेकर निकल पड़े, देखता हूँ कि आज विधि कैसी है? विधि निर्मल है तो विधि मिलेगी। विधि यानी भाग्य कैसा है? ये राग-द्वेष की हानि के लिए है। नगर में दस लोग पड़गाहने खड़े थे। आओ महाराज, आओ महाराज। अब कहाँ-कहाँ जाएँ महाराज? कह दिया आगम ने कि विधि लेकर जाओ। दाता की और तेरी, दोनों की विधि होगी तो विधि मिल जाएगी। दाता का भाग्य और पात्र का भाग्य दोनों का भाग्य होगा तो विधि मिल जाएगी, नहीं तो नहीं मिलेगी।

आचार्य शान्तिसागर महाराज जी ने एक दिन विधि ले ली, कि किसी सेठ के द्वारे पर माणिक्य बिखरे मिलेंगे तब आहार करूँगा। ओहो! माणिक्यों को पेटी के अन्दर पेटी और डिब्बी के अन्दर डिब्बी और मखमल के अन्दर ताले के अन्दर ताले में रखा जाता है, किन्तु वे सड़कपर मिलना चाहिए। अब कल्पना करो, मिलेंगे कब? लेकिन चिन्ता नहीं करो। विधि है तो सब मिलन होता है। एक दिन हो गया, वे प्रभु निकल गये, भोजन नहीं मिले। श्रावकों में हलचल पड़ गयी कि आचार्य महाराज के आहार नहीं हुए हैं। घरों में चूल्हे जलना बन्द हो गए। एक योगी भूखा बैठा रहे और मैं भोजन कैसे करूँ? दो दिन निकल गए। बच्चे-बच्चे कह रहे हैं-महाराज! विधि क्या है? महाराज क्या बताएँ ? विधि नहीं है, सो विधि कैसे बताई जा सकती है? तीन दिन निकल गए।अब तो लोगों को तड़फड़ाहट हो गई। जब पड़गाहन का समय आया, सड़कपर भीड़ नजर आई, पर भगवान् चक्कर लगाकर मंदिर में बैठ गए। सातवाँ दिन था। लोग तड़प रहे थे कि प्रभु! अब क्या होगा, कि ये भगवान् सात दिन से घूम रहे हैं। धरती के देवता, चलते-फिरते सिद्ध-परमेश्वर मेरे द्वारे से निकल रहे हैं, पर मैं उनके हाथ पर ग्रास नहीं रख पा रहा हूँ। ये है विधि। मनीषियो! तुम्हारे वैभव नजर आ रहे हैं, पर वह वैभव किस काम का जिसका एक ग्रास साधु के हाथ पर नहीं रखा जा रहा हो? उसका सारा वैभव मल के समान है। सारा वैभव मल है। जिसके घर में सन्त के चरण नहीं पड़े, वह घर श्मशान है। घटना विचित्र थी कि सारे-के-सारे सेठ-सेठानी लाइन में खड़े हुए हैं। देखो, विधि क्या कह रही है। सात दिन पहले से मिली नहीं। आज विधि क्या कह रही है? सेठ जी कहते हैं सेठानी से-इतने दिन हो गए, बिल्कुल विवेक नहीं लगा रही हो, महाराज की विधि बना लो। उधर महाराज जी धीरे से निकल गए। हार पहने थी सेठानी मणियों का और उधर जैसे ही मुड़ने लगे तो, मनीषियो! मालूम, विधि का विधान तो देखो-यह लोटा उठाया, वह लोटा उठाया और यूँ ही एकदम ऐसा किया, झटका अपना ही लगा गले के हार में और मोती

जमीन पर बिखर गए और मुनिराज आकर खड़े हो गए। मनीषियो ! विधि होती है तो विधि मिल जाती है। किसी से राग नहीं, किसी से द्वेष नहीं। यह वृत्ति-परिसंख्यान नाम का योगी का तप है।

कायक्लेश तप, शरीर को कष्ट दे रहे हैं, एक आसन में बैठे हुए हैं, धूप में बैठे हुए हैं, फिर भी नहीं डिग रहे हैं, इतने सारे तपों को तपते हुए भी। छह प्रकार के अन्तरंग, छह प्रकार के बहिरंग, बारह प्रकार के तप तप रहे हैं। प्रायश्चित्त ले रहे हैं, विनय कर रहे हैं, वैयावृत्ति कर रहे हैं, स्वाध्याय कर रहे हैं, सब कुछ तो कर रहे हैं। उधर रस-परित्याग भी कर लिया था। तपों में एक-एक नहीं, दो-दो नहीं, बारह-बारह तप रहे हैं। ऐसे घनघोर तप करने के बाद भी वह कौन-सी वस्तु है जो परिणामों को स्थिर नहीं होने दे रही है। बहिरंग तप हो भी जाए, अगर अंतरंग तप नहीं है तो, मनीषियो ! कल्याण संभव नहीं है। बहिरंग तप बाहर में दिखते हैं, अंतरंग तप अंदर की वस्तु है। मेरे से गलती हो गई, हम जाएँगे आचार्य महाराज के पास। 'भइया ! हम छतरपुर में थे, आचार्यश्री और हम थे, बहुत प्रभावना हुई, बहुत भीड़ जुड़ती थी', यह तो सब बता दिए, लेकिन श्रेष्ठता तब होगी जब यह कहेंगे कि 'महाराज श्री ! मैं छतरपुर में था, एक दिन मेरे ऐसे खोटे भाव आ गए थे। यह उक्त तप की ताकत है तब हम साधु हो गए।' अच्छाई-अच्छाई दुनियाँ बता सकती है परन्तु, मनीषियो ! साधु वह होता है जो अपनी बुराई बता दे, दुनियाँ की अच्छाई बता दे। यह प्रायश्चित्त नाम का तप है। जब तक चित्त शुद्ध नहीं है, अपनी गलती तुम किसी से कह नहीं सकते हो। पंचपरमेष्ठी की विनय, वैयावृत्ति, दूसरों की सेवा वही कर सकता है जिसके अंदर मार्दव भाव होगा। सब नहीं कर सकते और फिर ध्यान की तो महिमा विचित्र है। ध्यान के बिना निर्वाण होता ही नहीं, ये ध्यान रखना। अंतिम अन्तरंग तप है ध्यान। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान। अंतरंग व बहिरंग तप दोनों उपादेय हैं। आत्मा का अध्ययन जो है, उसका नाम स्वाध्याय है। पढ़ने का नाम स्वाध्याय नहीं है, उसका नाम अध्ययन है। जो स्वयं के लिए अध्ययन है, उसका नाम है स्वाध्याय है। ऐसे अंतरंग व बहिरंग तपों को तप रहे हैं। और यह भी ध्यान रखना कि बिना बहिरंग तप के अंतरंग तप होते ही नहीं हैं। क्यों? मनीषियो ! पहले दूध तपता है कि बर्तन तपता है? अहो ज्ञानी आत्मा ! बर्तन गरम हुये बिना दुग्ध नहीं तपता है। ऐसे ही बहिरंग-संयम के बिना अंतरंग संयम होता ही नहीं है। जो बहिरंग के अभाव में अंतरंग संयम मानता है, वह बाँझ के बेटे को आकाश के फूल से खिलाना चाहता है। न बाँझ का बेटा होता है, न आकाश में सुमन खिलते हैं। इसलिए ध्यान रखना, बिना बहिरंग तप के अंतरंग तप होता ही नहीं है। इतनी सारी तपस्या होने पर भी योगीन्दुदेव स्वीकार नहीं कर रहे, बड़ा आश्चर्य तो यह है।

शील, संयम, यह सब, हे जीव! व्यवहार धर्म है और व्यवहार से ही माने गए हैं। इन सबके

होने पर शुभआस्रव तो होगा, लेकिन जब तक निश्चय-संयम नहीं है, तब तक निर्वाण नहीं होगा। अब सोचो कि व्यवहार तक तो पहुँचे नहीं हैं आप। ध्यान रखो, एक भी व्यवहार वाला नहीं बैठा यहाँ। व्यवहार की बातें करने वाले तो अनेक हैं, लेकिन व्यवहार-संयम पालो न। फिर लगेगा कि हाँ, आगम क्या कह रहा है? हम लोग कहाँ ऊपरी-ऊपरी दौड़ लगा रहे हैं। जब जिनवाणी के पास बैठो तब लगता है कि मेरी यह दौड़ कितनी-सी है? अभी तो मकान की सीढ़ी के बाहर तक नहीं आ पाए, देहरी तक नहीं पहुँचे, और हम मंजिल मान बैठे हैं। (व्यवहारु मोक्खहँ कारणु एक्कु मुणइ) अहो ज्ञानी ! मोक्ष का कारण तो एक है। क्या? तीन लोक में कोई सार है तो उसका नाम है आत्मज्ञान। निज स्वभाव में लीन होना ही निश्चय से मोक्ष का कारण है। तीन लोक में सार है-एक त्रैकालिक-ध्रौव्य, शुद्ध-सत्ता से युक्त, निर्लिप्त, टंकोत्कीर्ण, ज्ञायक-स्वभावी भगवती-आत्मा।अगर वहाँ तक दृष्टि नहीं है तो ध्यान रखो, मोक्ष अभी बहुत दूर है। मार्ग ही दूर है, मार्गी तो ठीक है। जब मार्ग नहीं तो मार्गी कहाँ? (अप्पा अप्पइ जो मुणइ) जो आत्मा को आत्मा से जानता है। (जो परभाउ चएइ) जो परभाव को छोड़ देता है। सुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं कहते-कहते बहुत दिन हो गए, पर शुद्ध बना नहीं। भिन्नोऽहं का सूत्र आज से शुरू कर दो। शुद्धोऽहं तो बहुत दूर है, पहले भिन्नोऽहं कहना सीखो। मैं पर-द्रव्यों से बहुत भिन्न हूँ, ऐसी श्रद्धा तो लाओ। फिर नजदीक में आओ, मैं काम से भिन्न हूँ, मैं क्रोध से भिन्न हूँ, मैं मान से भिन्न हूँ, मैं माया से भिन्न हूँ, मैं छल-कपट से भिन्न हूँ। मेरी आत्मा का स्वभाव यह नहीं है। सेठजी ! आज दुकान पर जाना और ग्राहक आए तो कहना-भिन्नोऽहं। वस्त्र चाहिए तो भिन्नोऽहं। किसका वस्त्र, किसके लिए वस्त्र? जब यह शरीररूप चादर भी मेरी नहीं है, तो वह कपड़े की चादर मेरी कैसी? इस चादर में छेद हो जाए तो मेरे में छेद नहीं हुए, तब ओढ़ने वाले चादर में छेद हो जाए तो तुम्हारे दिल में छेद क्यों हो जाता है?

धन्य हो उन सुकुमाल महाराज को। एक बार आँख बन्द करके निहार तो लो। प्रभु आपके ऊपर पंजा मारा जा रहा है, चर्म चादर को छेदा जा रहा है, पर आप कह रहे हैं-मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ।

अहमिक्को खलु शुद्धो, दंसण-णाणमइओ सदारूवी।
णावि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणुमित्तंपि ।।38 ।।समयसार ।।

यह समयसार तब गूँजे, जब सिंह पंजा मारे और तुम्हारा हृदय /आत्मा पंजे में बैठ जाए। पंखा खुला है, कूलर चल रहा है और भैया कह रहे हैं-''दिपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।'' अहो ज्ञानी ! भोगों में लीन होकर वैराग्य-भावना पढ़ रहे हो। तनिक सोचो, इतना तो संयम बरत लो कि चक्रवर्ती तो समर-भूमि में जाकर चक्र चलाता था, पर हम तो इतने सुकुमार हो चुके हैं कि मंदिरों में भी चक्र लगे हैं चारों ओर। एक साक्षात् घटना आपको

बताएँ, आँखों देखी। टीकमगढ़ में 'षट्- खंडागम' जी की वाचना चल रही थी, पंखा चल रहा था। एक चिड़िया आई और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए,नीचे गिर गई। उस समय पंडित कोठिया जी ने कहा था कि, महाराज ! आज समझ में आया कि भोगी का कभी योग होता ही नहीं है। जिनवाणी के सामने पंचेन्द्री का घात हो गया। जितने बैठे थे सबको आचार्यश्री ने प्रायश्चित्त दिया था,सब ठंडी हवा में बैठे थे। अब तनिक सोचो। कूलर में जो पानी भरते हो न, छानकर भरते हो न? फिर बिलछानी का क्या करते हो? महाराजश्री ! बिलछानी की तो आवश्यकता ही नहीं पड़ती है, उनकी हड्डी पसली सब समाप्त हो जाती है। एक डिब्बे में पानी में आपको डाल दिया जाए,फिर उसमें पंखा चला दिया जावे, तब अपने हृदय से पूछो तुम पर कैसी बीतेगी? अहो मुमुक्षु आत्माओ ! इस चर्म की शीतलता के पीछे तूने आत्म-धर्म को खोखला कर डाला है। गद्दी पर बैठकर 'समयसार' चलता है, बगल में कूलर रखा होता है, तब लगता है कि, अहो ! क्या समयसार को बदनाम कर डाला। जो जंगल में बैठकर निजात्मा में बैठने की वस्तु थी, उसे आज हमने भोगों की वस्तु बना डाला है। नहीं, अब पुनः कहना। किनसे? सुकुमाल मुनिराज से। प्रभु ! स्यालनी भख रही थी, तब आप क्या कह रहे थे? वे स्वामी कह रहे थे-'अहो जीव ! पुद्गल से पुद्गल को ही खींचा जा सकता है, पर मेरे चैतन्य-स्वभाव को तुम खींच नहीं सकती।' हे प्रभु ! मुझे भगवान् बनना पसंद है, हमें सुकुमाल महाराज की वह दृढ़ता चाहिए है, फिर भगवान् नियम से बन जाऊँगा।

जिन पारस प्रभु की तुम रोज पूजा करते हो, दो मिनट उन भगवान् से आँख-से-आँख मिलाकर देख लिया करो। प्रभु ! कुछ नहीं चाहिए, वह शक्ति दे दो जिससे कमठ के वार तुमने सहन किए। इसलिए आपको बारम्बार नमस्कार है। क्यों? क्योंकि कमठ ने अपना काम किया, पर आपने अपने निज मठ में बैठकर अपना काम किया है। किसी मठ में भागने का आपने मन नहीं किया कि वर्षा हो रही है, ओले गिर रहे हैं, कमठ पत्थर पटक रहा है। आप चाहते तो किसी भवन में भाग जाते। परन्तु आपने कहा कि निजभवन से सुरक्षित भवन और क्या होगा? यह छत टूट भी जाएगी, लेकिन मेरे चैतन्य की छत टूटने वाली नहीं है। इसलिए भगना नहीं है, भजना है। अज्ञानी भाग जाते हैं और ज्ञानी भजते हैं। किसको? प्रभु को और निज आत्मा को। इसलिए ध्यान रखना कि क्या कह रहे हैं। जो (अप्पा अप्पइँ जो मुणइ सो परभाव चएइ) आत्मा को आत्मा से भाते हैं, वह परभाव को छोड़ देते हैं। (सो पावइ सिवपुरि गमणु) अहो मुमुक्षु आत्माओ ! ऐसे नहीं मिल रही। शिवपुरी भी जाना चाहो तो टिकट चाहना पड़ता है। और फिर शिवपुरी/मोक्ष जाना चाहते हो तो (जिणवर एम भणेइ) जो परभावों को छोड़ देता है, वह शिवपुर का स्वामी हो जाता है, ऐसा भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

आचार्य भगवान् 35-वीं कारिका में द्रव्यों का कथन कर रहे हैं। यहाँ कह रहे हैं कि ये द्रव्य

हैं, तुम इनको जानो-पहचानो, हेय को हेयदृष्टि से उपादेय को उपादेय दृष्टि से।

छः द्रव्यों में पाँच द्रव्य हेय हैं, ज्ञेय हैं। एक मात्र चेतन द्रव्य ही मेरा उपादेय है। (छह दव्वइँ) द्रव्य छः हैं (जे जिण कहिया) ऐसा भगवान् जिनदेव ने कहा है। (णव पयत्थ) नौ पदार्थ हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इनमें पुण्य और पाप मिला दो तो ये नौ पदार्थ हो जाते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छह द्रव्य हैं। (विवहारेण य उत्तिया) ये व्यवहार नय से कहे हैं। (ते जाणियहि पयत्त) भगवान् कह रहे हैं कि इनको प्रयत्नपूर्वक जानो, क्योंकि तब तक आप आत्म-तत्त्व को स्वीकार भी कैसे करोगे? जब तक दोषों का और गुणों का ज्ञान नहीं होगा, तब तक गुणों को स्वीकार नहीं किया जा सकता और दोषों को छोड़ा नहीं जा सकता है। इसलिए ध्यान रखना, इन सम्पूर्ण द्रव्यों को जानो-पहचानो, पर अपने आपको मत भूल जाना। आप हो जीवतत्त्व। उस जीवतत्त्व को भजो और शेष सम्पूर्ण तत्त्वों को खो दो, छोड़ दो। परन्तु ध्यान रखो, सहज होकर जीवन जीना, सरल होकर जीवन जीना। जीवन में तीन सूत्रों को हृदय में नोट करना, पूरा योगसार तुम मत रटना। सरलता, सहृदयता और सच्चारित्रता-इन तीन बातों को जीवन में सीख लेना। आपका कल्याण हो जाएगा।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

देही से भिन्न है देहधर्म

योगसार

सव्व अचेयण जाणि जिय एक्क सचेयण सारु।
जो जाणेविणु परममुणि लहु पावइ भवपारु ॥36॥

अर्थ-जितने भी पदार्थ हैं, वे सब अचेतन हैं। चेतन तो केवल जीव ही है और वही सारभूत है। उसको जानकर परम मुनि शीघ्र ही संसार से पार होता है।

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि छंडिवि सहु ववहारु।
जिण-सामिउ एमइ भणइ लहु पावइ भवपारु ॥37॥

अर्थ-सर्व व्यवहार को त्यागकर यदि तू निर्मल आत्मा को जानेगा, तो तू संसार से शीघ्र ही पार होगा-ऐसा जिनेन्द्र देव कहते हैं।

जीवाजीवहँ भेउ, जो जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ, भणइ जोइ जोइहिं भणिउ ॥38॥

अर्थ-जो जीवाजीव के भेद को जानता है, वही (सबकुछ) जानता है, तथा हे योगिन्! इसी को योगीजनों ने मोक्ष का कारण कहा है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश भगवान् महावीरस्वामी की देशना को हम सुन रहे हैं। आचार्यभगवान् योगीन्दुदेव ने आत्मज्ञान रूपी महासागर से अनुभव रूपी माणिक/मोती निकालकर हम सबको प्रदान किये हैं। जितनी बार गोते लगाये, उतनी बार नये मोती निकाले। अनुभूति से कथन होता है। अन्तर समझना। वचनों के उपदेश कानों तक आनंद दे पाते हैं, परन्तु अनुभव के उपदेश हृदय का अनुभव करते हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी पांडित्य का उपदेश नहीं दे रहे हैं, वे अनुभव का उपदेश दे रहे हैं। यही समयसार है। साधु की वाणी और ज्ञानी की वाणी में इतना अन्तर होता है कि ज्ञानी जानकार होता है और साधु पहचानकार होता है। पांडित्य भी भिन्न है। शास्त्र-पांडित्य और आत्म-पांडित्य दोनों भिन्न-भिन्न हैं। ये 'योगसार' ग्रंथ वेद-पांडित्य नहीं है, शास्त्र-पांडित्य नहीं है। योगसार आत्मानुभूति का पांडित्य है। आचार्य भगवान् योगीन्दुस्वामी ने द्रव्यों का चिंतन करने का उपदेश दिया, पदार्थों के चिन्तन करने का उपदेश दिया। यथार्थ है कि जिस जीव ने द्रव्य-गुण-पर्याय को समझ लिया है, उसने सारे विश्व को समझ लिया। यह सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग का सार है। यह पर्याय है जो पदार्थ का परिणमन है। द्रव्य सत्ता है। प्रत्येक द्रव्य परिणामी है।

परिणाम-स्वरूप की अपेक्षा से सारा विश्व अनित्य है और परिणामी-स्वरूप की दृष्टि से सारा विश्व नित्य है। नित्य-अनित्य दशा का अनुभव न करके जीव हर्ष/विषाद का अनुभव कर रहा है। हमें आदर्शता को जानना नहीं है, हमें बताना नहीं है, हमें आदर्श बनना है। अब बहुत गहन सूत्र कह रहे हैं। तत्त्वज्ञान नहीं करना है, तत्त्व बताना नहीं है, तत्त्व को समझकर तत्त्वस्वरूप में लीन होना है।

छः द्रव्यों की चर्चा प्रारंभ करते हुए योगीन्दु देव कह रहे हैं कि पहला द्रव्य (जीवद्रव्य) कभी नारकी के रूप में होता है; कभी देव के रूप में, कभी तिर्यंच पर्याय में, कभी मनुष्य के रूप में परिणमन करता है और यही जीव परमात्मा के रूप में भी परिणमित होता है। उतरने व चढ़ने के भाव अगर आ रहे हैं, तो जीव में आ रहे हैं। परिणमन चल रहा है-भावों में, जीव में। शेष द्रव्यों में जो भाव है, वह जड़-भाव है। लेकिन जीव द्रव्य में जो भाव है, उसे चेतन-भाव कहते हैं। पुद्गल बता रहा है कि मेरा जो स्वभाव है, उसे विश्व नहीं बदल सकता, विश्व का ज्ञाता-दृष्टा भी नहीं बदल सकता, अर्थात् सर्वज्ञ देव भी नहीं बदल सकते। यह कभी नवीन भी नजर आता है, कभी जीर्ण भी होगा। ये परमाणु बिखरेंगे तो दूसरे परमाणु आकार में भी आयेंगे। अरे! जब शरीर के परमाणु बिखरना ही है, तो बिखरने वालों को मैं क्यों जोड़ूँ? जिसे बिखरना है, उसमें पुरुषार्थ जोड़ना व्यर्थ है। जो नहीं बिखरे, वही पुरुषार्थ सम्यक् है। उपयोग तेरा बिखरने से अगर बच गया होता, योग तेरा निर्मल हो गया होता तो, हे भगवान्-आत्मा! तू कभी का भगवान् बन गया होता। हम जोड़ने में लगे हैं। कोई शरीर को जोड़ रहा है, कोई शरीर के सम्बंधियों को। यथार्थ यह है कि हम अपनी खुशी 'पर' के कुछ करने में नष्ट कर रहे हैं, पर विश्वास रखो, आप विश्व को खुश नहीं कर सकते, क्योंकि ये जीव इतने स्वार्थी हैं कि एक स्वार्थ की सिद्धि हो गई तो समझते हैं कि यह तो ऐसा ही है, इनसे दूसरे स्वार्थ की सिद्धि करो। मालूम चला कि परिवार की दशा और सम्बंधियों की दशा सुधारने में समय बिता रहा हूँ। छोटे-मोटे मेंढ़कों को एक टोकरी में बड़े प्यार से रखना और कहना कि, बेटा! तुम उचकना नहीं। अहो ज्ञानी! तुम एक को सम्हालते हो तो दूसरा उचक जाता है। यही दशा संसार के सम्बन्धियों की है। अपने भावों को दबाओ, मेंढक को दबाने से कोई लाभ नहीं। उतना सम्हाल लो जितना सहज हो सके। देह और देही को एक मत मानो। जिन्होंने देह को व देह के संबंधियों को अपना माना है, वही अपनी आत्मा को दगा दे रहे हैं।

ये सगा होगा कब? मात्र देही सगा है और कोई सगा नहीं है। भैया! कितने ही संबंधियों को पास बैठा लेना, रिश्तेदार ही रहेगा। बुन्देलखण्ड में गजरथ की बड़ी परम्परा है। एक जगह सिंघईजी गजरथ चलवा रहे थे। उन्होंने अपने साले को बुलवा लिया और अपने भाई को पूछा नहीं। फेरियाँ चल रही थी, छोटा भाई सोच रहा था कि बड़े भाई ने मुझे नहीं बुलाया। तभी छोटे भाई से किसी ने पूछा-सिंघई जी! फेरियाँ अच्छी तरह चल गईं? देखो, रिश्ते का कितना गहरा

सम्बन्ध होता है। गजरथ की सातों फेरियों में साला ऊपर बैठा था, उसे किसी ने नीचे उतरने पर सिंघई नहीं कहा। घर में बैठा भाई सिंघई बन गया, लेकिन बगल में बैठा साला सिंघई नहीं बन पाया, क्योंकि साले में रिश्ता था, भाई में सम्बन्ध था। मनीषियो ! तुम कितने भी दूर रहना, सगा सम्बन्ध मिटेगा नहीं। 'पर' से कितने ही सम्बन्ध बना लेना, वह तेरा कभी होगा नहीं। अहो मुमुक्षु ! चेतन का गजरथ घूम रहा है, जो ज्ञान-दर्शन से युक्त है। अनंतदर्शन-ज्ञान-वीर्य और सुख मेरी आत्मा के सगे भाई हैं। यह देह मेरा साला है। कितनी भी गजरथ की फेरियाँ ले लो,साला साला ही रहेगा, सगा ही सगा रहेगा। तुम्हें सगा नजर नहीं आ रहा, लेकिन जब भी सहयोग करेगा, सगा ही करेगा। ये देह जड़ है। जब चर्चा छः द्रव्यों की छिड़ेगी तब इसको पुद्गल-द्रव्य ही कहना पड़ेगा, जबकि मैं चौबीस घंटे इसके साथ रहता हूँ।

अहो ज्ञानी ! इस देही की दशा एलाचार्य भगवन्त कुंदकुंद स्वामी ने 'कुरल-काव्य' ग्रंथ में बहुत गहरी लिखी है। इसको जीवन में एक बार नहीं, बार-बार पढ़ना। यदि जीवन में मित्र बनाना हो तो कुरल-काव्य जरूर पढ़ना, तब तक किसी को मित्र नहीं बनाना। अहो ज्ञानी ! जब एक माँ बटलोई में दाल पकाती है, तो नीचे आग जलाती है। बटलोई के नीचे पैंदी लगी रहती है। पहले किसे झुलसना पड़ता है? वह देखो, ढक्कन बाद में रखा जाता है। परन्तु जब अग्नि में तीव्रता बढ़ती है तो ढक्कन नीचे गिर जाता है। उबाल आया, ढक्कन नीचे गिर गया; लेकिन पैंदी को देखो, कभी वह साथ नहीं छोड़ती। मनीषियो! संसार में ऐसी दशा जीव की है। स्वार्थी मित्र जो होते हैं, वह मुसीबत आने पर ढक्कन की भांति बाहर खड़े हो जाते हैं। सच्चा मित्र वह होता है जो जलता है, पर साथ नहीं छोड़ता। ज्ञानदर्शन तेरा पक्का मित्र है, ये तेरे साथ स्वर्ग, नरक और तिर्यंच गति में जायेगा, सिद्धालय में भी जायेगा। लेकिन यह देह ऐसा अवगुणी मित्र है जो इसी पर्याय में संकट के समय दूर खड़ा हो जायेगा। सच्चा मित्र चुनना चाहते हो तो ''दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावै'' समझना। दुर्जन और देह का स्वभाव समान है। अहो मूढ़ आत्माओ ! इस देह से राग मत करो। यह जड़ है, पुद्गल-द्रव्य है। गमन में सहयोगी तो धर्मद्रव्य है और ठहरने में सहयोगी अधर्म द्रव्य है। अवकाश देने में सहयोगी आकाश द्रव्य है तथा परिणमन कराने में काल द्रव्य है। भो ज्ञानी आत्मा! इन छः द्रव्यों का ऐसा स्वभाव है, परन्तु निजरूप में परिणत होना चेतन का स्वभाव है। 35-वीं कारिका में छह प्रत्ययों को जानने की बात कही, अब 36-वीं कारिका में कह रहे हैं-अहो मुमुक्षु ! इन छह द्रव्यों में जो उपादेय भूत द्रव्य है, वह शुद्ध-जीव द्रव्य है, शुद्ध-जीव-पदार्थ है,उसे समझो।

आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी बहुत गंभीर बात बता रहे हैं। इसके विवेचन के पूर्व शंका का समाधान जरूर कर देता हूँ। कुछ लोगों के मन में एक बात जरूर दौड़ रही होगी कि भगवान् को तो भगवान् कहते हो, लेकिन आचार्य महाराज को भगवान् क्यों कहते हो?

अहो ज्ञानी ! योगीन्दुदेव को एकेन्द्रिय-वनस्पति में भगवान् जरूर नजर आ रहे हैं। तुम्हें आचार्य भगवान् में भगवान् नजर नहीं आ रहे? जिसकी दृष्टि में शुद्ध-तत्त्व विराजा हो, उसे वनस्पति में भी भगवान् दिखते हैं। चरणानुयोग की शैली में मुनिराज को भगवान् कहा है। जो आप पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करते हो, तो क्या बोलते हो? पंचपरमेष्ठी भगवान् की जय हो। विश्व की सम्पूर्ण दार्शनिक दृष्टियों में ईश्वर की सत्ता को ईश्वर स्वीकारा है, साधु को साधु स्वीकार किया है, लेकिन जिनशासन की महिमा देखो, श्रमण संस्कृति कहती है कि भक्त भी भगवान् बन जाता है। यहाँ साधु को साधु नहीं बल्कि छोटा पंचपरमेष्ठी भगवान् कहा है। ये शब्द ही हमें समयसार में प्रवेश करा देते हैं। अहो साधु! आपको भगवान कहा है, इसलिए भगवत्ता की ओर निहारो, अभगवत्ता को मत निहारो। एक बात और गौर से समझना, मंदिर में भगवान् नहीं हैं, यह भूतार्थ है। मंदिर में तो भगवान् की प्रतिमा है। भगवान् तो देह के अन्दर है। कैसे भगवान् हैं? 'भग' का अर्थ 'ज्ञान' होता है। 'ज्ञान' वस्तु है। ज्ञान में प्रत्यय 'वान्' जोड़ने से ज्ञानवान बन जाता है। धन भिन्न है, वान् जोड़ दो, क्या बन जाता है? धनवान। ज्ञान से जो युक्त है, वह भगवान् है, इसलिए आत्मा ही भगवान् है। भगवान् मौन हैं, भगवान् तो आत्मा है। मंदिरजी में भगवान् की अनुकृति है, प्रतिमा है। वास्तव में भगवान् बनने वाला मेरे देह-देवालय में है। अहो ज्ञानी ! पाषाण के भगवान् में उन्हें देखने मत जाया करो, अपितु उन भगवान् में अपने देही-भगवान् को समझने जाया करो। भगवान् कौन है? वास्तव में भावी भगवान् मैं हूँ और तुम हो क्योंकि जो भव्य हैं, वह सब भावी-भगवान् हैं। लेकिन ध्यान रखना, अभी आपका भगवान् शक्तिरूप है, अभिव्यक्ति रूप नहीं है। आचार्य भगवान् कुंदकुंद स्वामी योगियों को समझा रहे हैं-

भिक्खं वक्कं हिययं, सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुट्ठिद साहू, भणियो जिणसासणे भयवं ।।अष्ट पाहुड।।

जिन योगियों की (भक्खिम्) भिक्षावृत्ति यानी आहार चर्या हितकारी है, जो यति संयम में शोधन पूर्वक चलता है, ऐसे श्रेष्ठ साधु को भगवान् जिनेन्द्रदेव के शासन में 'भगवान्' कहा है। ध्यान रखना, जो पाँच पापों में लिप्त आत्मा है, उसे भगवान् मत कह देना। कारण 'कातंत्र' ग्रंथ व्याकरण का विश्व-प्रसिद्ध ग्रंथ है। जैसे हमारे यहाँ 'तत्त्वार्थ-सूत्र' का पाठ होता है, ऐसे ही दक्षिण भारत में 'कातंत्र' का पाठ किया जाता है। यह एक प्रसिद्ध दिगम्बर आचार्य द्वारा रचित है। ''कातंत्र'' ग्रंथ में 'भग' शब्द का अर्थ ज्ञान और अघ का अर्थ पाप कहा है। 'वान्' लगा दीजिये। जो पाँच पाप से युक्त हैं, वे अघवान् हैं और जो पाँच पापों से रिक्त हैं, वे भगवान् हैं। तुम भी भगवान् हो, उसे पापों से परे देखो। वस्त्रों को अलग कर दो, सब मुनि हैं। इससे ध्वनित होता है कि आवरण ही घातक है, आवरण असत्य है, आवरण ही शत्रु है। जब तक आवरण है, तब तक शुद्धता नहीं । असली भगवान् तो परम चैतन्यता को प्राप्त

अशरीरी शुद्ध परमेश्वर है। निरावरण में कोई विसंवाद नहीं है। इसलिए सिद्ध-भगवान् मूर्ति में नहीं, अमूर्तिक हैं। मूर्ति में विकल्प है, विवाद है, सम्प्रदाय है। अशरीरी में कोई विवाद नहीं। मूर्ति उनके लिए है, जिनने प्रतिमावान् को वेदन नहीं किया। जो प्रतिमावान् हो चुके उन्हें प्रतिमा से प्रयोजन नहीं है। पर जब तक निज की प्रतिमा नहीं जानी, तब तक प्रभु की प्रतिमा को मत खो देना। यही निश्चय व व्यवहार है। पर ध्यान रखना, अंत में प्रतिमातीत होना पड़ेगा। मैंने एक दिन बहुत सोचा-यह भी तो एक विकार है कि मुझे कहीं बड़े बाबा नजर आते हैं तो कहीं छोटे, कहीं पार्श्वनाथ तो कहीं आदिनाथ। अहो योगी! योगसार कह रहा है-अभी आप दूर हो। ''तत्त्वसार'' ग्रंथ में देवसेन स्वामी ने लिखा-पंचपरमेष्ठी पर तत्त्व हैं, एक मात्र आत्मा ही स्व तत्त्व है। द्वैत भाव जब तक है, तब तक राग है। यदि अद्वैत जान गये तो वही वीतराग दशा है। जब तक वित्त का राग नहीं छूटेगा, तब तक तुमको वीतराग दशा का वेदन नहीं होगा। इसलिए, हे श्रावको ! पहले वित्त का राग छोड़ो, चारित्र को स्वीकार कर लो। फिर चारित्र का राग छोड़ो, तब वीतराग बनोगे। वित्त का राग, चित्त का राग, विचित्रों का राग छोड़ो तथा चारित्र पर राग लाओ और जब चारित्र का राग आत्मलीनता में बदल जायेगा, तभी वीतरागी बन पाओगे।

आचार्यश्री 36वीं कारिका में कह रहे हैं (सव्व अचेयण जाणि) इन सम्पूर्ण द्रव्यों को अचेतन जानो। संक्षेप में कोई पूछता है कि आत्मतत्त्व क्या है? जो ज्ञाता दृष्टा है, वह दृष्टव्य नहीं है। जो दृष्टव्य है, वह ज्ञाता दृष्टा नहीं है। जो ज्ञाता दृष्टा है, वह ज्ञातव्य नहीं है। जो हमें ज्ञातव्य नजर आ रहा है, वह ज्ञाता दृष्टा नहीं है। (अचेतनम् इदम्) ये सब अचेतन हैं। जो मेरी आँखें देख रही हैं, वह अचेतन को देख रही हैं और अचेतन के पीछे चेतन भाग रहा है। रूप अचेतन है, स्वरूप चेतन है। आपने आज तक क्या देखा? रूप देखा कि स्वरूप देखा? भविष्य में तीर्थंकर भगवान् बनने वाला लंकेश ! तूने रूप के पीछे अपने भगवान् के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बनने वाला भगवान् किसी को रावण नजर आता है तो किसी को बनने वाला तीर्थेश। हे लंकेश ! यदि तुम सीता के स्वरूप को देख लेते तो राम के बाणों से घायल न होते और लक्ष्मण के द्वारा तुम्हारे प्राण हरण न किये जाते। पर तुमने आज तक रूप को देखा। हे लंकेश ! सीता को इस विरूप में राग कहाँ था? रावण ने सीता के रूप में राग देखा था। लोक में जितने रावण विराजते हैं, वह रूप के पीछे ही विराजते हैं। रावण ने सीता को देख लिया तो तुमने आज तक उसके पुतले जलाने नहीं छोड़े। लेकिन हृदय के रावण से पूछो-तुमने कितनी सीताओं को देखा है? पुतले किसके जलने चाहिए? तुमने कितनी सीताओं के शील का विनाश किया है? रावण को आज से गाली मत देना, लेकिन अपने मन के रावण से पूछ लेना। रूप के पीछे कुछ नहीं था, मात्र स्पर्श, रस, वर्ण, गंध यही था। अठारह साल के किशोर से मिलो, बेटे ! आज जो तू खजूर-सा फूल रहा है, कल छुहारे-सा मुरझा जायेगा। यही खजूर

की पर्याय छुहारा है। जब खजूर-से फूल रहे थे, आज छुहारे-से पिचक रहे हो। पिचकना सबको है। इसलिए किसी वृद्ध को देखकर नाक मत सिकोड़ना, उसके हृदय की वेदना को सुनना। जिसने एक सीता को निहारा, तो उसका तुम पुतला जला रहे हो। तुमने अपने जीवन में कितनी सीताओं के शील को नष्ट कर डाला, तब किसने क्या कहा? रावण के दोष दिख रहे हैं, यदि तुम्हारे जीवन में कोई रावण मिल जाय तो किसी से कुछ कहने लायक ही नहीं रहोगे। तुम्हारे जीवन की रामायण क्या है? रावण की रामायण में यह जुड़ा है कि वह भावी भगवान् है। उस तीर्थंकर की देशना में जब तुम्हारी रामायण लिखी जायेगी तो वहाँ कोई कहने वाला नहीं मिलेगा कि तुम भगवान् बनोगे कि नहीं। कभी किसी को गलत मत कहना। गलती स्वीकार कर लेना अपने आप की, क्योंकि पाप करने वाली पर्याय होती है, पाप कमाने वाला 'परिणामी' होता है। पर्याय भी बदलती है, परिणाम भी बदलता है। वह पापी-पर्याय चली गई, परिणाम चले गये। वे भगवान् बन गये, तुम 'पापी' चिल्ला-चिल्लाकर पाप का बंध कर रहे हो। जो रावण का पुतला जलाता है, वह पंचेन्द्रिय जीव की संकल्पी हिंसा का दोषी है। वह तो अपना पाप भोग रहा है, लेकिन तुम अनुमोदना कर पाप का बंध कर रहे हो। तुम संकल्प पूर्वक पंचेन्द्रिय नारकी जीव की हिंसा कर रहे हो। भावी भगवान् की हिंसा का दोष लग रहा है। देखो संसार की दशा, लंकेश तीर्थंकर बनेगा और वही सीता का जीव उनका गणधर परमेष्ठी बनेगा। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं-

मामपश्यन्नयं लोको, न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको, न मे शत्रुर्न च प्रियः ॥26॥समाधि तंत्र॥

इस लोक में मेरा कोई शत्रु नहीं, कोई प्रिय नहीं। जो मेरे शत्रु नजर आ रहे थे, वे आज मेरे मित्र हैं और जो मेरे मित्र थे, वे आज शत्रु हैं। कौन मित्र, कौन शत्रु? जिसके घर में दो चूल्हे रखे हैं, जब नहीं रखे थे तब भाव क्या थे और आज क्या हैं? बेटे का चूल्हा अलग रखा है, पिता से पूछना कि अब क्या भाव है? इसलिए खिन्न मत होना । इनका अलग होना स्वभाव है। अहो ज्ञानी ! परद्रव्य तो भिन्न थे, तेरी अज्ञान दशा थी कि उन्हें अपना मान रहा था। इसी अज्ञान दशा से तू अभिन्न मान रहा था। वह पहले से भिन्न थे। जो भिन्न में अभिन्नता रखता है, वह रो रहा है। झांसी के पास सकरार में 'काका' कवि मिले। उन्होंने पाद प्रक्षालन किया और एक संकेत दिया, महाराज जी! सुनो। हमने कहा-मंदिर में सुनाना। काका जी ने कहा-मंदिर किसने देखा? आप सड़क पर खड़े हैं, मैं अधिक देर नहीं लगाऊँगा। क्षण-क्षण की बात बताऊँगा-हे प्रभु! ये मेरी चमड़ी है, इसे देखकर लोग दमकते थे, काका कहकर बुलाते थे, आज उसकी यह दशा है कि मुझे सड़क पर मेरा नाम लेने वाला कोई नहीं मिला। सोचो। वे कहकर चले गये, लेकिन उनकी बात मेरे कानों में गूँज गई। एक कवि को यह भान है कि लोगों ने मेरी वाणी को जय किया है, जबकि अपनी जय को तो मैं खुद ही कर सकता हूँ। भव्य

आत्माओ! मेरी जय बोल सकते हो, मेरे वचनों की, तन की जय बोल सकते हो परन्तु मेरे चेतन-आत्मा की जय बुलाने की ताकत तुममें नहीं है। वह मेरे अन्दर है। जय का पात्र मैं हूँ या नहीं, ये तो मैं ही जान सकता हूँ, आप नहीं। आप जो जय बोलेंगे, वह पुण्य का परिणमन है और जो चेतन की जय बुलेगी, वह चैतन्य का परिणमन है-यह द्रव्यानुयोग है।

भो ज्ञानी ! कभी किसी को हीन नहीं देखना। बात कुछ ऐसी है कि जब तक तुम्हारी सन्तान निर्मल है, तब तक जितनी आलोचना करना चाहो, कर लो। पर क्या तुमने जाना है कि कौन तुम्हारे वंश में खोटा उत्पन्न हो जाय? कब तुम्हारे निर्मल कुल को कलंकित कर चला जाए? अपने इस मन से कहना-हे मन ! आज तू निर्मल है। मुनि के पास जा, जिनवाणी सुन, जिनदेव की पूजन कर। पर ध्यान रखना, परिवार-कुटुम्ब भले रूठ जायें, पर मन को रूठने मत देना। इन तीन (देव, शास्त्र, गुरु) से मत रूठ जाना। पंचम काल में ये तीन ही तुम्हारे पास हैं, चौथा कोई नहीं है।

परिवार जन/कुटुम्ब तुम्हारा उपभोग कर रहे हैं, ये तेरा सहयोग नहीं करेंगे, परन्तु तेरा सहयोग मात्र धर्म करेगा। अन्यथा आप दस दिन के लिए पलंग पर लेट जाओ और ज्यादा हुक्म देना प्रारंभ कर दो, फिर देखना कि क्या हालत होती है? भूत कहकर भगा देंगे। एक सज्जन महाराज जी के पास आये,उन्होंने कहा-दीक्षा ले लो। उसने कहा-हमारे बिना घर के चूल्हे में आग नहीं जलती। महाराज ने कहा-एक काम कर लो, पत्र लिख दो घर में किसी को कि आ रहे थे और रास्ते में मृत्यु हो गई। घर में रोना शुरू हो गया। तुम्हें पता है कि तुम मरे नहीं हो। तुम जाकर घर में ऐसे स्थान पर बैठना, जहाँ से सब कुछ दिखे। भैया गये और मगरा पर बैठ गये। देखने लगे-पहले दिन कुछ लोग रोये, बाद में कुछ पुण्य-आत्माओं ने साल भर का राशन दे दिया। वह गरीब परिवार था, इसलिए ज्यादा धन दिया। जब छोटा पुत्र रोने लगा, तब माँ कहती है- ''बेटा ! तुम चिन्ता न करो, मैं तो हूँ। यह संसार का स्वभाव है। हम तुम्हारी सेवा करेंगे पिताजी चले गये तो क्या हुआ, हम तो हैं।'' भैया जी के कलेजे में आग लग गई। जिसके लिए सब कुछ किया, वह कह रही है कि हम तो हैं। अचानक त्यौहार का दिन आ गया, कढ़ाई चढ़ गई, पूड़ियाँ बनने लगीं। उसकी छुन-छुन से भैया का खून भी छुन्न-छुन्न होने लगा, 'जब मैं था, कढ़ाई नहीं चढ़ती थी।' उससे रहा नहीं गया और नीचे आ गये। जैसे ही नीचे कूदे कि पत्नी जलती आग से लकड़ी निकालकर पीछे पड़ गई। जगत में भूत भगाने की यही व्यवस्था है। सबसे कहने लगी-वे तो मर गये थे, ये कहाँ से आ गये? वे भूत बन गये। नगर वासियों ने घेर लिया। अब क्या करें? भागकर जंगल में पहुँचे। महाराज बोले-देख लिया सब कुछ? जो भूत बनकर भागे, इससे अच्छा तो यही है कि तुम हमारे साथ महाराज बनकर चलो। यह हालत सबके घर की है। बड़ा आश्चर्य है कि कुट पिटकर वहीं पहुँच जाते हैं। बैल की नाक में नकेल है, खूँटा है, रस्सी है, परन्तु ये बिना खूँटा-रस्सी के बड़े ईमानदार बैल हैं। दुनियाँ में घूम

आये, लेकिन घर वापिस आ जाते हैं। ये संसार की दशा है। इस अचेतन संसार को अचेतन ही समझो। ज्ञान ही जीव है, ऐसा जानो। यदि कोई सार है तो एक सचेतन आत्मा है। जो जाने, वह परम्गुणी। जो इस प्रकार से जान लेता है, वह ज्ञानी मुनि शीघ्र ही (भव पारो) भव से पार हो जाता है। (जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि) यही निर्मल आत्मा को जानो (छंडिवि सहु ववहारु) सभी व्यवहार को छोड़ दो। ये लोकाचार लोकोत्तराचार का शत्रु है। जहाँ लोकाचार है, वहाँ लोकोत्तराचार नहीं है। हम निज से सम्बंध बिठा नहीं पाये, इसलिए अपनी गृहस्थी के सम्बन्धों को जोड़ा है, निर्वाह कर लिया है। इसमें सुख कितना मिला? केले के वृक्ष को छीलना शुरू करो, उसमें सार कब निकलेगा? इस संसार की दशा भी केले के स्तम्भ के समान है। छीलते जाइये,कुछ नहीं निकलेगा। लगता है आपको स्वाद, पर स्वाद नहीं है, वह तो राग है। राग-वस्तु निकल जाये तो सब बे-स्वाद नजर आता है। एक क्षण के भोग अच्छे लगते हैं, लेकिन बाद में न भोगी आँख मिलाता है और न भोग्या। यदि भोग अच्छे थे तो अच्छे से दृष्टि क्यों नहीं मिला पाये? वे लोग हीनभावना से ग्रसित हैं। इसलिए लगता है कि योग ही में सुख है, भोग में नहीं। इसे आप हीन मत समझना। 10 दिन संयम का पालन करना, फिर अपने आपको निहारना, अपने मन को देखना, तन को देखना । दोनों में आपको स्फूर्ति मिलेगी, ताजगी मिलेगी, जीवन में उत्साह मिलेगा। जबकि एक दिन के असंयम से पूरा उत्साह समाप्त हो जायेगा। अनुभव करो, अनुभव।

भक्तों की भीड़ कभी भगवान् नहीं बनने देगी, समाधि नहीं देगी। भैया ! समाधि में भीड़ हो सकती है, परन्तु भीड़ में समाधि नहीं हो सकती। जीवन में नोट कर लेना, यदि समाधि में भीड़ हो जाये तो कोई क्षति नहीं, लेकिन भीड़ के लिये समाधि मत लगाना, अन्यथा क्षति-ही-क्षति है। अहो योगी! दो बांस के ऊपर रस्सी, रस्सी पर नट नृत्य कर रहा है। देख रहा है। दृष्टि कहाँ है? सारे लोग नट को देख रहे हैं, नृत्य को देख रहे हैं, सबका मनोरंजन है। यदि नट ने सबको देख लिया तो,उसका पतन निश्चित है। अहो ज्ञानी ! ये भक्त तुम्हें निहारें, तो कुछ नहीं, लेकिन यदि भगवान् भक्त को देखने लगे तो उन्हें कर्म का बन्ध है। क्यों? विचित्र दर्शन है। विचित्र नहीं, सत्य-दर्शन है। भीड़ साधना की हेतु न कभी बनी है, न कभी बनेगी। भीड़ में भीड़ का आनंद आ सकता है, परन्तु एकत्व-विभक्त्व का आनंद नहीं आ सकता। इसलिए भगवान् कह रहे हैं, आज्ञा दे रहे हैं कि छोड़ दो शुभ व्यवहार को। (जिण-सामिउ एमइ भणइ) जिनेन्द्र देव ने कहा है, (लहु पावइ भवपारु) यह छोड़ दिया तो शीघ्र ही भव के पार हो जाओगे। (जीवाजीव भेउ) भगवान् योगीन्दुदेव कहते हैं-जीवाजीव के भेद को आप जान लो (मोक्खहँ कारण एउ) तुम उसे ही मोक्ष का कारण जानो। ऐसा भोगियों ने नहीं, योगियों ने कहा है। जब भी सिद्धि होगी, भेदविज्ञान से ही होगी।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः, सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा, बद्धा ये किल केचन ॥131॥अ.अ.कलश॥

महान् 'अध्यात्म अमृत कलश' (समयसार) में आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा-जितने जीव आज तक सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, वे भेदविज्ञान के सद्भाव से हुए हैं और जितने जीव संसार में भटक रहे हैं, वे भेदविज्ञान के अभाव में भटक रहे हैं।

जीव ने आज तक आपा-पर का ज्ञान नहीं किया, तत्त्वनिर्णय नहीं किया, तत्त्वदृष्टि नहीं बनायी। कई बार क्रियाकाण्डों में उलझता रहा, पर क्रियाकाण्ड के काण्ड को नहीं समझा। उलझा तो रहा, पर ये नहीं समझा कि ये सब क्यों? एक बात आपसे पूछ रहा हूँ, जब आप जिनालय में प्रवेश करते हैं तो, क्यों भैया! पूजन करने आए थे, कि शुभ-उपयोग करने आए थे? यदि आप शुभ-उपयोग करने आए थे, तो जिस वेदी पर आप रोज पूजा करते थे, वहाँ कोई नए पुजारी आ चुके थे, उन्हें देखकर तुम्हारा दिल कहता है- अहो! मेरी वेदी पर तुम कैसे आ गए? अहो ज्ञानी! लगता है कि तुम आज तक अपनी वेदी पर पहुँचे ही कहाँ हो। यदि अपनी वेदी पर पहुँच गए होते, तो तुम्हारे मन में ये भाव आते ही नहीं कि मेरी वेदी पर तुम कैसे आ गए। फिर कोई कहता कि, अहो! तुमने मेरे भगवान् का अभिषेक कैसे कर दिया? लगता है कि तुमने आज तक अपने भगवान् का अभिषेक किया ही कहाँ था। अपने भगवान् का अभिषेक कर लिया होता तो आज मुझे ये 'अपने भगवान्' शब्द नजर न आता। तो फिर क्या कहोगे आप? आप पूजन कर रहे हो, करो। मैं रूढ़ि निभाने मंदिर नहीं आया, मैं तो विषय-कषाय से बचने के लिए आया था। कोई बात नहीं, हम दूसरी वेदी पर पूजन कर लेंगे। अभिषेक-पूजन ही तो करना है, फिर मैं अपने भावों को क्यों बिगाड़ूँ? ध्यान से सुनना-

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं, पुण्य क्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति॥

भो ज्ञानी! घर में अशुभ भाव हुए, सो मंदिर में छूट जाएँगे। लेकिन मंदिर में ही तुम दोष करने लगे तो छोड़ने कहाँ जाओगे? इसलिए ध्यान रखना, यदि आपके निमित्त से किसी के भाव बिगड़ें, तो तुम स्थान बदल देना। अहो ज्ञानी! यदि हम वेदी नहीं बदल सकते, भगवान् नहीं बदल सकते, पर हम समय तो बदल सकते हैं। क्योंकि मेरे निमित्त से किसी के भाव गड़बड़ हो गए तो? सुनो, वे पारसनाथ थे, जिन्होंने दस भव तक उपसर्ग सहन कर लिया। हम एक भव तक उपसर्ग सहन नहीं कर पाते हैं। इसलिए ध्यान रखना, इस पर्याय से जाने के पहले किसी को शत्रु बनाकर नहीं जाना, मित्र बनाकर जाना। पता नहीं हम तीर्थंकर भी बन गए, पर शत्रु शत्रुता वहाँ भी निभाएगा। पारसनाथ से पूछ लेना-प्रभु! आप तीर्थंकर बन गए, पर कमठ की शत्रुता ने अपना काम किया कि नहीं? तुम्हारे ऊपर पत्थर, ओले बरसाए थे। ध्यान रखना, देहरी के बाहर तब होना, जब हाथ जोड़कर सबसे क्षमा माँग लेना। देह के बाहर तब होना, जब देहियों से क्षमा माँग लेना-यही योगसार है, यही तत्त्वसार है।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

आत्मदेव को देख

योगसार

केवल-णाण-सहाउ सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ।
जइ चाहहि सिव-लाहु भणइ जोइ जोइहिं भणिउँ ॥39॥

अर्थ- हे जीव! यदि तू मोक्ष पाने की इच्छा करता है, तो तू केवलज्ञान-स्वभाव आत्मा को पहिचान, ऐसा योगियों ने कहा है।

को सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु-करिवि को वंचउ।
हलसहि कलहु केण समाणउ, जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ ॥40॥

अर्थ- कौन तो समाधि करे ? कौन अर्चन-पूजन करे? कौन स्पर्शास्पर्श करके वंचना करे? कौन किसके साथ मैत्री करे ? और कौन किसके साथ कलह करे ? जहाँ कहीं देखो वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होती है।

ताम कुतित्थइँ परिभमइ धुत्तिम ताम करेइ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ ॥41॥

अर्थ- जब तक जीव गुरु-प्रसाद से आत्मदेव को नहीं जानता, तभी तक वह कुतीर्थों में भ्रमण करता है और तभी तक वह धूर्तता करता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने अलौकिक सूत्र प्रदान किए हैं। इस भव की संतति से आत्मा के उत्थान का यदि विचार है तो, मनीषियो! विश्व के विकास का जो विचार है वह समाप्त कर दो, वहीं से आत्मा का विकास प्रारंभ हो जाएगा; और जहाँ आपने दुनियाँ के विकास की चर्चा की, वहाँ आत्मा का ह्रास प्रारंभ हो जाएगा। इस जीव के पास दो बगीचे हैं- एक देह है, एक देही है। एक आत्मा का उद्यान है, एक देह का उद्यान है। जल आपके पास न्यून है। यदि आप आत्मा के बगीचे में पानी देते हो, तो मनीषियो! देह का बगीचा मुरझाएगा और देह के बगीचे में पानी देते हो, तब आत्मा का बगीचा मुरझा जाएगा। आचार्य भगवान् पूज्यपाद स्वामी ने 'इष्टोपदेश' ग्रन्थ में यही संकेत दिया है-

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीस्यापकारकम् ॥19॥

अहो जीव! यदि तू शरीर का उपकार करना चाहता है, तो आत्मा का अनुपकार होगा और

आत्मा का उपकार चाहता है तो देह का अनुपकार होगा।

अब विचार आपको करना है कि मुझे करना क्या है? शरीर भी तुम्हारे सामने है और आत्मा भी तुम्हारे सामने है। ये भूतार्थ है, ध्रुव सत्य है कि देह के उपकार की दृष्टि जिसकी है, उसे देह की ही प्राप्ति होगी और आत्मा के उपकार की दृष्टि जिसकी है, वह अशरीरी-भगवान्-आत्मा बनेगा। कर्मबद्ध अवस्था चाहते हो तो शरीर की सेवा करो और कर्म से निर्बद्ध होना चाहते हो तो आत्मा की सेवा प्रारंभ कर दो। लेकिन ये ध्यान रखना कि एक संसार में लिप्त कराने वाला है और दूसरा संसार से मुक्ति दिलाने वाला है। दोनों दृष्टियाँ आपके सामने हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दु देव स्वामी ने आपसे यही कहा है। शरीर-दृष्टि यानी व्यवहार-दृष्टि, आत्म-दृष्टि यानी निश्चय-दृष्टि/परमार्थ-दृष्टि। इस जीव ने जब-जब शरीर को निहारा है, तब-तब उसे अशान्ति मिली है। 'अभाव में कष्ट होता ही है' सूत्र ध्यान रखना। अभाव के होने पर कष्ट होता ही है, वियोग के होने पर शोक होता ही है। देह का वियोग सुनिश्चित है, देह का अभाव सुनिश्चित है, तो शोक भी सुनिश्चित है। यदि जीव द्रव्य को निहारें तो शोक समाप्त हो जाए। आप शरीर को निहारोगे तो रोना पड़ेगा और अपने आप को निहारोगे तो कभी नहीं रोना पड़ेगा। अहो ज्ञानी ! यदि आपकी दुकान का मुनीम दुकान के घाटे को निहारे तो रोएगा। आपकी दुकान का मुनीम यदि अपने महीने के वेतन मात्र को देखे तो उसे कोई शोक नहीं होगा, क्योंकि उसके मास का जो वेतन है वह सेठ जी को घाटा होने पर निर्भर नहीं है, वह तो सुनिश्चित है। ऐसे ही द्रव्य जो है वह हमारा सुनिश्चित द्रव्य है और पर्याय जो है ये घाटे-टोटे की है। यह कभी मिटती है, कभी बदलती है, तो कभी नवीन उत्पन्न होती है। लेकिन ध्यान रखो, द्रव्य कहता है कि हम सर्वत्र एक-से ही होते हैं, मेरे में कोई फर्क नहीं होता, कोई अंतर नहीं होता। अंतर जो होता है वह पर्याय में ही होता है, परिणामों में ही होता है। दोनों में अंतर चल रहा है, पर्याय में अंतर है और परिणामों में अंतर है। द्रव्य कहता है कि मैं निरन्तर हूँ। पर्याय जो भी होती है वह सान्तर होती है, द्रव्य जो भी होता है वह निरन्तर होता है। द्रव्य में कोई अन्तर नहीं होता। जैसे मैं-जीव निगोद में था, वैसा जीव मनुष्य में हूँ; जैसा मनुष्य में है, वैसा देव में रहेगा; जैसा देव में है, वैसा ही मनुष्य में रहेगा और द्रव्य-दृष्टि से सिद्ध परमेश्वर रहेगा। यहाँ आचार्य भगवान् कह रहे हैं, कि जीव में और देह में भेद करके, हे योगी ! तू देखेगा तो मोक्ष प्राप्त कर लेगा। इस कारिका को बहुत ही सहज भाव से समझना है और आज तो बहुत ही गंभीर बात कहने वाले हैं। वह तो यही कहनेवाले हैं, कि बस अब तो देखना है तो निजदेव को ही देखो, सुनना हो तो निजदेव को ही सुनो, समझना है तो निजदेव को ही समझो। अनेक को अनेक बार देखा, सुना, समझा, लेकिन एक बार स्वयं को भी तो समझो। जितने ज्यादा तुम दूसरों को समझोगे उतने ज्यादा तुम प्रपंच में पड़ोगे, उतने ज्यादा विकल्प होंगे। जितने ज्यादा बाहर का ज्ञान प्राप्त करोगे उतने ज्यादा आपको मानसिक तनाव बढ़ेंगे। यदि आपके मन में योगी बनने के विचार आ

रहे हों तो, भइया ! लोगों को जानना कम कर दो । आचार्य पूज्यपादस्वामी-'समाधितंत्र' में लिखते हैं-

जनेभ्यो वाक् ततःस्पन्दो, मनसश्चित्तविभ्रमाः ।
भवन्ति तस्मात् संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ।।72 ।।

जनसंपर्क आत्मकल्याण का शत्रु है । समुदाय का मिलन निज के मिलन से दूर करा देता है । जितने ज्यादा लोगों से मिलोगे, उतने ज्यादा लोगों से चर्चाएँ होंगी । कभी-कभी ऐसी चर्चायें भी हो जाती हैं कि जिनको आप नहीं जानते थे और उनके विकल्प से भी आप दूर थे । यदि किसी व्यक्ति का किसी ने अहित कर दिया जो आपको ज्ञात नहीं था और जिसका अहित हुआ है वह आपके नजदीक था, जब तक मालूम नहीं था, तब तक आपको उसकी चिंता से कोई चिन्तवन नहीं था और जैसे ही आपको मालूम चला कि तुम्हारे मित्र का अमुक व्यक्ति ने अनुपकार किया है, उसी क्षण से आपके मन में एक नया चिन्तवन खड़ा हो गया-इसका बदला कैसे लूँ? ये परिणाम किसका था? ज्यादा जानने का था, ज्यादा मिलने का था। साधक जो होते हैं वे मिलते नहीं हैं, पर वे मिले होते हैं निज से । आपको जरूर लगता है, कभी-कभी मन करता होगा कि हम लोग इतनी दूर से पहुँचे, सब कुछ हुआ, परन्तु हम बात नहीं कर सके । अहो ज्ञानी ! जब कभी तुम्हारा मन करे और साधक साधना में रत हो, आपको वंदना करने के भाव आ रहे हैं, वंदना ही तो करना है, तब किसी की वंदना को बंद क्यों कर रहे हो? हमें तो वन्दना करना है । मैंने आपका रूप निहारा, बस देखकर चला गया । आप अपनी वंदना करो, मैं तो वंदना करके चला । मुझे आशीर्वाद नहीं मिला । कौन कहता नहीं मिला? मैं आशीर्वाद लेने गया कहाँ था । मैं तो नमस्कार करने गया था । जब हमने नमस्कार कर ही लिया तो, मनीषियो ! वे वर्गणाएँ मुझे तो प्राप्त हो ही गई हैं । एक गहरी बात समझना । भगवान् जिनेन्द्र के दर्शन किये, पंचपरमेष्ठी के दर्शन किये और दर्शन करके जैसे कैमरे में चित्र को खींच लेते हो, ऐसे ही उनके चारित्र को खींच लिया करो । भले आपने गौर से दर्शन किए थे, पर घर में आकर उस फोटो को कितनी बार देखते हो और कितने लोगों को दिखाते हो कि देखो, मैं वहाँ वंदना करने के लिए गया था, तब ये ही भगवान् थे । ऐसे ही, मनीषियो ! निज की तस्वीर को निज में खींचकर फिर तुम निहारना कि, अहो ! देखो मैंने कैसी वंदना की है । तीर्थों से जो चित्र लाते हो, उनका उद्देश्य क्या है? घर में टाँगने का नहीं है । प्रभु ! जब तक मैं आपके यहाँ हूँ, तब तक तो अशुभ से बचा ही हूँ लेकिन अब मैं चित्र लेकर जा रहा हूँ, अब जब भी मन करेगा तो मैं वहाँ भी आपको ही देखूँगा । अब दूसरे चित्रों को नहीं देखना चाहता हूँ । कैमरे के चित्र टूट सकते हैं, फट सकते हैं, लेकिन अन्तस् के कैमरे में जो तस्वीर खिंच चुकी है, मनीषियो ! वह न टूटने पाए । प्रभो ! बाहर के चित्रों को दीवारों से हटाया जा सकता है, बाहर के चित्रों को फाड़ा जा सकता है, परन्तु जिसके द्वारा श्रद्धा के आलोक में खींचा गया चित्र है,उसे हटाने कि शक्ति विश्व में किसी की नहीं है ।

योगीन्दुदेव स्वामी आज संकेत करनेवाले हैं, कि अब आप उस कैवल्य-ज्योति का अनुभव करो। लोगों ने ज्योति का ध्यान करना प्रारंभ कर दिया और ज्योति के ध्यान से क्या हुआ कि किसी ने मोमबत्ती को जलाना प्रारंभ किया तो किसी ने दीपों को जलाना प्रांरभ किया। पर, मनीषियो ! वास्तव में ज्योति का जो ध्यान था, वह कैवल्य-ज्ञान-ज्योति के प्रतीक का ध्यान था। कहाँ तुम जड़-दीप में पड़े हो। वह भी एक पुद्गल की पर्याय है, वह कौन परमेश्वर है। आचार्य भगवान् अमृतचन्द्र स्वामी ने तीर्थंकर को नमस्कार नहीं किया, आदिनाथ या महावीर को नमस्कार नहीं किया, उन्होंने ज्ञान-ज्योति को नमस्कार किया है। बस यही तो होता है कि व्यक्ति सत्य को पकड़ने कहाँ-कहाँ दौड़ जाए। ज्योति शब्द को पकड़कर और दीपक सामने रखकर बैठ गए कि मैं ज्योति का ध्यान कर रहा हूँ। अहो ज्ञानी ! जो तेरी अपनी अखण्ड ध्रुव ज्ञान-ज्योति है उसका ध्यान करो, तब कहीं नहीं भटकोगे। अब तुमने दीपक सामने रखा, अब वह आ रहा है कि नहीं आ रहा है, आ रहा है कि नहीं आ रहा है? मालूम चला कि पूरी पर्याय हमारी दीपक में चली गई, निज का दीप जला ही नहीं। कुछ चिन्तवन मत करो, सहज बैठना सीख लो। भैया ! बस, सहज बैठना सीख लो तो सबकुछ ठीक हो जाएगा और कुछ बुलाने का विचार लाओगे तो आप बार-बार भागोगे। श्रमण संस्कृति हठयोग नहीं है। यह आत्मयोग है, यह सहजयोग है। इसमें जो भी शब्द आपको मिलेगा सब सहज है। सहजता में बड़ी-बड़ी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं और असहज हुए तो, मनीषियो ! ध्यान रखना कि,दुर्घटना कब होती है? जब असहज हो जाते हो और जब असहज हो जाते हो तब दुर्घटनाएँ घट जाती हैं। जो व्यक्ति सहज होता है, वह सजग होता है। एक शब्द और मिला लीजिए। सहज होना और सजग होना ये जीवन में अनिवार्य है परन्तु असहज होना और उद्दण्ड होना ये कोई आवश्यक नहीं है। इसलिए ज्योति का ध्यान करना है आज से आपको। परन्तु किस ज्योति का?

तज्जयति परं ज्योतिः, समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला, प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥1॥पु.सि. ॥

जिस कैवल्य-ज्योति में विश्व के चराचर द्रव्य प्रतिफलित हो रहे हैं, ऐसी कैवल्य-ज्योति जयवंत हो। अब वह ज्योति चाहे तीर्थंकर महावीर के अंदर हो रही हो, चाहे पारसनाथ के अंदर हो रही हो, चाहे राम के अंदर और चाहे हनुमान के अन्दर हो रही हो, मुझे किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे प्रयोजन है ''तत् परम्ज्योतिः' से। उस ज्योति का चिन्तवन करो।

आचार्य भगवान् कह रहे हैं-अहो ज्ञानी! एक समय के लिए पुनः आप सहज हो जाओ, बिल्कुल सहज हो जाओ और इतने सहज हो जाओ कि इस बात को आप भूल जाओ कि मैं जिनालय में बैठा हूँ। इस बात को भी आप भूल जाओ कि मैं मनुष्य-देह में बैठा हूँ। इस बात को भी आप भूल जाओ कि मैं कुटुम्ब के साथ हूँ। जो आप सुन रहे हो, वह यदि अनुभव के

साथ समझे तो समझना कि योगसार कुछ है और मेरा उद्देश्य मात्र इतना है कि 'योगसार' सुनकर आपको यह विश्वास जागृत हो जाए कि,महाराजश्री ! अकेले में बैठकर योगी कुछ पाता है। बिल्कुल शान्त हो जाओ और शान्त होकर वेदन करो कि यहाँ सबके बीच होने पर भी मैं सबसे भिन्न हूँ, मैं तो अकेला हूँ, एक हूँ फिर उस ज्योति का वेदन करना। विशाल समुद्र के मध्य में एकमात्र जल-ही-जल नजर आ रहा है, वहाँ एक पक्षी उड़ रहा है। अहो पक्षी ! तू जहाँ-जहाँ देखे, वहाँ तुझे नीर-ही-नीर नजर आता है और जिस वृक्ष से तू उड़ा था, वह वृक्ष कोसों दूर हो चुका है। वृक्ष से छूट चुका है और तूने उड़ान भरना प्रारंभ किया है। मध्य में एक जहाज जा रहा है। उस जहाज पर एक ध्वज-दण्ड है। एक मात्र वही सहारा है। यदि तू थक गया तो पंख फड़फड़ाकर गिरेगा। सागर में ही डूबेगा। भो ज्ञानी ! तेरे पास दो पंख हैं, एक श्रावक धर्म है और दूसरा यति धर्म है। रत्नत्रय का पोत बह रहा है। जिस पर्याय से तू चला है, वह वृक्ष तेरा छूट चुका है। अब यदि नहीं सम्हल सका और धर्म के पोत को तुमने छोड़ दिया, तो तेरा समुद्र में गिरना सुनिश्चित है। जब तुम अकेले होगे, एक होगे, उस समय कितने तुम्हारे साथ होंगे? वर्द्धमान महावीर स्वामी की माँ ने कहा था- बेटा ! आप अकेले हो, इसलिए राज्य करो। वर्द्धमान ने अपनी जननी त्रिशला से कहा था- हे जननी ! मैं समझता था कि सत्य शास्त्रों में लिखा है, लेकिन आज आपने सत्य को कहा है। माँ वही होती है जो सत्य को कहती है। हे माँ ! मैं विश्व में अकेला ही हूँ। लोक में जितने जीव हैं, वे मनीषियो ! सब अकेले ही हैं और अकेले का ज्ञान जिसे हो गया, वह समझ लेगा कि सत्य क्या है? आज तक आपने जानकारियाँ बहुत ली हैं, लेकिन यथार्थ यह है कि अकेलेपन का अभाव रहा। सत्य का निर्णय एकान्त में, अकेलेपन में होता है। जब घर में सबसे झगड़ा हो जाए, तब समझना कि आप कितने अकेले हो। घर में क्लेश हो जाए, प्रत्येक व्यक्ति आपको अपशब्द का प्रयोग करें, उस समय देखना कि आपको कितने लोग अपने लगते हैं। उस काल में तू ध्यान करने बैठ जाए कि जब सब ताने-बाने दे रहे हों, फिर कहना कि, ओहो ! आज नजर आया कि मैं कितनों के साथ था। अभी तक तो मैं स्वार्थियों के साथ था, परन्तु आज मैं सत्य के साथ आ गया। यदि विश्वास नहीं हो तो आप लोग परीक्षा कर लेना, भले ही लाखों लोग कुटुम्ब में तुम्हारे साथ हों। ये संयोग की बात है। लेकिन, अहो पक्षी ! वृक्ष पर बैठे हैं, शाम की बेला है, सुबह अकेले-अकेले जाना है। पो फटी तो सबके पंख फैल जाएँगे। तब तक सूर्य का उदय हो चुका होगा।

अभी कुटुम्ब के बीच में हो। मोह विगलित हुआ तो कैवल्य-ज्योति प्रकट हुई। अब तुझे पता चला कि सब अकेले हैं। कितना तो साथ है? विश्वास रखो, कितना साथ दे पायेंगे? जितना कर्म का बंध जिसने किया है, उतने कर्म के बन्ध के उदय को उसको ही भोगना होगा, चाहे वह किसी के निमित्त से बन्ध करें। द्रव्य के भोग में सब भोक्ता हो जायेंगे। द्रव्य कमाने में जो पाप कमाया आपने, उसके फल के भोक्ता कोई नहीं होंगे। परिवार के लोगों से

नहीं पूछना, मैं आप से पूछ लेता हूँ, आप क्या अपने पिताजी के पाप के फल के भागीदार हैं? क्यों भैया? ओफ हो....धिक्कार हो। अहो, अहो पिताजी ! अपने बेटे से पूछ लो, बेटा ! मैंने तुझे जन्म देने के लिए नवकोटि जीवों की हिंसा की है। यदि तुझे जन्म न देता और एक नौकर लगा लेता तो मुझे वेतन मात्र देना पड़ता। पर आपके जन्म के लिए मैंने वेतन ही नहीं तन भी दिया है, तब भी तू मेरा नहीं हुआ। क्यों पुत्र-पिताओ ! पुत्र के जन्म के लिए तुमने क्या-क्या नहीं किया? इससे बड़ी वस्तु क्या होगी, जिससे अखण्ड परम-ब्रह्म-धर्म का नाश किया है। तुमने पुत्र के पीछे क्या नहीं किया है? और वही बेटा जब पिता के गाल पर चाँटा कहीं मार दे, फिर पिताजी देखना कि ये क्या हो रहा है? अब भी तुम्हें एकत्व नजर नहीं आया, तब फिर तीर्थंकर महावीर भी अब समझाने नहीं आ पाएँगे। परमब्रह्म का नाश किया है तुमने, अशरीरी-भगवान् बनने वाली शक्ति का विनाश किया है तुमने, तब तुमने पुत्रों को जन्म दिया है। ज्योति को बुझाकर तुमने मोह का दीप जलाया है। वीतरागता की ज्योति तुमने स्वयं बुझाई है और कहते हो-महाराजश्री ! घर में अंधेरा है। नहीं, घर में अंधेरा था ही नहीं। किसी भी आगम-ग्रन्थ में नहीं लिखा है कि आत्मा अन्धकार-स्वभावी है। आत्मा ज्ञान-स्वभावी ही है। धिक्कार हो ! इस ज्ञान-स्वभावी परमज्योति को मैंने मोह के, राग के अन्धेरे में छुपा डाला है। मनीषियो ! विचार लो, समझ लो, इन स्वार्थियों के बीच से भाग चलो, अन्यथा ये तुम्हारी ज्योति को बुझा डालेंगे। निकल चलो इनके बीच से। ये कभी भी आपके मीत नहीं होंगे, विश्वास रखो। मैं भगवान् पारसनाथ स्वामी के चरणों में बोल रहा हूँ कि ये जितने लोग तुम्हारे साथ हैं, वे एक भी नहीं हैं तुम्हारे, एकमात्र अखण्ड-ज्ञानज्योति ही तुम्हारी है, आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी जिसको (केवल-णाण-सहाउ) केवलज्ञान-स्वभाव कह रहे हैं (जो अप्पा मुणि) जो ऐसी आत्मा को जानता है, मानता है (जीव तुहु) उस वीतराग ज्योति के प्रकाश में देखो, सबके चेहरे योगी-जैसे झलक रहे हैं, बिल्कुल शान्त हो गए। यथार्थ है, इतना पुण्य नहीं दिख रहा कि अकेले में बैठे को मिले। पर सत्य को ध्यान में रखना। सत्य की खोज एकान्त में ही होगी। अकेले होना पड़ेगा। जो पवित्र विचार का उद्भव होता है, वह एकान्त में निर्लिप्त भाव से होता है। निर्लिप्त भाव जहाँ आएगा, पवित्र भाव आ ही जाएगा। एक ज्योति की प्राप्ति के लिए इतना पुरुषार्थ है।

अहो ! आत्माओ ! अपने धवल पंख को मत काटो। यदि पंख छिन गए, कट गए तो पंक में गिरना पड़ेगा। जब तक पंख हैं नभ में उड़ जाओ, सिद्धशिला की ओर। निश्चय और व्यवहार, हे हंस- आत्मा ! तेरे ये दो पंख हैं। यदि कोई यह कहे कि निश्चय के पंख को अलग कर दो, तो नहीं उड़ पाओगे और व्यवहार के पंख को तुमने अलग कर दिया तो भी नहीं उड़ पाओगे। रत्नत्रय धर्म निश्चय रूप भी है और व्यवहार रूप भी है। उन दोनों के मध्य में हंस-आत्मा उड़ रही है। जिसने दोनों पंखों को सम्हाल लिया, वह सिद्ध शिला पर पहुँच गया और जिसने एक भी पंख को कुतर दिया है, वह कभी उड़कर पहुँच नहीं पाएगा। इसलिए, ज्ञानी

आत्माओ ! ध्यान रखना, ये दोनों पंख भगवती-चिड़िया के हैं। इन्हें तुम विवादों के पंख मत बनाओ। ये सिद्धालय की ओर उड़ने के दो पंख हैं। ये पक्ष नहीं, ये मोह नहीं, ये राग नहीं, ये द्वेष नहीं, ये मोक्ष-पथ पर ले जाने वाले दो पंख हैं। अज्ञानी जीव पंखों से उड़ान नहीं भर रहे हैं, ये पंखों की सुन्दरता को ही देखकर झगड़ रहे हैं। ये क्या हो रहा है? अहो हंस ! ये पंख तुझे देखने को नहीं दिए प्रकृति ने, ये पंख तुझे उड़ान भरने के लिए दिए हैं। अहो मुमुक्षु आत्माओ ! यह निश्चय-व्यवहार तुम्हें देखने, झगड़ने के लिए नहीं दिये हैं। ये निश्चय-व्यवहार तुम्हें मोक्ष-भवन में जाने के लिए, उड़ने के लिए दिये हैं। उड़ो। झगड़ना मत सीखो, उड़ना सीखो और उठना सीखो। परन्तु ध्यान रखना, पंखों में बैठकर कुतरना मत सीखना। इन चूहों को आज से अलग कर देना, जिनको पंखों ने ही सम्हाला है, पंखों ने ही सुरक्षित किया है, किन्तु उन्होंने पंखों को ही काट डाला है। अहो हंस ! तूने तो अच्छा ही किया था, लेकिन क्या करूँ? चूहों की आदत ही ऐसी होती है, तो क्या करें? हंस का दोष नहीं है। यह वीतराग जिनेन्द्रदेव की वाणी का दोष नहीं है। ये क्षुद्राणु-जैसे जीवों के कुलषित परिणामों का दोष है, जो वीतराग वाणी के निश्चय-व्यवहार के दोनों पंखों में लगकर कुतर रहे हैं और, मनीषियो ! समाज में गंदगी फैला रहे हैं। भगवान् सर्वज्ञ देव की वाणी है-अहो हंस ! तेरी दृष्टि मोती पर ही हो।

आप लोग कहाँ बैठे हो इस समय? जिनालय में बैठे हो। अहो ज्ञानी ! जिनालय में बैठे-बैठे अनंतकाल बीत गए, अब निज के आलय की ओर चलो। (जइ चाहहि सिवतुहुँ) यदि तू शिवसुख को चाहता है (लाहु) शीघ्र ही तो, (जोइ जाइहिं भणिउँ) ऐसा योगियों ने कहा है कि उस परम-कैवल्य-ज्ञान-ज्योति का वेदन करो। जहाँ धूप नहीं है, आताप नहीं है, मात्र प्रकाश-ही-प्रकाश है और वह ज्योति कैसी है? स्वपर प्रकाशी है, स्वयं को भी प्रकाशित करती है और दूसरों को भी प्रकाशित करती है प्रदीपवत्। दीपक के समान है यह कैवल्य-ज्योति और जिसने कैवल्य को प्राप्त कर लिया, बस वह केवल है, वह कोई दूसरा नहीं है। ज्ञान का क्या सुख है? जिसे ज्ञान का सुख नजर आ गया, उसे भोगों का सुख फीका नजर आता है। इसलिए जीवन में ये नोट कर लेना-

यथा यथा समायति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचंते, विषयाः सुलभा अपि ॥37॥इष्टोपदेश॥

जहाँ उत्तम तत्त्व की समवृत्ति का उदय होता है, वहाँ सुलभ-से-सुलभ विषय भी रुचिकर नहीं लगते हैं और जहाँ विषयों से अरुचि हो जाती है, मनीषियो ! वहीं तत्त्व-ज्योति प्रकट हो जाती है। जीवन में कभी-न-कभी तो आप लोगों ने सामायिक की होगी न? बता सकते हो कि क्या आनंद आया था? निज से मिलने का, निज से बोलने का, निज से चर्चा करने का यदि कोई समय है तो, मनीषियो ! वह स्वर्ण समय सामायिक का ही है। उस ज्योति की प्राप्ति का कोई अनोखा उपाय है तो मात्र, मनीषियो ! सामायिक ही है। कैवल्य-ज्योति उदित हो

जाएगी। अड़तालीस मिनिट तक यदि सामायिक सम्यक् हो गई तो, मनीषियो ! तुम्हें केवली भगवान् बनने से कोई रोकनेवाला नहीं है। ये जैनसूत्र है। वैसे आप घण्टों बैठे रहो, पर सामायिक 48 मिनिट हो गई यानी एक अन्तर्मुहूर्त मात्र ध्यान लग जाता है शुक्लध्यान रूप से तब, मनीषियो ! केवलज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है। ध्यान का उत्कृष्ट काल इतना ही है, बाकी का तो अभ्यास का ही काल है, बैठने का काल है, परन्तु ज्योति को प्रकट करने का काल तो मात्र 48 मिनट ही है। जब ज्योति स्वयं की प्रकट हो जाएगी, फिर योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं कि अब आपको कहीं नहीं भटकना है। क्यों, ज्ञानी आत्माओ ! जलते दीप को ढूँढने के लिए कितने दीप आपने जलाए हैं? छतरपुर में किसी ने देखा, दीप जल रहा था, उसे उठाने के लिए जब आप गए, तब टार्च लेकर गए थे न? अहो......क्या जीव को ज्ञान नहीं है कि जब दीप जल ही रहा है तो अन्य दीप जलाने की क्या आवश्यकता है? बस, मुमुक्षु आत्माओ ! जिस दिन तेरा दीप जल जाएगा, उस दिन विश्व के दीप बुझ भी जाएँ तो कोई विकल्प नहीं करना है। एक मेरा दीप जले। पर दीप जलेगा तभी, कब? दीपावली आप लोगों ने मना ली न? दीपावली में कितने दीप जलाए? बड़ा दीप जलाकर रख दिया था और जब शेष दीप जलाए थे, तो क्या किया था? दीप से दीप जुटाकर शेष दीप जला लिये थे। अहो ! निज में दीप तभी जलते हैं, जब दीप के पास पहुँचते हो और दीप के ऊपर नहीं जाते, नीचे नहीं आते हो। ज्योति से ज्योति जलती है। हे आत्माओ ! किसी की जली ज्योति को बुझाने का प्रयास नहीं करना। जलती ज्योति से अपनी ज्योति को जला लेना। समझ रहे कि नहीं? तेल और बाती को बढ़ा लेना, अपनी ज्योति को जला लेना, पर किसी के जलते दीप को बुझाने का प्रयास नहीं करना। तुम किसी के घर में घी का दीप न रख सको, मत रखना, पर जलते दीपक को बुझाने का प्रयास मत करना, यदि मानव हो तब। यह योगसार है। योगसार बुझाने की बात नहीं कर रहा है, जलाने की ही बात कर रहा है। जब दीप जलेगा, तो कहीं आपको दूसरी जगह जाने की आवश्यकता नहीं है। फिर तो आपको वहाँ सबकुछ नजर आवेगा ही। इसलिए ध्यान रखना, केवली भगवान् एक स्थान पर बैठकर सारे विश्व को निहारते हैं। सारे विश्व को देखते हैं, फिर भी वे सब से परे होते हैं। यदि विश्व-ज्ञाता, विश्व-दृष्टा बनना है, तब विश्व को जानना-देखना बन्द कर दो। जब तक तुम्हारे मन में विश्व को जानने के भाव रहेंगे, तब तक तुम विश्व-ज्ञाता नहीं बन पाओगे, विश्व-दृष्टा नहीं बन पाओगे। देखा,सम्मेदशिखर में भगवान् चंद्रप्रभ स्वामी की टोंक कितनी दूर है। प्रभु ! आप छुप सकते हो, पर आपकी ज्योति छुपने नहीं देगी। दोष कहीं भी छुपा के जला दो, लेकिन वह कहता है कि मैं तो यहाँ हूँ। मनीषियो ! कुछ लोग इसलिए दुःखी हैं कि महाराज, विश्व में मेरा नाम कैसे हो? यह आप चिन्ता मत करो। तुम मात्र अपनी ज्योति जला लो, अपने आप दिख जाओगे। 'बुझे हैं बुझे हैं' - तुम कितने ही चिल्लाना। तुम अगर बगल में भी बैठे हो, तब बोलना कि हम यहाँ बैठे हैं,फिर भी नहीं दिखोगे कि तुम कहाँ

हो अगर, ज्योति नहीं जल रही है तो। मालूम है, आपके इस छतरपुर में जो टावर है, उसमें एक लाल बल्ब लगा है। कितनी दूर से दिखता है? अहो मुमुक्षु आत्माओ ! यदि ज्योति जल रही है, तो दूर से ही नजर आती है और ज्योति अगर बुझी है, तो बगल में हो तब भी नजर नहीं आती है। इसलिए जीवन में ध्यान रखना, आचार्य भगवान् कह रहे है कि पहले ज्ञान की, वैराग्य की, चारित्र की ज्योति जला लो, फिर केवलज्ञान की ज्योति अपने आप जल जाएगी। लोग तो यह सोच रहे हैं कि अभी घर जाकर बैठकर विचार करते हैं कि कैसे जलती है ज्योति? ऐसे नहीं जलेगी भइया, तुम कितना ही कुछ कर लो। जब तक कपड़ों के लथड़ा नहीं उतरेंगे, तब तक नहीं जलेगी। स्वयं पहनो, दुनियाँ को पहनाओ और कहलाते हैं दिगम्बर। है न बड़ा आश्चर्य? क्यों, आप सब दिगम्बर हो न? और सबसे ज्यादा दुकानें कपड़ा की तुम लोगों के पास ही हैं। विचार करो, जीव की दृष्टि देखो कहाँ है? लेकिन चिन्ता नहीं करना, फिर भी दिगम्बर हैं। इसलिये, मनीषियो ! ध्यान रखो, तुम लोग दिगम्बर हो। आज एक बात मैं आप लोगों से जरूर कहूँगा कि तुम कहीं जाते हो तो बड़े हर्ष, बड़ी प्रसन्नता के साथ कहते हो, कि हम दिगम्बर हैं। बड़े गौरव के साथ कहते हो। अहो ! सुनो, तुम्हारे साधुओं ने इतने उपसर्ग/परीषह सहन किए एवं इस दिगम्बर वेष को प्राप्त करके सुरक्षित रखा है और तपस्या भी कर रहे हैं और तुम्हें दिगम्बर कहलाने का पुण्य दिला रहे हैं। अब जो दिगम्बर को ही नहीं माने, वह दिगम्बर कैसे है? साधना कोई कर रहा है और श्रावक कह रहे हैं कि मैं दिगम्बर हूँ। इससे बड़ी वस्तु तुम्हें साधुओं से क्या चाहिए? तुम कितने ही ऊपर चले जाना,पर तुम्हारी पहचान दिगम्बर से ही होगी, अन्यथा तुम कुछ नहीं हो। समझ गए न? अहो ! कितनी उड़ान भर लेना, पर पहचान तो दिगम्बर से ही होगी। अन्यथा कोई दूसरा नाम रखो तुम अपना।

आचार्य भगवान् कह रहे हैं-(को सुसमाहि) कौन समाधि करे ? क्योंकि कैवल्य-ज्योति जग गई है न। अब गम्भीर बात कर रहे हैं। अब मैं इस विकल्प में भी नहीं आना चाहता हूँ कि मैं ध्यान करूँ, मैं धारणा करूँ, मैं प्रत्याहार करूँ, मैं श्वासोच्छ्वास को रोकूँ, मैं प्राणायाम करूँ। अहो ज्ञानी ! कहाँ तू जड़-क्रिया में पड़ा है। (को सुसमाहि) कौन समाधि करे? (को अंचउ) कौन पूजा-अर्चना करे? सुनो! छोड़ न देना। यह परम्योगी की दशा चल रही है। कौन अर्चना करे? किसके चरण छुए, किसके न छुए? किसको स्पर्शे? किसको न-स्पर्शे? (वंचउ) किसको ठगे? वंचना करे? बहुत गहरी बात है, सुनते जाना भइया! (को सहि) किनके साथ रहें? (हल कलहु) मैत्री करूँ कि कलह करूँ? (जहिं कहिं जावउ) जहाँ-कहीं जाऊँ ? (तहिं) वहाँ मुझे तो मात्र आत्मा ही (समाणउ) दृष्टिगोचर होती है। सुनो! किसे मैं शत्रु कहूँ? किसे मैं मित्र कहूँ? मैं तो जहाँ देखता हूँ वहाँ आत्मा ही आत्मा नजर आती है। जब आत्मा ही नजर आती है, तो मैं शत्रु किसे कहूँ? किसे भोग्या कहूँ? किसे भोगी कहूँ? मुझे तो मात्र भगवान् नजर आते हैं। वहाँ लगाना समयसार। पूजन का समय आ जाए तब

समयसार दिखता है और भोगों का समय आ जाए तब तुम्हारा समयसार भाग जाता है। वहाँ लगाना समयसार। ओफ.... हो! वे भी भगवान्, मैं भी भगवान् और भगवान् भोगी हैं क्या? वह तो आत्मानंद के भोगी हैं। कठिन है? कुछ कठिन नहीं है। मालूम है, तुलसीदास जी रात्रि की अन्धेरी में पहुँचे ससुराल। तब रस्सी के धोखे में साँप की पूँछ को पकड़कर चढ़ गए ऊपर। ओ हो... नारी के प्रति क्या तीव्र राग था। काली चोटी के राग में कालिया नाग को ही नहीं देखा। पत्नी ने पूछा-स्वामी! आप कैसे ऊपर आ गए? बोले- एक रस्सी पड़ी थी। दीपक से देखा, रस्सी थी कि काला नाग था? मालूम है, उस समय पत्नी ने क्या कहा था? 'स्वामी! जैसा तीव्र राग आपको मेरे प्रति है, ऐसा तीव्र राग प्रभु के प्रति हो जाता तो आप परमात्मा बन जाते। तुम्हें नाग नहीं दिखा, नारी दिख गई।' ओ हो... चरण छू लिए, 'अहो! गुरु-माता, अब मैं जा रहा हूँ।' मैं चाह रहा हूँ कि छतरपुर में प्रत्येक के घर में ऐसी गुरु-माता अगर बन जाए तो सब मुनि-महाराज बन जाएँ। जितना राग तुम्हें मेरे प्रति है, उतना प्रभु-चरणों में नहीं है। इसलिए, मनीषियो!ध्यान रखना, मत किसी को ठगना, मत किसी को कुछ कहना। लेकिन ध्यान रखना, ये सब तुम्हारे बनने वाले भावी भगवान् हैं।

आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी डाँटने में भी नहीं चूक रहे हैं। गाथा 41 में क्या लिख रहे हैं? (धूत्तिम) अहो धूर्त! इतना कठोर शब्द भी मधुर लग रहा है। क्या करूँ, प्रभु! इतना मैं ढीठ बन चुका हूँ, कि आपने अपनी सीमा से भी बड़ा शब्द कह दिया, फिर भी अज्ञानी जीव पिघल नहीं रहे हैं। भइया! सब कुछ छोड़ देना, पर सीता की उस बात को मत भूल जाना। राम ने वनवास तो दे दिया था, पर कृतान्त वक्र सेनापति ने कहा था कि, हे जानकी! रथ से उतर जाओ, चक्र को ठीक करना है। जब रथ से जानकी नीचे उतरकर शिलातट पर बैठ गईं तो सेनापति की आँखों में से अश्रु-धारा बहने लगी। उस समय सीता ने कहा था- सेनापति! आँखों को आर्द्र क्यों कर रहे हो? चक्र को ठीक करो न। सेनापति कहता है- हे विदेही!संसार में चक्र को सुधारा जा सकता है, परन्तु कर्म-चक्र को कौन सुधारे? क्या कह रहे हो आप? हे माँ! रथ का चक्र नहीं टूटा, आपके कर्म का चक्र टूट चुका है। महाराज राम ने आपको वनवास दे दिया है, आपको छोड़ दिया है। जानकी ने क्या कहा? सेनापति! आप विकल्प मत करो, हमारे स्वामी राम से कह देना कि आपने जैसे लोक-अपवाद में आकर सीता को छोड़ दिया, वैसे ही लोक-अपवाद में आकर पवित्र वीतराग धर्म को मत छोड़ देना। अहो ज्ञानी आत्माओ! लोक की चर्चाओं में आकर गुरु-चरणों को मत छोड़ देना। हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे तो ठौर नहीं।

गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूँ पाय। बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो बताय॥

गोविन्द तक लाने वाला है तो गुरुद्वार ही है। जो गुरुद्वार तक नहीं पहुँच पाया, उसे प्रभु-द्वार तो मिलने वाला है ही नहीं। ऐसे महान् ग्रंथ में आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं 'गुरुहु पसाएँ'। इस जीवन में ध्यान रखना, बिना गुरु के तुम कितना ही ऊपर उड़ लेना,

लेकिन गुरु की डोर छूट गई तो शिष्य का पतन सुनिश्चित है। धन्य हो उस एकलव्य को, जिसने मिट्टी के द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीख ली थी। धिक्कार हो उन शिष्यों को, जो साक्षात् गुरु की गुरुता को नहीं निहार पाते हैं। एकलव्य ने मिट्टी के द्रोणाचार्य को गुरु बना लिया। बनाया था कि नहीं बनाया था? अहो! पढ़ा था आपने, कि पढ़ डाला था? मनीषियो! अब पढ़ के डालना मत। पढ़ लेना, पढ़ के लेना। आज से भाषा बदल देना, अब नहीं कहना 'पढ़ डाला'। पढ़ लेना। पढ़ लिया, ऐसा बोलना। एक मुमुक्षु ज्ञानी जीव की भाषा में भी भाव छिपे होते हैं। भैया! आप अपने बच्चे को पढ़ा रहे थे और उसको लिखा रहे थे 'ब'। एक हिंसक के भाव और अहिंसक के भावों को देखना। एक कहता कि, बेटा! ब बनाओ, डण्डा खींचो, उसमें चूल्हा बना दो और पेट भर दो। दूसरा कहता है कि उसका पेट चीर दो। ये हिंसक की भाषा है ''ब'' बनाने की।

भावों की अवस्था नानारूप हैं, भवों की अवस्था भी तद्रूप होती है। भव को निर्मल बनाना चाहते हो तो भावों को निर्मल करो। देखने की अवस्था में परिवर्तन न करो, दृष्टि को स्वच्छ करो, तो सृष्टि स्वच्छ होगी। गुरु को गुरुरूप में देखोगे तो प्रभु बनने की दृष्टि मिलेगी। यदि गुरु के प्रति गुरु-भाव नहीं है तो ध्यान रखना, प्रभुत्व-भाव नहीं बन सकेंगे। आज गुरु पर शंका है, कभी प्रभु पर भी शंका हो जायेगी। परमात्मा पर जिसकी शंका हो गई तो परमात्म वाणी भी शंका-स्थान को स्वतः प्राप्त होती है। अहो! जिसे तीनों पर शंका है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं। जो सम्यग्दृष्टि नहीं, वह मुमुक्षु कैसा? संशय में, शंका में जीनेवाला मोक्षमार्गी हो नहीं सकता।

अहो ज्ञानी आत्माओ! भूतार्थरूप से स्वहित की आकांक्षा है तो गात्र-मात्र परिग्रहधारी वीतराग भाव में विहार करनेवाले निर्ग्रन्थ गुरु की शरण को प्राप्त करो। गुरु-प्रसाद के बिना आत्मदेव की सिद्धि होनेवाली नहीं है। जब तक जीव को स्वात्मा का सच्चा भान नहीं होता, तभी तक नाना कुतीर्थों में परिभ्रमण करता है। क्या खोटे तीर्थों के भ्रमण से आत्मतीर्थ की प्राप्ति होगी? नहीं। यह अच्छी तरह समझना कि गुरु के अभाव में जीव मूढ़ता को प्राप्त होता है। स्वपर विवेक-ज्ञान के ज्ञाता गुरु-चरण की शरण जब तक नहीं मिलती, तब तक स्वात्म-ज्ञान का निज उपादान भी जाग्रत नहीं होता। अतः मुमुक्षुओं को केवलज्ञान-स्वभाव का अनुभव करना है तो स्वानुभव का अनुभव करने वाले गुरुदेव की खोज करें।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

निजदेह-देवालय विराजा तेरा देव

योगसार

तित्थहिं देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि वुत्तु ।
देहा देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु ।।42 ।।

अर्थ- श्रुतकेवलि ने कहा है कि तीर्थों में, देवालयों में देव नहीं है। जिनदेव तो देह-देवालय में विराजमान है-इसे निश्चित समझो।

देहा-देवलि देउ जिणु, जणु देवलिहिं णिएइ ।
हासउ महु पडिहाइ इहु, सिद्धे भिक्ख भमेइ ।।43 ।।

अर्थ- जिनदेव देह-देवालय में विराजमान हैं, परन्तु जीव (ईंट, पत्थरों के) देवालयों में उनके दर्शन करता है-यह मुझे कितना हास्यास्पद मालूम होता है। यह बात ऐसी ही है, जैसे कोई मनुष्य सिद्ध हो जाने पर भिक्षा के लिये भ्रमण करे।

मूढ़ा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देहा-देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहि समचित्ति ।।44 ।।

अर्थ- हे मूढ़! देव किसी देवालय में विराजमान नहीं है, इसी तरह किसी पत्थर, लेप अथवा चित्र में देव विराजमान नहीं है। जिनदेव तो देह-देवालय में रहते हैं- इस बात को तू समचित्त से समझ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। यहाँ आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने बड़ा गहरा सूत्र दिया है। आत्मदृष्टि यानी परादृष्टि, अनात्मदृष्टि यानी अपरादृष्टि। परा यानी श्रेष्ठ/उत्कृष्ट। जब एक आत्म-इच्छुक मुमुक्षु जीव शून्य में रमण करने लगता है, तो उसकी पुण्य-पाप पर दृष्टि नहीं पहुँचती है। पंच-परमेष्ठी को भी जब पर-रूप में निहारने लगता है, वहाँ जन-पुरजन, जनसमुदाय आदि उसकी आँखों के सामने आता ही नहीं है। कितनी गम्भीर वह दशा होगी, जब सिर पर जलती हुई सिगड़ी रखी हुई है, साथ में कीलें भी ठोकी हैं और धधक रही है वह सिगड़ी। धन्य हो परम्योगी ! जो कह रहे थे कि आप कीलें ठोक सकते हो, आप सिगड़ी रख सकते हो, लेकिन मेरी आत्मा को तुम जला नहीं सकते हो। इस परम्ध्यान की सिद्धि के लिए जीवन में ध्यान रखना, चाहे कोई बाणों की वर्षा करे, चाहे वाणी की करे, परन्तु तुम चिन्तवन यही करना-

अहो! गजकुमार मुनिराज के ऊपर तो कीलें ठोकी थीं, तुम तो केवल वाणी ही फेंक रहे हो, बाण तो नहीं चुभा रहे हो। यह ज्ञानी का चिन्तवन होता है और अज्ञानी मन में खिन्न होकर हर्ष-विषाद को प्राप्त हो जाता है। पर ये ध्यान रखना, जिनवाणी में लिखा है कि शत्रु द्वारा पीड़ित करने पर समता में रहने से जितने कर्मों की निर्जरा होती है, उससे कई गुने कर्मों की निर्जरा उस समय होती है जब तुम्हारा सगा, घर का, नजदीक का, बगल का जीव तुम्हारे ऊपर उपसर्ग करे और तुम फिर समता में रहो। यह समता बड़े कर्मों की असंख्यात-गुणी निर्जरा कराती है।

भो ज्ञानी! 'कार्तिकियानुपेक्षा' जैनदर्शन का महान् ग्रन्थ है। बारह भावनाओं के अंतर्गत संक्षेप में संपूर्ण आगम के सार को आचार्य भगवान् कार्तिकिय स्वामी ने लिख दिया है। यह सत्य है कि अनुभव से जो भी लिखा होता है, वह जीवन में लख-लखकर लिखा होता है। आचार्य कार्तिकियस्वामी मुनिराज ने जो लिखा है, वह किसी का सुना हुआ नहीं लिखा, किसी का देखा हुआ नहीं लिखा; बल्कि उनके जीवन में जो गुजरा है, वह लिखा है। सम्पूर्ण विषमताओं को झेलकर भी जिसकी शिशु-अवस्था ही वैराग्य-अवस्था में ढल गई हो, उसके वैराग्य की दशा क्या होगी? सावन का महीना, छोटे-छोटे बच्चे खेल रहे थे, कह रहे थे-मेरे मामा के यहाँ से वस्त्र आए हैं,मेरे नाना के यहाँ से खिलौने आए हैं। एक नन्हा-सा बालक रोकर पहुँचता है अपनी माँ के पास, माँ! मेरे नाना ने कुछ नहीं भेजा? माँ के नेत्रों से आँसू टप-टप टपकने लगे। हे जननी! रोने की क्या बात है? आप तो ये बताओ, क्या मेरे नाना नहीं हैं? क्या मेरे मामा नहीं हैं? वहाँ से वस्त्र क्यों नहीं आए हैं? अविरल अश्रुधारा बहाते हुए माँ कहने लगी-बेटा! जो तेरे पिता हैं, वही तेरे नाना हैं। माँ! क्या कह रही हो? हाँ बेटा! जो पिता हैं, वही तेरे नाना हैं। अहो जननी! ऐसा दुष्कर्म कैसे हो गया? क्या लोक में कोई समझाने वाला नहीं मिला? पूरी कथा माँ ने बेटे को सुना दी, बेटा! मेरे पिताजी ने मंत्रीगणों से पूछ लिया कि राज्य में जो सुन्दर वस्तु है,उसका स्वामी कौन है? विवेकहीन मंत्रियों ने कह दिया कि, महाराज! सम्पूर्ण वैभव के स्वामी आप ही हैं। अचानक वीतरागी-स्वामी पधार गये। मुनिराज से भी पूछा कि, महाराज! इस संसार में, इस राज्य में इतना वैभव है, उसका स्वामी कौन है? तब मुनिराज ने कहा- 'राजन्! स्वमाता,स्वकन्या, जिनदेव, निर्ग्रन्थ गुरु इन पर तुम्हारा कोई स्वामित्व नहीं है।' पर ये सत्य है कि जिसके विनाश का काल आ जाता है उसे गुरु की हितकारी वाणी रुचिकर लगती कहाँ है? पिताजी ने मुनिराज की बात को नहीं स्वीकारा और मेरे साथ शादी कर ली। जैसे ही ये शब्द सुना, वह ग्यारह वर्ष का बालक कहता है- माँ! मैंने देख लिया संसार की दशा को। क्यों बेटा?

विषयासक्त चित्तानाम् गुण: को विनश्यति।
न मनुष्यं ना देवस्यं, नाभिजा सत्य वा॥ क्षत्रचूड़ामणि॥

जिसका चित्त विषयों में आसक्त है, उसके अन्दर न मानुषता है, न सत्यता है और न देवत्व

है। वहाँ सम्पूर्ण गुणों का विनाश हो चुका है।

अहो माँ! अब मैं उस वस्तु की प्राप्ति के लिए जा रहा हूँ, जिसे भगवान् ने प्राप्त किया है। माँ अँगुली पकड़ रही है बेटे की और बेटा कह रहा है-माँ! अब मैं उस माँ की अँगुली पकड़ना चाहता हूँ, जिस माँ की अँगुली पकड़ने से फिर कभी बेटा नहीं बनाना पड़ेगा। ग्यारह वर्ष का वह बालक घर से निकल गया और जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। दिगम्बर-मुनि बनकर विहार करने लगे और आगमग्रन्थों का घनघोर अध्ययन किया। तभी वैराग्य के अन्दर डुबकियाँ लगा-लगाकर 'बारबाणुपेक्खा' (बारह अनुपेक्षा) ग्रन्थ को लिखा। 'कार्तिकेयानुपेक्षा' ग्रन्थ इन्हीं महाराज द्वारा रचित है।

देखना संसार की दशा को, एक दिन वही मुनिराज आहारचर्या के लिए निकल रहे थे। महल में ऊपर झरोखे में उसकी गृहस्थावस्था की बहिन बैठी हुई थी अपने पति के साथ। दूर से मुनिराज को जाते देखा। भगिनी दौड़कर भवन के नीचे आ गई। पति को सहन नहीं हुआ कि मुझे छोड़कर ये नंगे के पास क्यों चली गई? जिसकी दृष्टि नंगी होती है, उसे दिगम्बर-वेश में नंगापन झलकता है और जिसकी दृष्टि संयम के आभूषण से सुसज्जित होती है उसे, मनीषियो! मुनिराज में महाराज दिखते हैं।

राजा ने आदेशित कर दिया-इन मुनि की चमड़ी को खींच लो। अहो! एक बहिन खड़ी है सामने और उसके पति ने आदेशित कर दिया कि मुनि की चमड़ी को खींच लो। देख लिया, विधि का यही विधान है। जब दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ रहा है, तो मैं अपनी साधुता को क्यों छोड़ूँ? मुनिराज वहीं समाधि लेकर खड़े हो गये। वसूले से उनके शरीर को छीला जा रहा था। वे योगी क्या सोच रहे थे- दीवाल ही तो टूट रही है, देव तो सुरक्षित है। दीवाल ही तो गिरी है, देव नहीं गिरा। हमारी दृष्टि देवालय पर नहीं है। देव है, तो देवालय है और देव ही न बचे तो देवालय किस बात का? इसलिए मैंने अपने देव की रक्षा कर ली है। अब देवालय गिर भी जाए तो मुझे कोई विकल्प नहीं है। देह 'देवालय' है, आत्मा 'देव' है। यहाँ था समयसार, यहाँ था योगसार। इस आत्मदेव की रक्षा हो गई तो, मनीषियो! देह की कोई चिन्ता नहीं करना। यही धर्म है।

ज्ञानी आत्माओ! जब भी तीर्थंकर जिनेन्द्र के चरणों में पहुँचना, कभी ये मत माँगना कि मेरा यश फैल जाए। अरे, हम अरहंतदेव के चरणों में क्या माँगने गए? कर्म? यशः कीर्ति एक कर्म है, अयशः कीर्ति भी एक कर्म है, और शरीर भी नो-कर्म है। हमने किसको माँगा है? अरहंतदेव के चरणों में कर्मक्षय के लिए जाना था, पर वहाँ पर बैठकर तूने कर्म ही को माँगा है। आप दुनियाँ की चिंता मत करना कि कौन कहाँ जा रहा है? ऐसा विकल्प करना भी तुम्हारे मोक्षमार्ग में बाधक है। अंतिम दृष्टि यही हो कि मेरे भाव कहाँ जा रहे हैं? जैसे अपनी संतान को आप विषयों से रोकते हो, ऐसे अपने मन को आप वासनाओं से रोकने लग

जाओ,तो संतान को रोकने का मौका नहीं मिलेगा। यदि वासना रुक गई होती तो आज तुमको संतान के पीछे रोना नहीं पड़ता। आप अपनी वासनाओं को नहीं रोक सके, इसलिए संतान के पीछे रो रहे हो।

परम्-अध्यात्म की दृष्टि से आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी इन कारिकाओं में कह रहे हैं कि व्यवहार दृष्टि से तीर्थ, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु ये हमारी साधना के साधन तो हैं, लेकिन साध्य नहीं हैं। यदि साध्य कोई है, तो एक मात्र रत्नत्रय से युक्त मेरी आत्मा है। साधन को साधन स्वीकारिए और साध्य को साध्य स्वीकारिए। विकल्प वहाँ होते हैं, जब कोई अज्ञानी/मूढ़-प्राणी साधन को साध्य मान लेता है, फिर वह कभी साध्य की सिद्धि नहीं कर पाता है; क्योंकि मार्ग, मार्ग है; मार्ग मार्गी नहीं है। मोक्ष 'मार्गी' है और 'रत्नत्रय' मोक्ष का मार्ग है। उस मार्ग पर देव-शास्त्र-गुरु साधन हैं। यानी वस्तु-व्यवस्था का ज्ञान होना अनिवार्य है। ये सत्य है कि दाल-रोटी से तुम्हारा पेट भरेगा, लेकिन साथ में ये भी विश्वास रखना कि दाल स्वतन्त्र है, उसमें पानी स्वतन्त्र है, नमक स्वतन्त्र है, हल्दी स्वतन्त्र है। ऐसे ही मोक्षमार्ग कह रहा है कि आप मुझे जानो, मुझे पहचानो, लेकिन इतना ध्यान रखना कि हमसे भी राग मत करना। ये पिच्छी कह रही है, कमण्डल कह रहा है कि हम आपको मुनिराज बनाए हैं, हमारे बगैर तुम मुनि बनकर नहीं रह सकते हो, लेकिन ध्यान रखना, यदि हमसे भी तुमने राग कर लिया तो तुम मुनि नहीं रह पाओगे। यह शरीर कह रहा है- यदि मैं न होता तो आज तुम दिगम्बर मुनि नहीं बन सकते थे। यदि मैं निरोग नहीं होता, तुम्हारे शरीर में कोई असाध्य रोग हो जाता तो तुम मुनि नहीं बन सकते थे। ये शरीर कह रहा है कि यदि मेरी एक आँख फूट गई होती, कान टूट गया होता, हाथ टूट गया होता तो तुम मुनि नहीं बन सकते थे। लंगड़े, लूले, अन्धे कभी भी मुनि नहीं बनते हैं, क्योंकि प्रतिमा अखण्ड होती है, निर्दोष होती है। शरीर कह रहा है आत्मा से-आप मेरी कृपा स्वीकारिए। मेरी महिमा से आज तुम पंचपरमेष्ठी भगवान् कहला रहे हो, लेकिन ध्यान रखो- हम से भी राग करोगे तो तुम भगवान् नहीं बन पाओगे। बिना देह के तीर्थंकर नहीं बनते, बिना देह के भगवान् नहीं बनते, परन्तु देह में जाने वाला भगवान् नहीं बनता। यदि तुम्हें परमाणु-प्रमाण भी शरीर में राग है, मोह है, ममत्व है तब, भो मनीषियो! सिद्धि संभव नहीं है। सम्पूर्ण आगम का अभ्यास कर लेना, लेकिन मोक्ष आगम से नहीं होता है, मोक्ष आगम की चर्या से ही होता है। मोक्ष ज्ञान से नहीं होता है, मोक्ष रत्नत्रय की साधना से ही होता है। इस बात के लिये अगली कारिकाओं में आचार्य भगवान् बड़े गहरे सूत्र दे रहे हैं। कहीं आपके महाराज बनने के भाव आ रहे हों और कहीं मंदिर, मठ आदि तीर्थ बनाने की भावना भी आ रही हो, तब बहुत अच्छा होगा कि पहले बनवा लो, जिससे कि आप महाराज बनकर निर्दोष, निर्विकल्प साधना तो कर पाओगे। किसी सेठ के पीछे पड़कर तुम्हें यह तो नहीं कहना पड़ेगा कि ये दीवाल खड़ी

करना है। आचार्य योगीन्दुदेव कह रहे हैं-यदि निर्ग्रन्थ योगी बन जाओ, फिर भवनों की दीवाल खड़ी करने मत लग जाना, फिर रत्नत्रय के महल की दीवाल को सुरक्षित करना। भो ज्ञानी! अध्यात्म गहन है, इसलिए लोग चल भी नहीं पाते और सुन भी नहीं पाते हैं। उनको डर लगता है कि सुन लूँगा तो क्या होगा? उनकी दृष्टि में अध्यात्म खोखला नजर आता है। पर ये ध्यान रखना, सम्पूर्ण चर्या अध्यात्म के अभाव में खोखली है, वह परमार्थ नहीं है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह चुके हैं कि अध्यात्म के अभाव में व्रत, संयम, शील ये मोक्ष के हेतु नहीं बन पायेंगे।

कारिका 42 व 43 में परम्-निश्चय-दृष्टि से उस परम योगी के लिए आचार्य भगवान् यह संकेत कर रहे हैं कि, अहो मुनिराज! जब तुम स्वयं अपने निज-देही को ध्यान में निहारने ही लगे हो, अब आपको पाषाण और धातु की प्रतिमाओं में उलझकर परिग्रह रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। दर्शन प्रतिमा में श्रावक को बिना देवदर्शन किये मुख में पानी भी नहीं डालना चाहिए, यह जीवन में ध्यान रखना। एक वह थी महान् मनोवती, जिसने सात उपवास कर लिए, पर जिनबिम्ब की आराधना के अभाव में मुख में पानी नहीं डाला था। व्रत/प्रतिज्ञा की महिमा से देवों के आसन कंपायमान हो गए और देवों ने बगीचे में जिनालय की स्थापना कर दी। धन्य हो! उसने अपने पति को भोजन करा दिया और पूरा भोजन बागवान् को ही सौंप दिया, लेकिन मुख में पानी नहीं दिया, क्योंकि वह गजमुक्ता चढ़ाकर भगवान् की वंदना किया करती थी। ऐसे भी महान् श्रावक-श्राविका हो चुके हैं। पर धिक्कार है उनके लिए, जिनको सुबह जगते ही पेपर के दर्शन होते हैं, और चाय-पान का सेवन होता है। ओहो! क्या तुम श्रावक बचे हो? सोचो, जीवन में मैंने क्या किया? जागो तब भगवान् को निहारो, सोओ तब भगवान् को निहारो। जिस जीव ने एक छोटी-सी जिन प्रतिमा भी विराजमान कर दी है, उस जीव ने, जब तक वह जिनबिम्ब विराजमान रहेगा, तब तक के लिए जिन-शासन को जीवंत कर दिया है। आज खजुराहो का विश्व में नाम क्यों है? उस सेठ पाहिल की महिमा गाओ, जिसने खजुराहो में ऐसे विशाल जिनबिम्बों की स्थापना की है, भगवान् शांतिनाथ स्वामी की महान प्रतिमा को विराजमान किया है। उस श्रावक के पुण्य को नमस्कार कर लेना, जिसने भगवान् पारसनाथ, नेमीनाथ के बिम्बों की स्थापना की हो। एक प्रतिमा को जिसने विराजमान कर दिया, पता नहीं कितने ऐसे जीव सम्यक्त्व को प्राप्त हो चुके हैं। भैया! ''सर्वार्थ सिद्धि'' ग्रन्थ में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के हेतुओं में जिनबिम्ब-दर्शन भी एक हेतु कहा है। क्षुल्लक ध्यानसागर का नाम सुना है? जबलपुर में भेड़ाघाट में नर्मदा के किनारे शांतिनाथ जिनालय है। एक अजैन छात्र का अचानक मन किया कि क्यों न जाकर देखूँ जैनमंदिर में है क्या? और जैसे ही भगवान् शांतिनाथ की मनोहारी प्रतिमा के दर्शन किए, उस जीव के भाव उत्पन्न हुए कि, अहो! ये जिनबिम्ब ही साक्षात् अरहंत भगवान् का रूप है। 'बस, मार्ग तो यही है'। उस जीव के भाव बदल गए और

आचार्य विद्यासागर के पास जाकर व्रत ले लिया। ये जिनबिम्ब की महिमा है। निज-बिम्ब को निहाराना चाहते हो तो पहले जिनबिम्ब की वन्दना कर लो और जब आप निजबिम्ब की योग्यता को प्राप्त कर लो फिर जिनबिम्ब का भी विकल्प मत लाना। यह विषय क्रमिक है। यहाँ आचार्य भगवान् किसी को जिनबिम्ब वंदना का निषेध नहीं कर रहे हैं, वरन् उस योगी को समझा रहे हैं कि, अहो योगी! श्रावक-धर्म शुभोपयोग-प्रधान है, यती-धर्म शुद्धोपयोग-प्रधान है। श्रावक कितना ही प्रयास करे,लेकिन वह पंचम गुणस्थान के आगे जा नहीं सकता है। लेकिन, हे मुनिराज! आप तनिक-सा प्रयास करो तो चौदहवें-गुणस्थान को प्राप्त कर लोगे, सिद्ध बन जाओगे। इसलिए आप इन पूजा पाठ में मत उलझो, आप तो स्वयं पूज्य हो। ''पुरुषार्थसिद्धयुपाय'' ग्रन्थ में रत्नत्रयधारी मुनि को समयसार कहा है और श्रावकों को 'समयसार का उपासक' कहा है। अहो श्रावको! रत्नत्रय ही समयसार है, और रत्नत्रय से युक्त आत्मा समयसारधारी है। श्रमण तुम्हारे गुरु हैं, इसलिए श्रावक का तीसरा नाम है श्रमणोपासक। इस जिनशासन में तीर्थंकर-जैसी आत्माएँ हुईं, लेकिन संस्कृति का नाम तीर्थंकर-संस्कृति नहीं रखा है। यह श्रमण-संस्कृति है, क्योंकि तीर्थंकर भी श्रमण संस्कृति में दीक्षित होकर, निर्ग्रन्थ-अवस्था को प्राप्त करके, मोक्ष को प्राप्त करते हैं। संस्कृति तो मुनियों की है, श्रमणों की है, और जब तक श्रमण नहीं बनोगे तब तक श्रमणोत्तम नहीं बनोगे, तीर्थंकर नहीं बनोगे। इसलिए ध्यान रखना, इन कारिकाओं को सुनकर कहीं आप ऐसा मन मत बना बैठना कि, महाराज श्री! अब आज से वंदना क्यों करूँ? मंदिर क्यों जाऊँ? नहीं, आपको तो वंदना करना ही है, मंदिर जाना ही है।

आचार्यश्री 42वीं कारिका में कह रहे हैं (तित्थहिं देवलि देउ णवि इम) तीर्थों में, देवालयों में देव नहीं है। जहाँ तीर्थ-पुरुष विराजमान हुए थे, उन्हें तीर्थ कहने लगे। वास्तव में हमारे आगम में तीर्थ बनाए नहीं गए। तीर्थ बनाने में राग होता है, तीर्थ बनाने में द्वेष होता है। इसलिए श्रमण संस्कृति में कोई तीर्थ बनाए ही नहीं गए हैं, वह तीर्थ बन गए हैं। 'जे गुरु चरण जहाँ धरे, जग में तीरथ होय।' अहो योगियो! तुम कहाँ तीर्थ बना रहे हो? तुम्हारे चरण जहाँ पड़ जाते हैं, वह क्षेत्र स्वयं तीर्थ बन जाता है। तुम्हें तीर्थ बनाने की इच्छा ही नहीं होनी चाहिए। तीर्थंकर महामुनि जहाँ-जहाँ गए, वहाँ-वहाँ तीर्थ बन गए।

अहो ज्ञानी आत्माओ! आपको तीर्थभूमि खोजने की आवश्यकता नहीं है। आपको तो पापभूमि खोजने की आवश्यकता है, जहाँ पर तुम बड़े प्रेम से पाप कर सको। सूत्र गहरा है। आज से पाप-भूमि खोजना और यह आप सब जानते हो कि पुण्य-क्षेत्र में, तीर्थ-क्षेत्र में, सिद्ध-क्षेत्र में पाप नहीं किया जाता है। अहो मुमुक्षु आत्माओ! सिद्धशिला पैंतालीस-लाख योजन और ढाईद्वीप पैतालीस-लाख योजन का है। इससे सिद्धशिला में ऐसा कौन-सा स्थान है जो सिद्ध परमेश्वर से खाली है? कोई नहीं है। ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ से कोई महानिर्ग्रन्थ योगी सिद्धि को प्राप्त नहीं हुआ है? ऐसी कौन-सी भूमि है, जहाँ से कोई

महामुनि मोक्ष न गये हों? मध्यलोक का ऐसा कोई प्रदेश अब शेष नहीं है, जहाँ से किसी मुनि ने मोक्ष प्राप्त न किया हो। जहाँ से साधु की मुक्ति होती है, उस स्थान का नाम सिद्ध-भूमि होता है। अब विचार करो कि तुम्हारे रसोई घर में कौन-सा स्थान है, बैठक में तुम्हारे कौन-सा स्थान है, शयनागार में कौन-सा स्थान है? यह सारा-का-सारा स्थान सिद्धक्षेत्र ही है। इसलिए आज से ध्यान रखना, सिद्धभूमि में पाप नहीं करना। तुम्हें पाप करना हो तो सिद्धभूमि के बाहर चले जाना। मुझे विश्वास है कि तुम सिद्धभूमि, ढाईद्वीप के बाहर जा नहीं सकते हो, क्योंकि मनुष्य का गमन ढाईद्वीप के बाहर होता ही नहीं है। तब मालूम चलेगा, सब त्यागी-व्रती नजर आएँगे। अच्छा, इतनी प्रतिज्ञा ले लो कि तीर्थभूमि में पाप नहीं करोगे। आप लोग जिन्हें सिद्धभूमि कहते हो, जिनका इतिहास में नाम आ गया, छप गया, उन्हें आप मानते हो, लेकिन वास्तव में देखा जाए तो ढाईद्वीप पूरा सिद्धक्षेत्र है। फिर तो आप तीर्थ में बैठे हो। ध्यान रखना, जिनबिम्बों की पुण्यवर्गणाओं के प्रभाव से परिणाम इतने निर्मल हो जाते हैं कि मिथ्यात्व की बल्ली के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

दर्शनं जिनेन्द्राणां पाप संघात कुण्जणम्।
सतता भेदमायाति किले व्रजो हतो यथा।।

जैन-आगम में ''षट्खंडागम'' यानी 'धवला' जी विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ है। धवला जी में श्लोक लिखा है। (दर्शनं जिनेन्द्राणां) भगवान् जिनेन्द्र के दर्शन से (पाप संघात कुंजणं) कुंजण यानी हाथी (सतता भेदमायाति) के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। कैसे? (किले व्रजो हतो यथा) जैसे कि वज्र यानी गाज (अर्थात् आकाश से बिजली) के गिरने से पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इसलिए जीवन में कभी जिनबिम्ब की आराधना करना मत छोड़ देना। परन्तु यह भी दृष्टि रखना कि यह साधन ही है, साध्य कुछ और ही है। ऐसा (सुइकेवलि-वुत्तु) श्रुतकेवली भगवान् ने कहा है। (देहा-देवलि देउ जिणु) देह-देवालय में देव है, (एहउ जाणि णिरुत्तु) ऐसा तुम निश्चयकर जानो। निश्चय से समझो कि यह मेरा शरीर ही देवालय है, उसमें विराजमान ये मेरी आत्मा निश्चय से देव है। केवली भगवान् कह रहे हैं कि जिनदेव उस देह-देवालय में विराजमान हैं, परन्तु अज्ञानी देवालयों में देव के दर्शन करना चाहता है। ईंट-पत्थर से बने जिनालय में यदि आपने पाषाण को निहारा, ईंटों को निहारा, तो ध्यान रखना, यथार्थ यही है कि वह पत्थर ही है। श्रद्धा अगर है तो परमेश्वर की प्रतिमा है, श्रद्धा है तो जिनवाणी है, श्रद्धा है तो गुरु है, अन्यथा पत्थर है, कागज है, मनुष्य है। आस्था है तो पाणाण में परमेश्वर, कागज में वीतराग वाणी और मानव में निर्ग्रन्थ गुरु झलकते हैं और जिसके पास आस्था की आँखें ही नहीं हैं, उसे पत्थर-ही-पत्थर नजर आते हैं। आवश्यकता है कि हम पत्थर ही को न निहारें।

समवसरण में बारह सभाओं में जीव बाद में पहुँचता है, उसके पहले तो वापिकाएँ हैं, वाटिकाएँ हैं, नाट्य-शालाएँ हैं। बस रागी वहीं घूमेगा। तुम्हारी परीक्षा का स्थान है खजुराहो

के मंदिर। जिनकी आँखों में वासनाएँ हैं, जिनके हृदय में कामनाएँ हैं, वे खजुराहो के मन्दिरों के शिखरों को देखेंगे, चित्रों को निहारेंगे, काम-चेष्टाओं को देखेंगे, लेकिन जिनके अन्दर में भगवान् झलकेंगे वे अन्दर जाकर भगवान् को देखेंगे। गर्भालय में आपको कोई पुतलियाँ नहीं मिलेंगी, मात्र एक वीतरागी अरहंत की प्रतिमा ही मिलेगी। मुमुक्षु जीव नाट्य-शालाओं में नहीं जाता है, वह तो सीधा समवसरण की बारह सभाओं में सीमंधर स्वामी के चरणों में पहुँचता है। ऐसे ही खजुराहो में जाने वाला मुमुक्षु पहले सीधा भगवान् आदिनाथ, पारसनाथ, शांतिनाथ को देखेगा। परन्तु जिसके राग की आँखें हैं, वह चित्रों को देखेगा। प्राचीनकाल में मंदिरों में भी चित्रशालाएँ होती थीं और चित्र शालाओं का उद्देश्य भी यह था कि तुम घूमो, पहले इधर देखो कि क्या है? वहाँ पुतलियाँ होती थी। ''तिलोय-पण्णति'' जैसे महान् आगम ग्रन्थ में इन सारी-की-सारी व्यवस्थाओं को मंदिर का परिकर लिखा है। लेकिन अज्ञानी परिकर ही को देखकर भगवत्ता मान लेता है, पर ज्ञानी अरहंत की प्रतिमा में मात्र भगवान् को ही देखता है। इसलिए ध्यान रखना, बाहर के परिकर को देखकर तुम पूजना प्रारंभ मत कर देना। एकमात्र जिनदर्शन में पंचपरमेष्ठी के प्रति आराध्य भाव को प्राप्त होता है। शेष सम्मानीय हो सकते हैं, आदरणीय हो सकते हैं, परन्तु परम्पूज्यनीय तो पंचपरमेष्ठी ही होते हैं।

यहाँ आचार्य भगवान् कह कहे हैं-(हासउ महु) बड़ा ही हास्य है, हँसी आ रही है (इहु सिद्धे भिक्ख भमेइ) कोई जीव सिद्ध-भगवान् बन गया और फिर कटोरा लेकर भीख माँगने जा रहा है। यह कहीं संभव है? अहो योगी! अहो मुनिराज! अब जब तुमने निज के मंदिर के दर्शन करना प्रारंभ कर दिया है,स्वयं के देव तुम्हें झलकने लगे हैं, तो अब तुम पत्थर के देव-देवालय में क्यों जा रहे हो? सिद्ध बनकर भीख मत माँगो। योगी शुद्धोपयोग की ओर इंगित कर रहे हैं, कि आप इनमें मत उलझो, ऊपर उठो और ऊपर जाकर देखो। ये सत्य है कि शोर में भी आनंद है और भीड़ में भी आनंद है। यदि नहीं होता तो इतने दिन तक तुम जी कैसे रहे हो? लेकिन ध्यान रखना, ये परमानंद नहीं है। ये बाह्य-बाह्य की चर्चा है, यह यहाँ-वहाँ की चर्चा है। यदि परमानन्द की प्राप्ति करना चाहते हो, तो भीड़ नहीं, शोर नहीं, निज की ओर देखो। भीड़ में नहीं, शोर में नहीं, परमान्द तो निज की ओर देखने में है।

मनीषियो! आचार्यश्री 44वीं कारिका में कह रहे हैं कि अध्यात्मदृष्टि और पर्यायदृष्टि बड़ी गहरी है। यह मेरा चित्र है, यह मेरे पिताजी का चित्र है, यह हमारे दादाजी का चित्र है। क्यों ज्ञानी! क्या वास्तव में वे दादा हैं, क्या वास्तव में वे पिता हैं? पिता की फोटो किसी से खिसक जाए तो कहेगा-तुम्हारे पिताजी खिसक गए। अहो! तेरा चित्र पत्रिका में छप जाये, फिर भले ही दस दिन बाद पैरों के नीचे आ जाये उससे कोई प्रयोजन नहीं है, लेकिन छपना ही चाहिए। यह पर्याय की पर्याय में निमग्नता है। पर्याय में राग होता तब मैं मान भी लेता कि इसमें रहना पड़ रहा है, इसलिए उसमें राग होगा ही, लेकिन तुम्हें तो पर्याय की पर्याय में राग

है। मेरे गुरु का फोटो, मालूम चला कि गुरु के फोटो के चक्कर में निज का गुरु ही लुढ़क गया। मनीषियो ! अपने गुरु को तुम चिपकाना ही चाहते हो तो श्रद्धा की दीवाल पर चिपका दो। कागज के ऊपर आज तुमने चिपकाया, दूसरा आवेगा तो हटा देगा। भरत चक्रवर्ती से पूछ लेना-मैं प्रथम तीर्थेश का पुत्र हूँ। सेनापति ! जाओ, मेरा नाम वृषभांचल पर्वत पर अंकित करके जाओ। सेनापति खड़ा हो जाता है। स्वामी ! कहाँ लिखूँ? अनंतानंत चक्रवर्ती, अनंतानंत चौबीसियाँ निकल चुकी हैं। यहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ पर आपका नाम अंकित किया जा सके। कोई बात नहीं, आप ऐसा कर दो, कि एक पटिया को पलट दो। अहंकार कह रहा है कि एक पटिया पलट दीजिए। लेकिन, भरतेश! तुम भूल चुके थे कि जब दूसरा चक्रवर्ती आएगा तब वह भी कहेगा-कोई बात नहीं, एक पटिया को पलट दीजिए। सबके पटिया पलटते हैं। इसलिए कोई रोओ मत।

संसार में ऐसे भी जीव होते हैं जिन्हें एक ही चिन्ता सताती रहती है कि, हाय ! अब क्या होगा? भो ज्ञानी !जो होना है, वही होगा। जो विधि का विधान है, उसे कोई टाल नहीं सकता है। इसलिए जीवन में ध्यान रखना, इन पटियों के चक्कर में मत चले जाना। अगर तेरा पुण्य होगा तब तुझे प्राप्त हो ही जायेगा। परन्तु देह-देवालय को निहारना। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं-हे मूढ़। (देउ देवलि णवि) देवालय देव नहीं है और देवालय में देव नहीं है, परन्तु (णवि सिलि लिप्पइ चित्ति) ये पर्याय-की-पर्याय में लीन मत हो जाओ। (चित्ति) फोटो, (सिलि) शिला, (लिप्पइ) जो लीपकर चित्र बनाए जाते हैं, वह भी देव नहीं है। भित्ति-चित्र भी देव नहीं है। (देहा-देवलि देउ जिणु) यदि कोई देव है निश्चय से तो देह-देवालय में जो जिन है तेरा आत्मा (सो बुज्झहि समचित्ति) उसे अच्छी तरह से समझकर अपने देव को मत खो देना। मनीषियो ! आज इस ग्रन्थ को सुनने का सार इतना मात्र समझना कि हम जिनालय में जिस भी प्रतिमा के सामने दर्शन करें, मात्र परिणामों की पवित्रता के लिए करें। हम किसी प्रतिमा-विशेष में राग करके अपने परिणामों में विकार न लाएँ। न किसी को रोकना, न किसी को टोकना। विधि तो बताना, पर निषेध नहीं करना। एक जीव पूजा कर रहा है, यदि दीप के स्थान पर धूप चढ़ा दी हो तब उसे बाद में समझा देना, लेकिन वहाँ मत टोकना। यदि तुमने उसे टोका और बेचारे के परिणाम खराब हो गए, तब मालूम चला कि संक्लेश भाव आ गए। इसलिए ध्यान रखना, टोकना बड़ा खतरनाक होता है। टोकना मत, किन्तु पूजा करने के बाद समझाना जरूर, जिससे दूसरे दिन भूल न करे। लेकिन बार-बार टोकोगे तब तुम्हारे भी परिणाम खराब होंगे, उसके भी परिणाम खराब होंगे। इसलिए ज्ञानी जीवों को समझाना और न मानें तो मध्यस्थ हो जाना।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

धर्म-रसायन के पान से जन्म, जरा, मृत्यु का क्षय

योगसार

तित्थइ देउलि देउ जिणु सव्वु वि कोइ भणेइ।
देहा-देउलि जो मुणइ सो बुहु को वि हवेइ ॥45 ॥

अर्थ-सब कोई कहते हैं कि जिनदेव तीर्थ में और देवालय में विद्यमान हैं। परन्तु जो जिनदेव को देह-देवालय में विराजमान समझता है, ऐसा पंडित कोई विरला ही होता है।

जइ जर-मरण-करालियउ तो जिय धम्म करेहि।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ जिम अजरामर होहि ॥46 ॥

अर्थ-हे जीव ! यदि तू जरा व मरण से भयभीत है तो धर्म कर, धर्म रसायन का पान कर, जिससे तू अजर-अमर हो सके।

धम्मु ण पढियइँ होइ धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय-पएसि धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ ॥47 ॥

अर्थ-पढ़ लेने से धर्म नहीं होता, पुस्तक और पिच्छी से भी धर्म नहीं होता, किसी मठ में रहने से भी धर्म नहीं होता, केशलोंच करने से भी धर्म नहीं कहा जाता।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अंतिम-तीर्थेश भगवान् महावीरस्वामी की पीयूषदेशना हम सब सुन रहे हैं। अध्यात्म के अन्तस् में डुबकियाँ लगाते हुए आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी उस परम्सत्य की ओर बढ़ रहे हैं, जिसके उपरान्त कुछ अवशेष ही नहीं बचता है। जहाँ विषयों के विकल्प से दूर हैं एवं परमेष्ठी के विकल्प से भी दूर होते जा रहे हैं-ऐसी धारा बह रही है। मनीषियो ! जहाँ पर परम् शक्ति होती है, वहाँ अवक्तव्य हो जाता है। जब तक वाणी चल रही है, वचन है, तब तक हम सत्य के नजदीक तो हैं, पर सत्य में नहीं हैं। जहाँ से वचन समाप्त हो जाते हैं, वाणी भी समाप्त हो जाती है और मन का विकल्प भी समाप्त हो जाता है, वहीं परम्-शक्ति की सिद्धि होती है। इस बात को कल आचार्य महाराज ने कहा-अहो ज्ञानी ! जिनदेव की देह परमात्मा नहीं है और देह को जीव ने परमात्मा मान लिया है। अज्ञानी जीव नीले-पीले भगवान् को भगवान् मानता है। कोई साँवले कहता है, कोई हरे कहता है। लेकिन, मनीषियो ! ये तीर्थंकर का धर्म नहीं है, ये तो तीर्थंकर के शरीर का वर्ण है। यह भगवान् का धर्म नहीं है। दो गोरे, दो साँवले जो आप कह रहे हो-ये भगवान् अरहन्त नहीं, सिद्ध नहीं, यह तो परम-औदारिक शरीर का वर्ण है।

भगवान् तो वर्णातीत होते हैं। इसलिए आचार्य उमास्वामी महाराज ने नीले, पीले नाम लेकर नमस्कार नहीं किया।

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ।।तत्त्वार्थसूत्र।।

जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, कर्मरूपी पर्वतों को नष्ट करनेवाले हैं, विश्व के तत्त्वों को जाननेवाले हैं उनके लिए वन्दना की है। (वन्दे तद्गुण लब्धये) उन जैसे गुणों की प्राप्ति हो, इसलिए वन्दन किया गया है। लेकिन किसको? व्यवहार नय से देह को देखते हैं, निश्चय नय से देही को देखते हैं। पर्याय को देखे बिना पर्यायी दिखता नहीं है। लेकिन पर्याय को देखना-मात्र पर्यायी को देखना नहीं है। हम पर्याय को नहीं निहारेंगे तो द्रव्य दिखेगा नहीं, पर अगर द्रव्य को देखना चाहते हो तो पर्याय को ही द्रव्य नहीं मान बैठना।

हमारे यहाँ चार प्रकार के निक्षेप हैं-नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। वास्तव में जिन कौन है?

1. नाम जिनः नाम जो आपने कहा, ये जिन नहीं हैं, ये जिन-नाम है। 2. स्थापना जिन : जिनेन्द्र की जो प्रतिमायें हैं वे स्थापना-निक्षेप हैं, वे जिन नहीं हैं। 3. द्रव्य जिनः जो जीव अभी मुनि-अवस्था में है और अन्तर्मुहूर्त में केवली बननेवाले हैं, वे अभी जिन-जीव हैं, जिन नहीं है, जिन बननेवाले हैं। 4. भाव जिन : जिन की वन्दना करना चाहते हो, वे भाव-जिन हैं, जो समवसरण में विराजमान तीर्थेश हैं। वे तो तेरहवें गुणस्थान में विराजे हैं, वास्तव में जिनदेव हैं। जिन-नाम, जिन-प्रतिमा, जिन-जीव इनमें से कौन जिन पूज्य हैं? मनीषियो! द्रव्य-जिन भी पूज्य हैं, भाव-जिन भी पूज्य हैं, स्थापना-जिन भी पूज्य हैं, परन्तु नाम-जिन पूज्य नहीं हैं। जिन-नाम तो बहुत सारे लोगों का रखा जा सकता है। कोई जिनेन्द्र नाम के व्यक्ति हैं, परन्तु उनकी पूजा नहीं होती। स्थापना-निक्षेप में जो हैं, वह जिनेन्द्र की स्थापना है। स्थापना की पूजा है। तदाकार और अतदाकार के भेद से स्थापना-निक्षेप को आगम में दो प्रकार का कहा है। पंचमकाल में वर्तमान में हुंडावसर्पिणी काल है। इस काल में अतदाकार स्थापना करने का निषेध है, यानी उनकी पूजा नहीं होती, तदाकार की ही स्थापना और पूजा होती है अन्यथा कोई भी व्यक्ति कहीं भी बैठकर किसी भी बटैया को पूजना प्रारंभ कर देगा। जब तक आपने साक्षात् प्रतिमा का आकार नहीं दिया, प्रतिष्ठा नहीं की है, तब तक पूज्य नहीं है। ध्यान रखना, चित्र/कैलण्डर/फोटो आपके प्रतीक हो सकते हैं, पर पूज्य नहीं होते। आप भक्ति रखना, श्रद्धा रखना, लेकिन विश्वास रखना कि इस काल में अतदाकार स्थापना नहीं है। ऐसा आचार्य वसुनंदी स्वामी ने 'वसुनंदी श्रावकाचार' में लिखा है कि कहीं भी आपने किसी भी वेदिका पर जो चित्र, कैलण्डर आदि स्थापित कर दिये, आप उन्हें प्रतीक मानो, पर अर्घ्य, आरती, पूजा मत करना, अन्यथा घर-घर में कैलण्डर रख जायेंगे, पूजा प्रारंभ हो जायेगी और ये विशाल जिनालय सूने पड़े रह जायेंगे। हाँ, घर में मंदिर बनाने का विधान है।

घर में मंदिर होगा, प्रतिष्ठित प्रतिमायें होंगी, लेकिन बाल-ब्रह्मचारी तीर्थंकर की प्रतिष्ठित प्रतिमा गृह-चैत्यालय में विराजमान नहीं कर लेना, क्योंकि जिनके पास कुछ था ही नहीं, जिन्होंने घर बसाया नहीं, वह तुम्हारा घर कैसे बसायेंगे? फलित नहीं होती है। यह भी ध्यान रखना कि अप्रतिष्ठित प्रतिमा को अपने घर में स्थापित नहीं कर लेना। हम तीर्थस्थानों पर जाते हैं और प्लास्टिक आदि की मूर्तियाँ लाकर घर में विराजमान कर लेते हैं। मनीषियो ! आज हम कहते हैं कि छः महीने से अधिक अप्रतिष्ठित प्रतिमा को रख नहीं सकते और वह तुम्हारे घर में वर्षों से रखी है। इसका परिणाम गृह-क्लेश आदि है, धनहानि भी हो जाती है। महापुरुषों की प्रतिमा, चित्र आदि आले में नहीं रखना। आले में प्रतिमा की स्थापना कभी नहीं की जाती है। जब भी प्रतिमा विराजमान करो, उनकी वेदी बनाओ, अलमारी के बाहर निकालो। अरहन्त/तीर्थंकर आदि की प्रतिमायें आले/दीवाल में रखने से समाज में एकता का खंडन हो जाता है, एकता नहीं रह जाती है। जब भी आपका मन मंदिर बनवाने का हो, तो मंदिर की वेदी के पीछे खिड़की मत करा देना। चाहे अंधेरा हो या प्रकाश हो, लेकिन खिड़की दूसरी जगह कराओ, क्योंकि जिस वेदी के पीछे खिड़की होती है, वहाँ पुजारियों का ह्रास हो जाता है, अर्थात् मंदिर में पुजारी नहीं रह पाते हैं।

भो ज्ञानी ! आचार्य योगीन्दुदेव कह रहे हैं कि पूज्य, पूज्य है; पर्याय, पर्याय है। हम दूसरी दृष्टि से पर्याय देख रहे हैं, पर पर्याय को पूजने के लिए हम पर्याय को नहीं पूज रहे हैं। हम अपने निज के परिणामों को निर्मल करने के लिए पूजा कर रहे हैं अथवा यह कहो कि हे प्रभु ! आप पूज्य हो, इसलिए आपकी पूजा कर रहे हैं। जब आप पूज्य हो ही, तब हमारे पूजन से या न पूजने से आप न पूज्य होंगे न अपूज्य होंगे। हे नाथ ! आपकी पूजा इसलिए कर रहा हूँ कि मैं कैसे पूज्य बनूँ? मैं तो पूज्य के चरणों में शीश झुका रहा हूँ। आप किसी की निंदा से न रोष को प्राप्त होते हैं और न किसी की प्रशंसा से आप प्रसन्न होते हैं, क्योंकि जो रोष को प्राप्त हो रहा है, वह वीतरागी नहीं। भगवान् पार्श्वनाथ की दस दिन पूजा नहीं करना तो वे आपसे नाराज नहीं होंगे और यदि आप दस बार करो तो आपसे प्रसन्न नहीं होंगे। यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि वे वीतरागी जो हैं। इस श्रमण संस्कृति में श्राप नहीं दिया जाता है, वरदान नहीं दिया जाता है, मात्र आशीष दिया जाता है। श्राप में द्वेष है, वरदान में राग है और आशीर्वाद में धर्मानुराग है। श्राप में द्वेष निहित है, वरदान में राग निहित है और आशीर्वाद में मात्र धर्मानुराग निहित है। आशीर्वाद फलित कैसे होता है? जिसके जैसे परिणाम हों। यदि तुम्हारा पुण्य प्रबल है, वहाँ श्राप काम नहीं देते हैं। यदि पाप प्रबल है, तो किसी के वरदान काम नहीं देते हैं। पुण्य के योग में वरदान भी फलित हो जाते हैं, पाप के योग में श्राप भी फलित हो जाते हैं। इसलिए मुख्य वस्तु है पुण्य और पाप। आप भगवान् की पूजा कर रहे थे, किसी ने कहा-सुनो, आप ऐसा नहीं करोगे तो ऐसा हो जाएगा। उनसे बोल देना-भाई ! जो होना होगा उसे तो आप भी टाल नहीं पाओगे। लेकिन हम अरहन्त देव के चरणों को छोड़कर

जाने वाले नहीं हैं। इतनी दृढ़ आस्था होगी, फिर समझ में आवेगा कि सम्यक्त्व के नजदीक और अध्यात्म के नजदीक पहुँच रहे हैं। इसलिए आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी कहते हैं कि धर्म-रसायन की प्राप्ति लोक में बहुत उपयोगी है। रसायन से रोगी का रोग शमन हो जाता है। देह के रोग जब रसायन से ठीक हो जाते हैं तो, मनीषियो ! आत्मा के रोग धर्म-रसायन से कैसे ठीक नहीं होंगे?

यहाँ 45वीं कारिका में आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं कि भगवान् की प्रतिमा में भगवान् को मानने वाले ज्ञानी बहुत हैं व प्रतिमा को पूजने वाले ज्ञानी बहुत हैं, परन्तु देह-देवालय में विराजमान अपने प्रभु को पूजने वाले जीव संसार में बिरले हैं। जैसा असंगी, निष्कम्प, निःसंघ, निरावरण, निष्कर्म, शुद्ध परमेश्वर सिद्धशिला पर विराजा है, वैसा परम् ब्रह्म मेरी इस देह में विराजा है। इसे आप किंचित भी, कदाचित् भी असत्य न मानें, लेश मात्र असत्य न मानें। भो ज्ञानियो ! मंदिर में विराजे प्रभु को देखने के लिए तुझे चलना पड़ेगा। मंदिर में विराजे प्रभु को पूजने के लिए द्रव्य चढ़ाना पड़ेगा। मन्दिर में विराजे प्रभु के लिए तुझे दरवाजा खोलना पड़ेगा। मन्दिर में विराजे प्रभु के लिए तुझे लोगों से पूछना पड़ेगा कि कौन से भगवान् हैं? चिह्न को देखना होगा। परन्तु निज देह में विराजे प्रभु को यदि देखना चाहते हो, जानना चाहते हो, तो न कहीं जाना होगा, न कहीं फिरना होगा। मात्र बैठकर ही देखना होगा। तीर्थों के भगवान् को निहारने के लिए सैकड़ों किलोमीटर दूर जाना पड़ता है, परन्तु अपने अन्दर विराजे भगवान् को देखने के लिए, मनीषियो ! कहीं नहीं जाना है। आँख बन्द करके निहारो, बाहर कहीं नहीं है। व्यवहार में बहुत पुरुषार्थ लगता है। व्यवहार के भगवान् को देखने के लिए बहुत मेहनत लगती है, पर निश्चय के भगवान् को देखने के लिए मात्र राग-द्वेष छोड़ना होता है। भीतर के भगवान् को निहारने के लिए राग नहीं करना पड़ता है, आरंभ/समारंभ नहीं करना पड़ता है। अन्तर के भगवान् को देखने के लिए मात्र निरामय होना पड़ता है और कुछ नहीं करना पड़ता है।

अहो ज्ञानी ! जब तक दोष-भाव रहेगा, तब तक अन्दर के भगवान् नजर नहीं आयेंगे। जैसे सलिल जब तक स्थिर नहीं है, तब तक सलिल का मणि नजर नहीं आता। ऐसे तुम्हारा चित्त-सरोवर जब तक स्थिर नहीं होगा, तब तक चैतन्य भगवान् नजर नहीं आयेंगे। अतः मन को वश में कर लो। निःशेष भगवान् को निहारना तो बहुत सरल और सहज विषय है। यदि बाहर के भगवान् को देखना चाहते हो तो दरवाजे खोलना पड़ते हैं। और यदि अन्दर के भगवान् को देखना चाहते हो तो दरवाजे बन्द करना पड़ते हैं। सिनेमा हाल में जितनी खिड़कियाँ बन्द होती है, जितना अच्छा अंधेरा होता है, उतने अच्छे चित्र नजर आते हैं। एक भी खिड़की खुली नहीं छोड़ते हो, सारी खिड़कियाँ बंद कर देते हो। ओहो, ज्ञानी आत्माओ ! यदि तेरे भुवन में विराजे चित्र को तुम निहारना चाहते हो, दरवाजे खोलकर देखना चाहते हो, तो दो खिड़कियाँ हैं, दोनों में से एक भी खुली रहेगी तो तेरा निज का प्रभु नजर नहीं आयेगा, क्योंकि बाहर के प्रकाश से चकाचौंध हो जाती है। अतः खिड़कियाँ बन्द कर दो। जितने में

आपका भगवान् नजर आयेगा, उतना प्रकाश वहाँ है। पाँच इंद्रियाँ और मन तुम्हारे चंचल-स्थान हैं। इन सब स्थानों को आप बंद कर दो, फिर निहारना, तब नजर आयेगा कि सत्य कुछ है। कभी-कभी पुद्‌गल में इतने मस्त हो जाते हो कि अपने जीवत्व का भान नहीं रह जाता कि मैं जीव हूँ। पूरी पर्याय निकल जाय, तब भी यह पता न चले कि मैं जीव था कि नहीं। आश्चर्य नहीं करना इस बात पर। विश्व में ऐसे जीव हैं जिन्हें जीवत्व का ही ज्ञान नहीं है, क्योंकि खाना, पीना, सोना इत्यादि क्रियाओं में तल्लीन होकर पूरी पर्याय निकल जाती है। पता चला कि छतरपुर की गलियों में घूमते-घूमते पूरा जीवन निकल गया। समझा ही नहीं कि छतरपुर के बाहर भी कुछ है। इसलिए आचार्य योगीन्दुदेव की वाणी को स्वीकार कर लो। जब-जब जिनेन्द्र की प्रतिमा के सामने आप लोग बैठा करो तो उनके आज्ञाचक्र को देखना, विशुद्धि-चक्र को देखना। जहाँ प्रभु के मस्तिष्क को निहारा तो सर्वांग आपको नजर आयेगा और देखते-देखते अपने नेत्र बंद कर लेना। क्यों?

आचार्य जिनसेन स्वामी ने महापुराण में बहुत सुन्दर लिखा है-जब ऋषभदेव का जन्म हुआ, तब सौधर्म इन्द्र ने सुमेरू पर्वत पर ले जाकर अभिषेक किया। अभिषेक करने के उपरान्त जिन-बालक को अवधपुरी में लेकर आता है, तांडव नृत्य करता है और आँगन में सिंहासन पर बालक-ऋषभदेव को विराजमान कर देता है। इसी दौरान महाराजा नाभिराय को संकेत देता है-अहो पिताश्री ! आप परम् पिता बने हो, आपके यहाँ तीर्थंकर का जन्म हुआ है। महाराज नाभिराज ने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और सिंहासन पर बैठे ऋषभ को निहारा। बालक को देखते ही उन्होंने नेत्र बंद कर लिये। जैसे ही नेत्र बंद कर लिये, सौधर्म इन्द्र को कुछ अच्छा नहीं लगा और उसने धीरे से पूछ लिया-अहो पिताश्री ! एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ, इन जिनदेव की छवि को निहारने के लिए मैं तो सर्वप्रिय स्वर्ग छोड़कर मध्यलोक में आया हूँ, गर्भ-कल्याणक से लेकर आज जन्म-कल्याणक मनाया, सुमेरु पर्वत पर अभिषेक किया। ''हे तात ! मैंने जब सुमेरु पर्वत पर इनका अभिषेक किया, निहारते-निहारते दो नेत्रों से तृप्त नहीं हुआ, तो मैंने हजार नेत्र बनाकर उनको देखा। लेकिन आप दो नेत्रों से थक गये और नेत्र बंद कर लिए, ये बात मेरी समझ में नहीं आ रही है। क्या आपको जिनदेव अच्छे नहीं लगे?'' महाराजा नाभिराय ने जो उत्तर दिया वह उत्तर गजब का था- अहो सौधर्म इन्द्र ! कौन कहता है जिन बालक अच्छे नहीं लगे? ये तो मेरा पुण्य का योग है कि मैं इनका पिता कहला रहा हूँ, लेकिन वास्तव में तीन लोक का पिता मेरा बालक ऋषभदेव ही है। मैंने नेत्र इसलिए बंद नहीं किये कि बालक ऋषभ मुझे अच्छे नहीं लगे। ये नेत्र इसलिए बंद कर लिये हैं कि मैंने प्रभु को देख लिया है। कहीं ये छबि बाहर न निकल जाय, इसलिए उस छवि को अन्दर बसा लिया है। अब मैं नेत्र खोलना पसंद नहीं करता। अब अपने दृष्टिपटल पर कोई दूसरा चित्र अंकित नहीं करना चाहता। मनीषियो ! तुम जिनदेव को देखना और नेत्र बंद कर लेना। क्यों ? प्रभो ! आपकी छवि के आगे दूसरी छवि न आये। ये

छवि अन्तिम समय में दिखने में आ गई तो तुम्हारा कल्याण हो गया और कहीं यह छवि तुम्हारे अन्दर छा गई तो योगी बने रहोगे और योगिता को प्राप्त कर सकोगे। बार-बार निहारना, जब तक कि अन्दर के चैतन्य भगवान् तुम्हें नहीं दिख रहे हैं। पुरुषार्थ यही करना कि देवालय के भगवान् को छोड़कर देह-देवालय के भगवान् दिखना प्रारंभ हो जाएँ। आचार्यश्री इस बात को यहाँ 45 वीं कारिका में कह रहे हैं।

(जिणु देउ तित्थइ देउलि) जिनदेव तीर्थ में और देवालय में विद्यमान हैं, ऐसा जन सामान्य कहते हैं परन्तु जो जीव (जो देहादेउलि मुणइ) जिन भगवान् को देह-देवालय में देखता है, मनीषियो ! विराजमान मानता है, वही ज्ञानी है। कौन? जो देह-देवालय में अपनी आत्मा को जानता हो, देखता हो-वही पंडित है, वही ज्ञानी है। अहो ज्ञानी आत्माओ ! तुमने अचेतन भगवान् की अनंत प्रतिष्ठायें कराई हैं, अब एक बार निज के चैतन्य प्रभु की प्रतिष्ठा करा लो, तो आप सचमुच में प्रतिष्ठाचार्य हो जाओगे। जब तक अपने प्रभु की प्रतिष्ठा नहीं कर पा रहे हो और शरीर की प्रतिष्ठा के पीछे प्रतिष्ठा में लगे हो, तब तक निज की प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य नहीं बन पा रहे हो। किसकी प्रतिष्ठा? किसके लिए प्रतिष्ठा? ध्यान रखना, भगवान् की प्रतिष्ठा कराना, परन्तु प्रतिष्ठा का प्रश्न मत बनाना। प्रभु की प्रतिष्ठा में इस अपने निजप्रभु की प्रतिष्ठा को मत छिपा देना। प्रभु की प्रतिष्ठा प्रभु की प्रतिष्ठा है। अन्यथा परिणाम यह होगा कि भगवान् तो भगवान् बन जाएँगे, पर भगवान् बनने के लिए जिन्होंने भगवान् बनाये थे, वे भगवान् नहीं बन पाये। यथार्थ यही है कि अन्दर में बैठकर जो कुछ सोचता है, वह सत्य ही निकलता है। कुएँ में झाँककर कुछ बोलना, फिर सुनना। क्या सुनाई पड़ेगा? वहाँ से वही कुछ आयेगा जो आपने बोला होगा। जो ध्वनि आपने की है, वही प्रतिध्वनि सामने आयेगी। कुआँ सत्य वस्तु है। यह कह रहा है-मैं एक शब्द असत्य नहीं बोलूँगा। जैसा आपने कहा, वही बोलूँगा। मनीषियो ! ध्यान रखना-जिसने जो बोला है, उससे वही निकलता है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने उस परम्तत्त्व को समझा है, इसलिए परम्तत्त्व ही निकल रहा है। जिसके अन्दर जो भावना होती है, उसके मुख से वही निकलता है, अनुभव कर लेना। असत्य या बनावटी बोलना चाहेगा भी, तब कुछ दिन बाद यथार्थ मालूम चल ही जायेगा। सत्य, सत्य ही होगा। सत्य को छिपाया जा सकता है, सत्य को पीटा जा सकता है, लेकिन सत्य का अभाव नहीं हो सकता। यदि सत्य का अभाव हो गया तो द्रव्य नाम की वस्तु ही नहीं होगी। ''सद् द्रव्यलक्षणम्''। सत्य तो द्रव्य का लक्षण है। असत्य द्रव्य का लक्षण नहीं है। इस बात को भगवान् कह रहे हैं। अहो ज्ञानी आत्माओ ! अपने इस निजदेह को समझो, निजदेह को जानो। निजदेह को कैसे जानें? इसे 46वीं कारिका में कह दिया। (जइ जर-मरण) यदि बुढ़ापा और मरण से मुक्त होना चाहता है, छूटना चाहता है, भयभीत है, तो (जिय धम्म करेहि) हे जीव ! तुम धर्म करो। अहो ज्ञानी ! वह काम क्यों नहीं कर लिया कि बुढ़ापा ही न आता। अब आ ही गया है तो इसे तुम देह का धर्म मानो, अपनी

आत्मा का धर्म मत मानो। भयभीत क्यों हो? उस परम् तत्त्व को आज समझो।

ग्रन्थराज 'इष्टोपदेश' में आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं कि मेरी मृत्यु होती नहीं। मैं कभी मरूँगा ही नहीं। पर ध्यान रखना, अपने परिवार के लोगों से कह देना-बेटा! मेरे वियोग में तुम रोना नहीं। बेटे ने पूछ लिया-पिताश्री! ऐसा क्यों कह रहे हो? पिता बोले-बेटा! सत्य को समझो। व्यक्ति बहुत धर्म कर रहा है, परन्तु सत्य को न समझने के कारण अधर्मरूप जीवन जी रहा है। हे मेरे लाल! तुम मेरे पुत्र हो, आत्मज हो। मेरी बिदाई के समय अश्रु मत बहाना, अपशगुन मत करना। क्यों नहीं रोना? हे पुत्र! यदि तू मेरे लिए रोता है, पर मृत्यु तो मेरी हुई नहीं, मैं मरता नहीं हूँ। आत्मा मरती नहीं है, तुम क्यों रोते हो? आप शरीर के लिए रो रहे हो तो, बेटे! ध्यान रखो, ये शरीर मैं तुम्हें सौपकर जाऊँगा। ये शरीर लेकर जाऊँगा नहीं। अब क्यों रोते हो? यदि आत्मा के लिए रोओ तो आत्मा कभी मरती नहीं। शरीर के लिए रोते हो तो यह कहीं जाता नहीं। अब बताओ क्यों रोते हो? मृत्यु सत्य है देह की अपेक्षा, प्राण के वियोग की अपेक्षा। जन्म सत्य है, मृत्यु सत्य है, तो क्यों रहे हो? होने वाला सत्य है, होने वाला झूठ नहीं है। ऐसा नगर में कौन-सा परिवार है जहाँ मृत्यु न हुई हो? जब ऐसा नहीं है तो क्यों कहते हो कि अनहोनी हो गई। ज्ञानी आत्माओ! किसी के घर में किसी की मृत्यु हो जाए तो अनहोनी हुई ही नहीं है। अनहोनी कहाँ हुई? वह होनहार ही थी। जिसने आयु कर्म का जितना संचय किया था, उतना उपभोग किया। इसके बाद क्षीण हो गया,सो चला गया एवं दूसरे शरीर में प्रवेश कर गया। आप क्यों रो रहे हो? दुनियाँ वालों को सुना रहे हो-चले गये, चले गये। कहाँ गये? तीन लोक के बाहर नहीं गये। जो-जो जीव हैं, जो-जो द्रव्य हैं, तीनलोक में हैं। यदि आपको सन्तति, असंतति, अपने पिता के पिता के पिता को जानना हो तो मैं आपको बताये देता हूँ कि वो कहाँ हैं। आप केवलज्ञान को प्राप्त कर लो, सब झलक जायेंगे कि कौन-कहाँ है। केवली के ज्ञान में सब झलक रहे हैं। इसलिए, मनीषियो! ध्यान रखना, ये संयोग-वियोग प्रकृति का स्वभाव है। बस, मेरा इतना कहना है-

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले॥29॥ इष्टोपदेश॥

जब मेरी मृत्यु ही नहीं है, तो मुझे डर किस बात का? जब व्याधि नहीं है, तब व्यथा किस बात की? हे मनीषियो! ध्यान रखना, शरीर अस्वस्थ हो तो मत चिल्लाना। जब शरीर में फोड़े हों, शूल चुभ रहे हों, फिर कहना कि मेरे में व्याधि कहाँ है? जिसमें व्याधि है, वह मैं नहीं हूँ। जहाँ व्याधि है, वहाँ मैं नहीं हूँ। ऐसा चिन्तन परम योगी करते हैं। मैं बालक भी नहीं हूँ। बालक कौन है? शरीर है कि तू है? सत्य समझो। कहीं आत्मा बालक है, तो कहीं बूढ़ा भी दिखता है। बालक बदल कैसे गया? आत्मा बालक नहीं है, वृद्ध भी नहीं हैं। चर्मचक्षु से देखने वाले सभी कह रहे हैं कि यहाँ बैठे सभी वृद्ध हैं। जिसे चर्मचक्षु देख रहे हैं, चर्म को ही देख रहे हैं। जो अचर्मचक्षु से अचर्म को देखेगा, उसे बालक नजर नहीं आयेगा, मनीषियो!

एकमात्र आत्मा नजर आयेगा। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं-मैं युवक भी नहीं हूँ। ये कुछ दिन की अवस्था है। युवको! तुम्हें अहंकार सता रहा है, तो अस्सी साल के वृद्ध से पूछना, लाठी जमीन को टेककर निहारते-निहारते जा रहा है। पूछ लेना-दादा जी! क्या खोज रहे हो? वे प्रेम से बतला देंगे-बेटा! अब क्या बताऊँ मैं क्या खोज रहा हूँ? इतना ध्यान रखना-आप मत गुमा देना। दादा जी! क्या गुम हो गया? बेटे! मैंने स्वर्गगामिनी तपस्या के योग्य परम्-निर्मल युवक-अवस्था को भोगों की भट्टी में गुमा दिया है, इसलिए आज मैं रो रहा हूँ।

भो ज्ञानी! जब तक शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियाँ भी स्वस्थ हैं, तब तक तुम तपस्या कर लो। वृद्धावस्था में कुछ नहीं कर पाओगे। वस्तु तुम्हारे पास है। तुम उसे मत गुमा देना। क्यों? आप लोग भगवान् महावीर के शिष्य हो। भगवान् महावीर स्वामी ने कहा-सदैव सत्य बोलना, अहिंसा का पालन करना। यदि आप सच्चे पिता हो तो अपने बेटे से एक बार सत्य जरूर बोल देना कि, बेटा! कुछ भी हो, मैंने जो देखा वह यह है कि विषयों में सुख नहीं है। मैं तो गृहस्थी में फँस चुका हूँ। बेटा! यदि तेरा मन करता हो तो त्यागी बन जाना। मैंने दो-तीन मिनट के सुख के पीछे पूरे जीवन के सुख को नाश कर दिया है। एकमात्र काम विकार के पीछे इतना परिवार बसाकर रखा है। यदि वह न होता तो किसी के चरणों में शीश न टेकना पड़ता। आचार्य श्री 46वीं कारिका में कह रहे हैं (जइ जर-मरण करालियउ) अगर इनसे भयभीत हो तब (जो जिय धम्म करेहि) हे जीव! तू धर्म कर। अहो! अन्त में शरण कौन होगा? धम्मं शरणं पवज्जामि, परिवार शरणं न पवज्जामि, परिवार की शरण में मत चले जाना। शरण में जाना है तो धर्म की शरण में जाओ।

मनीषियो! निर्ग्रंथ-योग को धारण कर लो, फिर (अप्पा शरणं पवज्जामि) अपनी आत्मा की शरण में चले जाना। यथार्थ समझो। कुछ भी हो, अपनी आत्मा की बात में अच्छा लगता है। अच्छा लगता है तो अपनी वस्तु की प्राप्ति का उपाय प्रारंभ कर देना चाहिए। (धम्म रसायणु पियहि) जैसे रोग का शमन करने के लिए रसायनों का सेवन है, वैसे ही भगवान् योगीन्दु स्वामी कह रहे हैं कि यदि आप जन्म-जरा-मृत्यु के रोग का शमन करना चाहते हो तो धर्म-रसायन का पान करो। वैसे रसायन का पान तो मुख से करना पड़ता है, परन्तु 'नियमसार' की टीका में आचार्य पद्मप्रभ मलधारि-देव ने लिखा है कि- अहो ज्ञानी! जैसे प्यासा प्राणी अञ्जुलि बनाकर पानी पीता है, रसायन का पान करता है, वैसे ही आप जिनवाणी का पान करो, धर्म-रसायन का पान करो। यदि धर्म-रसायन का पान कर लिया तो तू (अजरामर होहि) अजर-अमर हो जायेगा, फिर वृद्धत्व नहीं आयेगा, मरण नहीं होगा, जन्म भी नहीं होगा।

आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी 47वीं कारिका में कह रहे हैं कि कुछ ज्ञानी जीवों ने आज ऊपरी क्रियाओं को धर्म मान लिया है। मनीषियो! क्रियाकाण्ड धर्म नहीं है, पर क्रियाकाण्ड

के बिना भी धर्म नहीं है। समझना। हम बाजार फल खरीदने जाते हैं कि दल, छिलका, रस, सत खरीदने जाते हैं। क्या खरीदते हैं? अहो ज्ञानी! यदि छिलका ही खरीदना है तो घूरे से उठा लेते। लेकिन छिलका खरीदने नहीं गये थे। तो क्या खरीदने गये थे? रस खरीदा था? क्रियाकाण्ड और धर्म क्या है? इसे समझना। छिलका रस नहीं, पर फल के बिना रस होता नहीं। पिच्छी-कमंडल धारण करना धर्म नहीं, पोथी पढ़ना धर्म नहीं, पाठ करना धर्म नहीं परन्तु, मनीषियो! इनके बिना धर्म होता नहीं-ये निश्चय है। यदि इनका निषेध ही करना था तब योगीन्दुदेव स्वामी ने पिच्छी, कमंडल धारण किये क्यों? मंदिरों की दीवारों पर वाक्य लिख दिये जाते हैं, लोग भ्रमित हो जाते हैं। विदिशा के मंदिरजी में लिखा था- ज्ञान, चारित्र ही मोक्षमार्ग है। कितना बड़ा गड़बड़ मामला था? दो महीने लगातार कहा, तब समझ में आया। वहाँ लिखना चाहिए था ''सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग:'' परन्तु वहाँ लिखा क्या था? ज्ञान, चारित्र ही मोक्षमार्ग है। तब सम्यक् शब्द जुड़वाया। ध्यान रखना, बिना क्रियाकाण्ड के धर्म दिखता नहीं, परन्तु क्रियाकाण्ड-मात्र धर्म होता नहीं। आचार्य इन्द्रनंदि स्वामी ने लिखा है- देश की मुद्रा (नोट) कागज है। कागज के बिना नोट नहीं होता। नोट है तो कागज ही, पर कागज के अन्दर कुछ है, जिसे आप नोट कहते हो, गवर्नर के हस्ताक्षर हैं। इसी प्रकार ध्यान रखना, पिच्छी-कमंडल मात्र ये मुनिवेश नहीं है, साथ में दिगम्बर मुद्रा भी होना चाहिए और आरंभ-परिग्रह से रहित भी होना चाहिए।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

राग-द्वेष के अभाव में होती है पंचमगति की प्राप्ति

योगसार

राय-रोस बे परिहरिवि जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ जो पंचम-गइ णेइ ॥48 ॥

अर्थ-जो राग और द्वेष दोनों को छोड़कर निज आत्मा में वास करता है, उसे ही जिनेन्द्र देव ने धर्म कहा है। वह धर्म पंचम-गति (मोक्ष) को ले जाता है।

आउ गलइ णवि मणु गलइ णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ णवि अप्प-हिउ इम संसार भमेइ ॥49 ॥

अर्थ- आयु गल जाती है, पर मन नहीं गलता और न आशा ही गलती है। मोह स्फुरित होता है, परन्तु आत्महित का स्फुरण नहीं होता- इस तरह जीव संसार में भ्रमण किया करता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

वर्द्धमान स्वामी की पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य योगीन्दुदेव इस गहन सूत्र में कह रहे हैं कि मठ में निवास करने से, पोथियों को पढ़ने से, पिच्छी-कमंडल को धारण करने मात्र से मोक्षमार्ग मत मान लेना। ये मोक्षमार्ग के साधन तो हो सकते हैं, लेकिन ये पिच्छी-कमण्डल, उपकरण आदि मोक्षमार्ग नहीं है। द्रव्यलिंग, पाखंडीलिंग मोक्षमार्ग नहीं है। 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः', सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है। इस मार्ग पर चलने का उपाय जिनलिंग, गृहस्थधर्म, यतिधर्म त्रयोलिंग हैं। इसके अलावा सभी को पाखंडीलिंग कहा है। दिगम्बर साधु को जैनागम में पाखंडी कहा है। आपको आश्चर्य होगा, लेकिन सही पाखंडी तो दिगम्बर मुनि ही होते हैं, जो परोक्ष रूप से पापों के खंडन में लगे हुए हैं। ऐसे परम् वीतरागी, तपोधन, परम् भट्टारक वर्द्धमान स्वामी सर्वोच्च पाखंडी थे, जिन्होंने अपने कर्मों का खण्डन किया और सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों को पापों को खंडन करने का उपदेश दिया। भट्टारक से प्रयोजन सफेद या लाल कपड़े वालों को मत समझना, बल्कि जो कर्मों को नष्ट करने में लगे हुए हैं उन्हें हमारे आगम में परम् भट्टारक कहा है। भट्टारक यानी परम्पूज्य। अकलंक स्वामी को जब भी आप पढ़ोगे, तो आपको 'भट्ट अकलंक' नाम ही मिलेगा। षट्खंडागम में महावीर को भट्ट महावीर कहा है। उन जिनेन्द्र देव ने कहा है कि यदि आपने परम्-से-शून्य लौकिक साधना भी कर ली है तो शरीर

की पूजा हो जाएगी, लेकिन आत्मा की पूजा नहीं होगी।

आचार्य श्री योगीन्दुदेव इस 48वीं कारिका में कह रहे हैं कि धर्म क्या है? भो ज्ञानी! आपने गृह छोड़ दिया, वन में बस गए, लेकिन निज में नहीं बस सके। निज में बस गए होते तो वन में बसने के भाव न होते। आत्मदर्शी वन में नहीं रहता; ग्राम में, प्रखण्ड में नहीं रहता। आत्मदर्शी कहता है- निज का वास ही मेरा निवास है। निजस्वरूप में स्थिर होने में कठिनाई महसूस होती है तो वह नाना स्थानों की खोज करता है। आत्मराम-स्थान की खोज कर लो, फिर नाना स्थान की आवश्यकता ही क्या है? कोई कहीं भटक रहा है, लेकिन स्थिर बैठ गया होता तो आज भटकने की आवश्यकता नहीं होती। घर नहीं भटका रहा, भवन नहीं भटका रहा, ये भाव भटका रहे हैं। घर भटकाते होते तो घर यह भी है, जिसमें आप विराजे हैं। अंतर इतना है कि यह जिन-गृह है। घर भटकाने का हेतु नहीं है। भटकाने का हेतु राग है और राग घर में है। धन नहीं भटकाता। धन तो जड़ है। जड़ चेतन को क्यों भटकायेगा? भटकाते तो तुम्हारे भाव हैं और भावों को भटकाने में हेतु धन है, इसलिए कहा ऐसा जाता है कि भटकाता धन है। ये परम्-दृष्टि, स्वसमय-दृष्टि है। इन दृष्टियों की मात्र चर्चा करके तुम दृष्टा नहीं बन पाओगे। ये द्रव्यदृष्टि, पर्यायदृष्टि को तुम अनंत बार व्याख्या में सुन चुके हो, परन्तु अपने निज व्याख्याता को अपने व्याख्यान में नहीं लिया। इसलिए होता यह है कि इन शत्रुओं के पीछे तुम भगवान्-आत्मा को शत्रु मान रहे हो। बेटे ने कहा-धन देकर मुझे अलग कर दीजिए। जिस बेटे पर हाथ फेरते थे, आज निगाह फेरते हो। अरे! यह क्या हो गया? बेटा तो वही है। धिक्कार है उस धन के लिए जिसने आत्मा को शत्रु के रूप में देख लिया। धिक्कार हो राग-द्वेष के लिए। बेटा शत्रु नहीं था, वह तो राग और द्वेष शत्रु था। जिस धन को तुम देना नहीं चाहते थे, उस धन को पुत्र माँग रहा था। इसलिए पुत्र प्रिय नहीं था, धन प्रिय था। बेटे ने जबरदस्ती धन छीन लिया और पिता रौद्रध्यान से मर गया और मरकर खजाने में नाग बन गया। अहो पिताओ! ऐसे धन से क्या प्रयोजन, जिस धन ने आपको नर से नाग बना दिया? जिसे तूने तन से उपजाया था, जिसे तन से जन्म दिया था, उसे तूने आज डस लिया। बेटे के मुँह से फैन निकल रहा है, नीला पड़ गया। मंत्रवादियों ने कहा-जहर निकाल दो, अन्यथा गर्म कड़ाही में प्रवेश कर लो। मनीषियो! नाग कड़ाही में प्रवेश कर गया, लेकिन पुत्र के जहर को नहीं खींचा। कौन शत्रु था? पुत्र शत्रु होता तो जन्म ही क्यों दिया? पालन क्यों किया? शत्रु जन्म से नहीं था। जन्म में आपने तो पुत्र-मोह ही देखा था। धिक्कार हो ऐसे परद्रव्य के परिणमन को जिसने जन्माये हुए का घात कर दिया। इसलिए, जीवन में ध्यान रखना, आज से किसी को शत्रु की दृष्टि से मत निहारना, किसी को मित्र की दृष्टि से मत निहारना। देखना तो केवल जीवतत्त्व की दृष्टि से देखना। न राग होगा, न द्वेष। जो मित्र देखेगा, वह रागी होगा और जो शत्रु देखेगा, वह द्वेषी होगा। जो जीव-तत्त्व को देखता है, वह आत्महितैषी होता है। हम शरीर के सम्बन्ध को स्वीकारते हैं, लेकिन शरीर के स्वभाव को, निज-स्वरूप को

नहीं स्वीकारते। ये भी ध्यान रखो कि सबके बीच होते हुए भी मैं अपने से रीता नहीं हूँ। जो सबके बीच होकर भी रीता है, वह न अपना होता है न पर का होता है। ये गाँठ बांध लेना-इस लोक में न मेरा कोई शत्रु है और न कोई प्रिय ही है। राग-द्वेष-परिणति संसार में घूमने का मुख्य हेतु है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने 'इष्टोपदेश' में लिखा है-

रागद्वेषद्वयीदीर्घ-नेत्राकर्षण-कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ॥11॥

भो ज्ञानी! एक माँ मक्खन निकालती है तो मटके में होती है एक मथानी। मथानी में रस्सियाँ होती हैं। यदि वे न घूमें तो मक्खन नहीं बनता। इस आत्मा की ये दो राग-द्वेष रस्सियाँ न हों तो ये मथानी संसार में न घूमे। राग-द्वेष की रस्सियाँ दीर्घ हैं, मोटी हैं। ये दो रस्सियों में एक भी टूट जाये तो काम नहीं चलेगा। राग छोड़ने के पहले द्वेष को छोड़ देना और विश्वास रखना, यदि द्वेष टूट गया तो राग भी टूट जायेगा। जिसने द्वेष नहीं छोड़ा, वह राग नहीं छोड़ सकेगा। चार कषायों में दो रागरूप है, दो द्वेषरूप हैं। क्रोध और मान में द्वेष है तथा लोभ और माया में राग है। जब वे परस्पर मिलती हैं, वहीं कर्म का बंध होता है। एक जंगल में वीतरागी मुनि विराजे थे, उसी जंगल में भोगी वन-क्रीड़ा करने गया। पूछ लेना उससे कि ये वन योग का स्थान है या भोग का? रागियों को भोग का स्थान नजर आ रहा है और योगी को योग का। वन किसका स्थान है? वन भोग का स्थान नहीं, योग का भी नहीं। वन तो वन है। वन में जो योग की दृष्टि से जाते हैं, वे बन जाते हैं और वन में जो भोग की दृष्टि से जाते हैं वे बिगड़ कर आते हैं। ये तय है कि वन में पक्षी व जानवर भी रहते हैं, जो वन में भटकते हैं। ये अज्ञानदशा है। वन मोक्ष का हेतु नहीं, तो संसार का हेतु भी नहीं है। एणिक नाम के मुनिराज को नौका में बैठे-बैठे केवलज्ञान हो गया। 'मूलाचार' में लिखा है- यदि घुटनों के ऊपर पानी है तो पानी में प्रवेश नहीं किया जा सकता, परन्तु नौका में बैठा जा सकता है, लेकिन निर्ग्रंथ योगी सल्लेखना लेकर बैठेंगे। एणिक महाराज ऐसी सल्लेखना में बैठे कि शुक्लध्यान में चले गये। नदी पार नहीं हो पाई कि वह भव से पार हो गए। सागर पार बाद में हुए, पहले संसार से पार हो गए। केवलज्ञान हुआ और भावमोक्ष हो गया। ये दशा जीव के परिणामों की है। इसलिए शत्रु/मित्र वस्तु नहीं, तेरे निज के भाव हैं। सर यानी बाण। एक समय पहले जहाँ सर फेंके जा रहे हों, एक दूसरे पर हमले किए जा रहे हों और दूसरी ओर सिर झुक गया। अहो! जीवन में किसी भी पल परिणाम बदल सकते हैं। जिस भूमि के पीछे इतना रक्त बह गया हो, वह भूमि मेरे साथ कब चलेगी? समरभूमि में शत्रुघ्न बाण-चला रहे हैं, महाराजा मधु बाण को झेल रहे हैं। देखना, उधर शत्रुघ्न का बाण है, इधर कर्म का वाण है, दूसरी ओर वैराग्य ढाल बन गया। गज पर बैठे-बैठे केशलुंचन प्रारंभ हो गया। जहाँ एक मिनिट पहले रक्त के फव्वारे छूट रहे थे, वहाँ वैराग्य दिखने लगा, भक्ति छा गई। धिक्कार हो ऐसे वैभव को। शत्रुघ्न ने बाण भूमि पर रख दिया और चरणों में लोट गए। महाराज ! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु।

जो एक क्षण पहले बाण छोड़ रहा था, दूसरे क्षण प्रणाम कर रहा है। इसलिए कभी किसी जीव को शत्रु मत समझना। ये जीव शत्रु नहीं था, शत्रु शत्रुघ्न नहीं था, शत्रु मधु नहीं थे। यह तो भूमि का राग था जो बाण छुड़वा रहा था। जिसने भूमि को ही छोड़ दिया हो तो लड़ाई होती किसकी? भाई-भाई लड़ रहे थे, बात कुछ नहीं थी, आंगन में एक इंच भूमि बड़े भाई के पास ज्यादा चली गई थी। भाई ने कह दिया-तुम ये भी ले जाओ, वह भी ले जाओ। अब दुःख क्यों होगा? इससे ध्वनित होता है कि भाई-भाई में बैर नहीं था, बैर बढ़ानेवाली भूमि ही थी,जबकि मालूम है कि साढ़े तीन हाथ से ज्यादा भूमि तुमको चाहिए नहीं थी। पन्ना में बड़े-बड़े मकबरा बने हैं। घर से ज्यादा मकबरा सुन्दर है। राजा-महाराजों की कोठरियाँ-सी बनी हैं। लेकिन अब वृक्ष उग आये और जमीन मवेशियों का घर बन गई। जो भवन कभी गगन का चुंबन कर रहे थे, वे आज भूमि की गोद में सो गए, उन्हें देखने वाला कोई नहीं। जो खोपड़ी कभी सिंहासन पर बैठकर लाखों का वध करती थी, वह श्मशान में ठोकरें खा रही है।

भो ज्ञानी ! महान् ग्रंथ 'ज्ञानार्णव' में एक 'वृद्ध-सेवा' अध्याय है। यदि अपनी साधना में वृद्धि चाहते हो तो वृद्धों के साथ बैठो। वृद्धों के शरीर में अनुभव है, वासनायें समाप्त हो जाती हैं। परन्तु युवा के पास अनुभव नहीं मिलेंगे, वासनायें मिलेगी। वृद्ध के पास चिंता और चिंतन दो ही मिलेंगे। चिंता और चिंतन दोनों से ज्ञान बढ़ेगा। वृद्धों की सेवा कभी मत छोड़ना, अपना सौभाग्य मानना। इनके पास वह आज मिलेगा, जो आपको पचास वर्ष बाद मिलेगा। ध्यान रखो, संसार की दशा यही है, फिर भी आँखें नहीं देख पा रही हैं। किसी की पुण्य-पर्याय तो किसी की पाप-पर्याय दिख रही है। लेकिन पर्याय दोनों की है और उनके शत्रु हैं राग-द्वेष। इसलिए राग-द्वेष छोड़ दो। जिनको आप भावी-भगवान् कहकर पूजन भी कर लेते हो, उन्हीं को आप कभी गाली भी दे देते हो। रावण की पूजा नहीं करते हैं, भविष्य में बननेवाले भगवान् तीर्थंकर की पूजन करते हो। आचार्यश्री कह रहे हैं-जो राग-द्वेष को छोड़कर आत्मा में निवास करता है, उसे भगवान् जिनेन्द्र देव ने धर्म कहा है। भवन, मठ आदि में बैठना धर्म नहीं है। राग-द्वेष से रहित होने का नाम धर्म है।

शिष्य पहुँचा गुरुके पास दीक्षा लेने। गुरु ने कहा-पतली करो। वह समझ नहीं पाया, उसने एक महीने का उपवास कर लिया। एक मास के उपरांत देह तो पतली हो गई। लेकिन गुरु तो गुरु थे, उन्होंने कहा-भैया ! पतली करो। उसने एक माह के पुनः उपवास कर लिए। फिर कहा-अब तो दीक्षा दे दो। 'बेटा ! पतली करो।' शिष्य बनने जा रहा था, पर अहंकार छुपा हुआ है। वहाँ शिष्य ने कहा-गुरुजी! आप रोज भोजन करते हो, मैंने तीन माह के उपवास कर लिये, शरीर सूख चुका है, आप कहते हो पतली करो। क्या दीक्षा नहीं देना चाहते हो? 'बेटा! ये हमारी गलती नहीं है, आपकी है। मैंने तो आपसे कभी नहीं कहा कि शरीर को सुखा के बैठ जाओ। मैंने तो जिसे पतली करने को कहा था, वह तुमने नहीं की। कषाय पतली करनी थी।' जब तक कषाय को पतली नहीं करोगे और देह को सुखाकर

पतली करके बैठे भी जाओगे, तो साधना कभी भी हृदय में फलीभूत नहीं होगी। जिसने कषाय को सुखा दिया, उसके साधना की उर्वरा भूमि में फसल अवश्य आयेगी। इसलिए पतली करो। किसको? कषाय को, वासना को, कामना को। यदि ये पतली हो गईं तो तुम्हारा कल्याण सुनिश्चित है। वासनाएँ कड़ी हैं, मोटी हैं, तो शरीर से कितने ही दुबले-पतले हो जायें, कल्याण नहीं है।

आचार्य भगवान् कह रहे हैं-राग-द्वेष का परिहार (सो धम्म) धर्म है। कहाँ कहा कि धन खर्च करो, करोड़ों का दान दो? राग-द्वेष का अभाव करने से इनका अभाव होगा तो करोड़ों कहाँ जायेंगे? दान में ही जायेंगे। दान के लिए मत कमाना। जो कमाया है वो दान करना। बेटे से पिता ने कहा-स्नान तो करना है, तनिक नाली में लोट लें। यदि स्नान के उद्देश्य से तुम लोट गये, तो क्या किया? नाली में धोखे से पैर लग गया है, उसे धोने के लिए स्नान करना है। जो कमाया धन रखा है, उसे दान कर देना, लेकिन दान करने के लिए पाप मत करना। यदि कमाते-कमाते बीच में हादसा हो गया तो दान कौन करेगा? इसलिए ऐसे भाव मत लाना कि मैं दान करने के लिए कमा रहा हूँ। जो सहज भाव से कमाकर रखा है, उसे दान कर देना।

आचार्य भगवान् कह रहे है कि तुम राग-द्वेष को छोड़ दो। यही धर्म है। किसने कहा है? (जिण धम्मु उत्तियउ) भगवान् जिनेन्द्र ने कहा। (जो पंचम-गइ णेइ) जो पंचम गति को दिलाने वाला है, जो राग-द्वेष से रहित परिणाम हैं, उसका नाम धर्म है। ये ही पंचम-गति को प्राप्त करायेगा, बाकी सब व्यर्थ है। प्रतिष्ठा मिल सकती है, सुप्रतिष्ठा नहीं। जीव की दशा को 49-वीं गाथा में क्या कहा है? (आउ गलइ) आयु गल रही है (मणु णवि गलइ) मन नहीं गल रहा है। बैंक में किसी ने एक लाख रूपये जमा कर दिए। अब बार-बार कैलेन्डर देख रहे हैं। क्यों? उन्हें मूल नहीं, ब्याज दिख रहा था। जरा जीव से पूछो-जितने जल्दी महीना आएगा पैसे तो आयेंगे, लेकिन हम भी उतनी जल्दी मर जायेंगे। तुम्हें धन का इतना ध्यान है, परन्तु अपनी आयु के छूटने का कोई ध्यान नहीं है। जितने जल्दी माह आएगा तो उतनी जल्दी आयु क्षीण होगी कि नहीं?

ध्यान करने के लिए काल को मत देखना, क्योंकि प्रतिदिन आयु क्षीण हो रही है। एक बार कसाई के मन में दया आ सकती है, वह फाँसी के तख्ते से छोड़ सकता है, लेकिन यमराज को कोई दया नहीं है। जब समय हो जाएगा तब जाना ही पड़ेगा। आयु कर्म पूर्ण होजाएगा तो जाना ही है।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

आत्म-व्यापार कर

योगसार

जेहउ मणु विसयहँ रमइ तिमु जइ अप्प मुणेइ ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु लहु, णिव्वाणु लहेइ ॥50॥

अर्थ-जिस तरह मन विषयों में रमण करता है, उस तरह यदि वह आत्मा को जानने में रमण करे तो, हे योगीजनो ! योगी कहते हैं कि जीव शीघ्र ही निर्वाण पा जाय ।

जेहउ जज्जरु णरय-घरु तेहउ बुज्झि सरीरु ।
अप्पा भावहि णिम्मलउ लहु पावहि भवतीरु ॥51॥

अर्थ-हे जीव ! जैसे नरकवासी सैकड़ों छिद्रों से जर्जरित है, उसी तरह शरीर को भी (मल, मूत्र आदि से) जर्जरित समझ । अतएव निर्मल आत्मा की भावना कर, तो शीघ्र ही संसार से पार होगा ।

धंधइ पडियउ सयल जगि णवि अप्पा हु मुणंति ।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु ण हु णिव्वाणु लहंति ।।52॥

अर्थ-सब लोग संसार में अपने-अपने धंधे में फँसे हुए हैं और अपनी आत्मा को नहीं पहिचानते । निश्चय से इसी कारण ये जीव निर्वाण को नहीं पाते, यह स्पष्ट है ।

सत्य पढंतह ते वि जड अप्पा जे ण मुणंति ।
तहि कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति ।।53॥

अर्थ-जो शास्त्र तो पढ़ लेते हैं, परन्तु आत्मा को नहीं जानते, वे लोग भी जड़ ही हैं। निश्चय से इसी कारण ये जीव निर्वाण को नहीं पाते, यह स्पष्ट है ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अन्तिम-तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर भगवान् के पावन तीर्थ में अध्यात्म देशना का हम सभी श्रवण कर रहे हैं । आचार्य भगवान् योगीन्दु स्वामी ने अध्यात्म की परम् सरिता में निमग्न होकर उन अभूतपूर्व रत्नों को प्रदान किया है, जिनकी आभा अज्ञान रूपी अन्धकार का शमन कर देती है । पूर्व कारिका में आचार्यश्री ने उल्लेख किया कि, अहो ज्ञानी ! देह जीर्ण हो गई, परन्तु मन जीर्ण नहीं हुआ है । तन शिथिल हो गया, परन्तु मन शिथिल नहीं हुआ है । जिस भवन में तूने निवास किया, उस भवन की छत गिरने लगी, पर तेरे भोगों की छत आज

तक नहीं गिरी। जिस भवन को तूने स्वतः पोता, चूना लगाया, उस चूने की चमक फीकी हो गई, लेकिन तेरे चाह की चमक फीकी नहीं हुई। तेरी चमड़ी की चमक चली गई, पर तेरे मन की लालसा की चमक नहीं गई। तेरी देह को देखकर बालक डरने लगे हैं, पर तुझे वासना से डर नहीं लग रहा है। उस वृद्ध की हालत देखना "अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो"। उस वृद्ध के सिकुड़े हुए चेहरे को देखकर एक छोटा-सा शिशु डरके रोने लगता है, भयभीत हो जाता है। कम-से-कम अब तो डर लगना चाहिए, कि मुझे देखकर लोग डरने लगे हैं। कम-से-कम अब तो पापों से डरो। अब भी डर नहीं है? आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने उल्लेख किया-जैसे नरकों की वैतरणी (कृमियुक्त सरिता) है, ऐसे तेरी देह है। इस सरिता में खून-पीप भरा है, ऐसे ही तेरी देह सप्त धातु से भरी हुई है, कृमियुक्त है, कृमियों के माँस से युक्त है। इसमें जीव अनुरक्त है, ऐसी देह में आश्रय है।

मनीषियो! ध्यान से समझना, घट में पानी भरा और उसको किसी ने छू लिया, तब घट अपवित्र हो गया, घट अशुद्ध हो गया, उस घट को छूना पसंद नहीं करते हो। ज्ञानी आत्माओ! जिस घड़े में आत्मनीर भरा हो, यदि आत्मनीर निकल जाये तब, अहो ज्ञानी! उसे तुम सूतक मान लेते हो। जिसको छूने पर सूतक लगता है, एक नहीं दो नहीं पूरे तेरह दिन का सूतक लगता है, उसी चमड़े से तुम अंधत्व को प्राप्त हो। चिंता नहीं करो, जिसके छूने से सूतक लगेगा, जिसमें कीड़े पड़ेंगे, उस शरीर में जब रमण के भाव आयें, उस समय मरण का भाव देख लेना। रमण के भाव में मरण के भाव दिख जायें, तब शरीर में रमण के भाव नहीं आना चाहिए। आज तक तुमने आत्मरमण को नहीं जाना, मरण को जाना, इसलिए मर रहे हो इस शरीर के पीछे। आचार्य भगवान् योगीन्दु स्वामी कह रहे हैं-अहो! नरक जब मिलेगा, जिसे मिलेगा, तब मिलेगा। जो शरीर के राग में लिप्त है, मनीषियो! वही तो नारकी का जीवन जी रहा है।

मेरे पास पूछने नहीं आना। आज आप स्वयं अनुभव करना। अब सुनो-जिसके पीछे आप अनुरक्त हो, वह खून-पीप का पिटारा है। इस शरीर में चौबीस सेर मल है। किसी डाक्टर अथवा वैद्य से पूछ लेना, जिस दिन शरीर का सारा मल अगर निकल जावे, उस समय मृत्यु हो जायेगी। तभी तो शरीर फूला-फूला लगता है जब तक मल भरा है।

एक युवक ने शीलवन्ती कन्या को देखकर उस पर कुदृष्टिपात कर दिया और कह दिया कि मैं शादी इसी कन्या से करूँगा। वह राजकुमार था, कन्या सेठ की थी। राजा से कौन कुछ कहता। ध्यान रखना, यदि शील है तो तेरी कीमत है। बाजार में यदि छोटी सामग्री भी खरीदने जाते हो तब उसमें देखते हो कि सील है कि नहीं। ओ हो! विश्वास टिका है तो किस पर? शील पर। (सील) निकल गई तो क्या सोचते हो? इसमें कुछ गलत भरा है। आपका पत्र भी आता है तो क्या निहारते हो पत्र पर? कहाँ से आया, यह तो ठीक है परन्तु पत्र में सील लगी है कि नहीं, किसी ने पढ़ा तो नहीं है? जब तक सील है पत्र पर, तब तक रहस्य है। सील

खुली, रहस्य गया। अहो मुमुक्षु आत्माओ ! ऐसे ही आपके जीवन में शील है तब तक आपका जीवन रहस्यमय है। शीलभंग हो गया अगर, तब आपका जीवन कुछ भी नहीं है। दो कौड़ी का नहीं। ध्यान रखना, हिंसा करनेवाले व्यक्ति को दूसरे खोटी दृष्टि से देखते हैं, पर शीलभंगी को, मनीषियो ! सभी खोटी दृष्टि से देखते हैं। किसी ने किसी का वध कर दिया हो तो दूसरे कहते हैं कि हिंसक आ गया। परन्तु जिसने जीवन में स्वयं का शील भंग किया हो तब उससे पूछना कि अन्दर क्या भाव आते हैं? धिक्कार है स्वयं पर। जीवन में ध्यान रखना, धन-वैभव का मिलना, सुन्दर शरीर का मिलना सहज है, कुछ अच्छे कुछ बुरे भी, परन्तु इन सबको पाकर अपनी लाज रखना बहुत कठिन है।

बहुत विवेक के साथ काम किया उस कन्या ने। कहा-राजकुमार! मैं आपसे प्रसन्न हूँ, पर ध्यान रखना, आज नहीं, हम आपसे एक सप्ताह पश्चात् चर्चा करेंगे। इतना तो धैर्य रखो आप। नारी की बात में आ गये। शीलवन्ती कन्या ने घर जाकर अपने पिताश्री से कहा-पिता! इस सुन्दरता से क्या प्रयोजन, जिस सुन्दरता से शील नष्ट हो? वह सुन्दरता किसी काम की नहीं। आज राजकुमार मेरे शील पर नहीं रीझा, मात्र मेरी सुन्दरता पर रीझा है। वह रूप पर अपनी जान दे रहा है। और, मनीषियो ! आप से पूछता हूँ-एक पतंगा दीपक में जलता है उस समय तो आप कहते हो कि कैसा मूर्ख है जो चक्षु-इन्द्रिय के पीछे जान को दे रहा है। ज्ञानी आत्माओ ! पतंगा तो असंज्ञी है, चार इंद्रिय है, लेकिन तुम तो ज्ञानी तत्त्व-विवेकी हो। पतंगा तो ज्योति पर रीझ रहा था,परन्तु तुम तो बुझे हुए पर मर रहे हो। हे ज्ञानी ! एक पतंगे को देखकर तुम मुस्करा रहे हो, बड़े खुश हो रहे हो, कि देखो-देखो जल गया। कहाँ जल गया? अपने तात को नमस्कार करके कन्या ने कहा-पिताश्री ! आप सात घड़ों की व्यवस्था करो, मैं इन घड़ों में मल भरकर रखूँगी। सात सुन्दर घड़े रखे हुए हैं। सात दिन की प्रतीक्षा के बाद जब राजकुमार आते हैं तब कन्या, मनीषियो ! दरवाजे पर ही बैठी हुई थी। कन्या तो वही थी पर जिस पर रीझ रहे थे, वह रूप नहीं था। राजकुमार ने समझा कोई घर की काम करने वाली बाई होगी। राजकुमार ने कहा-क्यों, वह सेठ-कन्या कहाँ है? कन्या ने मुख से कुछ नहीं कहा, हाथ से इंगित किया-इन घड़ों के अन्दर बैठी हुई है। वह कहता है-घड़ों के अन्दर क्या संभव है? हाँ, यदि एक राजकुमार को पर-स्त्री पर दृष्टिपात करना संभव है, तब कन्या घड़े में भी बैठ सकती है। बात को पकड़ना कि कहाँ कटाक्ष किया गया। जो पिता देश का सम्राट हो, वह अपने बेटे को ही नहीं सम्हाल पाया तो वह प्रजा को क्या सम्हालेगा? और जिसको अपने भावों पर विश्वास नहीं, जो अपने परिणामों को नहीं सम्हाल पा रहा है, मनीषियो ! वह विश्व को क्या सम्हालेगा? ऐसे ही अपराधी/अनाचारी व्यक्ति को शासक के रूप में नहीं बैठा लेना। देश का, समाज का, राष्ट्र का,परिवार का शासक वैसा हो जिसके सील बन्द हो, जिसके शीश पर सील लगी हो। अनाचार की जिसे सील लगी होगी, तो उससे समाज, देश बदनाम होगा, परिवार बदनाम हो जायेगा।

उससे रहा नहीं जा रहा है, वह कहता है-अहो कन्ये ! जल्दी बताओ, वह सेठ-पुत्री कहाँ है? 'सत्य ही कह रही हूँ कि इन घड़ों के अन्दर हैं, आप निहार लीजिये।' नहीं, माता ! बताओ इसमें क्या है? 'नहीं नहीं, आप देख लो।' जैसे ही उसने ऊपर से क्या था मखमल था न? हे आत्मन् ! इसी में तो भ्रमित हो, ऊपर के मखमल को देखकर उसके अन्दर की गन्दगी को नहीं देख रहे हो। ऊपर की सुन्दरता को देखकर अन्दर के मल में लिप्त हो रहे हो। मलयोनी है क्या? इस देह से झर क्या रहा है? मल योनिमल से उत्पन्न हुआ है। मल के स्थान से जन्म हुआ है और मल ही बह रहा है। जैसे ही वस्त्र को हटाया, ओह ! नाक फटने लगी।

नाक क्या फट रही है। यह वही कन्या है जिससे आठ दिन पहले तुम कह रहे थे कि मैं इससे प्रेम करता हूँ। करो इस मल से प्रेम। आप मेरे लिये नहीं अपितु इस मल के लिये राग कर रहे थे। अब आप इस मल के घड़े में डूबकर मर जाओ। राजकुमार के नेत्रों से नीर बहने लगा, कहने लगा कि धिक्कार हो मुझे। वह जिसे पत्नी बनाने गया था, उसे गुरु बना उसके चरण छू लेता है। वह कहता है-हे बहन ! आज से आप ही नहीं, विश्व की संपूर्ण नारी-मात्र को भगिनी और माँ की दृष्टि से देखूँगा। अब मैं इस मल के पिण्ड से जीवन में कभी राग नहीं करूँगा।

ऐसे तन में हमारी क्या दशा है, इसके लिये आपको आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने 51वीं गाथा में समझाया कि नरक की दशा और शरीर की दशा समान है। क्यों, कुछ नहीं महसूस हुआ? लगा आपको कि यह नरक की दशा इस देह की दशा है? यह देह में ही निमग्न हो रहा है, कभी-कभी आश्चर्य लगता है। अरे मुमुक्षुओ ! इतना ही नहीं, और भी कुछ कह रहे हैं आचार्य भगवान्। वे कह रहे हैं कि अब धन्धे बन्द कर दो, अब बहुत ही बेच लिये जवाहरात। पर्याय के पूरे दिन निकल गये। यह शरीर कह रहा है कि मैं छोड़ने वाला हूँ तुझे, भले ही तू मत छोड़ मुझे। तुम चिन्ता न करो, मैं अपने समय पर तुझे छोड़ दूँगा। अहो ज्ञानी ! शरीर छूटने के पहले यदि हम इसको छोड़ दें तो बहुत अच्छा होगा। सत्य यही है कि जो छोड़ देता है, वह बड़ा होता है। क्यों? रोज आप प्रेक्टिकल करते हो, जब आहार देते हो, आप तब आपका हाथ ऊपर होता है। दाता हमेशा बड़ा होता है और पात्र हमेशा छोटा होता है। नल की टोंटी ऊपर होती है, और बाल्टी नीचे होती है। लेनेवाले को झुकना ही पड़ता है। परमेष्ठी पद पर अधिष्ठित मुनिराज को भी झुकना पड़ता है। एक समय लगता जरूर है कि, भगवन् ! यह क्षण अगर नहीं होता तब एक घंटा साधना का और होता।

जिन घरों को छोड़ा है, दिन में एक बार उन्हीं घरों को जाना पड़ता है। फिर भी भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि तुम चले जाओ, पर ध्यान रखना, इस चादर की रक्षा के लिये। क्योंकि जिस दिन चादर फट जायेगी तो रतन बिखर जायेंगे। रत्नों को सम्हालकर ले चलना है, इसलिये चादर को भी सुरक्षित रखना। जब अपना स्थान मिल जाये तो चादर को भी छोड़ देना।

यह देह चर्म की चादर है। इसमें मंडित आत्मा को आपको मोक्षमहल तक ले जाना है, तब तक आप इसकी रक्षा करना और जिस दिन देख लिया कि मेरा स्थान आ गया, फिर इस पर दृष्टि नहीं डालना। क्यों, ज्ञानी आत्माओ ! मोक्ष की ओर चलना है?

आपसे कहा था क्या? माँ ने कहा तो मैंने सुना। माँ कहती है कि, वत्स ! पीछे मुड़कर न देखना, अब जाओ। नगर की सीमा को जैसे ही पार किया, उन लोगों ने जो हाथ में मांगलिक द्रव्य लिये थे फेंके दिये। जिस दिन आपकी सगाई हो रही थी, शादी होने जा रही थी, घर से आप जा रहे थे, तो सत्य बताओ आप कैसे चल रहे थे? उस चाल को जीवन में चल लिया होता, तो आज पंचपरमेष्ठी के रूप में विराजमान होते। जनवासे की चाल जो होती न, कैसे सम्हल-सम्हल कर पग रखता है? पर एक बात देखो मैं जरूर बताऊँगा, शायद आप लोगों को नहीं मालूम है। मैं छोटा था तब जानता ही नहीं था। रहस्य उसका अब समझ में आया। एक बार मैं भगवान् के अभिषेक के लिये कुँए से जल लेने गया। उसी समय एक बारात मंदिर के सामने से निकल रही थी। तब बेटा शादी के लिये जा रहा था तो नगर की माताएँ मंगलाचार/मंगलगान कर रहीं थीं। ऊपर चादर तना हुआ था, कुछ मांगलिक द्रव्य छोड़े जा रहे थे। इन सब को गौण करके जो मुख्य वस्तु थी उसे मैं बता रहा हूँ। उसमें से एक माँ बोलती है, 'बेटा ! ऐसा करना, अब तुम पीछे मत देखना।' मेरी समझ में नहीं आया, मैं तो छोटा था। लेकिन आज समझ में आ गया है। क्यों, आप लोगों से कहा था? मांगलिक द्रव्य जमीं पर फेंककर गांव की मेढ़ को छोड़कर माँ ने बेटे से कहा कि पीछे मुड़कर नहीं देखना। एकदिन सामायिक में बैठा था, सोच रहा था उस द्रव्य को कि ऐसा क्यों कहा था? पंद्रह-बीस वर्ष की बात थी। तो रहस्य अपने-आप समझ में आ गया। जब संसार की वधू के साथ शादी करने जाया जाता है, तब पीछे मुड़कर नहीं देखते हैं, क्योंकि पीछे मुड़कर देख लोगे तो अपशकुन हो जाएगा।

ओ हो मुनिराज ! तुम तो मुक्ति-वधू के साथ शादी करने जा रहे हो, पीछे मुड़कर विषयों को मत देख लेना, नहीं तो अपशकुन हो जायेगा। क्या दशा है संसार की? जैसे आप जनवासे की चाल चले थे, वैसे मुनि बनकर चले होते तो पता नहीं आज तुम कहाँ होते। वहाँ तो पीछे मुड़कर नहीं देखा, पर यहाँ कितनी बार पीछे मुड़ते हो? यहाँ कितनी बार सोचते हो कि अब यह नियम बहुत कठिन हो रहा है। पर यह क्यों नहीं सोचते हो कि गृहस्थी का वज़न कितना बढ़ रहा है। अब तो हल्की कर लो, बहुत दिन बीत गये। अहो ज्ञानी ! पर- घर फिरत बहुत दिन बीत गये, अब तो निज-घर में आ जाओ।

जनकपुर भी आप जाते हो, ससुराल भी आप जाते हो तो कुछ दिन बाद आप कहते हो कि चलो, अब वापिस चलो। कहते हो न? अहो ज्ञानी आत्माओ ! आज तक तुम्हारे मन ने नहीं कहा कि अब चलो अपने घर चलें।

एक व्यापारी व्यापार करने जाता है विदेश। अकूत संपत्ति कमाता है। पर उस संपत्ति का

उपयोग वह कहाँ करता है? अपने घर में। वहाँ व्यापार को बंद करके फिर उपभोग करता है। भगवान् योगीन्दु स्वामी 52वीं कारिका में कह रहे हैं-अहो ज्ञानियो ! अब धन्धा बन्द कर दो।

मनीषियो ! योगीन्दुदेव स्वामी 52-53 वीं कारिकाओं में बहुत ही गहनतम् महत्वपूर्ण बात कह रहे हैं। सम्पूर्ण जगत, सारा लोक,सारा संसार,सारा विश्व मात्र कहाँ लगा है? धन्धों में, अपने-अपने व्यापार में लगा हुआ है। एक चींटी को देखो, दिनभर घूमती-फिरती है। उसका छोटा-सा पेट है, तनिक-सा, पर पूरे दिन वह छोटे से पेट को नहीं भर पाती है, घूमती रहती है। भोजन और मरण ये दो बहुत चिंताजनक वस्तुएँ हैं। एक जीव तो जीने की चिन्ता कर रहा है और दूसरा जीव खाने की चिन्ता कर रहा है। एक व्यक्ति को फांसी की सजा घोषित कर दी। ओ हो। जब फांसी के तख्ते पर भेजा गया उसको तो जो सीढ़ियाँ थी चढ़ने की, वह टूटी थीं,इतनी ज्यादा अच्छी नहीं थीं। जब उससे कहा-जाओ भैया ! चढ़ो। तो वह कहता है-सही सीढ़ियाँ ले के आओ। टूटी सीढ़ियों पर नहीं चढ़ता। बोले-क्यों? 'अगर मैं गिर गया, हाथ पैर टूट गये तो क्या होगा?' तो सामने एक सज्जन बोले-भैया! आपको तो मरना ही है ऊपर जा के। 'तुम कैसे कहते कि मरना है? जी गये तो? यदि मैं जी गया और हाथ-पैर टूट गये तो क्या होगा?'

भगवान् महावीर स्वामी की जन्म-जयन्ती के दिन इतनी तो प्रतिज्ञा ले लेना कि, महाराजश्री ! मैं मृत्यु का वरण कर लूँगा, लेकिन किसी जीवित जीव के खून को अपने शरीर पर नहीं चढ़वाऊँगा। ऐसा कैसा प्राणों का राग कि हम मुख से नहीं पी सकते, लेकिन हम बाटली से, इन्जेक्शन से भरवा सकते हैं। रक्त की बाटलें चढ़वाते हो न, ये क्या है? दवाई क्या है? यह पता है कि अमुक-अमुक जीव की हड्डी-पसली से बनी दवाई है? क्यों खा रहे हो? जब जिसका आयुकर्म आ गया तो दवाई है क्या? हे आत्मन् ! सत्य बताओ कि आयुकर्म जिलाता है कि दवाई? अहो ज्ञानी आत्माओ ! ये कब तक अच्छा लगता है कि 'मंत्र-तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई?' जब तक जी रहे तब तक। कब तक अच्छा लगता यह सब? जब तक कष्ट नहीं आता,तब तक बड़ा अच्छा लगता है। धन्य उस जीव को जिससे कहा गया कि तुम्हारे जीवन की अन्तिम सांसें हैं। वैद्य कह रहा है कि अमुक-अमुक सामग्री का सेवन कर लो, जी जाओगे। वह कहता है कि नहीं, मरना पसन्द है। ज्ञानी जीव प्राण देना अच्छा मानता है, पर प्रण को छोड़ना अच्छा नहीं मानता। ज्ञानी जीव प्राण देने में नहीं डरता है, पर प्रण छोड़ने में डरता है। इसलिये, जीवन में ध्यान रखना, अपने प्रण को मत छोड़ देना और हमारा प्रण है कि, भगवन् ! मैं किसी भी जीव के अंश का उपभोग नहीं करूँगा, किसी भी रूप में। ठीक है, दस दिन और जी जाते, तो क्या करते? ऐसे कम जीव होंगे जो ज्यादा जीकर अच्छा काम करते हैं।

एक जगह चार सप्त-व्यसनी व्यक्ति मद्यपान करके आपस में खूब लड़ रहे थे। एक संत

वहाँ से निकले। उसके मुख से निकला कि, भगवन् ! इन लोगों का संगठन कभी न टूटे, ये ऐसे ही मिलकर रहें एक स्थान पर। जो सज्जन साथ में चल रहे थे उन्होंने कुछ नहीं कहा। थोड़ी दूर आगे चले। कुछ विद्वान् गोष्ठी में बैठे थे। वह संत कहता है कि, हे भगवन् ! इन लोगों में फूट हो जावे, तो बहुत अच्छा हो। उस सज्जन से रहा नहीं गया, उसने पूछ ही लिया कि वह चार जो लड़ रहे थे उनसे कह रहे थे कि इकट्ठे रहें और जो विद्वान् थे उनसे कह रहे हैं कि फूट जाओ। भैया ! हमारी बात को हमारे तक रहने दो। 'नहीं -नहीं, बताओ।' बात ऐसी है कि जो झगड़ रहे थे वह सप्त, यदि एक-साथ रहे तो कम-से-कम एक जगह का ही समाज बिगड़ेगा। यदि वे फूट गये तो न जाने कितने लोगों को बिगाड़ देंगे। वे विद्वान् एकजगह बैठे थे, तो क्या लाभ? वे बिखर जायें, वे चार जगह जायेंगे तो चार जगह के लोगों को धर्म-तत्त्व की बातें सुनने को मिलेगी।

तो भैया ! अच्छे आदमी बिखर जायें तो कोई बात नहीं है,लेकिन बुरे इकट्ठे रहें तो ही अच्छा है। ठीक है न? यानी अज्ञानी पुरुष हर दृष्टि से बात को ज्ञान से तौलता है। अज्ञानी ज्ञान में भी खोटी दृष्टि को डाल देता है। धन्धे में पड़ा हुआ है सारा विश्व, लेकिन अपनी आत्मा को नहीं जाना, नहीं पहचाना, इसी कारण से जीव शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त नहीं कर पा रहा है। इस बात को आप स्पष्ट समझो। यथार्थ है कि जितनी चिन्ता दुकान को खोलने की होती है,सही बताओ, उतनी चिन्ता भगवान् की होती है? मंदिर आने में एकाध मिनट आगे पीछे हो तो कोई दिक्कत नहीं होती है। कौन कोई डाँट रहा है, कौन ग्राहक भग रहा है, कौन सर्विस में साहब डाँट रहे हैं। लेकिन कितने प्रेम से आप दुकान खोलते हो। जाकर क्या करते हो? ताले के पाँव पड़ लेते हो। धन्य हो ताले देवता की। तीर्थंकर देव के चरण बाद में छुये, पहले ताले-देव की आरती उतार लेते हैं, दीपक-अगरबत्ती लगा देते हैं। हमने तो आज तक किसी शास्त्र में नहीं पढ़ा कि नौ देवता में ताला भी एक देवता है? अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय-ये नौ देवता हैं। इन नौ देवताओं में तखड़ी (तराजू) कौन-सी देवता है? ये भगवान् तो कुछ नहीं देते, इससे तोल मोल पेट भरत, ईसे इसे पूजत। अहो ज्ञानी आत्माओ ! इन रूढ़ियों से अब तो बचो। अब विलात दिन हो गये रूढ़ियों में जीते जीते। एक मात्र पंचपरमेष्ठी की वंदना करो। उनके पुण्य से सब मालामाल होगा, चकाचक होगा, चिन्ता न करो। तुम्हारे भगवान् तुम्हारे लिये सब छोड़कर चले गये, वे कुछ नहीं ले गये, फिर भी तुम रो रहे हो।

अहो ज्ञानियो ! आचार्य महाराज ने किसी को नहीं छोड़ा। गृहस्थों को डाँटा, योगियों को डाँटा, अब पंडितों पर आ गये। अहो ज्ञानी आत्माओ ! तुमने शास्त्र पढ़-पढ़ के ग्रन्थ तो खोल दिये, पर ग्रन्थि नहीं खुली। इतने ग्रंथ पढ़े कि उनके पृष्ठ फट गये,पर अन्दर की ग्रन्थि नहीं खुली। तुम्हारे अन्दर की काम वासनाओं की ग्रन्थि खुली? ध्यान रखना, ग्रन्थ इसलिये पढ़ना कि हमारी गाँठ खुल जाये। गाँठ हमारी बंध जाये, इसलिये ग्रन्थ नहीं पढ़ना। जो

शास्त्र मात्र को पढ़ रहे हैं, वे भी जड़ हैं। क्यों? आत्मा को नहीं जानते। ध्यान रखना, जो शास्त्र पढ़ें उनको खोटी दृष्टि से न देखन लगियो। उखो ऐसे देखो कि दिखे ये शास्त्र पढ़े रहे हैं। नहीं, शास्त्र पढ़ने का निषेध नहीं कर रहे हैं। उनसे ये कह रहे है कि तुम शास्त्र तो पढ़ो, पर साथ में स्वीकार तो करो। आप ग्रन्थ तो पढ़ो, साथ में ग्रन्थि भी खोलो। अन्यथा मालूम चला कि पूरा जीवन निकल गया। शास्त्र पढंत पढंत, तोता-मैना की तरह रटंत रटंत। हमारी दृष्टि ऐसी हो कि हमारा उस कहानी में नाम न जुड़ जाये। ध्यान रखना, मनीषियो ! एक कहानी हम छोटे में पढ़ते थे। एक साधु ने तोते को पाठ पढ़ाया- 'बेटे ! पढ़ो कि जंगल में शिकारी आता है, जाल फैलाता है, दाने का लोभ दिखाता है, तुम जाल में फँसना नहीं।' मालूम चला कि शिकारी आया, जाल फैलाया, दाने का लोभ दिखाया और तोते फंस गये। और, मनीषियो ! पिंजड़ा टँगा हुआ है वृक्ष पर, साधु-महात्मा निकलते हैं उस जगह से, लेकिन पाठ अभी भी चल रहा है कि शिकारी जंगल में आता है, दाने का लोभ दिखाता है, अपना जाल फैलाता है, तुम फँसना नहीं। अहो मुमुक्षु ! तू ऐसा मत करना कि जाल में ही बैठा रहे और पढ़ता वही रहे। इसलिये भगवान् योगीन्दु स्वामीजी कह रहे हैं कि उस आत्मतत्त्व को समझो। हे जीव ! इस कारण से तो शीघ्र निर्वाण को प्राप्त नहीं कर पा रहे हो, क्योंकि तुमने शास्त्र को पढ़ा है, वह भी जड़तत्त्व है लेकिन चैतन्य आत्मा को नहीं देखा। मनीषियो ! शास्त्र-स्वाध्याय तो करना, स्वाध्याय परम तप है, लेकिन स्वाध्याय करते अपनी आत्मा/अध्यात्म को भी जोड़ लेना कि मेरी आत्मा ज्ञान -तत्त्व को प्राप्त करके चारित्र को मौके से अंगीकार करे और मोक्षमार्ग को प्रशस्त करे।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

रोको राग के प्रवाह को

योगसार

मणु-इंदिहि वि छोडियइ, बुहु पुच्छियइ ण कोइ।
रायहँ पसरु णिवारियइ सहज उपज्जइ सोइ ।।54 ।।

अर्थ-पंडित यदि मन और इन्द्रियों से छुटकारा पा जाय, तो उसे किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं। यदि राग का प्रवाह रुक जाय, तो वह (आत्मभाव) सहज ही उत्पन्न हो जाता है।

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ, अण्णु जि सहु ववहारु।
चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ लहु पावहि भवपारु ।।55 ।।

अर्थ-पुद्गल भिन्न है और जीव भिन्न है तथा अन्य सब व्यवहार भिन्न हैं। अतएव पुद्गल को छोड़ और जीव को ग्रहण कर-इससे तू शीघ्र ही संसार से पार होगा।

जे णवि मण्णहिं जीव फुडु, जे णवि जीउ मुणंति।
ते जिण-णाहहँ उत्तिया, णउ संसार मुचंति ।।56 ।।

अर्थ-जो जीव को स्पष्टरूप से न समझते हैं, और जो उसे न पहिचानते हैं, वे संसार से कभी छुटकारा नहीं पाते-ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

रयण - दीउ दिणयर दहिउ दुध्दु घीव पाहाणु।
सुण्णउ रूउ फलिहउ अगिणि णव दिट्ठंता जाणु।।57 ।।

अर्थ-रत्न-दीप, सूर्य, दही, दूध, घी, पाषाण, सोना-चाँदी, स्फटिक और अग्नि, ये (जीव के) नौ दृष्टान्त जानने चाहिए।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर भगवान् के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर भगवान् महावीरस्वामी की देशना आचार्य-परम्परा से हम सभी को प्राप्त हुई। आचार्य-भगवान् योगीन्दु स्वामी ने अध्यात्म के उस गूढ़ रहस्य को एक सहज भाषा में किस प्रकार भावित किया है, यह ज्ञान की महिमा, ज्ञान की आराधिता यह कृति हमें प्रदान कर रही है। जीवन में एक कृति लिखना बहुत सरल है, लेकिन कृति-का-जीवन जीना उतना ही कठिन है। धर्म की पुस्तक लिख देना बहुत कठिन नहीं है, पर धर्म-का-जीवन जीना अवश्य कठिन है।

आचार्य भगवान् योगीन्दु स्वामी ने कहा है कि इस जीव ने ग्रन्थ का पठन-पाठन कई बार किया है, आत्म-तत्त्व को बहुत बार जाना है,लेकिन आत्म-ज्ञानानन्द-घन का पान जीव ने एक भी बार इस जीवन में नहीं किया। आनन्दकन्द आत्मा का वेदन एक बार भी कर लेता तो, मनीषियो ! यह ग्रन्थ भी निर्ग्रंथ नजर आता। प्रभु से प्रार्थना करना कि, भगवन् ! वह दिन कब आये जब इन ग्रन्थों के अध्ययन से निर्ग्रन्थ बन जाऊँ । वस्तु से निर्ग्रन्थ बन गया, घर परिवार से निर्ग्रन्थ बन गया, फिर भी परम्-पारिणामिक-भाव की परम् दशा की प्राप्ति तभी होगी जब ग्रन्थ भी मुझे बाह्य नजर आने लगे, मात्र निर्ग्रन्थ-अवस्था ही झलके। अब मैं पृष्ठ नहीं पलटना चाहता हूँ, पुस्तकों को नहीं पढ़ना चाहता हूँ। अब तो मैं मात्र आत्मा से आत्मा को जानना चाहता हूँ, क्योंकि पोथी मोक्ष नहीं देती। पोथी मोक्ष नहीं है, लेकिन पोथी मोक्ष-प्राप्ति का उपाय अवश्य देती है। पोथी पाण्डित्य नहीं है। सहज भाव से समझना। पोथियों में पाण्डित्य होता तो अलमारियों में ज्ञान की आवाज गूँजा करती । द्रव्य-श्रुत में ज्ञान होता तो यह शास्त्र जिस प्रेस से निकल रहे हैं वह सभी प्रेस ज्ञानी होते।

ग्रन्थ को पढ़ लेने से ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान तो निज के क्षयोपशम से होता है। एक गुरु ने दो शिष्यों को शास्त्रों का अध्ययन एक साथ एक-सा कराया,लेकिन,मनीषियो ! एक ज्ञानी बन गया और दूसरा अज्ञानी रह गया। ग्रन्थ को पढ़ाने वाला वही था, परंतु स्वयं के उपादान में योग्यता नहीं थी। गुरु की दृष्टि निर्मल होती है, गुरु-कृपा सब पर समान होती है। यदि निज के गुरु के क्षयोपशम की कृपा नहीं है तो बेचारे गुरु का आशीष क्या करे?

आचार्य भगवान् योगीन्दुस्वामी कह रहे हैं कि ग्रन्थ हमारे ज्ञान में निमित्त हैं और गुरु हमारे ज्ञान में निमित्त हैं। वस्तु-गुरु हमारे ज्ञान नहीं है, ग्रन्थ हमारे ज्ञान नहीं है, क्योंकि ज्ञान-दर्शन यह आत्मा का धर्म है। ज्ञान-दर्शन गुरु और ग्रन्थों का धर्म नहीं है, वे तो निमित्त-मात्र हैं।

आचार्य भगवान् पूज्यपादस्वामी ने बड़ी सुन्दर बात लिखी है। गुरु विज्ञ को अज्ञ नहीं बना सकता और अज्ञ को विज्ञ नहीं बना सकता, क्योंकि गुरु आदि निमित्त हैं गति में धर्मास्तिकायवत्। धर्मद्रव्य गमन नहीं करता। धर्मद्रव्य किसी को गमन भी नहीं कराता। परिभाषा का ऐसा सुधार करना जिससे उसको कोई काट न सके। धर्मद्रव्य कभी भी गमन नहीं करता। धर्मद्रव्य किसी को गमन नहीं कराता, परन्तु धर्मद्रव्य के बिना किसी का गमन होता भी नहीं है। धर्मद्रव्य गमन नहीं करता, गमन करते हुए जीव और पुद्गल को गमन में सहकारी-कारण होता है। तो भगवान् पूज्यपादस्वामी कह रहे हैं कि कोई किसी को ज्ञानी नहीं बनाता, कोई किसी को अज्ञानी नहीं बनाता। लेकिन ध्यान रखना, 'गतेर्धर्मास्तिकायवत्।' परमार्थ-दृष्टि यही कहेगी आपके लिये। आपने कहा कि मैंने आपको ज्ञान दिया है, तो ज्ञान देनेवाले को अहंकार आ जायेगा। ज्ञानी को यही सोचना है कि यदि उसकी योग्यता नहीं होती तो मैं उसको कैसे दे सकता था? लेकिन जिसे ज्ञान मिला

है वह अहंकार में न डूब जाय, यही कहे कि यह आपकी कृपा से मुझे मिला है। यह श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध है। परन्तु मूलार्थ यही है कि निज के उपादन में योग्यता नहीं है तो पर-निमित्त कुछ नहीं कर सकेगा। लेकिन पर-निमित्त के अभाव में कोरा उपादान कुछ कर भी नहीं सकता है। इसलिये योग्य उपादान होगा एवं योग्य निमित्त होगा, तभी कार्य की सिद्धि होगी। इसलिये 'न्यायदीपिका' में कहा है कि साधकतम्-कारण वही होता है, जिससे सुनिश्चित कार्य हो। वही कारण, कारण है जिससे कार्य की सिद्धि सुनिश्चित है। वही निमित्त है, जिससे उपादन नियम से कार्यरूप परिणमित होगा। यदि कार्यरूप परिणमित नहीं होता है तो वह निमित्त उसके लिये निमित्त नहीं है। वही एक द्रव्य एक के लिये निमित्त है और अन्य के लिये कुछ नहीं कर रहा है। यही जीव की दशा है निज के उपादान की योग्यता की वृद्धि के लिये। किस क्षेत्र में उपादान की योग्यता बढ़ाना चाहते हो? संयम के क्षेत्र में कि ज्ञान के क्षेत्र में? उमास्वामी महाराज ने सहज लिख दिया है कि संयम के क्षेत्र में उपादान बढ़ाना है तो संयमी का संसर्ग करो, संयमी की सेवा करो। कषायों में मंदता के साथ संयम धारण कर लोगे तो संयमी बन के रह पाओगे। कषायों की तीव्रता में कभी भी आप संयम की रक्षा नहीं कर पाओगे। कषायों की तीव्रता से चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है चाहे कषायें हों, चाहे नोकषायें हों। ज्ञान की बात करोगे तो ज्ञानधारियों के साथ रहो, ज्ञानियों की विनय करो, ज्ञान के उपकरणों की विनय करो, और आप अन्तराय के जो कारण हैं उनसे दूर रहो, क्योंकि संयम और ज्ञान के क्षेत्र में युगपत् उपादान का विकास ही श्रेयस्कर है। किसी जीव के निर्दोष ज्ञान में दोष मत लगाओ। ठीक है, आप से नहीं बनता तो कोई दिक्कत नहीं है, लेकिन अहं के पीछे किसी के निर्दोष ज्ञान में दोष मत देखना। कोई आपसे पूछना चाहते हैं तो उसे बता देना, मात्सर्य भाव नहीं रखना। आप अपने जीवन में कितने भी बड़े ज्ञानी बन जाना, लेकिन गुरु के नाम को मत छिपा लेना। कैसा भी हो, चाहे उससे एक अक्षर क्यों न सीखा हो,उस गुरु का नाम अवश्य कहना। जिस आगम से आपने अध्ययन किया हो, जिस गुरु से आपने सीखा हो; कभी भी उस शास्त्र का, उस गुरु का नाम मत छिपाना। कभी-कभी क्या होता है कि मैं ज्ञानी हूँ, यदि मैं किसी का नाम ले दूँगा तो कोई क्या कहेगा? तो अपने अहं के पीछे हम कभी-कभी गुरु का नाम छिपा लेते हैं, ग्रन्थ का नाम छुपा लेते हैं। ये पूर्णतः गलत है, ये अनाचार है। ऐसा कहना कि हमारे गुरु बहुत बड़े हैं, जबकि अध्ययन हमने छोटे गुरु से किया। उसका नाम कभी नहीं छुपाना। और कौन छुपाता है? व्यक्ति नहीं छुपाता, उसका अहंकार कहने नहीं देता है। तो इससे ज्ञानावरणीय कर्म का आस्रव होता है और साथ में दर्शनावरणीय कर्म का भी आस्रव होता है। कभी ज्ञान के उपकरणों का उपघात नहीं कर देना। देखो, जिस वेदी पर जिनेन्द्रदेव विराजमान हैं, वो भद्रपीठ कहलाती है। पैर लग जाये तो कायोत्सर्ग करना चाहिए, क्योंकि जिस पर अरहंत, हमारे परमात्मा विराजे हैं वह आसन भी पूज्य है। जिस चौकी पर आपने जिनेन्द्र की वाणी को, जिनवाणी के ग्रन्थों को

विराजमान कर दिया है वह पीठ बन चुकी है, उसको पैर नहीं लगा देना, लग जाये तो कायोत्सर्ग करना।

पथरिया की एक घटना है। मुनिराज क्षमासागर विराजमान थे। आचार्य विद्यासागर एवं आचार्य विरागसागर का मिलन हुआ। कुछ समय पश्चात् आचार्य श्री विद्यासागर महाराज का गमन हो गया, परन्तु आचार्यश्री जिस पाटे पर विराजते थे उसकी मुनिश्री क्षमासागर आचार्य वन्दना करते थे। एक दिन अचानक एक महाराज उस पाटे पर बैठ गये, उन्होंने तुरन्त टोका कि यह पाटा अपने बैठने के लिये नहीं है। जिस पाटे पर गुरु महाराज विराज चुके हैं, उस पाटे पर शिष्य को विराजने का अधिकार नहीं है। वो वन्दनीय है, पूज्यनीय है, क्योंकि पूज्य-पुरुष विराज चुके हैं।

जिस स्थान पर जिनवाणी विराज चुकी है, उस स्थान की विनय का पूर्ण ध्यान रखना। विनय ही अपने लिये मोक्ष का द्वार है। 'विणयो मोक्खद्वारो।' जिसके पास मूल वस्तु नहीं है, उत्तर कितनी भी वस्तु है, उसके पास कुछ नहीं है। कुछ ऐसा होता है कि अहंकार में ज्ञान-तन्तु गर्म हो जाते हैं, ज्ञान मिलता नहीं हो। जो लघु होता है, आप अनुभव करना-लघुता में शीतलता होगी। जब आपका माथा शीतल होगा तो ज्ञान अपने आप बहेगा और अनुभव करना कि काम में हो, क्रोध में हो, मान में हो, लोभ में हो, उसमें अध्ययन करने बैठना तो तुम्हारा विवेक और ज्ञान काम नहीं करेगा। लेकिन सहज और शान्त भाव से बैठोगे तो जो विषय चार दिनों में समझ में नहीं आया उसको एक दिन में समझ लोगे। प्रमुदित होना चाहिए।

भगवान् योगीन्दुदेव कह रहे हैं कि पोथी का अध्ययन तो किया है, लेकिन उस अध्ययन को परमार्थ-दृष्टि में लगा दोगे तो वही ग्रन्थ आपको परमात्मा बना देना। आगे पुनः आचार्य भगवान् कह रहे हैं कि यदि आपने अध्ययन किया, मनन् किया है और इन्द्रियों को जीत लिया है, तो जितेन्द्रियता को प्राप्त करके सकल परमात्मा पद और निकल परमात्मा-पद को प्राप्त करके पुनः संसार को नहीं पाओगे। इस बात को आचार्य भगवान् कह रहे हैं-

अहो ज्ञानी! यदि संसार के तीर को प्राप्त होना चाहता है तो बहुत कुछ नहीं करना, भटकते मन को अपने पास में रख लो। एक क्षण में सात समुद्रों की यात्रा करनेवाला कोई है तो, मनीषियो! तेरा मन है। ये मन चाहे तो प्रत्येक जीव में भगवान् को निहार ले और मन चाहे तो प्रत्येक जीव में शत्रु को देख ले। यथार्थ है, मानसिकता निर्मल हो तो कहीं कोई अन्य नजर नहीं आते और मानसिकता निर्मल नहीं है तो कहीं कोई अपने नजर नहीं आते। मानसिकता पवित्र है तो, मनीषियो! आपको सर्वत्र अपने-जैसे महसूस होते हैं। निर्मल हृदय में हमें विश्व की प्रत्येक वस्तु निर्मल नजर आती है। यही तो कारण है कि तीर्थंकर के समवसरण में जन्मजात-विरोधी जीव एक-साथ बैठे होते हैं। वे सब आकार से भिन्न-भिन्न होते हैं, प्रकार से भिन्न-भिन्न होते हैं, पर मन उनका उस समय निर्मल नीर होता है।

जैसे स्फटिक मणि पारदर्शी होती है, उसके सामने जैसा द्रव्य आता है वैसी ही हो जाती है। सफेद पुष्प आएगा तो सफेद हो जाती है, काला पुष्प आएगा तो काली हो जाती है। वैसे ही आत्मा के परिणाम हैं, जैसा उपयोग हुआ। आत्मा शुभ-उपयोग में शुभरूप है, अशुभ उपयोग में अशुभरूप है। लेकिन वह आत्मा स्फटिकमणि के समान उपादेय है; जैसा उपयोग वर्तता है, वह वैसा ही झलकता है।

अग्नि पाचक-धर्म से युक्त है। अग्नि जलाती, पकाती और प्रकाशित भी करती है। जो जैसा उपयोग करना चाहे। वैसे ही ये आत्मा कषाय से युक्त होकर जला रही है और ध्यान से युक्त होकर पका रही है और केवलज्ञान से युक्त हो जाये तो प्रकाशित कर रही है। इस आत्मा में दाहकत्व भी है, पाचकत्व भी है और प्रकाशित्व भी है। जैसा उपयोग करना चाहो आत्मा वैसी है; अग्नि-स्वभावी है। अंतिम निर्णय यही है-सब कुछ ज्ञेय है, हेय है, एकमात्र शुद्ध-आत्मा परम् उपादेय है।

अहो! आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव की आत्मदृष्टि कितनी विशाल है, पल-पल में स्व की ओर ही देखते हैं। निज का भान होना साध्य-सिद्धअवस्था है। निज-भान के बिना निज-वैभव का बहुमान आता कहाँ? मुमुक्षु तो प्रतिपल स्व को ही लक्ष्य बनाता है। परन्तु क्या विडम्बना है इस जीव की कि इन्द्रिय-विषयों के वश होकर ज्ञान, विज्ञान, विवेक सबको भूल जाता है। विकारों के सामने शब्द-ज्ञान का समयसार टिकता नहीं। यथार्थ समयसार शब्दों में नहीं, साधना में होता है। साधना यदि पवित्र हृदय से होती है तो नियम से आत्म-स्थिरता आती है। आत्म-स्थिरता ही तो समयसार है। चंचल चित्त को कोई भी सिद्धि नहीं होती। मन और इन्द्रिय से जिन्होंने स्वयं की रक्षा की है, उन्हें किसी से भी आत्म-स्वभाव के बारे में पूछने की आवश्यकता नहीं है, उन्हें स्वयमेव सहज ही आत्म-वैभव का भान हो जाता है। परन्तु इन्द्रिय-विषयों के लम्पटी को शब्दागमरूप समयसार का ज्ञान हो जाने पर भी उसे दूसरे से ही पूछना पड़ता है। कारण? शब्द-ज्ञान आत्मज्ञान नहीं है। आत्मज्ञान भावागम होता है। जिन्हें आत्म-वैभव को जानना है, उन्हें स्वमन व इन्द्रियों को वश में करने का प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिये। मोक्षमार्ग पुरुषार्थसाध्य है, उपादान की योग्यता के साथ।

अंतरंग से भेदविज्ञान प्रकट होने लगे तो विषय-विष आत्मा का कुछ नहीं कर सकते। जीव रुचिपूर्वक इन्द्रिय-विषयों के भोग का उपक्रम करता है। अहो भोगी! श्लेष्म में पड़ी मक्खी की भांति तू स्वयं लिप्त हो रहा है। इसे कर्मों का उदय व इन्द्रिय-विकार, पुद्‌गल का परिणाम अथवा सहज परिणमन कहकर स्वपर की वंचना नहीं करना। निज को ही दोषी स्वीकार कर निर्दोष शुद्धात्मा की प्राप्ति का लक्ष्य कर जीव की पुद्‌गल से भिन्नता का वेदन करो।

निज द्रव्य का अन्य द्रव्यों से अत्यन्ताभाव समझो। एकमात्र उपादेयभूत जीव-द्रव्य ही है। शेष ज्ञेय हेय-रूप हैं। ऐसा विचार करने से, तद्‌रूप आचरण करने से आत्मा संसार से शीघ्र

पार हो जायेगी । हे योगी ! ऐसी 'योगसार' की देशना है । जो जीव के एकत्व-विभक्त्व भाव को नहीं जानते, वे भव/संसार में गोते लगाते रहते हैं । इसलिये पुनः समझो, निज को जानो, निज को पहिचानो और रोको राग के प्रवाह को ।

सर्वज्ञदेव ने नौ दृष्टांतों से आत्मा के स्वभाव को बतलाया है । आचार्य योगीन्दुदेव तद् दृष्टांतों को समझा रहे हैं-अहो प्रज्ञ ! आत्मा रत्नदीप के तुल्य है । जैसे रत्नदीप प्रकाश देता है, परन्तु धूम रहित होता है, कालिमा रहित होता है, उसी प्रकार आत्मद्रव्य विषय-कषाय विभाव-भाव के काले धूम से रहित ज्ञान-प्रकाशमयी है शुद्धस्वभाव से । दूसरी उपमा है ''दिनकर'' । दिनकर जैसे स्व-पर-प्रकाशी होता है; सूर्य को देखने के लिए अन्य दीपकादि प्रकाशक की आवश्यकता नहीं होती, अपने तेज प्रकाश से विश्व को प्रकाशमान करता है । वैसे ही ज्ञान-गुण का कार्य आपा-पर का ज्ञान करना है । ज्ञान से पर को जाना जाता है, उसी ज्ञान के माध्यम से स्व को भी जानते हैं । अतः आत्मा के लिए दिया गया सूर्य का दृष्टान्त अन्वयार्थकता को प्राप्त है ।

तीसरा दृष्टान्त दधि का है । जैसे दही को मथने से मक्खन की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार आत्मा को भेद-विज्ञान की मथानी से मथने पर शुद्ध-स्वभाव की प्राप्ति होती है ।

चौथा दृष्टान्त दुग्ध का दिया है । दुग्ध माधुर्य युक्त होता है । अपने मधुर स्वभाव का त्याग किये बिना परिणमन करता है । धवल वर्ण युक्त होता है । इसी प्रकार आत्मा ज्ञान-दर्शनादि निज गुणों से परिणमन करता है, नाना अवस्थाओं को प्राप्त करके भी स्वभाव का त्याग नहीं करता, धवल शुक्लध्यान-स्वभावी है ।

पाँचवाँ दृष्टान्त घृत का है । प्रसिद्ध जैन आयुर्वेद शास्त्र 'कल्याण कारक' में घृत को शक्तिवर्द्धक, शीतधर्मी कहा है । जीवद्रव्य अनन्त शक्ति का पिण्ड, शीतल सुख स्वभावी है । गोरस की शुद्धपर्याय घृत रूप है । जैसे घृत पुनः दुग्धपने को प्राप्त नहीं होता वैसे ही जीवद्रव्य एक बार शुद्ध होने पर पुनः अशुद्ध नहीं होता । वह पूर्ण शुद्ध ही रहता है ।

आचार्य भगवान् जीव के लिए छठा दृष्टान्त पाषाण का दे रहे हैं । पाषाण अपने गुरु-स्वभाव का त्याग नहीं करता । यानी पाषाण भारी होता है । यह आत्मा भी गुरु-स्वभावी है, अपने अनंत चतुष्टय भूत गुरुता का त्याग नहीं करती । अशुद्ध-अवस्था में शक्तिरूप रहती है, शुद्ध-अवस्था में व्यक्त रूप से रहती है । यह आत्मा पाषाण-गुण भी है ।

सातवाँ दृष्टान्त सोने-चाँदी का है । स्वर्ण चाहे खदान में हो, चाहे अग्नि में, चाहे कीचड़ में, परन्तु किसी भी अवस्था में स्वर्णत्व का परित्याग नहीं करता । उसी प्रकार जीवद्रव्य चाहे निगोद-शरीर में हो अथवा नरकादि किसी भी गति में हो, फिर भी अपने चैतन्य-धर्म जीवत्व के विनाश को प्राप्त नहीं होता । ज्ञान-दर्शन गुण आत्मा का त्रैकालिक है स्वर्ण-पीतत्व के तुल्य ।

रूप्य (चाँदी) का दृष्टान्त दिया है । जैसे चाँदी नैसर्गिक रूप से चमकीली है, पर -उपाधि

से रहित होकर चमकना स्वभाव ही है। जीवद्रव्य निश्चय से पर-उपाधि-रहित, चांदी के तुल्य, निज चित्शक्ति से ज्योतिर्मय है।

आठवाँ दृष्टान्त स्फटिक मणि का है। स्फटिक पारदर्शी रत्न है। निज में पर-उपाधि से रहित है, परन्तु पर-प्रत्यय के आने पर निमित्त शक्ति के सद्भाव में उपादान-शक्ति एवं पर्याय-शक्ति पररूप परिणमन करने लगती है। स्फटिक के सामने यदि लाल पुष्प रखा जाता है तो स्फटिक रक्तवर्ण दिखती है, हरा रखा जाय तो हरित, पीत रखा जाय तो पीत रूप झलकती है। उपादान शक्ति स्फटिक की वैसी न होती तो तद् वर्णाकार नहीं दिखती। सोपाधिक अवस्था होने पर भी मणि में परिणमन होने की योग्यता है। उसी प्रकार से आत्मा निरुपाधिक-स्वभावी होने पर भी कर्म बंध वशात् नाना भावों रूप परिणत होती है। यह दोष कर्मों का ही नहीं अपितु आत्मा में विभावरूप भी उपादान-शक्ति का है। निमित्त-शक्ति कर्मों की है। पर्याय-शक्ति मनुष्य, तिर्यन्च, देव, नारकी रूप है। शक्ति त्रय के सद्भाव में ही कार्य परिणत होता है। अशुद्ध-निश्चय नय से जीव रागादिक भाव-कर्मों के वश हो शुभ-अशुभ भावरूप परिणत होता है। शुद्ध-निश्चयनय से शुद्ध-भावरूप परिणत होता है।आत्मा व्यवहार नय से देव, मनुष्य, नरक, तिर्यञ्च पर्यायरूप परिणत होता है। ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणत होता है। परम शुद्ध निश्चय नय से कर्मोपाधि रहित शुद्ध स्फटिक तुल्य परम्-ज्ञायक-स्वभावी है। पर-भावों से शून्य। इस प्रकार समझो आगम की भाषा को।

नौवाँ दृष्टांत भगवान् योगीन्दुदेव ने जीव के लिए अग्नि का दिया है। अग्नि नाना-शक्ति-सम्पन्न है, परन्तु व्यक्त एक ही दिखती है। यदि द्रव्यों में अनेक शक्ति स्वीकार नहीं की जायेगी तो द्रव्य के अन्दर अनन्त धर्म घटित नहीं होंगे। अग्नि पाचक भी है, दाहक भी है, प्रकाशक भी है। इसी प्रकार आत्मा अनेक धर्मों का कोश है। जैसे अग्नि से जब भोजन तैयार करते हैं, तब वह पाचक धर्म से युक्त कहलाती है। जब अन्धकार को दूर करना होता है, तब वह प्रकाशक होती है। किसी वस्तु को जलाते हैं, तब वह दाहक होती है। आत्मा जब कषाय रूप परिणत होती है, तब उसे दाहक समझो। ध्यान से युक्त होती है, तब पाचक होती है, कर्मों के विपाक को पका देती है। जब वही आत्मा केवलज्ञान को प्राप्त होती है, तब वह लोकालोक को प्रकाशित करनेवाली प्रकाशक होती है।

इस प्रकार नौ दृष्टान्त जानो। अतः, आत्मा अनेकान्तमयी है, स्याद्वाद शैली से जानी जाती है, लेकिन अंतिम निर्णय यही समझना कि नाना अवस्थाओं में होने पर भी ज्ञेय-हेय-उपादेयता को समझना। परम् उपादेय अवस्था को शुद्ध, कर्मातीत ही जानो। उसी की प्रसिद्धि का पुरुषार्थ करो। तू भी परमानंद-स्वभावी है।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

शून्यस्वभाव परमब्रह्म स्वभाव

योगसार

देहादिउ जो परु मुडइ, जेहउ मुण्णु अयासु।
सो लहु पावइ बंभु, परु केवलु करइ पयासु ॥58॥

अर्थ - जो शून्यआकाश की तरह देह आदि को पर समझता है, वह शीघ्र ही परमब्रह्म को प्राप्त कर लेता है और वह केवलप्रकाश करता है।

जेहउ सुद्ध अयासु जिय, तेहउ अप्पा वुत्तु।
आयासु वि जडु जाणि, जिय अप्पा चेयणुवंतु ॥59॥

अर्थ - हे जीव! जैसे आकाश शुद्ध है, वैसी आत्मा भी शुद्ध कही गई है। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि आकाश जड़ है और आत्मा चैतन्य-लक्षण से युक्त है।

णासग्गिं अब्भिंतरहँ जे जोवहि असरीरु।
बाहुडि जम्मि ण संभवहि पिवहि ण जणणी-खीरु ॥60॥

अर्थ - जो नासिका पर दृष्टि रखकर अभ्यंतर में अशरीरी को (आत्मा को) देखते हैं, वे इस लज्जाजनक जन्म को फिर से धारण नहीं करते हैं और वे माता के दूध का पान नहीं करते।

असरीरु वि सुसरीरु मुणि, इहु सरीरु जडु जाणि।
मिच्छा-मोहु परिच्चयहि, मुत्ति णियं वि ण माणि ॥61॥

अर्थ - अशरीरी (आत्मा) को ही सुन्दर शरीर समझो और इस शरीर को जड़ मानो; मिथ्या मोह का त्याग करो और अपने शरीर को भी अपना मत मानो।

अध्यात्म देशना

बन्धुओ!

भव्य तीर्थेश वर्द्धमानस्वामी के शासन में बैठकर हम सभी परम अध्यात्म-देशना का पान कर रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव ने जीव की आत्मा की परमसिद्धि के लिए नौ दृष्टान्तों के माध्यम से आत्मा के स्वरूप की चर्चा की है। वह अखण्ड चिद्रूप-चैतन्य आत्मा जो कि आत्मा का धर्म है, वह अविनाशी है, कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता है, त्रैकालिक ध्रुव है। बदलाव को, परिणमन को परिणमन स्वीकारो। परिणमन को विनाश मत स्वीकारो। नाना अवस्था स्वरूप जीव का जो परिणमन है, वह ज्ञातव्य है, जीव का अभाव नहीं है। वस्त्रों को बदलने से देह नहीं बदलती है और देह के बदलने से आत्मा नहीं

बदलती है, ध्यान रखना। देह का परिणमन कितना होता है? आप लोग अपना फोटो हर वर्ष खिंचवाना और अपने कक्ष में टांग लेना। फिर निहारना-ये मैं हूँ। फिर स्वयं के चित्र को देखकर अनुभव करना कि जो कभी मैं चमकता था, आज वह चमक कहाँ चली गई? समय के साथ यह शरीर कृश हो जाता है। जलने की प्रक्रिया बहुत दिन बाद आती है, परन्तु जलने की तैयारियाँ बहुत समय पूर्व शुरू हो जाती हैं। जब शरीर के गायब होने का समय आ रहा होगा, तब लोगों को ज्यादा राग होगा। इसलिए प्रकृति कहती है कि हम आपको उसी लकड़ी की भाँति किये जाते हैं, जिससे आपमें और लकड़ी में कोई अंतर न बचे। फिर लोग मुर्दा न कहेंगे, लाश नहीं कहेंगे, लकड़ी ही कहेंगे। पूछने पर कहते हैं कि अमुक की लकड़ी में गए थे। यानी अब देह-दहन को लकड़ी कहना प्रारंभ कर दिया है। प्रकृति कहती है-चिंता मत करो, हमने पहले आपके हाथ में लकड़ी पकड़ा दी थी, इसलिए पहले इससे मित्रता कर लो, क्योंकि बाद में तुमको इससे जलाया जाएगा। क्या गजब की बात है? पहले आपको लकड़ी पकड़ा दी गई थी। बेटा सिर पर बाद में मारेगा, पहले कमर टेढ़ी कर दी, जिससे आप लकड़ी पकड़ना सीख लो, क्योंकि अंतिम मित्र यही लकड़ी होगी। लकड़ी उन्हीं को पकड़ना पड़ती है, जिनकी कमर टूटती है। जिन्होंने समय की लकड़ी का आलम्बन नहीं लिया, उनकी देहयष्टि झुक जाती है। जिसने समयष्टि का आलम्बन ले लिया है, उसकी कमर कभी नहीं टूटती। टूटी कमर को देखकर अपनी कमर को संभालने का प्रयास करो।

विश्व में ऐसे द्रव्य व स्थान हैं, जहाँ कोई विकार नहीं है। यदि आपकी आँखें कहीं जा रही हों, तब उनसे कहना कि ऊपर चली जाओ या नीचे चली जाओ। जीवन में ध्यान रखना, अंदर में क्या है-इसे कोई बताए या न बताए, पर आपकी आँखें बता देती हैं। प्रेम है तो आँखों में है, द्वेष है तो आँखों में, काम है तो आँखों में, क्रोध, मोह, मान है तो आँखों में। तुम्हारी आँखें अंदर का दर्पण हैं। वह मनुष्य कैसा, जो आँखों को न पहचानता हो? एक पशु भी आँखों को पहचानता है। तुम्हारे दरवाजे पर श्वान बैठा होगा, उसे प्रेम से देखना, पूँछ हिलाने लगेगा। वही तुम्हारी क्रोधी आँखों को देखकर पूँछ उठा कर भाग जाएगा। अहो ज्ञानी! एक तिर्यंच को भी आँखों को पहचानने की ताकत है, फिर इस मनुष्य में क्यों नहीं है? विरागी की आँखें और रागी की आँखें अलग-अलग होती हैं। आँखें वही हैं, पर बदल जाती हैं। यदि पुत्र अपना है तब आँखें कुछ और होती हैं और पुत्र भाई का है तब आँखें कुछ और होती हैं। आँखें तो वही होती हैं, पर पता नहीं क्यों बदल जाती हैं। वे आँखें कह रही हैं कि मैं नहीं बदली, अक्ष बदला है। अक्ष न बदलता, तो लक्ष्य तुम्हारा बदला न होता। यदि अंतरंग में आत्मा के परिणाम न बदले होते, तो आँखें नहीं बदलती। अक्ष यानी आत्मा, अक्ष यानी आँखें। तुम्हारे लक्ष्य को बतलानेवाली कोई वस्तु है तो वह अक्ष है। अहो ज्ञानी! जब बिल्ली अपने बच्चों का स्थानान्तरण करती है तो मुख से उठाकर ले जाती है। उस समय वह माँ होती है और उसी

मुख से जब वह चूहे को उठाती है तो वह हत्यारिनी होती है। मुख एक ही है। अहो बिल्ली! जैसे तू बच्चे को उठाती है, वैसे तू चूहे को उठाती होती, तब लोक में आज तुझे बिल्ली न कहा जाता, तू माँ ही कहलाती।

भो ज्ञानी! आज जो अपने परिवार में है उसे अपना कह रहे हो, पड़ोसी के परिवार में उसे दूसरा कह रहे हो, लेकिन अंतिम समय में जिसे अपना कह रहे थे वह सपना-सा हो जाये और जिसे पराया कह रहे थे वह अपना हो जाये। इसलिये किसी से द्वेष करके मत चलना, किसी से राग करके मत चलना, वात्सल्य सबसे रखना। राग करोगे तो रोना पड़ेगा, द्वेष करोगे तो रोना पड़ेगा। वात्सल्य रखना, सद्भाव रखना कि आप हमारे हो, आपको हमारी सद्भावना है। आपके पास सद्भावना तो है,लेकिन सत्य नहीं है। ये भी विनश जायेगी। इसलिये आज दृष्टि को निर्मल रखना। जब तुम्हारे भाव विकृत हो जायें, तब आप पृथ्वी की ओर देखना। क्यों? जब आपको लगे कि मैं माँ, पिता, भैया को खिलाता हूँ परन्तु ये कुछ नहीं करते, ये तो वृद्ध हो चुके हैं, मैं इतनी मेहनत करता हूँ, क्या मैं इसलिए जन्मा था ? 'मैं बड़ा हूँ।', तुम कितनों से बड़े हो? इस पृथ्वी को देखना, जिस पर मल भी बरस रहा है और फूल भी बरस रहे हैं। पृथ्वी अगर रोने लग जाये कि, अहो! मैं इसलिए पैदा हुई हूँ कि लोग मेरे ऊपर ऐसे कार्य करें? जैसे पृथ्वी के ऊपर गड्ढे किये जाते हैं, वैसे गड्ढे तेरे माता-पिता तेरे ऊपर तो नहीं कर रहे हैं। तब तुम्हारे ऊपर कितना कष्ट है? पृथ्वी के नामों में एक नाम है ''क्षमा''। वो तुमको अपनी गोद में बिठा लेती है। मल भी कर रहा है, उसे भी अपनी गोद में रख लेती है और फूल बरसा रहा है, उसे भी रख लेती है। बताओ पृथ्वी कितनी महान् है? इस पृथ्वी पर तुम क्या-क्या नहीं कर रहे हो? वह सबकुछ सहन कर रही है।

प्रत्येक नर का हृदय पृथ्वी बन जाये तो संत खोजने की आवश्यकता ही नहीं होगी। हृदय पृथ्वी है, सोच नीर है। तुम्हारे सोच में, चिंतन में अगर शीतलता है, तब कहीं भी आपको विकार नजर नहीं आएगा। जिसके चिंतन में उग्रता होती है, वह सूखी सीधी लकड़ी को भी अग्नि में जला डालता है। सरलहृदयवाले को जलानेवाले बहुत होते हैं। दुष्ट-चिंतक, खोटे-चिंतक, जिनका अभिप्राय खोटा है; वे सीधा नहीं, खोटा ही निहारते हैं। आज आवश्यकता पदार्थ को बदलने की नहीं है, आवश्यकता अभिप्राय को बदलने की है। अभिप्राय निर्मल है तो सारा विश्व तुम्हारे साथ है। यदि उसका अभिप्राय खोटा है, तब वह तीर्थंकर के पादमूल में बैठकर भी गलती ही देखेगा। एक वर्ष में एक बार मंदिर आया और पुजारियों में खलबली मचाकर चला गया। नदी में स्वच्छ, शीतल जल भरा है, लेकिन क्या कहें जाति-संस्कार को कि भैंस पानी बाद में पियेगी पहले उसमें लघुशंका करेगी, शीतल जल को खराब करेगी। अर्थात् अच्छा मचा डाला, फिर पीना शुरू करती है। संसार में ऐसे भी प्राणी होते हैं, जो धर्मक्षेत्रों में, धार्मिक अनुष्ठानों में पहले अच्छा मचा डालेंगे, जिससे लोगों के मन में आए कि अब तो मंदिर जाना ही नहीं है। लेकिन, जीवन में ध्यान रखना, मचाने वालों की क्या दशा

होती है? वह सीमंधर स्वामी के केवलज्ञान में झलक रहा है कि इसकी पर्याय क्या होनेवाली है?

देखो, यदि कोई अच्छा काम करने जा रहा हो, तो उसे मचा मत देना। सहयोग बने तो कर देना, मगर ऐसा सहयोग मत करना जैसा कि बनारस से पढ़कर आये चार विद्वानों ने किया। उनके गुरु ने सिखाया कि डूबते जीवों को सहारा दे देना, अध्ययन विवेक से करना, जिसमें छिद्र हों उन्हें छोड़ देना और जहाँ महाजन चले वहाँ चलना। चलते-चलते रास्ते में एक नदी पड़ गई। चार में से एक गड्ढे में फंस गया। जब डूबने लगा तो कहा-सहारा दो, सहारा दो। तीनों कहा-निकालो डायरी, गुरुजी ने क्या कहा था? डूबते को सहारा दे देना। उन्होंने धीरे से धक्का दे दिया। क्यों? गुरुजी ने यही कहा था कि डूबते को सहारा दे देना। ऐसा सहारा दिया कि वह डूब गया। अब बचे तीन। भूखे तो थे ही, किसी के यहाँ ज्योंनार हो रही थी, मालपुआ बने थे, उनमें छेद थे। गुरु ने कहा था-जिसमें छिद्र हो उसे छोड़ देना। पूरे मालपुआ पानी में डुबो दिए। अब भूखे तड़प रहे थे। आगे चले। कहीं किसी एक की मृत्यु हो गई थी, श्मशानघाट की ओर बहुत सारे लोग जा रहे थे। चलो। क्यों चलें? जहाँ महाजन चलें, उनके पीछे चलो, डायरी में लिखा है।

ऐसे विद्वान् मत बन जाना। उनके गुरु का पढ़ाने का उद्देश्य क्या था? जहाँ दुर्जन हों, वहाँ उन छिद्रों के पास मत जाना और यदि कोई भटक रहा हो उसको सहारा देना, उसका सहयोग कर देना, न कि डुबो देना। जहाँ महाजन चले वहाँ जाना, अर्थात जहाँ सज्जनवृत्तिवाले लोग चलें वहाँ चलना। ऐसा नहीं था कि आप मरघट में चले जाना। कोई व्यक्ति रोड पर तड़प रहा था, भैया पहुँचे, बोले सुनो! आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है, इसका कभी विनाश नहीं होता, ये तो पुद्‌गल का परिणमन चल रहा है। अहो ज्ञानी! ये मात्र स्वयं के चिंतन के लिए है, दूसरे के प्रति चिंतन के लिए नहीं है। चिंतन तो तेरा यह होना चाहिए था कि उस तड़पते व्यक्ति के मुख में पानी देना चाहिए। उसको उठा लेना था। जब तुम्हारे ऊपर विषमताएँ आयें तो समता के लिये यही चिंतन करना, लेकिन दूसरे के सहयोग के लिए ऐसा मत कर देना।

एक सिद्धांतशास्त्री वहाँ पहुँचे, अरे भाई! जिस जीव का जैसा कर्म का विपाक है, वैसा उदय में आएगा, हम उसके विपाक को क्या कर सकते हैं? इसलिए उसे भोगने दो, कर्म कट जायेंगे। यह चिंतन वह करे, जिसको पीड़ा है, परन्तु वहाँ आप अपना कर्तव्य निभाना। आपको ऐसा चिंतन कब करना चाहिए? जब आपके ऊपर कष्ट आए, अन्यथा मालूम चला कि स्वयं के लिए कर्ता बन गए और दूसरे के लिए सिद्धांतशास्त्री बन गए।

इसलिए 'योगसार' को योग्यता के अनुसार पढ़ना, वरना परिणाम गड़बड़ हो जाएगा। जब भी तुम्हारे मन में खोट आये तो तुमको नीचे ही देखना है। जैसे ही नीचे निहारोगे, परिणामों में सरलता आ जायेगी या फिर आकाश की ओर देखना, आपको वहाँ कोई स्त्री नहीं दिखेगी, पुरुष नहीं, नाट्‌यशाला नहीं, बाहर के भौतिक द्रव्य नहीं दिखेंगे। बस, समझ

लेना कि जैसा आकाश स्वच्छ है, ऐसी ही मेरी आत्मा स्वच्छ/शुभ्र, अखण्ड, अविनाशी है। इसका वेदन करो।

भो ज्ञानी! आकाश ध्रुव/अचल है। आकाश में कोई विकार नहीं है। जिसे आप बादल कहते हो, वह आकाश नहीं है, वह बादल ही है। बादलों में नीला, पीलापन हो सकता है, बादलों में कालिमा हो सकती है, लेकिन आकाश अरूपी है। आकाश की ओर देखो, आकाश निःसंग है। विश्व के चराचर द्रव्य आकाश में हैं, फिर भी आकाश विश्व के किसी भी द्रव्य में नहीं है। अहो योगी! तू गृहस्थों, भक्तों, नाना जीवों के बीच में रहना, पर आकाश बनकर जीना। आकाश पर धूल फेंको, लेकिन आज तक आकाश ने धूल को स्वीकार नहीं किया। ये संसारी, रागी, भोगी जीव आपके ऊपर राग की कितनी भी धूल फेंकना चाहें, लेकिन तुम निर्लिप्त रहना। यह आकाश का धर्म है, वह आत्मा का धर्म है

जैनधर्म में जैन-मुनि को ''नाग'' की उपाधि दी है। दिगम्बर मुनि साँप के समान होते हैं, ऐसा 'षट्खंडागम' में लिखा है। साँप कितना ही विषैला हो, हमें विष को नहीं देखना, उसके गुण को देखना है। आज तक विश्व में ऐसा साँप नहीं हुआ, जिसने अपना भवन बनाया हो। सर्प कभी अपना घर नहीं बनाता, अपना बिल नहीं बनाता, दूसरे के बनाए बिलों में रहता है। बाँबी बनानेवाली दीमकें हैं और निवास साँप करता है। जैसे साँप अपने रहने को घर नहीं बनाता, वैसे ही दिगम्बर साधु अपने नाम से, अपने लिए रहने को मठ/मंदिर नहीं बनाता है। जैसे साँप निःसंग है, वैसे मुनिराज निःसंग होते हैं। आत्मा शून्य-स्वभावी है। शून्य से मतलब है पर से रहित।

सत्य को समझना चाहते हो तो शून्य को समझना। यदि सत्य को सीखना है तो तटस्थ होकर सीखो, बहकर नहीं सीख सकते। एक व्यक्ति नदी के किनारे खड़ा हुआ है, पर वह यह भी देख रहा है कि क्या-क्या इस पानी में बहकर चला गया है। यह भी देख रहा है कि क्या बह रहा है। परन्तु जो व्यक्ति नदी के बहाव में बह चुका है, उसको कितना ज्ञान होगा? इसलिए जीवन में सत्य को समझना चाहते हो तो किसी आम्नाय में, पंथ में, सम्प्रदाय में बह मत जाना। हम तटस्थ होकर देखें कि सत्य क्या है। जो बह जाता है, वह जीवन में सत्य को कभी पकड़ नहीं पाता है। वैज्ञानिक भी कोई वस्तु की खोज बहकर नहीं करता है, न आज तक आपने किसी वैज्ञानिक के सुना होगा कि वह अमुक धर्म को माननेवाला है। क्योंकि यदि वह धर्म को मानने में चला जायेगा, तब खोज नहीं कर पायेगा। धर्म से मतलब है सम्प्रदाय। योगी भी भौतिक वस्तुओं में तटस्थ होकर खोजता है। वीतराग-विज्ञानी बनने के लिए तटस्थ होना पड़ेगा। यदि आत्मद्रव्य की खोज करना है, विज्ञानी बनना है तो, भो ज्ञानी! शून्य रहो, अनुभव करो कि क्या हो रहा है, क्या हुआ है, क्या होना है। सत्य सामने आएगा कि क्या हो रहा है। यही वस्तु का स्वभाव है। ऐसा कोई क्षण नहीं है जिसमें कुछ हो न रहा हो, जिसमें ध्रुवत्व न हो। इसका नाम ही द्रव्य है।

आचार्यभगवान् उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थसूत्र' में दो सूत्र दिये हैं :

(1) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् (2) सद्द्रव्यलक्षणम्

इन दो सूत्रों के अलावा विश्व की कोई सत्ता ही नहीं है, खोज लो कहीं भी जाकर। वेदों के सूत्र या कोई भौतिक वैज्ञानिक भी वीतराग विज्ञानी को काट नहीं सकता। बहने वाले से कभी मत पूछना, वह कभी नहीं बता पायेगा। पूछना तटस्थ से। जो सत्य है, तटस्थ है। इसमें जो सत्य है, वही सत्य है। जिसने सत्य के भेद कर दिए, उसने सत्य को खो दिया। धर्म के कितने भेद हैं? दस। उत्तम क्षमादि यथार्थ में वे समझाने के भेद हैं। निश्चय दृष्टि से धर्म एक है, यही सत्य है।

आकाश आपसे कहता है कि सत्य को समझना। (देहादिउ जो परु) देहादि पर है, जो (मुणइ) ऐसा मानता है (सुण्णु अयासु जेहउ) शून्य-आकाश की तरह, (सो लहु पावइ बंभु परु) ऐसा जीव शीघ्र ही परम्-ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। (केवलु पयासु करइ) वह विश्व को प्रकाशित करनेवाला है। जब शांत होगे, तब आत्मा को उस आकाश तुल्य समझोगे, जिसमें सम्पूर्ण द्रव्य होंगे, फिर भी सम्पूर्ण द्रव्यों से परे होंगे। ऐसी आत्मा आठ कर्मों से युक्त होने पर भी कर्मों से रिक्त है। एक बात सुनो, आठ काठ की खाट होती है। चार पाये, चार डंडे। उस आठ काठ की खाट पर एक जीव पूरे अँश पर पड़ा है। फिर भी खाट, खाट है और काठ,काठ है तथा आदमी, आदमी है। भले पड़ा हो आठ काठ पर, लेकिन खाट पर पड़ा जीव कभी खाट नहीं बना, काठ नहीं बना। कहाँ आठ कर्मों पर पड़ी आत्मा, कहाँ आठ काठ की खाट पर पड़ा ये चेतन जीव। हे मुसाफिर! जैसे खाट पर पड़ा होने पर भी चेतन कभी काठ नहीं होता है, वैसे ही आत्मा पर कर्म पड़े होने से आत्मा कभी कर्मरूप नहीं होती, ये शून्यस्वभाव है। देखा, मनुष्य कभी खाट रूप हुआ नहीं। ऐसे वेदन करो। भो मुमुक्षु! खाट पर पड़कर चिंतन करना कि मैं खाट नहीं हूँ, इस देह को खाट बनाओ और तुम पड़े रहो। चिंतन करो कि मैं उस देह-खाट से भिन्न हूँ। पर ध्यान रखो, जब चाहो तब खाट से उठकर भाग जाओ। लेकिन ये देह-खाट ऐसी है कि जब तुम उठो तब तुम्हारे साथ भागने लगेगी। यह अशरीरी, रत्नत्रय धारण करनेवाली आत्मा ऐसी है जो खाट को यहीं छोड़ देती है, स्वयं उठकर भाग जाती है। किन्तु जीव काठ की खाट छोड़ना नहीं चाहता। रस्सी टूट जाये, पाये टूट जायें, तब कहते हैं कि बदल दो। बदला-बदली कब तक करोगे? ऐसी खाट पर लेटो कि बदला-बदली करना ही न पड़े। वह सिद्धशिला है, जहाँ बदलना नहीं पड़ता है। इसलिए परम्-ब्रह्म को प्राप्त करना चाहते हो तो खाट पर पड़े रहो, पर खाट को अपना मत मानो। चेतना तो शुद्ध है। (जेहउ अयासु सुद्ध) जैसा शुद्ध आकाश है, (तेहउ अप्पा वि वुत्तु जाणि) वैसी ही शुद्ध आत्मा है। (आयासु जड्डु) आकाश तो जड़ है, (अप्पा जिय चेयणुवंतु) आत्मा ही चेतन है, अंतर बस इतना है। लेकिन स्वच्छता की दृष्टि से आकाश अमूर्तिक है, आत्मा भी अमूर्तिक है, ये सामान्य गुण है दोनों का। जड़ और चेतन ये विशेष गुण है। आकाश जड़ है, आत्मा चेतन है।

भो ज्ञानी! आज से प्रतिज्ञा कर लो कि अपने मुँह में चर्म नहीं रखूँगा । कब तक? जब तक मैं सिद्ध न बन जाऊँ । भो ज्ञानी! माँ के आँचल को मुख में नहीं रखूँगा, ऐसा नियम ले लो । आज के बाद किसी माँ के आँचल का पान नहीं करूँगा । जिसने आँचल का पान नहीं किया, वह नियम से निर्वाण को प्राप्त हो गया । ऐसी प्रतिज्ञा का निर्वाह हो सकता है । लेकिन एक बार की छूट ले लो । यदि आज पंचमकाल में अच्छी निर्मल साधना कर ली है, तो स्वर्ग में देव हो जाओगे । यदि लौकान्तिक देव हो गए तो, भो ज्ञानी! देवों को तो अमृतपान होता है, वहाँ तो रखने की आवश्यकता ही नहीं है और वहाँ से च्युत होकर माँ के गर्भ में तो आना ही पड़ेगा, इसलिए एक बार की छूट ले लो और नियम से निर्ग्रंथ होकर मोक्ष प्राप्त कर लो ।

एक जगह आचार्य शांतिसागरजी का चातुर्मास था, वहाँ पर जब पिछी-परिवर्तन हुआ तो बहुत से लोग नियम ले रहे थे । वहाँ पर एक अस्सी साल के वृद्ध अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का नियम ले रहे थे । यह सुनकर सब हँसने लगे । परन्तु वे बोले- ''महाराज जी! ऐसा नहीं है । जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक के लिये है नियम, मैं ठीक कह रहा हूँ ।'' हास्य का माहौल गंभीर हो गया । माइक आचार्यश्री के पास आया-क्या नियम है इनका? सुना और आचार्यजी ने आशीर्वाद दे दिया । लोगों ने सोचा कि यह तो पागल थे, लेकिन आचार्यश्री ने आशीर्वाद क्यों दे दिया? फिर मंच से आचार्यश्री बोले-इस जीव ने ऐसा नियम लिया जिसको हमने भी नहीं सोचा था । उसका है, तब मेरा भी है । सभा में टप-टप आँसू बहने लगे, सब कहने लगे कि समझाएँ कि ये कैसा नियम है । मैं भावना भाता हूँ कि इस पर्याय में निर्मल अखण्ड संयम का पालन हो और स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र भी बन गया तो उसकी बात करना ही क्या है । सौधर्म इन्द्र ब्रह्मचारी नहीं होता, इसलिये देवऋषि/लौकान्तिक देव बनने की भावना भा रहा हूँ । जब लौकान्तिक देव बनूँ और आठ सागर तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँ, वहाँ से च्युत होकर इस भरतक्षेत्र में उत्सर्पिणी काल आ जायेगा, तब जाकर के मैं किसी श्रावक के यहाँ जन्म लूँ और जैसे ही मैं 8 वर्ष का होऊँ दिगम्बर दीक्षा ले लूँ और दिगम्बर दीक्षा लेकर निर्मल शुक्लध्यान को पाकर क्षपक श्रेणी को चढ़कर सिद्धत्व को वरण करूँ । तब तक मेरा अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन होगा, जब तक निर्वाण नहीं हो जाता । योगीन्दुदेव कहते हैं कि, हे भगवन्! मुझे अब किसी और अधिक धर्म में नहीं पड़ना ।

बड़ा पापी था जो मेरा पंचमकाल में जन्म हुआ, ऐसी प्रार्थना महावीर स्वामी के सामने करना । आज मंदिर में यदि आत्मानुभूति हो गई तो मैं मानता हूँ कि आगे आपको रत्नत्रय धन प्राप्त होगा । ऐसी भावना जरूर कर लेना कि, हे भगवन्! छठे काल की यात्रा से बच जाऊँ, जहाँ पर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा खा जायेगा । ऐसे काल में जाने का विचार मत करना, इतना पुरुषार्थ तो कर लेना कि छठे काल से बच जावें । कर ही लेना । जिसकी देव, शास्त्र, गुरु, जिनवाणी, सर्वज्ञ पर अकाट्य श्रद्धा है, उसकी दुर्गति हो ही नहीं सकती है । जिनवाणी के विपरीत न कभी चलूँगा, न कभी सुनूँगा-ऐसी अकाट्य श्रद्धा मन में लाओ । हे

भगवन्! वीतरागी के विपरीत न जाऊँ। एक ही सहारा है। कौन है? देव-शास्त्र-गुरु। इनके ही चरण अगर छोड़ दिए, तब कहाँ जाऊँगा? कौन सहारा है? चत्तारि शरणं पवज्जामि। भगवन्! स्वप्न में भी न भूल जाऊँ। जब वर्णी जी को स्वप्न में 'समयसार' आ सकता है, तब हम भी समयसार पढ़ रहे हैं। चत्तारि शरणं पँवज्जामि, बस इतना ही । स्वप्न में भी आपको ऐसा भाव आये कि मैं पूजा कर रहा हूँ।

आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी साठवीं कारिका में बड़ा ही सुन्दर विवेचन कर रहे हैं। (णासग्गिं अब्भिंतरहँ) तुम अपनी नासा पर दृष्टि रखकर अंतरंग को देखो। जैनदर्शन की महिमा देखो, क्या कह रहे हैं? नासा पर दृष्टि रख लो। आज से एक जाप करो नासा पर दृष्टि रखकर। निमित्त शास्त्र है। प्रतिदिन हम नासिका पर दृष्टि रखके जाप करते रहें। क्यों? जो वृद्ध हैं, रोगी हैं, उन्हें विशेष रूप से ध्यान रखना है। क्या पता अंतिम समय में तुम्हें कोई समझाने वाला मिला, नहीं मिला। यदि तुम्हें जाप देते समय अपनी नासिका दिखती रही तो समझना मेरी मृत्यु अभी नहीं है और जिस दिन अपनी आँखों से नासिका न दिखे तो समझना आज समाधि सुनिश्चित है। नासा-चन्द्र को देखो तो अहं तुम्हारा गल जावेगा।

जो जीव नासिका पर ध्यान करते हैं, वे जीव (बाहुडि जम्मि ण संभवहिं) लज्जाजनक जीवन को धारण नहीं करते, (जणणी-खीरू ण पिवहिं) फिर वे माता के दूध को नहीं पीते। लज्जाजनक स्थान यानी जिसको देखने में लज्जा आती है। नाम लेने में लज्जा आती है, उस स्थान से हमारा जन्म होता है। देखो, चर्म के पिण्ड से पसीना बह रहा है, कैसे दूध पीओगे? पसीना बह रहा है, फेन निकल रहा है, पीओगे तो लज्जा नहीं आएगी क्या? अहो ज्ञानी! जिसे तू माँ मान रहा है, वह जीव कभी तेरी पत्नी भी रही होगी, याद करो। पत्नी जननी हो जाती है, जननी पत्नी हो जाती है, इतना ही नहीं, स्वयं भी पुत्र का पुत्र हो जाता है। उधर गर्भधारण हुआ कि मर गये और स्वयं की पत्नी के यहाँ पैदा हो गए। अब बेटा दूध नहीं पी रहे, जाति-स्मरण हो गया। आठ वर्ष तक मौन हैं। अवधिज्ञानी मुनिराज ने कहा-भो ज्ञानी! प्राण छूट जायेंगे। ये संसार की दशा है। जिसे तू पत्नी मान रहा है, अब तू इसे जननी ही मान। तब वे मुँह से बोले। ऐसी कथा है आगम में।

अगर आज यहाँ केवली भगवान् होते तब एक बात पता चलती कि जरूर हम सबके खून के संबंध हैं, जो एक साथ बैठे हैं। बिना संयोग के यहाँ आये ही नहीं। ये भी बात है कि जन्मस्थान अलग हो सकते हैं, लेकिन चलने का स्थान एक ही है ।

रागी को बता रहे हैं कि (असरीरु वि सुसरीरु मुणि) अशरीर आत्मा को सुन्दर शरीर समझो। इस शरीर में मत उलझो। शरीर तो जड़ है। (मिच्छा मोहु परिच्चयहि) इससे मिथ्या मोह को छोड़ दो। शरीर को अपना मत मानो, ये मूर्तिक है, जड़ है, ये तेरा सहयोग नहीं करेगा। पर ध्यान रखना, इस शरीर के पीछे, इस शरीर के संबंधियों के पीछे आप किसी भगवती-आत्मा का अपमान मत कर देना, क्योंकि ये शरीर तो दहन हो जायेगा। आपको

लगता है कि ये मेरे हैं, वे मेरे हैं, मालूम चला कि जिस पड़ोसी से तुम लड़ रहे थे, मृत्यु होकर उसी के घर में पुत्र हो गए। अब कौन शत्रु है? पिताजी बकरा हो गए और संसार की दशा देखना, दाना खाने आए तो बेटे ने डंडा मार दिया। राग की महिमा देखो, पुनः पहुँच गया, अपनी पत्नी के पेट को तोड़कर भोजन कर रहा है वह बकरा । संसार की विचित्र दशा है। कभी यह मानकर मत बैठ जाना कि ये हमारे हैं, हम इनके हैं, ये यहाँ थे, हम इनके होंगे। इस तरह मानकर बैठ गए, तब निर्वाण तीन काल तक नहीं होगा। राग की दशा को छोड़ दो, त्रैकालिक भगवती-आत्मा को जान लो, कल्याण सुनिश्चित है। पढ़, जान लो, परम् सत्य है कि राग का अंश मात्र भी रहेगा तो मोक्ष की सुगंध ही तुम्हें आने वाली नहीं है। शिवत्व की प्राप्ति चाहते हो तो, ध्यान रखना, ये जड़द्रव्य से ममत्व का परित्याग कर दो। उस चिद्रूप अखण्ड-स्वभावी आत्मा पर दृष्टिपात करोगे तो नियम से पाप का विनाश होगा और निश्चय ही आत्मा परमात्मा बन जाएगी।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

निज को जानो, निज को पहिचानो

योगसार

अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ, किं णेहा फलु होइ।
केवल-णाणु वि परिणवइ, सासय-सुक्खु लहेइ ।।62 ।।

अर्थ - आत्मा को आत्मा से जानने में यहाँ कौन-सा फल नहीं मिलता? और तो क्या, इससे केवलज्ञान भी हो जाता है और जीव को शाश्वत् सुख की प्राप्ति होती है ।

जे परभाव चएवि मुणि, अप्पा अप्प मुणंति ।
केवल-णाण-सरूव लइ, ते संसारु मुचंति ।।63 ।।

अर्थ - जो मुनि परभाव का त्याग कर अपनी आत्मा से अपनी आत्मा को पहिचानते हैं, वे केवलज्ञान प्राप्त कर संसार से मुक्त हो जाते हैं ।

धण्णा ते भयवंत बुह, जे परभाव वयंति।
लोयालोय-पयासयरु , अप्पा विमल मुणंति ।।64 ।।

अर्थ - उन भगवान् पण्डितों को धन्य है, जो परभाव का त्याग करते हैं और जो लोकालोक-प्रकाशक निर्मल आत्मा को जानते हैं ।

सागारु वि णागारु कु वि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ ।।65 ।।

अर्थ - गृहस्थ हो या मुनि हो, जो कोई भी निज आत्मा में वास करता है, वह शीघ्र ही सिद्धि-सुख को पाता है, ऐसा जिन-भगवान् ने कहा है ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् महावीर की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं । आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने पूर्व दोहा-सूत्र में संकेत दिया कि, अहो ज्ञानी! यदि तू आत्मा का वास्तविक उत्थान चाहता है, तब भगवान् जिनेन्द्र देव की देशना का पान अन्तःकरण से कर । सुनाने की दृष्टि से नहीं, सुनने के लिए कर । जिनवाणी मात्र इसलिए सुनना, ''ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान ।'' हम जो भी सुन रहे हैं, वह मात्र निज के कल्याण के लिए सुन रहे हैं, पर-कल्याण के लिए नहीं । पर-का कल्याण हो जाये तो कोई दोष नहीं, लेकिन दृष्टि स्वकल्याण की ही होना चाहिए । ज्ञानी जीव जब भी अपनी दृष्टि को खोलता है तब स्व-कल्याण की दृष्टि से देखता है । पहले निज के हित पर लक्ष्य लगाकर चलता है । इसमें यदि दूसरे का हित हो जाता है, तब उसमें वह प्रसन्न हो जाता है । यही आचार्य

योगीन्दुदेव की दृष्टि है । स्वानुभव की लहरों में गोते लगाकर इतने महान् ग्रंथ का सृजन करके माणिक्यों को हम सभी के बीच रखते हैं । श्रावक और साधु, दोनों से आचार्यभगवान् अगली कारिका में कहते हैं कि आप दोनों अपनी आत्मा की ओर लक्ष्य करो । जितना पर में राग है, वह राग राख ही करेगा, लेकिन स्वानुभव की दृष्टि वीतरागता की ओर ले जायेगी ।

भो ज्ञानी! आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी 62वीं और 63वीं कारिका में कहते हैं- अहो योगी! यदि किसी को जानना है, देखना है तो (अप्पा अप्प मुणंति) आत्मा को जानो, अपनी आत्मा से आत्मा को पहचानो । पहचान तो बहुत की है, परिचय बहुत किये हैं, कितने ही परिचय-सम्मेलनों में परिचय प्राप्त किया है, फिर भी स्वयं से परिचय नहीं हुआ है । जिसके पास तुम निवास कर रहे हो, उससे आज तक परिचित नहीं हो पाये । ज्ञानी आत्माओ! पर के परिचय में क्या रखा है? कितना आश्चर्य है कि आप अपने बेटे की शादी में जाते हैं तो सजातीय को देखते हो, विजातीय को नहीं देखते हो, कारण कि पुत्र की शादी विजातीय से नहीं की जाती, सजातीय से ही की जाती है । सम्बन्ध सजातीय लोगों के साथ स्थापित करते हो । अहो मुमुक्षु आत्माओ! इतना बड़ा आश्चर्य है । मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि देह/शरीर सजातीय है कि विजातीय? आत्मा की जाति भिन्न है, देह की जाति भिन्न है । विजातियों से जो राग करे, वह श्रेष्ठ कैसा? जो परद्रव्य (शरीर आदि) में दृष्टि रखे है और विजातीय में राग कर रहा है, वह मेरी जाति का कैसे है? इस देह का धर्म स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है; जबकि जीव का धर्म है ज्ञानदर्शन । अब बताइये यह जाति का है या विजातीय? राग करना है तो सजातीय से करो । विजातीय के बीच कब तक पड़े रहोगे? क्या शरीर तेरी जाति का है? कितना घोर मिथ्यात्व है कि शरीर की जाति को सजातीय मानकर आपस में झगड़ रहे हैं । जैनों में अनेक उप-जातियाँ हैं, जिसको लेकर झगड़ा हो रहा है । तुम क्या हो, वह भगवान् को ज्ञात है । जब कोई आपसे यह कहे कि आप कौन हैं? अच्छी तरह जानते हैं कि जो हो, वह बोल नहीं रहे हो । आप नहीं, आपकी कषाय बोल रही है, आपकी अज्ञान-दशा बोल रही है । जो ज्ञानी होगा, वह देह आदि के प्रपंच में पड़ेगा नहीं । जो पड़ता है, वह मुमुक्षु होता नहीं । 'समाधि-शतक' में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है- 'जाति लिंग विकल्पेन' - जो जाति, लिंग के विकल्प में जी रहा है, वह अनात्मदर्शी है, वह अज्ञानी है, मूढ़ है; क्योंकि उसने सिद्ध जाति को नहीं समझा, उसने प्रभुत्व शक्ति को नहीं समझा । हे आत्मज्ञानी! तुम तो 47 अनंत-शक्तियों के भगवान् हो । तुम्हारे अन्दर 47 शक्तियाँ विराजी हैं । प्रभुत्वशक्ति विराजी है । आचार्यभगवान् अमृतचन्द्रस्वामी ने 'अध्यात्म-अमृत-कलश' में (आत्मख्याति टीका में) आत्मा की 47 शक्तियों का कथन किया है । इन शक्तियों को जरूर समझना । आचार्य योगीन्दुदेव कह रहे हैं-किसे कहता है तू तिर्यंच, किसे कहता है हीन? जाति के प्रपंच में क्यों पड़ा है? तुम्हारे पास तो प्रभुत्व-शक्ति है । मैं सारे विश्व का विभू हूँ । मैं तीन लोक का स्वामी हूँ । मेरी सत्ता तीन लोक में व्याप्त है । जब कैवल्यशक्ति/केवलज्ञान से समर्पित होता हूँ तो मेरे ज्ञान में सारा विश्व झलकता है । उसमें क्षेत्र अल्प दिखता है, पर ज्ञान

विशाल है। मेरी प्रभुत्व-शक्ति कह रही है कि यह मेरे सारे ज्ञान के अनुसार है। ऐसा कौन-सा व्यक्ति विराजा है, जो केवली के ज्ञान के बाहर भाग रहा है? कितने ही छुपकर पाप करना और कहना कि मुझे कौन देख रहा है? अहो छलिया! छल करो स्वयं के ऊपर, पर देखनहारे को कोई मना नहीं कर सकता। क्यों, एक बात पूछें आपसे? अरहंत-बिम्ब देख रहा कि नहीं? अरे भगवान् आत्माओ! ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ भगवान् नहीं है? केवली का ज्ञान कहाँ नहीं देख रहा ? सर्वत्र देख रहा है। उस अवस्था को निहारो, जब तुम तीव्र दुष्कृत्य करने जा रहे हो। भगवान्! मेरी अशुभ पर्याय आपके ज्ञान में कैसी झलक रही है? कहाँ छुपकर जाओगे, कहाँ छुपाओगे? आचार्य योगीन्दुदेव कह रहे हैं-(अप्पा अप्पू) आप स्वयं देख रहे हो। किसका मन ऐसा है जो गलत को गलत नहीं जानता? किसका ऐसा हृदय है, जो गलत को गलत नहीं पहचानता? करने के बाद रोने लगते हो कि हे पापी मन! ऐसा क्यों किया? करने के पूर्व रो लेते तो अब न रोना पड़ता। आज रो रहे हो। जब मैं पाँच पापों में जाऊँ वहाँ कहना-आत्मा! मेरा साथ दो। उस समय आत्मा से पूछ लेना कि अच्छा है या बुरा है। एक अशुभ को शिशु भी जानता है।

यदि घर में तिर्यंच पले हों, पशु-पक्षी पले हों तो उनके सामने कोई गलत चेष्टा मत करना। उनके साथ गलत व्यवहार नहीं करना। राजभवन में महाराज-महारानी द्युत-क्रीड़ा कर रहे थे यानी जुआ खेल रहे थे। राजप्रासाद में तोता पिंजड़े में बैठा देख रहा था। एक क्षण के लिए उस तोते में रानी के प्रति राग उमड़ पड़ा, क्योंकि पिंजड़ा अन्तःपुर में था। रानी का पाँसा फिके तो तोता प्रसन्न हो जाये और राजा का पाँसा फिंके तब शांत हो जाये। यदि पीठ थपथपाने वाला मिल जाये तो शक्ति मिल जाती है। रानी को उस तोते की मुस्कुराहट ने शक्ति प्रदान कर दी और रानी जीतने लगी, राजा हारने लगा। यह यथार्थ है कि जो हारने लगता है वह कमजोर पर बरसता है और राजा ने तोते की गर्दन को दबा दिया। सोच रहा था कि ये पक्षी है, क्या करेगा? लेकिन ध्यान रखना, ''कबहुँ आप भयो बलहीन, सबलन कर खायो अति दीन''। आज, माताओ! सासु बनकर आई हो, बहुओं को परेशान कर रही हो, होलियाँ जलवा रही हो। जब वे भी सबल होंगी, तब तुम्हारी क्या हालत होगी? कहाँ चला जाता है ध्यान, कहाँ चली जाती है आत्मा की बातें? धन के पीछे तुम्हें पंचेन्द्रिय में भगवान्-आत्मा नजर नहीं आती है। मंदिरजी में आकर शुद्धोऽहं-शुद्धोऽहं कहते हो। माँ जिनवाणी कह रही है कि पाषाण में परमात्मा नजर आता है और तुम्हें बहू में भगवान् दिखाई नहीं देता है। जिस घर में अध्यात्म होगा, उस घर का माहौल स्वर्ग-जैसा होगा। जिस घर में रोज झगड़ा हो, वहाँ कैसा अध्यात्म? सम्राट तुम भूल गये कि कर्म-सिद्धान्त किसी को नहीं छोड़ता है। उस तोते का अशुभ ध्यान से मरण हुआ और वह व्यंतर-जाति का देव हो गया। इधर सम्राट को वैराग्य हो गया और निर्ग्रंथ योगी बन गये। जो कर्म बांधे हैं, उन्हें काटना ही पड़ेगा। आप कौन हैं? हमने आदिनाथ तीर्थंकर को नहीं छोड़ा। कर्म क्या कह रहा है? आपने मुसीका की चर्चा की थी, हमने मुसीका लगा दी। वही सम्राट का जीव मुनिराज बन गया। वे परम्-

तपस्वी, निर्ग्रंथ योगीराज ध्यान में लीन थे। वह व्यंतर आ गया। उसने शिला को गर्म कर दिया और चील का आकार बनाकर मुनिराज के आँख के गटे खींच लिये। वे अविचलित रहे। हे भगवान्! ऐसी क्षमता नहीं होती तो वे ध्यान लीन कैसे रहते? धन्य हो मुनिराज।

जीवन में किसी को शत्रु बनाकर नहीं जाना। जाने के पहले अपना सिर टेक देना, क्षमा माँग लेना कि अब मैं जा रहा हूँ। मिलूँ तो सिद्धालय में मिलूँ। ऐसी पर्याय न मिले कि दोनों शत्रु बनकर मिलें। इसलिए जीवन में ध्यान रखना कि सगे-से-सगे हों, दूर-से-दूर हों, सबसे दूरी बनाकर चलना। दूरी बनाकर चलोगे, तो रक्षा होगी। जितने नजदीक रहोगे, वहाँ विकार आयेंगे। उतना काम करो, जिससे कल्याण हो। अहो मनीषियो! रोटी कहाँ सिकती है और रोटी कहाँ जलती है? जब भी रोटी सिकती है, चूल्हे में सिकती है और जलती है तो चूल्हे में। क्यों? रोटी को घुमाते रहे तो सिक कर फूल जायेगी, छोड़ दिया तो जल जायेगी। ये जिनालय आराधना मात्र का स्थान है। देव, शास्त्र, गुरुओं के चरणों में आना, लेकिन ध्यान रखना, घर-जैसे उनके पास मत बैठना। यदि तुम ज्यादा नजदीक चले जाओगे तो दोष नजर आयेंगे और अश्रद्धान बढ़ेगा तो कर्मों का बंध होगा। जब घर की बातें करना हो तब तुरंत बाहर चले जाना। यदि आपको भगवान् का नाम लेने की फुर्सत है तब दिनभर बैठना, यदि आपस में चर्चा करने के भाव आ गये तो उठकर चले जाना। तीन लोक के नाथ के बीच बैठकर घर की चर्चा कर डाली। कर्मबंध करके मत जाना। श्रद्धा रहेगी, विश्वास रहेगा, आस्था रहेगी तो दूर रहकर भी आप पास में रहोगे। यदि पास रहकर दूर चले गये तो कर्म का बंध होगा।

आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव कह रहे हैं कि (अप्पा अप्पं मुणंति) आत्मा से आत्मा को ही जाना जाता है, पुद्गल से आत्मा नहीं जानी जाती है। पुद्गल आत्मा को जानता भी नहीं है। आत्मा ही ज्ञान-दर्शन है, चेतना है। उस ज्ञान से स्वयं को जाना जाता है और पर को भी जाना जाता है। अध्यात्म कहेगा-आत्मा ही से आत्मा को जानोगे। सर्वज्ञ ने सब जाना, लेकिन सर्वज्ञ के ज्ञान की बात को तुमने जाना। सर्वज्ञ ने पाँच महाव्रत की चर्चा की। आपने चींटी पर पैर रख दिया, बोले-भगवन्! सर्वज्ञ के ज्ञान में ऐसा ही झलका होगा। आपने अनाचार के पोषण, अपने प्रमाण के पोषण के लिए सर्वज्ञ की वाणी को लगा दिया। सर्वज्ञदेव ने कहा-बेटा! तुम पाँच-महाव्रतों का पालन करो, तभी आत्मा का कल्याण होगा। आचार्यभगवान् 62वें दोहा-सूत्र में कह रहे हैं कि इसे कौन करायेगा? यह आत्मा से आत्मा करायेगी। जब भी भेद-विज्ञान होगा आत्मा से आत्मा को होगा। 'आत्मा' शब्द आपको बड़ा गहन लगता है, इसलिए आत्मवादी हो गये। पर आत्मा से मत जानो, ज्ञान से जानो। बात कुछ नहीं है, शब्दों के भाव हैं। जिसे आत्मा पर द्वेष हो, वह ज्ञान दर्शन को पकड़ ले। ज्ञान दर्शन आत्मा से अभिन्न है। (णेहा फलु होइ) कौन-सा फल नहीं मिलेगा? और तो क्या, इससे (केवल-णाणु वि परिणवइ) केवलज्ञान भी प्रकट हो जायेगा। (सासय-सुक्खु लहइ) ऐसे शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेगा। कौन? जो आत्मा से आत्मा को जानेगा। राग-द्वेष से नहीं जानना, विरक्ति

से जानना। जब आप जानने लगते हैं तो स्वयं कहते हो-महाराजश्री! राग की आँधी में कुछ नजर नहीं आता है, परन्तु पदार्थ स्वच्छ है। आँधी आने पर गलियों में अंधेरा छा जाता है, आँखें देखने में परेशान हो जाती हैं। कहते हैं-कुछ दिख नहीं रहा है पर आँधी शान्त हो जाये तब? बस एक काम कर लो, आँधी शान्त कर लो। ये विकारों की आँधियाँ शान्त हो जायें तो प्रत्येक जीव में आत्मा नजर आने लग जाये। आँधी नहीं, तो कीचड़ देखा होगा। जिसकी आँखों में कीचड़ होता है, उसे दो व्यक्ति दिखाई देते हैं। एक को भगाने दौड़ना, वह पकड़ में नहीं आयेगा। अहो ज्ञानी! क्यों इतनी दौड़ मार रहा है? कीचड़ साफ कर लो, व्यक्ति को मत पकड़ो। आँख साफ कर लो, वस्तु साफ है। जिसकी आँख में कीचड़ है, उसे कोई नहीं समझ सकता। आँख साफ कर लो। चर्म की आँख साफ हो गई, परन्तु विवेक की आँख साफ नहीं हुई, तब आचार्य योगीन्दुदेव कह रहे हैं-जैसे तू सफाई के लिए पानी के छींटे मार लेता है, इसी तरह भेद-विज्ञान के छींटे मारो। इस विवेक की आँख को साफ कर लो तो कोई आपको गैर नजर नहीं आयेगा। एक युवक भी अपनी अशुभ की आँख को रोक नहीं पाता। वह विषय अलग है कि उसका मन कहता है कि मैं ब्रह्मचर्य से रहूँ। अर्थात् सत्य का ज्ञान सभी को है, परन्तु सत्य पर कितने चल पाते हैं? वह विषय भिन्न है कि सत्य को न माननेवाले न्यून हैं। सत्य को मानने वालों की संख्या ज्यादा है, किन्तु चलने वालों की संख्या बहुत कम है। पर जीव पाप करने के पहिले सत्य को देखता है। किसी व्यक्ति की एक कलम को उठाने में कैसा लगता है? उठाने के पहिले आगे-पीछे क्यों देखते हो? इसका तात्पर्य है कि तुम्हारा हृदय डरा हुआ है। आपका कलम रखा हो तब आगे-पीछे नहीं देखते, उठा लाते हो। असत्य डरता ही है, भयभीत होता ही है, जबकि सत्य निडर होता है। सत्य कहने में कभी डर नहीं लगता। एक असत्य के लिए अनेक असत्यों का सहारा लेना पड़ता है और एक सत्य अकेला नंगा बैठा होता है। सत्य हमेशा प्रकृतिरूप होता है, असत्य हमेशा विकृतिरूप होता है। सारा विश्व प्रकृतिरूप है। विश्व में सबसे अधिक नग्न मिलेंगे। यदि आपसे कोई पूछे कि जैन-दर्शन की क्या परिभाषा है? दबंगता के साथ कह देना-जो प्रकृति का रूप है, वही जैन-दर्शन है। कैसे? जब तुम आये थे तब नग्न आये थे और जब जाओगे तो नग्न ही जाओगे। ये बीच में दंगा कैसे कर बैठे? ये राग का है, वासनाओं का है। इस आत्मा ने वसन नहीं पहिने, वासनाओं ने वसन पहिने हैं। यदि देह को वसन आवश्यक है, तो जब ठंडी/गर्मी की चिन्ता करते हो, आपका चेहरा क्यों खुला रहता है, नेत्र क्यों खुले रहते हैं? यथार्थता समझो कि वसन कौन पहिने है? वासना पहने है।

अंतर विषय-वासना बढ़ती, बाहर लोकलाज भारी।
यासों परम-दिगम्बर-मुद्रा, धार न सके दीन संसारी॥

भो ज्ञानी! आचार्यश्री इस 63वीं कारिका में कह रहे हैं कि यदि शाश्वत-सुख चाहते हो तो अपनी आत्मा को आत्मा समझो। (जे मुणि परभाव चएवि) जो मुनि परभाव छोड़ देता है

(अप्पा अप्प मुणंति) वह अपनी आत्मा से आत्मा को जानता है। (केवलणाण सरुव लइ) ऐसा ज्ञानीजीव केवलज्ञानस्वरूप को प्राप्त कर लेता है और (ते संसारु मुचंति) उसका संसार छूट जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द भगवान् की भाषा ऐसी है जैसे अरहंत भगवान् की वाणी खिर रही हो। अहो योगी! जब आप महाव्रतों से युक्त होते हैं, तब सम्पूर्ण दुःखों से मुक्त होते हैं। धन वैभव आदि का होना, इसे सुख-दुःख मानना अज्ञानता है, जड़-बुद्धि है। धन से सुख मानने वाला क्या सम्यक्दृष्टि है? देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करता है, लेकिन बिना धन के मेरा जीवन चलता ही नहीं है, जो ऐसा समझता है वह मिथ्यादृष्टि है। उसे सच्चे सुख का भान नहीं है। कोई कहे कि धन के बिना धर्म नहीं होता, वह महा मिथ्यादृष्टि है। अहो ज्ञानी! यदि धन के बिना धर्म नहीं होता तो साधु के पास न धन है, न धागा है, तो क्या धर्मात्मा नहीं है? इसलिए यदि आप धन से धर्म मान रहे हो तो दिगम्बर मुनि धर्मात्मा नहीं कहलायेगा। धन में, धागे में धर्म नहीं है, मनीषियो! मंदिर कैसे बनायेंगे यदि धन नहीं होगा? मंदिर बनाना धर्म नहीं है, मंदिर धर्म-साधना का स्थल है, उपचार से धर्म कहा जाता है। आत्मा के परिणामों की विशुद्धि का नाम धर्म है। विशुद्धि में धन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। गृहस्थ धर्म की अपेक्षा धन-साधन से सामग्री जुटा सकता है परन्तु धर्म करेंगे, यह नियम नहीं है। क्यों? एक धर्मात्मा ने चौका लगाया, एक दिन में उन्होंने एक हजार रुपये खर्च कर दिये। धर्म के लिए धन की आवश्यकता पड़ी। आवश्यक नहीं, वह सज्जन धर्म कर ही लें। यदि उनके भावों में, मन में आ गया, अहो! मैंने इतना खर्च किया है, देखो मेरे पुण्य के योग से महाराज भी आ गये। सब कुछ अच्छा चल रहा था, परन्तु भाव आये कि सब खड़े रह गये और महाराज उनके यहाँ नहीं गये। अहो ज्ञानी! तूने धन खर्च किया, समय खर्च किया, तुझे पात्र भी मिल गये, ऐसा प्रबल योग था, फिर भी धर्म नहीं कर पाया। क्यों? क्योंकि भावों में विकार आ गया, परिणामों में अहं भाव आ गया। कषाय-भाव अधर्म-भाव होता है। आपने अधर्म कर लिया। देखने वाले कहेंगे धर्मात्मा, किन्तु जिनवाणी कहेगी अधर्मात्मा। क्या अद्‌भुत जैन दर्शन है। इसका तात्पर्य तुम धर्म करना मत छोड़ देना। कुछ लोग समझे-हम अच्छे हैं, क्योंकि चौका नहीं लगाते। वे तो महापापी हैं। परीक्षा कब होगी? जब परीक्षा हाल में बैठोगे। गिरेगा, उठेगा, वही बनेगा। साईकिल चलाना सीखे आप लोग? बगैर गिरे नहीं सीख पाये या कि पैर टूटते हैं, अब नहीं सीखना? हाथ-पैर शरीर टूट जाये तो भी संसार का काम नहीं छोड़ना चाहता और संयम में एक भूल हो जाये तो,भैया! अब तो रात्रिभोजन का त्याग नहीं कर सकते। क्यों? हमसे होता नहीं। आज नहीं तो कल सुधरोगे। प्रायश्चित्त करो, प्रतिक्रमण करो, संयम को पुनः स्थापित करो। अहो ज्ञानी आत्माओ! सड़क पर साईकिल चलाने वाले प्रतिदिन कितने बार गिरते हैं, मार्ग बंद हो गया क्या? मार्ग पर गिरने से मार्ग बंद नहीं होगा, ध्यान रखना, वाहन को सुधार लिया जाता है। अपने-अपने वाहनों को सुधारो, बहाने मत बनाओ। आचार्य भगवान् ने सुन्दर बात कह दी है कि अपने जीवन में उस तत्त्व को समझो जिससे परमतत्त्व की सिद्धि होना है। जब शान्त बनकर बैठोगे, तब

समाधान तुम्हारे सामने है। पुण्य के योग से अर्थ की प्राप्ति होगी, परन्तु इसे धर्म के मार्ग में लगाया तो धर्म का हेतु बनेगा। धर्म की भावना से नहीं लगाया तो धर्म का हेतु नहीं बनेगा। कुछ गरीबों की भावना होती है कि मैं तो धर्म कर ही नहीं पाऊँगा। यह भावना छोड़ दो। यह ठीक है कि तुम तामझाम नहीं कर पाओगे, पर धर्म अवश्य कर लोगे। धर्म तो एक खेत में बैठकर भी हो जाता है। गुरुदत्त महाराज को खेत में केवलज्ञान हो गया। वहाँ धन, धागा नहीं था। द्रोणगिर क्षेत्र पर उन पर उपसर्ग हुआ था। देखो, एक तीर्थभूत आत्मा का प्रभाव है कि भूमि तीर्थ बन गई।

मनीषियो! आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी 64वीं कारिका में उन महायोगी को धन्यवाद दे रहे हैं। (घण्णा ते भवयंतबुह) वे भगवान् धन्य हैं, वे ही पंडित हैं। कौन? (जे परभाव चयंति) जिन्होंने परभाव को छोड़ दिया है। देह ही जिन्हें परिग्रह नजर आ रहा है, वे देह के संबंधियों को अपना कैसे कहेंगे? हे भगवान्! वह घड़ी कब आये जब मैं देह के परिग्रह को छोड़कर आत्मध्यान में लीन हो जाऊँ। सब कुछ छूट गया, पर देह का परिग्रह नहीं छूटा तो मोक्ष नहीं मिलेगा।

आचार्य कुन्दकुन्द महाराज 'प्रवचनसार' में कह रहे हैं कि सम्पूर्ण आगम को घोंट-घोंटकर पी जाओ अर्थात् द्वादशांग को याद कर लो, अपने कंठ में विराजमान कर लो, पर मोक्ष नहीं मिलेगा। क्यों? परमाणु अत्यंत छोटा होता है। वैज्ञानिक परमाणु की खोज आज तक नहीं कर सके। जो कर रहे हैं, वह स्कंध की खोज है। परमाणु-प्रमाण मूर्च्छा यानी ममत्वभाव जिसके देहादि में है, वह अगर सम्पूर्ण आगम को धारण करके भी तनिक भी मूर्च्छा रखता है, तब सिद्धि की प्राप्ति संभव नहीं है। जिनवाणी यथार्थ बोल रही है कि मुक्ति तभी मिलेगी जब तन पर धागा भी न रहे। देखना, एक सुई में धागा पिरोने के लिये कितने शान्त बैठते हो। हृदय की सुई में जिनवाणी का सूत्र पिरोना है तो बाहर भटकने से नहीं पिरा पाओगे। एक आँख बन्द करके धागा डालते हैं। इसी प्रकार जिसकी भोग की आँख बन्द हो जायेगी, उसी की योग की आँख खुलेगी और शुद्धोपयोग का धारा पिरो पाओगे। आचार्यश्री कह रहे हैं कि (धण्णा) धन्य हैं वे लोग (लोयालोय-पयासयरु) जो लोक को प्रकाशित कर रहे हैं (अप्पा विमल मुणंति) वे निर्मल आत्मा को जानते हैं।

65वीं कारिका में आचार्य भगवान् पुनः कह रहे हैं- (सागारु वि णागारु) श्रावक हो या मुनिराज हो (कु वि जो अप्पाणि बसेइ) जो अपनी आत्मा में वास करते हैं (सो लहु पावइ सिद्ध-सुहु) वे शीघ्र ही सिद्ध -सुख को प्राप्त करते हैं। (जिणवरु एम भणेइ) ऐसा भगवान् जिनेन्द्रदेव कह रहे हैं। जिनेन्द्र की वाणी को स्वीकारो, पहचानो और आचरित करो, तुम भी भगवान् बन जाओगे।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

एकत्व-विभक्त्व स्वभावी आत्मा

योगसार

विरला जाणहिँ तत्तु बुह, विरला णिसुणहिँ तत्तु।
विरला झायहिँ तत्तु जिय, विरला धारहिँ तत्तु ।।66 ।।

अर्थ - विरले पंडित लोग ही तत्त्वों को समझते हैं, विरले ही तत्त्वों को श्रवण करते हैं, विरले ही तत्वों का ध्यान रखते हैं और विरले जीव ही तत्वों को धारण करते हैं।

इहु परियण ण हु महुतणउ, इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ।
इम चिंतंतहँ किं करइ, लहु संसारहँ छेउ ।।67।।

अर्थ - कुटुम्ब परिवार निश्चय से मेरा नहीं है, यह मात्र सुख-दुःख का ही हेतु है-इस प्रकार विचार करने से शीघ्र ही संसार का नाश किया जा सकता है।

इंद-फणिंद-णरिंदय वि, जीवहँ सरणु ण होंति।
असरणु जाणिवि मुणि-धवला, अप्पा अप्प मुणंति ।।68 ।।

अर्थ - इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी जीवों को शरणभूत नहीं हो सकते, इस तरह अपने को शरण रहित जानकर उत्तम मुनि निज आत्मा से निज आत्मा को जानते हैं।

इक्क उपज्जइ मरइ कु वि दुहु सुहु भुंजइ इक्कु।
णरयहं जाइ वि इक्क जिउ तह णिव्वाणहँ इक्कु।।69 ।।

अर्थ - जीव अकेला ही पैदा होता है अकेला ही मरता है और वह अकेला ही सुख-दुःख का उपभोग करता है। वह नरक भी अकेला ही जाता है और निर्वाण को भी अकेला ही प्राप्त करता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अन्तिम तीर्थेश भगवान् महावीर के शासन में हम सभी विराजते हैं। भगवान् महावीर की पीयूष देशना जन-जन की कल्याणी है। यह वीतरागवाणी बहुत पुण्य-योग से प्राप्त होती है। वह जीव परम् पुण्यात्मा है जिसने शाश्वत अरहंत देव को सुना है। कभी-कभी लगता है कि महाराजा श्रेणिक को कितना पुण्य-योग था? साक्षात् वर्द्धमान के समवसरण में बैठकर साठ हजार प्रश्न आपने किये। चक्रवर्ती भरतेश असमय पहुँचे, आदिनाथ स्वामी की देशना को सुना। वह दिन भी था कि तीर्थंकर आदिनाथ का निर्वाण हुआ। इन्द्र खुशियाँ मना रहे हैं। भरतेश एक पर्वत की चोटी पर बैठा आँखों से आँसू बहा रहा था। सौधर्म इन्द्र ने देखा कि

चक्रवर्ती भरतेश नहीं दिख रहा है। खोज करने पर पर्वत की चोटी पर बैठे मिले। आँख में नमी/आर्द्रता को देख सौधर्म-इन्द्र चक्रवर्ती भरतेश से पूछने लगा- भरतेश! तीन लोक में खुशियाँ हैं, जिस अशरीरी भगवती-आत्मा की प्राप्ति का लक्ष्य परम पिता आदिनाथ स्वामी का था उस अशरीरी अवस्था को उन्होंने प्राप्त कर लिया और आपकी आँखों में आँसू? क्या तीर्थंकर-निर्वाण अच्छा नहीं लगा? चक्रवर्ती भरतेश कहता है कि, सौधर्म इन्द्र! कौन कहता है कि भगवान् का मोक्ष जाना अच्छा नहीं लगा? वह परम् अच्छा है। आदिनाथ स्वामी मेरे पिता थे, उनका मोक्ष हो गया इसलिए आँखों में आँसू नहीं हैं। तो आँखों में आँसू क्यों हैं? मेरे नेत्र सजल इसलिए हैं कि जब-जब मेरा मन क्षुभित होता था तब मैं प्रभु के समवसरण में दौड़ा-दौड़ा चला आता था। मैं केवली तो बन सकता हूँ, लेकिन अब केवली की वाणी सुनने को नहीं मिलेगी। ये जिनवाणी जिनेन्द्र के मुख से प्राप्त नहीं हो सकेगी, इसलिए आज मुझे उस जिनभारती के वियोग का कष्ट है, आदिनाथ के वियोग का कष्ट नहीं है। हे मनुष्यो! अन्दर के भगवान् का जो पान कराने वाली है, उसका नाम जिनभारती है। जिसने कानों में वाणी को डाला है, उसके अन्तःकरण से वाणी निकली है। जिसने कानों से वाणी को नहीं डाला, उसके अन्तःकरण से वाणी कभी नहीं निकल पाती है। एक दिन मैंने भी देखा ट्यूबवेल से पानी निकलते। उसमें वायु भर दी है, जिससे फव्वारे निकलते हैं। ऐसे ही आपके लिए कह रहे हैं। मनीषियो! आप अन्दर भर दो इस वाणी को, फिर आप देखना भेद-विज्ञान के फव्वारे-के-फव्वारे निकलेंगे। आप कानों से सुनोगे, तो सर्वांग से निकालोगे। ये वीतराग वाणी है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने पूर्व कारिका में संकेत दिया (धण्णा ते भयवंत) धन्य हैं वे भगवान्, जिन्होंने अपने आत्मस्वरूप को जान लिया है। धन्य हैं वे भगवान् जिन्होंने पर से ममत्व को छोड़ दिया।

त्याग करना ही है तो ममत्व का त्याग कर दो। प्राप्त करना है तो निर्ममत्व भाव को प्राप्त कर लो। लेकिन निर्ममत्व भाव को प्राप्त करेगा कौन? जिसने तत्त्वज्ञान को प्राप्त किया है। तत्त्वज्ञान, तत्त्वनिर्णय, वैराग्य, स्वआत्म अनुभव-मोक्ष का यही हेतु है। जब तक तत्त्व ज्ञान नहीं, वैराग्य नहीं, सुसंगती नहीं, मनीषियो! वहाँ मोक्षमार्ग कहाँ? इसलिए आज 66वीं कारिका में आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव उस तत्त्वज्ञान की महिमा का व्याख्यान कर रहे हैं। जीवन में सबकुछ भूल जाना, सब कुछ छोड़ देना, लेकिन जहाँ तत्त्व की दो बातें हों वहाँ बैठकर सुन लेना। जितना बने कंठ में धारण कर लेना, याद कर लेना, रट लेना। इससे, महाराजश्री! क्या होगा? वह होगा जो कभी नहीं हुआ। वे जीव भाग्यवान् हैं जिनकी अंतिम विदाई के समय जिनवाणी भेंट देना न भूल जाये। भेंटें बहुत दीं, बधाइयाँ भी बहुत दी हैं। छतरपुर की ज्ञानी आत्माओ! ध्यान रखना, जब भेंट दी है तो अन्तिम भेंटें भी दे देना। कोई अन्तिम विदा को प्राप्त हो रहा हो तो उसे जिनवाणी की भेंट दे देना। तुम इस विदाई से जुदा मत होना, लोगों से जुदा जरूर हो जाना। तुम्हें भेंट देने वाला नहीं मिला तो अप्रसन्न नहीं होना।

आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं- तेरे पुण्य का योग बना या न बना, किसी ने अंतिम समय तेरे 'वीर हिमांचल तै निकसी गुरु गौतम के मुख-कुण्ड ढ़री है' ऐसी वाङ्गंगा का जल तेरे कर्णांजलि में कोई डाल सका या नहीं डाल सका, यदि तुमने उसे याद कर लिया है, तो ध्यान रखो, जैसे दाँतों में लगा सोना, ऐसे तेरे हृदय में बैठी ये जिनवाणी अंतिम समय में तेरी वाणी तुझे कल्याणी बन जाएगी। इसलिए कण्ठ में जिनवाणी को धारण कर लेना। समता का पाठ पढ़ायेगी वीतराग वाणी। आज आप जितना सीख रहे हो, जितना समझ रहे हो, भइया! आज के लिए ही नहीं सीखना। ये वाणी आपके लिए इसलिए सुनाई जा रही है कि अहो माँ भारती! आप मुझे उस दिन याद दिला देना, जिस दिन मैं प्राणों का विसर्जन करने जा रहा हूँ। हाय-हाय करके पानी माँग रहा होऊँ, उस समय आप कह देना कि बेटे! ये पानी मत पियो; ये जड़ नीर को मत पियो, तुम चैतन्य के सलिल का पान करो, भेद-विज्ञान का पान करो, पानी को बहुत पिया है। हे माँ भारती! उस दिन मात्र याद आ जाना, अभी मुझे आवश्यकता नहीं है। अभी तो मैं आपकी सेवा कर रहा हूँ। मैं आपके आँचल का पान तब करूँगा, जब मेरे प्राण निकल रहे होंगे। ऐसी भक्ति कर लेना जिनवाणी की। विवेक के समय विवेक की आवश्यकता नहीं है। जब अविवेक के दिन आयें, उस दिन विवेक आ जाए, बस, हे भारती! इतना ध्यान रख लेना। जब मुझे विकार सताये, उस समय आप मेरा हाथ पकड़ लेना। कैसे?

समन्तभद्र स्वामी ने 'स्वयंभूस्तोत्र' में लिखा है - 'मातेव बालस्य हितानुशास्ता।' हे प्रभु! हे वीतरागवाणी! हे निर्ग्रंथ गुरु! जैसे अपने शिशु को, जो घूँटी चलता है, उठता है, गिर जाता है, माँ अपनी अंगुली को पकड़ा देती है। बेटे! तुम इस अंगुली को पकड़ लो और चलो।

ऐसे ही माँ-भारती संसार के कानन से आपको निकालने के लिए अपनी भेद-विज्ञान की अंगुली आपको पकड़ा रही है, बेटे! तुम पकड़ लो, निकल चलो। पर ये ध्यान रखना, मेले में गए कभी? गये हो न? अकेले नहीं, पिताजी के साथ, छोटे में। ओहो! यहाँ भीड़ है, मगर पिता की अंगुली है, खिलौने दिख रहे हैं, मिठाइयाँ दिख रही हैं, झूले भी दिख रहे हैं, क्या आनंद की यात्रा चल रही है। लेकिन भीड़ के झटके में पिताजी की अंगुली छूट गई। अहो बेटा! तू रो रहा है? वही तो झूला है, दुकान लगी, देखो न, खिलौने भी हैं। हैं तो सब, लेकिन वो नहीं है, जिसके पकड़ने में सब कुछ अच्छे लग रहे थे। मेले में आप नहीं गुमे क्या? भीड़ में आपने किसी के बच्चे को गुमा नहीं देखा? मंच पर आता है कि पिताजी गुम गये। सूचित हो रहा है। बेटे को हाथ में गोलियाँ भी दी गई हैं, खिलौने भी दिए गए हैं, फिर भी रो रहा है. वो कौनसी वस्तु थी? मनीषियो! ध्यान रखना जीवन में, जब तक तात की अंगुली तेरे हाथ में है, तब तक आनंद सर्वत्र है और जहाँ तात की अंगुली छूट गई तो शेष बातें सब फीकी हो जाती हैं। भगवान् जिनेन्द्र के चरणों में निवेदन कर लेना, प्रभु! सारा विश्व छूट जाए मुझे विकल्प नहीं है, पर आपके दोनों चरण मेरे हृदय से न छूटने पाएँ। प्रभु! ये छूट गए तो सारे विश्व में मेरा कुछ

भी नहीं है। जिसने देव-शास्त्र-गुरु को छोड़ दिया, उसने जीवन में सबकुछ छोड़ दिया।समझ में आ रहा न? ये रागी काम में नहीं आयेंगे, ये द्वेषी काम में नहीं आयेंगे, वीतराग हितोपदेशी ही काम में आयेंगे। इसलिए जिनके पुण्य क्षीण हो चुके हैं, जिनके पुण्य पतले हो चुके हैं, जिनके पुण्य नस रहे हैं, ऐसे जीव कभी भी वीतराग वाणी को सुन नहीं पायेंगे।

सर्प डसे तो जानिये, रुचि सों नीम चबाये।
कर्म डसे तो जानिये, जिनवाणी न सुहाये॥

जिस व्यक्ति को साँप ने डस लिया, वो कड़वी नीम को चबाता है तो उसको मधुर लगती है और ये यथार्थ मानकर चलना कि जिसको कर्मों ने डस लिया है, उसको कहाँ उपदेश सुनाई पड़ते हैं। सोने लगेगा, ऊँघेगा या उठकर चला जायेगा। उसको वीतराग वाणी नहीं सुहाती। तत्त्वदृष्टि नहीं है उसके पास। ये लगता है कि इन्हीं सब लक्ष्यों को लेकर आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने इस छ्यासठवें दोहा-सूत्र को लिखा है। इस लोक में प्रबल पुण्य चाहिये। ऐसे भी जीव हुए होंगे जो शाम को सोये होंगे, पर सुबह जाग नहीं पाये, जग से चले गये। ऐसे भी जीव आज हैं जो शाम को सोये, सुबह उठे और ठिलिया लेकर बाजार में चले गये। कहाँ समय है उनको भगवान् की वाणी सुनने का। ये शुभकृत मानिये कि ऐसे योग्य कुल में आप जन्मे हो, समय मिल रहा है। समय भी मिल रहा है और फिर भी जो सुसमय को नहीं समझ पा रहे हैं, उनसे अभागा लोक में कोई नहीं है। कल कोई छोड़ता हो उसे छोड़ देने देना, लेकिन अपने 'समय' को मत छोड़ देना।

अहो मनीषियो! भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं-परम् योग को समझना है तो जिनवाणी को समझो। असंख्यात-गुण-श्रेणी कर्म की निर्जरा एकसूत्र मात्र से हो जाती है। 'षट्खंडागम' जी में लिखा है: यदि जिनवाणी समझ में न भी आ रही हो और आपने भक्ति भाव से श्रवण किया है, तो वह जिनवाणी आपके लिए असंख्यात-गुण-श्रेणी कर्म की निर्जरा कर रही है। उतने काल तक अशुभ से बचे कि नहीं? बीन की मधुर आवाज को देखो, जो बाँबी में बैठे कालिया नाग को भी जगा देती है, वो भी नाच उठता है। पर वे कैसे काले-नाग-हृदय होंगे जिनका मन वीतराग जिनेन्द्र की वाणी को सुनकर नहीं नाच रहा है। वे अजगर से भी महाअजगर हैं। उनका हृदय बड़ा ही कटु है। वो विषधर श्रेष्ठ है, जो कम-से-कम बीन की आवाज को सुनकर नाच उठता है। पर मनीषियो! उसी का मन पावन-पवित्र है जो जिनेन्द्र की वाणी को सुनकर हर्षित/रोमांचित हो जाता है। इन घोंसलों में रहते-रहते भव बीत गए। घर बना लेना, सन्तान को जन्म दे देना और सन्तान का पालन-पोषण कर लेना, अहो मनीषियो! ये तुम्हारी बहुत बड़ी शाबासी नहीं है। क्यों, भइया! है क्या ? इससे तुम अपने आपको महान् मानते हो तो मैं आपसे पूछे लेता हूँ-चिड़िया सुन्दर घोंसला बनाना भी जानती है, चिड़िया जन्म देना भी जानती है और चिड़िया अपने बच्चों को आपसे सुन्दर तरीके से पालन करना भी जानती है। तो आपके घोंसलों में और उसके घोंसलों में कोई अन्तर नहीं है।

हर जानवर अपनी रक्षा कर लेता है, पशु भी अपनी रक्षा कर लेता है, पेट भर लेता है। मनुष्य को श्रेष्ठता की कोई प्रामाणिकता प्राप्त है तो उसका एकमात्र कारण-

''हिताहितप्राप्ति-परिहारसमर्थं, प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्'' ॥परीक्षा मुखसूत्र॥

हित की प्राप्ति, अहित का परिहार, ऐसा ज्ञान उसके पास है, इसलिए उसको महान् कहा जाता है। वैसे आप कोई महान् नहीं हो। तन-पिंजड़े में रहते-रहते अनंतकाल व्यतीत हो गये और कितने पिंजड़े तुमने खोखले करके छोड़ दिए। पुनः-पुनः उन्हीं पिंजड़ों में प्रवेश कर रहे हो, नया क्या किया? कुछ नया आज तक किया आप लोगों ने? नहीं किया। आश्चर्य तब होता है जब पण्डित जी एक दीवार के पीछे भाई से झगड़ने बैठ गए। ओफ़ हो! कहाँ गया तत्त्व-ज्ञान? कहाँ गई आत्म-बुद्धि? कहाँ गई स्वरूप-दृष्टि? कहाँ गई भेद-विज्ञान की दृष्टि? जबकि निवास तुझे कितने में करना था? अर्थ के पीछे कितने अनर्थ कर डाले। कोई अर्थ निकला? मैं आपसे पूछ लेता हूँ, कि इस अर्थ के पीछे तूने कितने जीवन में कितने अनर्थ किए हैं? छल भी किया है, प्रपंच भी किया है, मायाचारी भी की है। कितने बच्चों को भूखे रोते-रोते तूने छोड़ा है अपनी पेटी भरने के पीछे। एक गरीब आता है दुकान पर, गिड़गिड़ा रहा है कि सेठजी! अब नहीं है। बोले-कुछ भी हो, यहाँ रख जाओ गहना, फिर चले जाना। एक वैद्य से पूछना। उधर उसने नाड़ी को देखा कि प्राण जानेवाले हैं तो कहता है कि पहले हमारी फीस रखो। संवेदना कहाँ चली गई? कहाँ तुम्हारा स्वाध्याय है? क्या है? बोले-सब तो कर रहे हैं। अच्छा, सब कर रहे, इसलिए आप कर रहे हो। फिर आप में और सब में विशेषता क्या है? सभी निगोद की यात्रा करेंगे, तो आप भी करोगे? सभी नरक की यात्रा करेंगे, तो आप भी करोगे? एक बलिस्त फीता आपने इधर से उधर कर दिया, खुश हो गए; लेकिन ध्यान रखो, पुण्य का फीता उतना कट चुका है तुम्हारा। ज्ञान शुष्क बनाए-.ये तो समझ में नहीं आता। ज्ञान मधुर बनाए जीवन को, ज्ञान श्रद्धा बनाए जीवन में, ज्ञान चारित्र लाए जीवन में, उसका नाम तत्त्वज्ञान है। अहो! उलटा नजर आता है, अर्थ के पीछे अनर्थ चल रहा है। वो अज्ञानी श्रेष्ठ है, जो पेट भरके सुबह-शाम भगवान् के दर्शन तो कम-से-कम कर जाता है। वो किस काम का तुम्हारा अर्थ? जब अर्थ नहीं था तो कम-से-कम दो टाइम, तीन टाइम मंदिर आ जाता था। आज दुकानों-पर-दुकानें बढ़ गईं तो फुरसत नहीं है। भगवान् के लिए समय नहीं है हमारे पास, मैं क्या करूँ महाराज? ठीक है, कर्म भी कहता है कि समय नहीं है मेरे पास, क्या करूँ महाराज? हम तुम्हें पेरें, अब तो कहेगा। यानी हकीकत बताएँ भइया कि श्रद्धा नहीं है, जो होना चाहिए। श्रद्धा नहीं है, विश्वास रखो आप। गहनतम् श्रद्धा होना चाहिए थी जिनवाणी के ऊपर। जब एक ओर हम कह लेते हैं कि जो भाग्य में होना होगा वह निश्चित है, तो फिर यदि हम दस बजे भी दुकान खोलेंगे, तब भी मिलेगा, जबकि छह बजे से खोलकर बैठ गए, क्या होगा? विश्वास है क्या तत्त्व पर? नहीं है। विश्वास था उस जीव को, जिसने दो घण्टे दुकान खोलने का नियम लिया और दुकान पर भीड़ लगी हुई है। समय हो

गया, भइया! जाओ, अब तो मैं स्वाध्याय करूँगा। पंडित दौलतरामजी से पूछ लो, जिसने 'छहढाला' जैसी कृति लिखी हो। मात्र कह-कहकर नहीं लिखा और कितना भयभीत थे संसार से? मेरे द्वारा कोई अनर्थ न हो जाए, तो लिखते-लिखते पहले क्या लिख दिया- ''पै कछु कहूँ, कही मुनि यथा'', मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं कह रहा हूँ, वो तो मेरा मन जिनेन्द्र की वाणी की सेवा करने का हुआ है, इसलिए जैसा पूर्व आचार्य भगवंतों ने कहा है वही मैं लिखूँगा। अपनी तरफ से मैं एक अक्षर का अक्षरांश भी नहीं जोड़ूँगा। यही प्रभाव है कि एक विद्वान् की कृति आज बड़े-बड़े आचार्य/मुनि भी पढ़ते हैं। क्यों? उस कृति में दौलतरामजी का कुछ नहीं है। मात्र शब्द-संयोजन है। वही योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं।

मनीषियो! आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी बड़े सहज-भाव से कह रहे हैं-इस विश्व में, ब्रह्माण्ड में अनंत जीवात्मा हैं, लेकिन शास्त्रों के जानने वाले जीव, शास्त्रों को समझने वाले जीव, शास्त्रोक्त पर चलने वाले जीव बहुत अल्प हैं। जो तत्त्व-ज्ञान से चलेगा वह, मनीषियो! भगवत्ता का वेदन करेगा। एक बात मैं आज आपको बताए देता हूँ, यदि आपको साधु के सुख की अनुभूति करना हो, तो एक घण्टे निर्मल सामायिक कर लेना और उसमें जाकर देखना-अहो! एक घण्टे की सामायिक में जब इतना आनंद है, तो जिनका जीवन सामायिक हो उन्हें कितना आनंद होगा। एक घण्टे के पाँच-पाप के त्याग में इतना आनंद और यदि आपको भगवान् के आनंद की अनुभूति करनी हो तो एक घण्टे साधु बनकर सामायिक करना। पर ध्यान रखना, वन-वे (इकतरफा) है, बनके बिगड़ा नहीं जाता, लेकिन है यथार्थ। यदि आपको उस परमार्थ का और परम तत्त्व का अनुभव करना हो तो वेदन करना। सम्पूर्ण विकल्प से परे अवस्था है, सम्पूर्ण चिन्ताओं से रहित अवस्था है वह। चिन्ताओं का मुख्य हेतु पर में चित्त को ले जाना ही है। जिसने चित्त को ही रोक लिया है, उसकी चिन्ता स्वयं रुक गई है। जो चित्त को नहीं रोक पाता है, उसे ही चिन्ताएँ घेरती हैं। धन्य हैं वे योगी, जिन्हें देखकर विपत्तियाँ ही विपत्ति में पड़ जाती हैं कि अब इसके साथ करूँ क्या? लोक ने सोचा, मैं इस योगी को विपत्ति में डाल दूँ। पत्थर फेंके, तलवार मार दिए, परन्तु वे ध्यान में बैठे हैं। मारने वाले ने ही सोचा कि अब मैं मारूँ तो किसे? मैं ही मर गया। अहो मुमुक्षु! ध्यान रखना जीवन में, तुम कभी सन्त को नहीं मार सकते हो, भगवन्त को नहीं मार सकते हो। उन पर वार करने के भाव तुमने लाए तो तुमने अपनी आत्मा को ही मार दिया। हैरान तो नहीं हो रहे हैं आप लोग? हो जाओ। (विरला जाणहि तत्तु बुह) तत्त्वों को जानने वाले विद्वान्/पण्डित लोक में विरले हैं।

> यो चिंत्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
>
> सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र कैं नाहिं कह्यो।।छहढाला।।

पण्डित वही, जिसने पापों को खण्डित करने का पुरुषार्थ ठान लिया है। उस विद्वान् की चर्चा है, ये समझ रहे न भइया? तत्त्वों को जानने वाले विद्वान् विरले हैं। क्यों, आप अपनी

प्रज्ञा का क्या उपयोग कर रहे हो? कोई घर के क्लेश में है, कोई समाज के क्लेश में है तो कोई राष्ट्र, देश के क्लेश में है, तो कोई अपने भावों से ही रो रहा है। यानी प्रज्ञा कितनी विशाल थी तुम्हारे पास, परन्तु उसका उपयोग नहीं कर पा रहे हो। ज्ञान तो है। गाड़ी में आपने पेट्रोल भर दिया है, चालू कर दी है और ब्रेक लगाकर खड़ी किए हो। होगा क्या? इंजन अपना काम कर रहा है कि नहीं? तेल जल रहा है कि नहीं? मशीन घिस रही है कि नहीं? गाड़ी पुरानी हो रही है कि नहीं? पर कहीं जा पा रहे हो आप? वही दशा तुम्हारे साथ है। इस प्रज्ञा को आपने भोगों में लगा दिया है, मोक्षमार्ग में तो ब्रेक लगाकर खड़ा कर दिया है। बोले-बिलकुल नहीं जाना। ठीक है, यहीं घिस करके नष्ट हो जाएँगे। खड़ा-खड़ा वाहन जैसे नष्ट हुआ था न, अहो छतरपुर के वाहनो! खड़े-खड़े चले जाओगे। मान लो 'हमाई बात तनक, चलन लगो तनक। धीरे-धीरे भी चलोगे तो पहुँच जाओगे। खरगोश की चाल नहीं, कछुए की चाल भी चलोगे तो भी पहुँच जाओगे। लेकिन चलो तो तनक। आपको तो ऐसे लगन लगत कि, महाराज! ई छतरपुर से नीको तो दुनिया में कछु नईयाँ।' खैर आपको दोष नहीं है।

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ॥43-इष्टोपदेश॥

जो जहाँ निवास करने लगता है, वहाँ रति को प्राप्त हो जाता है, दूसरी जगह जाना पसन्द नहीं करता है। ऐसे-ऐसे लोग विराजे हैं, जो सम्मेदशिखर की वन्दना करके लौटे और कहा-महाराज! बड़ा आनंद आया, इतना अच्छा लगता है शिखरजी कि क्या बताएँ। लेकिन मैंने सोचा-भगवान् आत्मा! वापस आ कैसे गया तू? जब वहाँ अच्छा ही लगता था तो यहाँ सड़ी-गली गलियों में क्यों आ गए तुम? अच्छा, क्यों भइया! सम्मेदशिखर में कब तक अच्छो लगत? जब तक जेब में पैसा है। ओ हो हो! भो ज्ञानी! जब अच्छा लगता है, तो अबकी बार जाकर वापस नहीं आना। 'उतई एक टोंक चुन लइयो कि इतई बैठने अब तो। जिनको आने से सो आओ, जाने सो जाओ, लेकिन हमारे राम तो इतई बैठे। ठीक है न?' यही तत्त्वज्ञान है। (विरला णिसुणहि तत्तु) भगवान् कह रहे हैं कि वैसे तो तत्त्वों को जानने वाले जीव संसार में विरले हैं। जानने वाले मिल जाएँ, पर तत्त्वों को श्रवण करने वाले बहुत कम हैं। (विरला झायहिं तत्तु) सुनने वाले भी मिल जायें, लेकिन ध्याने वाले बहुत कम हैं। (विरला धारहिं तत्तु) तत्त्वों को धारण करने वाले जीव विरले हैं, अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। शुभचन्द्र स्वामी ने लिखा है-अंगुलियों पर गिनने लायक हैं तत्त्वों को धारण करने वाले। ये गाथा 'कार्तिकियानुपेक्षा' में भी आई है। बहुत कम हैं-इसका तात्पर्य किसी के नाम मत ले लेना आप, कि अमुक-अमुक चन्दजी हैं, अमुक-अमुक भाई हैं, ऐसा नहीं समझ लेना। अंगुलियों पर गिनने लायक का तात्पर्य है कि बहुत कम हैं, न्यून हैं।

ऐसा समझकर, अहो ज्ञानियो! अब आपसे कह रहे हैं कि तत्त्व को समझो। (इहु परियम ण हु महुतणउ) इस संसार में परिवार निश्चय से मेरा नहीं है, (महुतणउ इहु सुख-दुक्खहँ

हेउ) इतना अवश्य है कि वह सुख-दुःख का हेतु जरूर है। जन्मा कोई, प्रसन्न कोई ; मरा कोई, दुःखी कोई। क्या हो गया? जन्म किसी का हो रहा है, मिठाइयाँ कोई बाट रहा है, क्या अज्ञान-दशा चल रही है...।

ऐसे परिवार से क्या प्रयोजन जिसके पीछे रोना पड़े। अच्छा बताओ-क्यों रोना पड़ता है? आप लोग ईमानदारी से बोलो, अपने लिए कितना रोते हो? अपने जीवन में दुःख होता न, उसको तो तू पोंछ लेता है किनारे जाकर। 'कोउ का कैहे'-ऐसे सोचता है और अपने लिए रोता भी नहीं है, कहता है कि कोउ का कैहे। दूसरे के लिए रोता है। न रोना आए तो भी रोता है। बोले-'कोउ का कैहे। ओहो! ऐसई हो रओ न? अब बताओ, सांची तो कह रये, अब कुन झूठी कह रये। बोले-कैसो है, अंसुआ ही नई आ रहे ई खों तो। का करें, नइ आ रये तो का कर लें, अब आई नहीं रये। ओहोहो! एक काम करियो, वाम और विक्स लगा लइयो आँखों में, सो अँसुआ आन लगें।' भो ज्ञानी आत्माओ! क्या झूठी माया है भइया, नजर नहीं आ रहा। मैं आपकी प्रशंसा करने लग जाऊँ तो क्या आप इतने समझदार नहीं हो कि हमारी औकात तो हमें मालूम है कि कितने प्रशंसनीय हैं। कोई हमारी निंदा करने लग जाए, झूठी करो, परन्तु हमें मालूम है हमारी औकात कि हम कितने निंदनीय हैं। तुम्हारी प्रशंसा सत्य नहीं है, तुम्हारी निंदा भी सत्य नहीं है। तत्त्वज्ञानी उसे कहते हैं, जो किसी की प्रशंसा में फूलता नहीं है और किसी की निंदा में कूलता नहीं है। वही तत्त्वज्ञानी है, जिसे मालूम है कि प्रशंसनीय हूँ या मैं निंदनीय हूँ, आपके कहने से कुछ नहीं होता है। इससे ये होगा कि आप मुझे मेरे स्वभाव से पतित करना चाहते हैं। यदि मैं अपनी प्रशंसा से फूल गया तो भी अपने स्वभाव से गया, निन्दा में कूलने लगा तो भी अपने स्वभाव से गया और हमारी प्रज्ञा को तुम क्षति देना चाहते हो।

ज्ञानवान् के ज्ञान का ह्रास कराना हो तो या तो उसकी प्रशंसा कर दो, सो वे उसमें दो-चार मिनट फूले रहेंगे, या फिर निंदा कर दो, सो वे सोचें कि का हो गओ। अपनी प्रज्ञा का बैलेन्स (संतुलन) बनाकर चलना भइया। ये लोक है, लोक। छतरपुर में एक व्यक्ति पन्ना से आये। घोड़े पर बैठे, साथ में बच्चे को बैठाए थे। जैसे ही आए, सो टीकमगढ़ से आए चौधरीजी कहने लगे-देखो-देखो, कैसो निर्दयी आदमी है, एक जानवर पर दो-दो बैठे? उनने कइ कि ठीक तो कह रहे हैं, अब एक काम कर लो, उतर जाओ। दोनों उतर गए। चौधरीजी बोले-कैसे पागल हैं, सवारी साथ में लिए दोनों पैदल चल रहे, बताओ भइया? तो बेटा तुम बैठ जाओ, हम चल रहे पैदल, पिताजी बोले। पिताजी ने बेटे को बैठा दिया। जैसे ही बढ़े,मलहरा तक पहुँचे, उते के लोग कहन लगे- कए भइया! तुम्हें शर्म नहीं आत, बूढ़े को पाँए-पाँए चला रहे, तुम घोड़ा पर बैठे? सो बेटा उतर गओ, बोलो-पिताजी! आप बैठो। द्रोणगिरि तक पहुँचे, उते कोई तीसरे आ गए-कए भइया! बूढ़े को शर्म नहीं आत, लड़का बेचारे को पाँय-पाँय चला रहे, स्वयं बैठो है। अब बाप से बेटा ने सलाह करी, बोले-

पिताजी! ये संसार है, हंडिया पे पारो रखो जा सकत, लेकिन आदमियन के मुख पे पारो नहीं रखो जा सकत। अब अपने खों अपनी प्रज्ञा जो कहे और जिनवाणी जैसो कहे, वैसो करने, क्योंकि कहुँ गत नइयाँ। है न भइया? इसलिए ध्यान रखना, आप संसार को खुश करके जीना चाहते हो या सम्बन्धियों को खुश करके जीना चाहते हो और फिर आप मुनि बनना चाहते हो तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि दादाजी के दादाजी के दादाजी के दादाजी आ जायें, वे संसार के लोगों को खुश नहीं कर पायेंगे। संसार के लोग खुश होंगे नहीं और आप साधु कभी बन पाओगे नहीं। और कोई ये भी सोचे कि, महाराज! पहले हम घर की पूरी व्यवस्था कर दें, फिर मुनि बनेंगे। अच्छा, करो तुम, आज से शुरू कर दो। और विश्वास रखो, कल आपको चार व्यवस्थाएँ और नई दिखेंगी। घर की व्यवस्था कभी भी पूरी नहीं हो पाएगी। वो तो एकमात्र निज के परिणामों की ही व्यवस्था पूरी हो सकती है। वो पूरी हो जाए, उसी दिन आप छोड़कर भाग जाना। ठीक है न? विचार बन रहा है कि नहीं बन रहा है? ये तनक तो बना लिया करो कभी-कभी। अहो ज्ञानी आत्मा! ये सब मेरा नहीं है (इहु सुहु दुक्खहँ हेउ) एकमात्र सुख-दुःख के हेतु हैं। (इम चिंततहँ) ऐसा चिन्तवन, (किंकरइ) इस प्रकार विचार करने से शीघ्र ही (लहु संसारहु छेउ) संसार का छेद होने लगता है। क्या चिन्तवन करना है? ये परिवार मेरा नहीं है, एकमात्र सुख-दुःख का हेतु ही है, मात्र रागात्मक दृष्टि है। लेकिन, संसार में निजतत्त्व ही मोक्ष का हेतु है, ऐसा विचार करेगा, तो तू संसार का छेद कर लेगा।

मनीषियो! भगवान् बड़ी करुणादृष्टि से समझा रहे हैं। अहो अज्ञानी! तू कहाँ-कहाँ भटक रहा है। जो स्वयं किसी को शरणागत नहीं हुए, वो दूसरे को शरण क्या होगा? एक दुर्बल व्यक्ति स्वयं गिर रहा है, वो दूसरे को क्या हाथ का अवलम्बन देगा? कोई इन्द्र की पूजा कर रहा है, कोई धरणेन्द्र की पूजा कर रहा है, कोई क्षेत्रपाल को पूज रहा है, कोई पद्मावती को पूज रहा है। ओहोहो! कैसा मिथ्यात्व छाया है। कितने ही देवी-देवताओं को पूज लेना, लेकिन ध्यान रखना, जिन्हें अमर कहा जाता है वो भी मर गये, तो तुम्हें कौन बचाएगा? बेटे के सिर में जरा दर्द हुआ और शुरू हो गया, जाओ चबूतरे के चक्कर लगा लाओ। कितने चक्कर काटोगे? विश्वास रखो, तेरा पुण्य है तो सब तेरे साथ है, पुण्य नहीं है तो कोई तेरे साथ में नहीं है।

तत्थ भवे किं सरणं, जत्थ सुरिंद्राण दीसदे विलओ।
हरिहरबंभादीया, कालेण य कवलिया जत्थ॥23॥का.अ.॥

'कार्तिकेयानुपेक्षा' में कार्तिकेय स्वामी ने लिखा, (तत्थ भवे किं शरणम्) अहो अज्ञानी! तेरा कौन शरण होगा? (जत्थ सुरिंद्राण दीसदे विलयो) जिसका स्वर्ग ही दुर्ग है, ऐरावत हाथी जिसके पास हो, ऐसा इन्द्र भी स्वर्ग से च्युत होता देखा गया है। (हरिहरवम्भादीया) हरिहर, ब्रह्मा आदि (कालेवा कवलिया) सब काल के गाल के ग्रास बन गये, तो तुम कौन-से महान्

हो? इसलिए तन के नष्ट होने के पीछे सम्यक् धर्म को नष्ट न कर बैठना। समझ गये न? कोई साथ नहीं होगा। न देव आयेंगे, न देवियाँ आयेंगी। बड़े-बड़े तांत्रिक कहें कि हम तुम्हारा हित कर देंगे, नहीं होगा। तुम मेरा क्या हित करोगे? तुम स्वयं का हित तो कर लो पहले। हम लोग दुर्ग जा रहे थे। सिवनी के पास में बंजारी एक स्थान है। बहुत दूर-दूर से चर्चा सुनने को मिली। बोले-महाराज! ऐसा ऐसा ऐसा। वहीं से निकला मैं। एक अन्धा व्यक्ति बैठा था। हमने कहा-जब इतनी ताकत थी, सब कुछ था, तब इस बेचारे ने अपनी आँखें काहे नईं खोल लईं? ये अन्ध विश्वास से दूर रहना। मंदिर में, तीर्थक्षेत्रों में आप अरहंत की उपासना मात्र करने जाना। इस उद्देश्य से मत चले जाना कि वहाँ जाकर झड़ाया-फुँकाया तो मैं ठीक हो जाऊँगा। अरे! इनके चरणों में आप श्रद्धा करो, भक्ति करो, सब ठीक हो जाएगा। कह देना भगवान् से-

एक ग्राम पति जो होवे, सो भी दुःखिया दुःख खोवे।
तुम तीनभुवन के स्वामी, दुःख मेटो अन्तरयामी॥

भगवन्! एक नगर का सरपंच भी अपने नागरिकों की रक्षा कर लेता है और आप तीन लोक के स्वामी हो, मैं दुःखिया हूँ न, आप बदनाम हो जाओगे। लेकिन दूसरे हारे न जइयो; ध्यान रखियो। समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा? भगवान् की भक्ति करो, क्या नहीं होगा?

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकनी-भूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥7॥

ये पढ़ मात्र लेते हो कि श्रद्धा भी है? जो जगह-जगह जा रहा है, वो पाठ मात्र कर रहा है और भीख माँगता है, सब जगह जाकर। इसलिए ध्यान रखना, कोई पारसनाथ को देव कहता है, कोई आदिनाथ को देव कहता है, कोई ज्योतिषी देव कहता है। अहो ज्ञानियो! ये मिथ्या मान्यताओं को लेकर कहीं सर्वज्ञ पर अश्रद्धान मत कर बैठना। कोई भक्तामर छुड़ा रहे, तो कोई पूजा-पाठ, णमोकार छुड़ा रहे। ऐसी श्रद्धा-भक्ति में मत बह जाना। मनीषियो! सर्वज्ञ के शासन में भी भगवान् की वेदी के सामने भूत भगने लगे आजकल। ओ हो हो! क्या है? ठीक तो है, पंचमकाल की महिमा है कि भूतों की पूजा ज्यादा होगी, भगवान् नहीं दिखेंगे। सोचो, विवेक लगाओ। दर-दर नहीं भटकना। ये अड़सठवाँ दोहा समझ लेना। (इन्द-फणिन्द-णरिंदय ण वि जीवहँ सरणु होंति) हे जीव! ये कोई तेरे शरण नहीं है। (असरणु जाणिवि मुणि-धवला) मुणि-धवला यानी श्रेष्ठ। अहो मुणिपुंगो! ऐसा समझो। (अप्पा अप्प मुणंति) एकमात्र आत्मा ही आत्मा का शरण है।

मालूम है कि निश्चय नय से 'अप्पा शरणं पव्वज्झामि' और व्यवहार नय से 'चत्तारि शरणं पव्वज्झामि' और कोई नय से कोई शरण नहीं है। व्यवहार से एक मात्र पंचपरमेष्ठी शरण हैं, निश्चय से मेरी आत्मा शरण है और विश्व में अन्य कोई मेरा शरण नहीं है।

दल बल देवी-देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार॥

फिर ये काहे रोत आप बैठे-बैठे? ये पढ़ना नहीं है, समझना है। ठीक है न? तो आज से हृदय में प्रतिज्ञा ले लेना कि महाराजश्री! मेरे प्राण चले जाएँ, लेकिन मैं अपने सम्यक्धन का नाश नहीं करूँगा, किसी देवी या देवता की शरण में नहीं जाऊँगा। तीर्थों की वन्दना करने जाऊँगा, भगवान् की आराधना से सब संकट दूर हो जाते हैं, लेकिन मैं वहाँ भीख माँगने नहीं जाऊँगा। इन भगवान् में चमत्कार नहीं है क्या? छतरपुर के भगवान् में चमत्कार नहीं है क्या? भो ज्ञानी! भगवान् में चमत्कार नहीं होते, तेरी भक्ति में चमत्कार होते हैं। मानतुंग स्वामी ने किससे क्या माँगा? भगवान् की भक्ति की, अड़तालीस ताले टूट गये और श्रद्धा हो तो ऐसी हो। मालूम! अग्निकुण्ड में जिसको डाला जा रहा हो, फिर भी आपने कहीं पद्मपुराण में अथवा किसी अन्य ग्रन्थ में पढ़ा कि सीता ने कहा-हो भगवन्! मेरी रक्षा करो आकर के। लिखा हुआ पढ़ा कहीं आपने? सम्यग्दृष्टि जीव तन के पीछे अरहंत देव की भक्ति न्यौछावर नहीं करता। सीता ने तो इतना मात्र कहा था कि, हे अग्नि! यदि मेरे शील में स्वप्न में भी दोष लगा हो, तो मुझे भस्म कर देना। यदि मेरे शील में ताकत हो तो अग्नि विलीन हो जाए। पंचपरमेष्ठी को नमन किया और अग्निकुण्ड में कूद गई। तुम्हें अपने शील पर विश्वास हो तो कूदकर दिखाओ एक दिन। सिर झुकाने से कुछ नहीं होगा।

हम चार दिन में तो पता नहीं कहाँ-कहाँ घूम आते हैं और कहते हैं-महाराज! आपके पीछे कौन बच्चे, घर लगो है। सो आप तो ऐसइ कहत। हमें परिवार चलाने पड़त, सो सब जगह जाने पड़ता। अहो! ऐसइ तो कहत आप। लेकिन ध्यान रखो, आपको भी अकेले ही जाना पड़ेगा। मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि आप क्या करो। मैं तो आपको ये बता रहा हूँ, ताकि श्रद्धा उत्पन्न हो जाए कि ये यथार्थ है और आज नहीं मानना, नरक की आयु का बंध कर लेना और नरक में गिर जाना, वहाँ कुटना-पिटना, फिर याद करना कि महाराज ने कुछ कहा था। हाँ, याद आ जाएगी आपको। ठीक है न? आज से ये ध्यान रखना, ये सिर श्रीफल नहीं है। ये वीतरागमुद्रा को ही नमन करेगा। सम्मान हो सकता है, आदर हो सकता है, सत्कार हो सकता है, लेकिन पूजा पंचपरमेष्ठी ही की होती है। इस विवेक को मत भूल जाना।(एक्कु करेति कम्मं) अहो ज्ञानी! कर्म करेगा तो अकेला करेगा। दादाजी के घर में दस सदस्य और जब आपको पीड़ा होती है शरीर को तो सब लोग घेर लेते हैं-दादाजी! क्या हो गया? लेकिन बताओ कितने लोग तुम्हारी पीड़ा को बाँट पाते हैं? बेटा! तुम पट्टी लगा सकते हो, तुम डाक्टर को बुलवा सकते हो, तुम दवाई मँगा सकते हो, लेकिन तुम मेरे दर्द को दबा नहीं सकते। पीड़ा मुझे ही सहन करना पड़ेगी, क्योंकि कर्म मैंने किया है, आपने नहीं किया। दर्द मुझे ही झेलना पड़ेगा। इसलिए आप अपना काम कर लो, मुझे समता में रहने दो। क्या कह रहे हैं आचार्य भगवान्? (इक्क उपज्जइ) जन्मेगा तू अकेला, (मरइ इक्कुवि) मरेगा तू अकेला,

(दुहु सुहु भुंजइ इक्कु) सुख-दुःख भोगेगा तू अकेला, (णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ) नरक में भी तू जाएगा तो अकेला ही जाएगा, (इक्क वि तह णिव्वाणहँ इक्कु) और निर्वाण भी प्राप्त करेगा तो अकेला करेगा।

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।

'ये इतई मंदिर में पढ़ियो, घरे न पढ़ियो। ओ हो हो! घर में पढ़ लें तो घर छोड़ने पड़े।' पर भूतार्थ तो यही है। समय आपका हो गया, हो गया न? क्यों दादाजी! समय हो गया कि नहीं? अबे नई भओ। बाल सफेद हो गए, दाँत गिर गए, इनको समय नई भओ अबे तक, बकाया है। अहो मुमुक्षु आत्माओ! इस सूत्र का बड़े गौरव से चिन्तवन करो। आज का नियम है आप सबका, घर में जाके सोने तक पाँच मिनट चिन्तवन करना है।

एक्को करेदि पुण्णं, धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण।
मणुवदेवेसु जीवो, तस्सफलं भुंजदे एक्को ॥बारषाणुपेक्खा॥16॥

एक ही कर्म करेगा, एक ही जन्म लेगा, एक ही मृत्यु को प्राप्त होगा, एक ही कर्म के फल को भोगेगा। मेरा कोई दूसरा बंटवाने वाला नहीं है। ये धन बँटवा लेंगे, मनीषियो! ध्यान रखना, भूमि बँटवा लेंगे, पर धर्म और पाप-पुण्य को कोई नहीं बँटवा पाते। परिवार के लोग सब कुछ छीनना चाहें तो दे देना, आप खुशी के साथ पूरी चाबियाँ पकड़ा देना और उनसे बड़े प्रेम से कह देना-सुनो! कैकई से बोल दो कि तुम राम को जंगल भिजवा सकती हो, पर जंगल में रहें या न रहें, ये तुम्हारे हाथ की बात नहीं है, राम के पुण्य-पाप की बात है। क्यों, कैकई ने जंगल दिलाया था न? पर जंगल में रहे कितना? उनको तो जहाँ देखो वहाँ भवन मिले, राज्य मिला, वैभव मिला। इसलिए जीवन में ध्यान रखो, धन छीना जा सकता है, मकान छीने जा सकते हैं, लेकिन घाट में भी पालनहारा मिल जाएगा और पाप होगा तो घर में भी मारने वाले मिल जाएँगे। ऐसा दृढ़ श्रद्धान रखो। विश्वास रखो, निर्भय हो जाओ, निःसंग हो जाओ, निःशंक हो जाओ। यही सम्यग्दृष्टि का लक्षण है। पर की शरण में मत जाओ, एक निजात्मा और पंचपरमेष्ठी की शरण में चले जाओ।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

जैसा तन निर्ग्रन्थ है, वैसा मन को निर्ग्रन्थ बना

योगसार

एक्कुलउ जइ जाइसिहि, तो परभाव चएहि।
अप्पा झायहि णाणमउ, लहु सिव-सुक्ख लहेहि ।।70 ।।

अर्थ - हे जीव! यदि तू अकेला ही है तो परभाव का त्याग कर और आत्मा का ध्यान कर, जिससे तू शीघ्र ही ज्ञानमय मोक्षसुख को प्राप्त कर सके।

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सव्वु इ को वि मुणेइ।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेइ ।।71 ।।

अर्थ - जो पाप है, उसको जो पाप जानता है, यह तो सब कोई जानते हैं, परन्तु जो पुण्य को भी पाप कहता है, ऐसा पंडित कोई विरला ही होता है।

जह लोहम्मिय णियड बुह, तह सुण्णम्मिय जाणि।
जे सुहु असुह परिच्चयहिं, ते वि हवंति हु णाणि ।।72 ।।

अर्थ - हे पण्डित! जैसे लोहे की साँकल को तू साँकल समझता है, उसी तरह तू सोने की साँकल को भी साँकल समझ। जो शुभ व अशुभ दोनों भावों का परित्याग कर देते हैं, निश्चय से वे ही ज्ञानी होते हैं।

जइया मणु णिग्गंथु जिय, तइया तुहुँ णिग्गंथु।
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय, तो लब्भइ सिवपंथु ।।73 ।।

अर्थ - हे जीव! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ हो गया तो तू भी निर्ग्रन्थ हो गया और जब तू निर्ग्रन्थ हो गया, तो उससे मोक्षमार्ग मिल जाता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो ! अन्तिम तीर्थेश भगवान् महावीर की पावन देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने भावों की विशुद्धि के पावन माणिक्य हमें प्रदान किए। एक-एक सूत्र में 'समयसार' का सार भर दिया। बहुत गहन सूत्र दिये हैं। भो ज्ञानी! तू लोक में सर्वत्र विचरण कर ले, लेकिन कर्म का बंध अकेला ही करेगा और कर्म-बंध का विपाक भी अकेले ही भोगना पड़ेगा। व्यापार के फल को प्राप्त करने वाले लाखों लोग मिल जायेंगे, पर व्यापार में किये कर्म-बंध के विपाक को भोगने वाला तू अकेला ही होगा। जिस बेटे ने जन्म आज लिया है, उसने कुछ कमाया नहीं एवं जिसके पालन के लिए आपने अनंत जीवों का घात किया है, जब वह घर का हिस्सा माँगेगा और आपसे बिना कुछ कहे वह आधा छीन लेगा और आपको देना ही पड़ेगा। जिस बेटे के लिए हिंसा, अनाचार किए हों, असत्य

भाषण किया हो, छल किया, चोरी की, पैसे के पीछे पाप के बंध को प्राप्त हुए हों, उससे एक दिन पूछ लेना-बेटे! आप सबके निमित्त से मैंने जो पापबंध किया, उसके विपाक-काल में हमारा सहयोग करेंगे कि नहीं?

पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जयदि पापबुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं, सो जीवो भमदि संसारे ॥30 ॥

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 'बारसाणुपेक्खा' ग्रंथ में उपर्युक्त गाथा लिखी है। स्त्री, पुत्र आदि के निमित्त से तूने पाप बुद्धि से धन का अर्जन किया है। जिस समय धन का उपार्जन कर रहे थे, उस समय दयाधर्म को भूल गये थे और कुल के धर्म को भी भूल गये थे। दरवाजे पर लिखा है जैन, ब्राह्मण, क्षत्रिय। अहो ज्ञानी! दूसरी ओर एक प्लेट लगी है जिस पर लिखा है 'ब्यूटीपार्लर'। धिक्कार है, तू उच्च कुल में जन्म लेकर शूद्रों के काम कर रहा है। आप कह रहे थे कि मेरी पंचायत बहुत अच्छा निर्णय लेती है। आज यह निर्णय ले लेना कि एक कटोरा उसको पकड़ा देना और कह देना कि भीख माँगकर खा लो, लेकिन जैनत्व को मत लजाओ। इस बोर्ड को अलग कर दो। इतने उज्ज्वल कुल में जन्म लिया और म्लेच्छों के काम, शूद्रों के काम कर रहे हो।

भो ज्ञानी! उन धन के पिपासुओं से कह देना कि महुआ में कितनी हिंसा होती है? कितनी भी गोदामें भर लो, पर नरक की पर्याय का भी विचार कर लेना। गोदाम में रखे अनाजों में कितने जीव पैदा हो रहे हैं और आपके द्वारा गोलियाँ रखी जा रही हैं। विवेक पूर्वक ढंग से रख रहे हो? मनीषियो! ये संकल्पी हिंसा है। क्या उद्देश्य है गोली रखने का? हम लोग जुआ नहीं खेलते, पर जुआ-जैसा व्यापार कर लेते हैं। चाहे पाँसे फेंकों या सट्टा लगाओ, पर ध्यान रखना, ये कर्म तुम्हें नीचे ले जाएगा। लाखों के व्यापार शर्तों पर हो रहे हैं। व्यापार में शर्तें नहीं लगतीं, व्यापार होता है। जहाँ शर्तों की दृष्टियाँ हैं, वहाँ विवेक लगाना पड़ेगा। परिणाम कैसे कलुषित होते हैं? जहाँ कलुषित भाव है, वहाँ बंध है। जहाँ विशुद्धि भाव है, वहाँ निर्बंध है। महान् तार्किक आचार्य समंतभद्र स्वामी ने 'देवागम स्तोत्र' में लिखा है- (विशुद्धि संक्लेषांगं च बंध मोक्ष हेतुं) संक्लेषताएँ और विशुद्धि ही क्रमशः बंध और मोक्ष का हेतु हैं। जिन निमित्तों से संक्लेषता की वृद्धि होती है, उन निमित्तों से नियम से बंध होता है, इसलिए उन निमित्तों को भी छोड़ देना और जिनसे विशुद्धियों की प्राप्ति होती है, उन निमित्तों को प्राप्त कर लेना। कर्म अकेले करोगे, कोई देखनेवाला नहीं होगा, पर आप स्वयं देखेंगे। कोई सुनने वाला नहीं होगा, पर आप स्वयं सुनेंगे। देखो, किसान मुट्ठी बंदकर नाड़ी पर हाथ रखकर बीज बोता है। मार्ग में जाने वालों को कुछ नहीं दिख रहा, क्योंकि वह गुप्तरूप से वपन कर रहा है। एक जीव सोचता है कि मैं कषाय के हल से इस भूमि में पापों के बीज को मुट्ठी बंदकर बो दूँगा, कौन देखता है? लेकिन, हे किसान! तुम कितने ही छुपकर बो लेना, बीज छुपकर बो सकते हो, छुपाने कहाँ जाओगे? मत पूछना किसी से कि आपने क्या बोया?

कुछ दिनों बाद जब बालें आयेंगी, स्वतः झलक जायेगा कि इन्होंने क्या बोया था ? बाथरूम में गुटका खाना, लेकिन दाँत बतला देंगे कि तुमने क्या किया? दाँत नहीं, तो कैन्सर का फोड़ा बता देगा, कहाँ छिपाओगे?

अहो ज्ञानी! गुरु ने दो शिष्यों को एक-एक श्रीफल दिया और कहा इसे ऐसे स्थान से तोड़कर लाना, जहाँ कोई देख न रहा हो। 'हाँ गुरुदेव! ऐसा ही होगा।' दोनों शिष्य जाते हैं। एक शिष्य पर्वत के ऊपर एक गुफा में गया और श्रीफल के दो टुकड़े कर दिये। प्रसन्न होकर गुरु के चरणों में पहुँचता है, 'मैंने एकान्त गुफा में जाकर इसके दो टुकड़े कर दिये।' गुरु ने कुछ नहीं कहा। दूसरा शिष्य भी गया था एकान्त में। सर्वत्र निहारा, अन्दर का गुरु कहता है- हे लाल! गुरु ने कहा था कि कोई देखनेवाला न हो। तुम बताओ, कोई देखने वाला है कि नहीं? जैसे ही श्रीफल तोड़ने का भाव आया कि अन्दर के गुरु ने हाथ पकड़ लिया। सुनिये! सर्वज्ञ के ज्ञान में सबकुछ झलकता है, वे सर्वज्ञ देख रहे हैं तथा आप स्वयं भी दे रहे हैं। 'कोई' में आपका नाम भी है। हाथ हिलने लगा, काँपने लगा, फल को तोड़ नहीं सका। गुरु के चरणों में निवेदित कर दिया-हे गुरुदेव! मुझे इस लोक में ऐसा कोई स्थान नजर नहीं आ रहा, जहाँ इसे मैं तोड़ सकूँ। गुरु ने शिष्य को छाती से लगा लिया और पीठ ठोंक दी शिष्य की। बेटा! तूने सत्य देखा।

इस लोक में हम पाप करने कौन-सा स्थान खोजें? मैं स्वयं जान रहा हूँ कि अच्छा कर रहा हूँ कि बुरा। भगवान् जिनेन्द्रदेव और अनंत-सिद्धों के कैवल्य में झलक रहा है कि तुम्हारी पाप की पर्याय चल रही है कि पुण्य की, पाप-परिणाम चल रहे हैं कि पुण्य-परिणाम। और कर्मबंध निहार रहा है कि कर्मबंध हो चुका है। तुम्हें पता नहीं कि कर्मबंध कैसे होते हैं? एक-एक प्रदेश में आत्मा के कितने कर्मबंध हैं? एक समय में जितने सिद्ध हो चुके हैं उतने कर्म का बंध एक समय में हो जाता है। जितने अतीत काल में सिद्ध हो चुके हैं, उतने कर्म का बंध एक पलक झपकते में हो जाता है। मनुष्य चौबीस घंटे कैसे-कैसे भाव करता है? ये भाव यदि माँ को सुना देगा, तो माँ भी कहेगी-बेटा! तू ऐसा भी सोच लेता है? अपने मित्रों को सब बातें बतलाते हैं क्या? यदि माँ को बतला देगा, तो माँ तुम्हें बेटा कहना बंद कर देगी। धन्य हो! शुभ को बताने वाले लाखों-करोड़ों हैं, परन्तु अशुभ को बालकवत् कहने वाले लोक में बिरले हैं। जितनी वात्सल्यता से शुभ भावों का बखान करते हो, वैसे ही अशुभ भावों का व्याख्यान कर दोगे तो प्रभु बनने का मार्ग चुन लोगे। जब तक अशुभ भावों को छिपाकर रखोगे, तब तक शुभ क्रियाएँ तो करते रहोगे, पर शुभ-उपयोग का स्पर्श नहीं कर सकोगे। जो तुमने अपराध किये हैं, किसी की मृत्यु कराई है, तो उसका प्रायश्चित्त ले लेना, अन्यथा नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। किसी को मत निहारना, अपने हृदय से पूछना-मैं शर्म के पीछे, लोक के पीछे अपने लोकाचार को भूल गया। ऐसे-ऐसे अज्ञानी जीव हैं जिन्होंने अपने द्वारा उत्पन्न सन्तान को ही नष्ट कर दिया। ये गोरे चेहरे काम नहीं आयेंगे, जब तक गोरा हृदय नहीं

बनेगा । हृदय गोरा तभी होगा, जब जीवन से सभी पाप निकल जायेंगे ।

आज भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं-सम्हल जाओ । मैंने समझ लिया, सो मुनि बन गया । अपने-अपने अन्तःकरण से पूछना कि जीवन में पाप कितने किये हैं, अपराध कितने किये हैं? शासन/प्रशासन कुछ दण्ड नहीं दे पाता, उसके हाथ कुछ नहीं है । शासन के पास अपराध का दण्ड मात्र होता है । अपराध बहुत कम हो पाते हैं, पर पाप अनंतानंत हो जाते हैं । अपराध शरीर से होते हैं, वाणी से होते हैं, पर पाप परिणामों से कर चुका होता है । घर में बीस सदस्य हैं, पता नहीं कितनी बार माँ का, भाई का घात कर डाला? कितने संबंधियों का घात कर डाला? एक क्षण को भाव आ गये कि यह मर जाता । तुम्हारे कहने से मरेगा नहीं, पर तुम जरूर मर गये । वह मरेगा जरूर जब आयु कर्म का क्षय होगा, लेकिन कहने वाले ने कर्म का बंध करके अपनी आत्मा को मार लिया है ।

विकल्पों को हल्का करो । विकल्प हल्के तभी होंगे, जब दोषों का प्रायश्चित्त कर लोगे और भविष्य में नहीं करोगे । अन्यथा विश्वास रखना, अन्तिम समय जब तुम्हारे प्राण निकल रहे होंगे तब भी मन में विशुद्धि-भाव नहीं आयेगा । एक झलक मन में आ गई कि मैंने अमुक समय में ऐसा दोष किया था । सल्लेखना के काल में अन्तिम प्रतिक्रमण होता है, उसका नाम है-उत्तमार्थ प्रतिक्रमण । मुनियों के सात प्रतिक्रमण होते हैं-दैवसिक, रात्रिक, ईर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक और उत्तमार्थ । यदि मैंने रागवश कहीं इसे अन्तःकरण के कोने में छिपाकर रखा हो, हे गुरुदेव! मैं अन्तिम विदाई में आपके चरणों में छोड़कर जा रहा हूँ । ध्यान रखना, बड़ी-बड़ी तपस्या कभी-कभी काम नहीं आती । भावों की निर्मलता ही सल्लेखना करा पायेगी । सहज बन जाओ, सबके बीच रहो, लेकिन कर्ता बनकर मत जीना, वरना संक्लेशता बनेगी । जीवन में ध्यान रखना, एक मिनट के शतांश भी आपने सल्लेखना कर ली है और उस अंश में एकत्व का अनुभव कर लिया, तो वह क्षण जीवन में फिर कभी नहीं मिलेगा । घंटों की सामायिक में पूरा समय वह नहीं होता, जो होता है एक समय की सामायिक में । सेकिंड के असंख्य भाग कर दो, वह समय होता है । इतने बड़े अनार में रस कितना होता है? फिर सत्व कितना होता है? ये शुद्धोपयोग आत्मा का सत्व है । भो ज्ञानी! जिसने एक बार उसकी झलकन का अनुभव कर लिया, फिर संसार के सभी वैभव व्यर्थ हैं । बुन्देलखण्ड के लोग कहते हैं- ''लपकी गाय गुलेदो खाय, बार बार महुआ तरें जाय'', जिसकी आत्मा की डाल पर आत्मानुभूति-फल आ चुका है, संसार का फल उसे अच्छा लगता ही नहीं । भो ज्ञानियो! भोग-रस का त्याग कर दो, आत्म-रस लेना प्रारम्भ कर दो । एक दाढ़ के नीचे दो प्रकार के फल दबाओगे तो किसी का स्वाद नहीं आयेगा । एक को अलग करना ही पड़ेगा, तभी दूसरे का स्वच्छ वेदन होगा । एक मौसम में ग्रीष्मकाल और शीतकाल एक साथ कभी नहीं होता है । ऐसे ही एकसाथ दो अनुभूतियाँ नहीं होती हैं । विश्व-अनुभव और आत्म-अनुभव एक साथ त्रैकालिक सम्भव नहीं है । आचार्य योगीन्दुदेवस्वामी ने 'परमात्मप्रकाश' में सुन्दर बात लिखी है-

जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
एक्कहिं केम समंति वढ वे खंडा पडियारि॥121॥अ.1॥

जिस पुरुष के हृदय में मृगलोचनी स्त्री निवास कर रही है, उसके अन्तःकरण में ब्रह्मस्वरूप कहाँ? एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं? इसी तरह एक आत्मकोष में दो उपयोग एक साथ नहीं रहते। शुद्ध-उपयोग और अशुद्ध-उपयोग एक साथ कैसे रहेगा?

भो ज्ञानी! सिद्धों के अनंत गुणे जीव एक सुई की नोक के बराबर आलू के अंश में विराजे हैं और उन सब सिद्धों को बघार कर कैसे खा रहे हो? एक जमाना था जब पूछना पड़ता था कि पूजा करते हो कि नहीं? आज रात्रि भोजन पूछना पड़ता है। कैसा जमाना आ गया कि आलू खाने की बात भी पूछना पड़ती है? क्या हालत है समाज की? ज्ञान तो बढ़ रहा है, पर चारित्र नष्ट हो रहा। संवेदनाएँ शून्यता की ओर जा रही हैं। वह ज्ञान किस काम का?

ज्ञान तभी काम आयेगा, जब श्रद्धा और चारित्र पास में हो। श्रद्धा व चारित्र नहीं हैं, उस ज्ञानी का ज्ञान कुछ नहीं कर पायेगा। 'भगवती आराधना' में लिखा है-अहो मुमुक्षओ! हाथ में दीपक क्यों लिया? मैं गड्ढे में न गिर जाऊँ, मेरा पैर मल पर न पड़ जाये। यदि दीपक लेकर गड्ढे में गिर गया तो दीपक की क्या उपयोगिता है? आचार्य शिवकोटि महाराज लिख रहे हैं कि जिस जीव ने एक करोड़ शिवलिंग की स्थापना की हो, वह जीव कैसे बदला? सम्राट जिनालय के पास से कान में अंगुली डालकर निकल रहा था और सोच रहा था कि कहीं कान में जैनधर्म के शब्द न पड़ जायें। जब वे अहिक्षेत्र से निकले तो वहाँ एक मुनिराज बैठे 'देवागम स्तोत्र' का पाठ कर रहे थे। यह आचार्य समंतभद्रस्वामी रचित स्तोत्र है। इसी समय काल-योग से पैर में कांटा लग गया। कांटा निकालने में कान से अंगुली हट गई और जिनवाणी के शब्द कान में पड़ गये।

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः ।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्॥1॥आ.मी.॥

ये गहन तत्त्व कहाँ से आ रहा है? सेनापति ने कहा- महाराज! ये जिनालय है। मुनिराज स्तोत्र का पाठ कर रहे हैं। राजा ने जाकर मुनिराज के चरणों में नमोस्तु किया और कहा-प्रभु! इसका अर्थ समझा दीजिये। वीतरागी मुनि कहते हैं-राजन्! मुझसे अर्थ नहीं बनता। हे मुनीश्वर! क्या इस ग्रंथ का पाठ पुनः सुना सकते हो? हाँ, सुना सकता हूँ। प्रथम कारिका से लेकर 115 कारिका तक एक क्षण में सुना दी। जब उन्होंने सुना-

सत्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राऽविरोधिवाक्।
अविरोधी यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते॥6॥आ.मी.॥

आचार्य समंतभद्र स्वामी उपर्युक्त कारिका में कह रहे 'हैं-हे वीर! आप ही निर्दोष परमात्मा हो। क्यों? तर्क, से शास्त्र से आप निर्दोष हो, इसलिए आपको नमस्कार है।' सवा करोड़ पिण्डियों के स्थापक शिवकोटि को एक मुहूर्त नहीं लगा, उधर कांटा चुभा, यहाँ

मिथ्यात्व चुभने लगा और उन्होंने केशलुंचन कर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। 'भगवती आराधना' ग्रंथ लिखनेवाले वे 'शिवकोटि' महाराज हैं, जिन्होंने अपने अनुभव के आधार पर ग्रंथ लिखा है। यह दिगम्बर-जैन-आम्नाय में सल्लेखना का विस्तृत कथन करनेवाला महान् ग्रंथ है। इसका नाम 'मूल-आराधना' भी है। ज्ञान तभी हितकारी है, जब गड्ढे से बच जाओ।

हे ज्ञानी! (जइ एक्कुलउ जाइसिहि) तू अकेला ही है तो (परभाव चएहि) परभाव को त्याग कर (अप्पा झायहि) आत्मा का ध्यान कर, जिससे तू (णाणमउ सिवसुक्ख लहेहि) ज्ञानमयी मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। जब अकेला नरक जाता है, अकेला तिर्यंच बनता है, तो अकेले ध्यान कर लो, तभी शिवसुख को प्राप्त कर लोगे। नरक जाने की अपेक्षा स्वर्ग चले जाओ।

यह अच्छा नहीं है तो सिद्ध बनकर ध्यान करो। किसका? आत्मा का, निज रमणी का, पर-रमणी का नहीं। परन्तु इसके पहले ध्यान रखना-हे आत्मन्! ससुराल से कोई व्यक्ति आये आपके यहाँ, तो आप लोग कैसे पूछते हो? उसका सम्मान करते हो, फिर मिष्ठान खिलाकर धीरे से पूछते हो-क्यों, बच्चे ठीक हैं न? वह समझ गया, 'जीजाजी! हाँ, भानजा भी ठीक है और हमारी दीदी भी ठीक है।' खुश हो गया। मुझे तो यही पूछना था। अहो ज्ञानी! ससुराल से आये व्यक्ति से पत्नी का पता कर लेते हो, ऐसे ही ध्यान रखो-अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये सिद्ध-रमणी के नजदीक हैं। इनका सम्मान कर पूछना कि मुक्ति-रमणी कैसी है? यह चाह है तो अकेले में बैठकर पूछना।

निश्चय से योगीन्दुदेव कह रहे हैं (जो पाउ वि सो पाउ मुणि) पाप को पाप कहनेवाले बहुत जीव सब जगह हैं, लेकिन पुण्य को भी पाप कहनेवाले बुद्धिमान कोई बिरले होते हैं। जहाँ पुण्य को भी पाप कहा गया हो, वह जिनशासन है। मछली कहाँ रहती है? जल में। उस जल के अन्दर रहनेवाली को स्थल में रखने से क्या होगा? तड़प जायेगी। अहो ज्ञानी! जो स्थल में तड़फ रही है, वह अंगारे में कैसे जीवित रहेगी? जिस परमयोगी को वैराग्य जला रहा हो, उस योगी को अशुभ-उपयोग कैसे भायेगा? यह शुद्धोपयोग की दृष्टि है। यह 'योगसार' ग्रंथ समयसार ग्रंथ के प्रमुख पदों का अनुवाद है। समयसार की पुण्यपापाधिकार की गाथा का सार योगसार की 71वीं कारिका में दर्शाया गया है।

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि॥145॥

दूसरे की स्त्री को देखना व्यभिचार कहलाता है। अतः निजरमणी को छोड़कर परद्रव्य को जो देख रहे हैं, वे व्यभिचारी हैं। निज-शुद्धोपयोग में लीन ही ब्रह्मचारी है। (कम्ममसुहं कुसीलं) जितने अशुभ भाव हैं, वे सब कुशील हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि अशुभ को कुशील कहनेवाले बहुत हैं, पर शुभ कैसे सुशील है? जिससे संसार में प्रवेश हो, वह

सुशील कैसा? तुमने कुशील का सेवन किया तो नरक गये और सुशील का सेवन किया तो स्वर्ग गये। पर गये कहाँ, यह बताओ? नरक में जाने से स्वर्ग जाना अच्छा है। व्रती बनकर स्वर्ग जाना अच्छा है। आचार्य भगवान् पूज्यपाद स्वामी ने 'इष्टोपदेश' में लिखा है-

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।।3।।इष्टोपदेश।।

जैसे धूप में बैठकर तपने की अपेक्षा से छाया में बैठना अच्छा है, वैसे ही नरक जाने की अपेक्षा से व्रती बनकर स्वर्ग जाना अच्छा है। लेकिन दृष्टि यही रखना कि दोनों ही संसार हैं। मग्न मत हो जाना। दुःख के दिन आते हैं तो सब कहते हैं-महाराज! कुछ सार नहीं है, संसार असार है। चार दिन पहिले बेटा ने पिटाई लगाई तो संसार असार नजर आने लगा। लड़के को समाज ने समझा दिया सो उसने पैर पकड़ लिये, सो घर स्वर्ग बन गया। पिछला सब भूल गये।

आचार्य भगवान् दृष्टान्त के माध्यम से पुण्य पाप समझा रहे हैं। ''पाप पुण्य मिल दोय, पायन बेड़ि डारि।'' अरे भगवान्-आत्माओ! ऐसी बेड़ी डारी, फिर भी तोड़ना नहीं चाहते। कोतवाली में किसी की सिफारिशं लगवा लेते हो, यहाँ किसी आचार्य की सिफारिश लगवा लो। महाराज! ये दोनों बेड़ियाँ कैसे कटें? जब दोनों बेड़ियाँ कट जायेंगी तो मैं मोक्षमहल में वास करूँगा। इसके पहले शिवालय नहीं है। जैसे नरक की बेड़ियाँ हैं, वैसी स्वर्ग की बेड़ियाँ हैं। बन्ध-दृष्टि से दोनों बन्ध हैं। जो शुभ और अशुभ दोनों को छोड़ देते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। इसलिए गोम्मटसार (जीवकाण्ड) में सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनिराज को ज्ञानी कहा है। छहढाला में लिखा है- ''ज्ञानी के छिन माँहि।'' ये पोथी पढ़नेवाले ज्ञानी नहीं हैं। परमपुरुषार्थ करना पड़ेगा छहढाला में ज्ञानी का अर्थ निकालने के लिए। ''ज्ञानी के छिन माँहि।'' यह 'प्रवचनसार' की एक गाथा का पद्यानुवाद है।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदी उस्सासमेत्तेण।।238।।प्रवचनसार।।

जिन कर्मों का क्षय अज्ञानी हजारों वर्ष तक कर नहीं पाता है, उसे तीन गुप्तियों से गुप्त ज्ञानी क्षण-मात्र में भस्मसात् कर लेता है। ये सच्चे भावलिंगी शुद्धोपयोगी मुनि हैं। गुप्तियाँ मुनि को होती हैं। त्रिगुप्ति शब्द है। विद्वान् 'त्रिगुप्ति' को छुपा लेते हैं और णाणी को पकड़ लेते हैं, क्योंकि हमें गुप्तियाँ पालना नहीं है और ज्ञान की ही महिमा गाना है। पंडित दौलतराम ने भूल नहीं की, उन्होंने स्पष्ट लिखा-तीन गुप्ति के धारी को 'ज्ञानी' संज्ञा है। यहाँ योगसार के ज्ञानी, समयसार के ज्ञानी, छहढाला के ज्ञानी सप्तम गुण स्थानवर्ती मुनिराज हैं। छठे गुणस्थानवर्ती को ज्ञानी नहीं कहा, क्योंकि ये सराग-अवस्था है। सप्तम गुणस्थान अभेद ज्ञानी का है।' सर्वार्थसिद्धि' ग्रंथ में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है-निर्ग्रन्थ ही मोक्षमार्ग है।

'तत्त्वार्थ सूत्र' में रत्नत्रय को मोक्षमार्ग लिखा है, 'सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' लिखा है। यह सूत्र योगी पर लगाओ, निर्ग्रंथ योगी की आत्मा में लगेगा। यहाँ निर्ग्रंथ योगी की दृष्टि है। मोक्षमार्ग वहाँ है, जहाँ रत्नत्रय है, वहाँ निर्ग्रंथ मुद्रा होगी और जहाँ निर्ग्रंथ मुद्रा होगी, वहाँ रत्नत्रय हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है ; क्योंकि योगी द्रव्यलिंगी भी हो सकता है । जहाँ भावलिंग होगा, वहाँ नियम से रत्नत्रय होगा। (जइया मणु णिग्गंथु जिय) आचार्य भगवान् कह रहे हैं- हे जीव! जैसा तेरा मन निर्ग्रंथ है, वैसा ही तू निर्ग्रंथ है। हे जीव! जैसा तेरा मन निर्ग्रंथ हो गया वैसा तेरा तन भी निर्ग्रंथ हो जाये, बस, तुम्हारे हाथ में शिवत्व आ गया। बिना निर्ग्रंथ मुद्रा धारण किये शिवपन्थ नहीं है। आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने 'अष्ट पाहुड' (सूत्र पाहुड) में निर्ग्रन्थ को मोक्षमार्ग लिखा है-

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे ज वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ।।23 ।।सुत्तपाहुड ।।

जिनेन्द्र के शासन में वस्त्रधारी की सिद्धि त्रैकालिक नहीं होती है। तीर्थंकर भगवान् को जन्म से तीन ज्ञान होते हैं, उन्हें मालूम होता है कि मेरा नियम से मोक्ष होगा। उन्हें यह भी मालूम है कि बिना निर्ग्रंथ बने मोक्ष होगा नहीं। नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग है। उन्मार्ग में मत चले जाना। मोक्षमार्ग में चलोगे तो कभी-न-कभी मार्ग को प्राप्त कर लोगे और उन्मार्ग में चले गये तो कभी मार्ग ही नहीं मिलेगा।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

आत्मसिद्धि की साधना रत्नत्रय धर्म है, न कि मन्त्र-तन्त्र

योगसार

जं वडमज्झहँ बीउ फुडु, बीयहं बडु वि हु जाणु ।
तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय-पहाणु ॥74॥

अर्थ- जैसे बड़ के वृक्ष में बीज स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही बीज में भी बड़वृक्ष रहता है । उसी तरह देह में भी उस देव को विराजमान समझो, जो तीन लोक में मुख्य है ।

जो जिण सो हउँ सो जि, हउँ एहउ भाउ णिभन्तु ।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥75॥

अर्थ- जो जिनदेव हैं वह मैं हूँ, वही मैं हूँ-इसकी भ्रान्तिरहित होकर भावना कर । हे योगिन् ! मोक्ष का कारण कोई अन्य मन्त्र-तन्त्र नहीं है ।

बे ते चउ पंच वि णवह, सत्तहँ छह पंचाहँ ।
चउगुण-सहियउ सो मुणह, एयइँ लक्खण जाहँ ॥76॥

अर्थ- दो, तीन, चार,पाँच, नौ, सात, छह, पाँच और चार गुण ये (परमात्मा के) लक्षण समझने चाहिए ।

बे छंडिवि बे-गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ ।
जिणु सामिउ एमइँ भणइ, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥77॥

अर्थ- जो दो (राग, द्वेष) का परित्याग कर, दो गुणों (सम्यग्ज्ञान-दर्शन) से युक्त होकर आत्मा में निवास करता है, वह शीघ्र ही निर्वाण पाता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है ।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम-तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं । आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने अभूतपूर्व चर्चा की है कि जीवन में साधना का क्षेत्र साध्य-की-सिद्धि का उपाय है । जिसमें साध्य-की-सिद्धि का भान नहीं है, आचार्य योगीन्दु स्वामी ने उसको साधना स्वीकार नहीं की है । उन्होंने 73वीं कारिका में कल कहा था-जो निर्ग्रंथ (ग्रंथ रहित) हैं, वे निर्ग्रंथ हैं । ग्रन्थ जहाँ है, वहाँ निर्ग्रंथता नहीं है और जहाँ निर्ग्रंथता है, वहाँ ग्रन्थि नहीं है । जब तक बाह्य परिग्रह का परित्याग नहीं होगा, तब तक अंतरंग परिग्रह का परित्याग नहीं होगा और तब तक पूर्ण अहिंसा नहीं है । जहाँ अहिंसा ही नहीं है, वहाँ धर्म कहाँ? बहिरंग परिग्रह हो व अंतरंग परिग्रह न हो, ये कभी संभव नहीं है । जहाँ बहिरंग-द्रव्य होगा, वहाँ अंतरंग में ममत्व नियम से होगा; पर जहाँ बहिरंग में द्रव्य नहीं है, वहाँ अंतरंग में

ममत्व हो या न हो ये नियम नहीं है। द्रव्य के अभाव में भी राग हो सकता है, परन्तु द्रव्य के सद्भाव में वैराग्य किंचितमात्र भी नहीं हो सकता है। यदि कोई जीव यह कहे कि द्रव्य तो द्रव्य में पड़ा है, अहो ज्ञानी! 'समयसार' जी में एक तर्क दिया है-आत्मा के परिणामों की निर्मलता से मोक्षमार्ग सिद्ध होता है। बहिरंग द्रव्य का आश्रय मोक्षमार्ग में बाधक कैसा है? अंतरंग परिणामों की निर्मलता से मोक्ष तो सधता है, पर बहिरंग परिग्रह तो किंचित मात्र भी आत्मा को स्पर्श नहीं करता है। ये सत्य है कि लोक में जितने द्रव्य हैं, वे आत्मा से स्पर्शित न तो आज तक हुये हैं और न होंगे, क्योंकि आत्मा अमूर्तिक है, आत्मा अरूपी है और पर-द्रव्य आत्मा से स्पर्शित नहीं है। परद्रव्य आत्मा को बंध भी नहीं करा रहे हैं, परन्तु परद्रव्य के बिना आत्मा राग को प्राप्त होता भी नहीं है। परद्रव्य बंध का हेतु तो किंचित भी नहीं है, लेकिन परद्रव्य राग की उत्पत्ति का हेतु नियम से है। हेतु का हेतु होने के कारण परद्रव्य को बंध का हेतु कहा है। यह पेन राग नहीं है, यह प्रकृति बंध नहीं है, स्थिति बंध नहीं है। योग से, कषाय से बंध होता है। यह योग भी नहीं है और कषाय भी नहीं है। तर्क समझो। जब योग भी नहीं है और कषाय भी नहीं है तो पेन ने बंध करा कैसे दिया? इसलिए परद्रव्य बंध नहीं कराता। लेकिन ध्यान रखना, ये योग नहीं है, उपयोग नहीं है, कषाय नहीं है। पर योग, उपयोग, कषाय बढ़ेगी और उस राग से नियम से बंध होगा।

रत्तो बंधदि कम्मं, मुच्चदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो, तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥157। समयसार॥

अहो मुमुक्षु आत्माओ! रत्तो बंधदि कम्मं। द्रव्य को कहाँ छुड़ा रहे हैं? हम तो आपसे यही कह रहे हैं कि राग को छोड़ दो और जिसका राग छूटा हो और वह द्रव्य को छाती पर बांधे रहे, तब कैसा राग छोड़ा? यदि कोई यह कहे कि मुझे राग नहीं है, मैं तो वैसे ही रख रहा हूँ। अहो मुमुक्षुओ! तब तुम दोगुणा पाप कर रहे हो। एक तो द्रव्य को रख रहा है वह पाप, दूसरा रखने में मायाचारी कर रहा है वह पाप। कम-से-कम वह सही था कि भैया, मैं तो पैसा लेता हूँ, मैं पैसा रखता हूँ, मेरे घर है, गृहस्थी है। उसे गृहस्थ-अपेक्षा से मायाचारी का दोष तो नहीं लगेगा। मात्र गृहस्थी की अपेक्षा जो पाप का आस्रव हो रहा है, वही होगा। लेकिन जो छिपकर पाप कर रहा है, वह तो दो-गुणा पाप है। इसलिए जीवन में ध्यान रखना, अगर सज्जन हो तो सज्जन बनकर रहना और अंतरंग में अगर दुर्जनता भरी है और सबसे मीठे बनने के लिए सज्जन बन रहे हो तो, अहो ज्ञानी! तब तुम महापापी हो। निर्ग्रंथ की चर्चा कर रहे हैं। यदि निर्ग्रंथ होकर भी ग्रन्थि नहीं छूटी, तब अहो ज्ञानी! तूने तो उभयलोक का ही नाश कर दिया। इस लोक में सुखों को तूने जानकर छोड़ा है और तू निर्मल साधना नहीं कर पा रहा है, तब परलोक में भी सुख मिलनेवाला नहीं है। 'मूलाचार' जैनदर्शन का आचारांग का मुख ग्रन्थ है। उसमें बड़ी सुन्दर बात लिखी है :

भावविरदो दु विरदो ण दव्वविरदस्स सुग्गई होई।
विसयवण रमणलालो धरियव्वो तेण मणहत्थी ।।997।।

योगसार की 73वीं कारिका में बड़ी गजब की बात कर दी है। यहाँ उसको 'मूलाचार' स्पष्ट कर रहा है। वचन के त्यागियो, शरीर के त्यागियो! अपने मन से पूछो, इस मन में ब्रह्मचर्य का पालन कितना किया है? मन अगर व्रती नहीं बना, तब बाह्य का/देह का व्रतिपना मोक्ष नहीं दिला पायेगा। शरीर का व्रत श्रावकों से प्रतिदिन पूजा करा रहा है, नमोस्तु करवा रहा है। ओहो! ये शरीर के व्रत की महिमा है कि यहाँ सामान्य मुनष्य को गुरु कहा जा रहा है। द्रव्य संयम की महिमा देखो, पंचपरमेष्ठी भगवान् में तुम्हारी पूजा हो रही है। अहो ! यदि भाव संयम होगा, तब तुम भगवान् ही होगे। तन के त्यागियो! तन के ब्रह्मचारियो ! मन से पूछो कि तुम्हारे मन ने व्रत का पालन कितने दिन किया है? इसका तात्पर्य यह भी नहीं समझना कि भाव तुम्हारे बिगड़ गये तब द्रव्य-व्रत को ही छोड़कर मत बैठ जाना। बात यह है- यदि घाटा लग भी गया, पर दुकान मत छोड़ देना। बाजार के भाव बढ़ने में देर नहीं लगेगी। मगर दुकान कहीं तुमने छोड़ दी, तब फिर बैठने को स्थान नहीं मिलेगा? ये परिणाम तो भाव है। बाजार के भाव बढ़ते हैं, गिरते हैं। दुकान तो नहीं बढ़ी, न घटी। यदि दुकान बनी रही तब भाव बढ़ जायेंगे, यदि दुकान ही तुमने छोड़ दी तब भाव बढ़ने का कोई मौका नहीं है। जिसने द्रव्य-संयम को छोड़ दिया, उसके भाव संयम बनने का कोई मौका नहीं है और जिसने द्रव्य संयम को रख लिया, उसके भाव संयम बनने के पूरे मौके हैं। इसलिए भावों के गिरने पर तुम अचानक संयम मत छोड़ देना। तुम्हें यह भान है कि तुम गिर गये, अब तुम उपस्थित हो जाओ, छेदोपस्थापना कर लो, लेकिन मायाचारी नहीं करना। गुरु-चरणों में जाकर प्रायश्चित्त ले लेना, निवेदन कर लेना, लेकिन व्रत को छोड़ मत देना।

भो ज्ञानी ! भावों से जो वृत्ति है, वही व्रत है। क्योंकि द्रव्यव्रती की सुगति नहीं होती, इतना है कि देव दुर्गति हो सकती है। यदि आपने द्रव्य व्रत का पालन भी किया है और अंतरंग में छल/प्रपंच रखा, तो भवनत्रय के देव बन जाओगे। इसको 'भगवती-आराधना' में, 'मरणकंडिका' ग्रन्थ में देव दुर्गति कहा है। देव भी बने तो क्या हुआ? सौधर्म इन्द्र ने कहा-चलो, तुमको तीर्थंकर के पंचकल्याणक में ऐरावत हाथी बनना है। जाति के देव हैं परन्तु हाथी बने खड़े हैं, सौधर्म इन्द्र के वाहन बने हैं। आभियोग्य जाति अथवा किल्विषिक जाति के देव हो गये। जैसे हमारे नगर में कुछ लोगों के निवास नगर के बाहर रखे जाते हैं, इसी तरह जो स्वर्ग में किल्विषिक-जाति के देव होते हैं वे इन्द्रपुरी में निवास नहीं कर पाते हैं, वे शूद्र के समान होते हैं। उनको कोई देव छूता भी नहीं है। 'भगवती आराधना' में लिखा है-आचार्य महाराज ने आदेश दिया कि बेटा ! तुमको ऐसा कार्य करना है और शिष्य मन में विचार लेता है कि 'इतने सारे तो शिष्य हैं, क्या मैं ही अकेला हूँ? मुझे ही आदेश क्यों दिया जाता है? सबको क्यों नहीं दिया जाता है?' ऐसे भाव मन में आ गये तो देव दुर्गति होगी। इसीलिए कभी भी धर्म के क्षेत्र में मायाचारी

नहीं करना, यह सौभाग्य मानना कि मेरा पुण्य का योग है। सोच यह रखना कि जिसने जिनवाणी का मंच बनाया है, भगवन् ! उसे अगली पर्याय में केवली भगवान् का समवसरण बनाने का अवसर प्राप्त हो और कुबेर बने। ऐसा मत कहना कि मुझे ही मंच बनाना पड़ता है। बल्कि ऐसा कहना कि मैं ही बनाऊँगा। क्योंकि जहाँ जिनेन्द्र देव की वाणी खिरे, जहाँ भगवान् का उपदेश हो, वहाँ आपने मंच ही नहीं बनाया बल्कि अपने अनेक जीवों को धर्मोपदेश सुनने का मौका दिया है। जिस जीव ने एक विद्वान् को, साधु को निमंत्रण दिया है, उस व्यक्ति ने मुनि को नहीं बुलाया, बल्कि उस व्यक्ति ने चलते-फिरते भगवान् को यहाँ पर स्थिर कर दिया है और प्रभु की देशना अब यहाँ खिरेगी। आगम में लिखा है कि जब तुम्हारा मन करे, कि तीर्थंकर भगवान् की वाणी कैसी होती होगी, तो क्या सुन्दर कल्पना है? साक्षात् अरिहंत बिम्ब विराजा है, वहाँ जिनवाणी विराजमान है, गुरु विराजे हैं। जब धर्मोपदेश चले तब तुम यही कहना कि, अहो ! मेरे लिये समवसरण तो लग गया है। जहाँ पर प्राणिमात्र को समान-शरण की प्राप्ति हो, उस सभा का नाम ही समवसरण-सभा है और जिस भूमि-प्रदेश पर प्राणिमात्र के परिणाम समान हो जायें, उस सभा का नाम ही तो समवसरण है।

भो ज्ञानी ! 74 वीं कारिका में कह रहे हैं कि वटवृक्ष को नहीं, बीज को देखो। कितना छोटा है, यदि फूँक दो तो उड़ जाये, यदि अंकुरित हो जाये तो पहाड़ को भी फाड़ देता है। एक छोटा-सा वट का दाना विशाल वृक्ष के रूप में हो जाता है। लेकिन ध्यान रखना, वटवृक्ष के दाने के अन्दर वृक्ष विराजा था, पर आँखों से दिख नहीं रहा था। वैसे ही इन आत्माओं के अन्दर सिद्ध भगवान् विराजे हैं। मनुष्य में भगवान् दिखते नहीं हैं, पर यदि भेद-विज्ञान की भूमि में डाल दो और यह आत्मा संयम के अंकुर को प्राप्त हो जाये, तब नियम से विशाल सिद्धालय/सिद्ध-आयतन, सिद्ध-वृक्ष तैयार हो जाये। इसी बात को आचार्य योगीन्दुदेव समझा रहे हैं-अहो ज्ञानी ! (जं वडमज्झहँ) जैसे वटवृक्ष के मध्य में (बीउ फुडु) बीज है (बीयहं वि हु बडु जाणु) और बीज के मध्य में वटवृक्ष रहता है। (तं देहहँ वि देउ मुणहिं) ऐसे ही संसार में स्थित देह में आत्मा विराजी है और उस आत्मा में परमात्मा की शक्ति है। उस वटवृक्ष के अन्दर जैसे आपको बीज नजर आ रहा है अथवा बीज के अन्दर आपको वटवृक्ष नजर आ रहा है, ऐसे ही तुम संसार में स्थित इन आत्माओं में परम्ब्रह्म परमेश्वर को देखो, (जो तइलोय-पहाणु) जो कि तीन लोक में प्रधान है। इस देह के अन्दर विराजे देव में और सिद्धालय के अन्दर विराजे देव में कोई अन्तर नहीं है। अविनय मत कर बैठना, अनादर मत कर बैठना, किसी से बुराई मत कर बैठना। महाराज ! लोक में लोग गाली देते देखे जाते हैं, लोक में रोष करते देखे जाते हैं, अब मैं उनसे क्या कहूँ? विश्वास रखो, वह देव गाली नहीं दे रहा है, गाली देने वाली तो कषाय है। महाराज ! मेरे धन को हरण कर रहा है। वह देव धन को हरण नहीं कर रहा है, वह लोभ कषाय धन को हरण कर रही है। (अध्यात्म की परम्-सीमा चल रही है।) मेरे शरीर का घात कर रहा है, फिर भी कुछ न कहूँ। बोले-क्यों? इसकी कोई ताकत नहीं थी मेरे शरीर

को घात करने की। जब अपघात-नाम-कर्म का उदय होता है, तब अपने हाथ से फाँसी लगा लेता है और जब परघात-नाम-कर्म का उदय होता है, तब दूसरे के अस्त्र-शस्त्र से पीड़ित होता है। हम कहते जरूर हैं कि इन्होंने मार दिया, लेकिन कर्म का विपाक आपका नहीं होता तो मारनहारा कौन था? प्रद्युम्न कुमार को तो शिला के नीचे दबा दिया था, लेकिन मार नहीं पाये। हनुमान अनुरुद्ध द्वीप में शिला पर गिर पड़े, शिला चूर-चूर हो गई, लेकिन हनुमान का कुछ नहीं बिगड़ा। अहो रावण ने राम को मारने के लिये आपने भ्रामरी विद्या को भेजा। विद्या राम की तीन प्रदक्षिणा लगाकर वापिस चली आई और रावण से कहती है-हे स्वामिन्! आपका पुण्य क्षीण हो चुका है। आप चाहो तो मैं आपको अभी मार सकती हूँ, किन्तु इस पुण्यात्मा का बाल-बांका नहीं कर सकती हूँ। नारायण श्रीकृष्ण का घात करने के लिए पूतना नाम की देवी भेजी गई। उसने कितना उपद्रव किया, लेकिन पुण्यात्मा का बाल-बांका नहीं कर सकी।

इसीलिये विश्वास रखो-यदि पुण्य का योग है, आयुकर्म अवशेष है, तो संसार की कोई शक्ति कुछ नहीं कर सकती और यदि पुण्य क्षीण हो चुका है, आयुकर्म समाप्त होने जा रहा है तो, मनीषियो! तीर्थंकर देव भी तुम्हें बचाने वाले नहीं है। अतः समता का पाठ पढ़ना।

तुम सगे को कभी शत्रु मत मान बैठना और शत्रु को भी शत्रु नहीं मानना। अन्तर इतना है कि शत्रु कभी भाई बनकर आता है, कभी शत्रु के रूप में आता है। लेकिन शत्रु का दोष नहीं है, दोष तुम्हारी इस करतूती का है। अगर कर्म का बंध आपने पूर्व में नहीं किया होता तब आज ये शत्रु बनकर तेरे सामने नहीं आते। तेरे ही बेटे कंस ने तुझे छीके पर टांग दिया था। लेकिन, उग्रसेन! आज आपको नजर आ रहा है कि मेरे पुत्र ने मुझे छींके पर क्यों टांगा है? तुम्हें वर्तमान की पर्याय नजर आ रही है, इसलिये तुम्हें पुत्र शत्रु नजर आ रहा है। पर भूतकाल की परिणति को क्यों नहीं देखते हो? आज लोग क्यों दुःखित हैं? मात्र आमने-सामने की पर्याय को देखकर कि ये मेरे मित्र हैं, ये मेरे शत्रु हैं। लेकिन भूतकाल की पर्याय को नहीं देख रहे हैं। जब कंस का जीव वशिष्ठ नाम के मुनिराज थे और उग्रसेन का जीव राजा था, तब राग के बस होकर बोले-यदि सभी श्रावकों ने महाराज के आहार की व्यवस्था कर ली, तब ये मुनिराज मेरे घर में नहीं आ पायेंगे, इसलिये नगर में सभी श्रावकों को मना कर दिया कि साधु के लिये चौका कोई नहीं लगायेगा, मात्र एक चौका ही मेरे घर में लगेगा। श्रावक चौके लगा नहीं सकते थे, क्योंकि राजाज्ञा थी। एक मास का उपवास करके जब मुनिराज चर्या के लिये आते हैं तब राजा राजकाज में मस्त था। विधि नहीं मिली, वापिस चले गये। दूसरे मास में जब आते हैं तो नगर में अग्नि लग जाती है। नगर में त्राहि-त्राहि पड़ी हो और साधु भोजन करे, कैसे सम्भव हो सकता है? उन्होंने पुनः उपवास ले लिया। तीसरे मास में गये तो हाथी उपद्रव कर रहा था, पुनः वापिस हो गये। जब वापिस आ रहे थे तो रास्ते में एक नव-प्रसूतक गाय ने धक्का दे दिया। मुनिराज जमीन पर गिर पड़े, श्रावकों के मुख से निकल पड़ा कि, अहो! कितना पापी है सम्राट? न आप साधु को आहार करा रहा है, न किसी

अन्य को देने देता है। जैसे ही वे शब्द मुनिराज के कान में पड़े, वहीं गुणस्थान बदल गया, 'ओह! यह सम्राट आहार नहीं देने देता है। मेरी तपस्या का फल यदि कोई होगा तब मैं देख लूँगा।' निदान-बंध कर लिया और जाकर वे ही मुनिराज कंस के रूप में उग्रसेन के यहाँ बेटा हुये। वह पाप-प्रकृति, वह कर्म का विपाक, विद्वेष की भावना छिपी रही, जब प्रगट हुई तब पुत्र कंस ने पिताजी को छींके पर टाँग दिया। तुमने हमारे लिये आहार का निषेध कराया था, आज तुम छींकें पर, द्वार पर टंगे रहो। इसलिये, मनीषियो! जब बेटा तुम्हें कष्ट दे, तब तुम बेटा को नहीं देखना। तब तुम अपनी पूर्व की पर्याय को ही देखना कि ठीक तो है, यदि मैंने ऋण लिया है तब चुकाना तो पड़ेगा ही। बड़ा स्पष्ट दर्शन है, बड़ी स्पष्ट दृष्टि है। इसलिए चोर को भी तुम चोर मत कहो, घातक को भी घातक मत कहो, क्योंकि यदि उसके अन्दर की परिणति बदल जाये तब वह भी परमात्मा बन सकता है। इसलिये देह के अन्दर विराजे उस देही को निहारो। (जो जिण सो हउँ) जो जिनदेव हैं वह मैं हूँ, (सो जि हउँ) वही मैं हूँ, (एहउ भाउ णिभंतु) इसमें कोई भ्रांति नहीं है। (मोक्खहँ कारण जोइया) अहो योगी! मोक्ष का कारण यही है, (अण्णु ण तंतु ण मंतु) कोई अन्य मंत्र-तंत्र नहीं है। अर्थात् मोक्षमार्ग तो संयम का मार्ग है, जादू-टोना का मोक्षमार्ग नहीं है, तंत्र-मंत्र का मोक्षमार्ग नहीं है। साधना मात्र से मोक्षमार्ग प्राप्त होता है। लौकिक सिद्धियों के पीछे आप पड़े रहोगे तो मोक्षमार्ग की सिद्धि त्रैकालिक संभव नहीं है। जो जीव मोक्षमार्ग की सिद्धि का उपाय खोजता है, वह संसार का मार्ग नहीं खोजता है। इसलिए जीवन में पुनः समझना, यदि आपको वास्तव में आत्मकल्याण की दृष्टि है, तो कभी तन्त्र-मन्त्र के ग्रन्थ पढ़ने मत बैठ जाना।

सोमदेवसूरि ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि संसार में मुझे 'णमोकार मंत्र' से बड़ा कोई मंत्र लगता ही नहीं है। यह 84 लाख मंत्रों का एक महामंत्र है। इससे ज्यादा बीजाक्षर किसी भी मंत्र में नहीं हैं। राम- जन्मभूमि में जब मंत्र की स्थापना की चर्चा आई तब मालूम किया कि सबसे ज्यादा बीजाक्षर कौन-से मंत्र में है? तो और कहीं नहीं मिले, णमोकार मंत्र में मिले। वहाँ भूमि में 'णमोकार मंत्र' स्थापित किया गया। यह इस मंत्र की महिमा है। इसलिए, मनीषियो! भगवान् योगीन्दुदेव की बात को स्वीकार कर लेना। तंत्र-मंत्र को पढ़कर यदि सिद्धि नहीं हुई तो अश्रद्धान होगा। तुम कहोगे-मैंने देख लिया, न कोई मंत्र काम में आते और न ही कोई यंत्र काम में आते, न भगवान् काम में आते। दुर्ग की घटना है। घर में कमरों की दीवारों पर चित्र लगे हुए हैं, फोटो लगे हुये हैं, प्रतिमायें रखी गई हैं और बड़े भाई की दुर्घटना होती है, वह कोमा में चला गया। रोज आरती उतर रही है। दो वर्षों के उपरांत आयुकर्म ने उसको छीन लिया और जैसे ही उसका मरण हुआ, कि छोटे भाई ने एक हाथ में डंडा लेकर एक-एक फोटो को कुचल डाला, एक-एक प्रतिमा को तोड़ डाला, मालायें तोड़ दीं। मैं भिलाई में था। समाचार मेरे पास पहुँचे। बोले-महाराज! ये हालत हो गई है। उसके हाथों में कांच लग गये। क्योंकि लिप्सा लगी हुई थी राग की, कि भगवान् ठीक कर देंगे। कर्म ने कहा- 'भगवान् क्यों करेंगे? मैं उनसे बड़ा हूँ।' और जब तुम्हें भगवान् पर श्रद्धा थी,

अब तो अश्रद्धान बढ़ गया और आपने उन्हीं भगवान् की फोटो को तोड़ दिया। इसलिये यहाँ सम्यक्तत्व के आठ अंगों में एक निःकांक्षित नाम का अंग है। निष्काम आराधना करो, निःकांक्षित आराधना करो। फल की आकांक्षा मत करो, वह फल तो तुमको मिलेगा ही। जहाँ तुमने माँगा, पर पुण्य कम था और फल नहीं मिला, तब आपके मन में अश्रद्धा हो जावेगी। इसलिये जीवन में कभी भी माँगना नहीं।

आचार्य महाराज 76वीं कारिका में कह रहे हैं कि उस आत्मतत्त्व के किन-किन लक्षणों को हम देखें? यह आत्मा ज्ञान-दर्शनस्वभावी है और तीन गुणों से युक्त है। विश्व में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो। वह शुद्ध द्रव्य में, उसके शुद्ध गुणों में, शुद्ध पर्याय में शुद्धरूप परिणमन होता है और अशुद्ध द्रव्य में अशुद्धरूप परिणमन होता है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप ये चार आराधना हैं। इन चार आराधनाओं की आराधना करके जीव अनंत चतुष्टय को प्राप्त होता है। पंच परमेष्ठी है, पंचमगति सिद्ध गति है। चार गतियों के अलावा भी कोई गति है तो सिद्ध गति है। जीव के पाँच असाधारण भाव हैं- औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक। इन पाँच भावों में हमारे लिए कोई उपादेय भूत भाव है तो वह परम-पारणामिक भाव है। यह आत्मा नौ लब्धियाँ से युक्त है। पाँच पापों से रहित जब आत्मा हो जाती है, तब अरहंत-अवस्था को प्राप्त करके नव लब्धियों को प्राप्त करती है और वीतराग-दशा को प्राप्त कर लेती है। क्षायिक भाव जो हैं वे आत्मा की नौ लब्धियाँ में से एक है। नौ पदार्थ हैं-सात तत्त्व, पुण्य और पाप। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष-ये सात तत्त्व हैं। छह द्रव्य में कोई उपादेय भूत द्रव्य है, तो जीवद्रव्य है। पाँच अस्तिकाय हैं। छह द्रव्यों में से काल को छोड़ दो तो पाँच अस्तिकाय हैं। चार गुण आत्मा में हैं। अहो ज्ञानी आत्माओ! अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य-ये परमात्मा के लक्षण हैं। (सो मुणह) ऐसा जानना चाहिए। इसके अलावा कोई अन्य लक्षण नहीं है। (बे छंडिवि) आचार्य महाराज कह रहे हैं कि दो को छोड़ दो। राग और द्वेष-इन्हें छोड़ दो तो सब छूट गये।

मनीषियो! एक छोटी-सी बालिका ने एक निर्ग्रन्थ मुनि के चरणों में पाँच पाप छोड़ दिये। उनके पिताजी को बहुत खराब लगा, क्योंकि बालिका छोटी थी। बोली-पिता जी! हम मुनि-महाराज के चरणों में पाँच पाप छोड़ आये, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह। बेटी! अभी तू छोटी है, अभी से पाप क्यों छोड़कर आ गई? जाओ, महाराज का व्रत वापिस कर जाओ। अहो! उस बेटी ने कहा-पिताजी! मैं महाराज को अकेले तो व्रत वापिस करने नहीं जाऊँगी। अब आपको भी साथ में चलना पड़ेगा। बोले-चलो, मैं चलता हूँ और मैं एक भी व्रत लेकर नहीं आऊँगा। बालिका छोटी जरूर थी, लेकिन समझदार थी। जैसे ही महाराज के चरणों में व्रत छोड़ने के लिए आगे जाने लगी, देखा रास्ते में एक व्यक्ति को फाँसी पर लटकाया जा रहा था तो बेटी ने पूछा-पिताजी! इसे फाँसी पर क्यों लटकाया जा रहा है? बोले-बेटी! मुझे मालूम नहीं है, चलो चलकर पूछ लेते हैं। जब वहाँ पहुँचते हैं तो पता चला कि इस

व्यक्ति ने कल किसी का घात कर दिया था, हिंसा की थी, अतः राजा ने इसे फाँसी की सजा दी है। बेटी बोली-पिताजी! मैंने तो महाराज जी से हिंसा न करने का व्रत लिया है, मैंने अच्छा किया या बुरा किया? हाँ, बेटी! यह तो तूने बहुत अच्छा किया। लेकिन एक काम करो, इस व्रत को रहने दो, शेष चार छोड़ दो। बेटी खुश हो गई। जैसे ही थोड़ा आगे बढ़े तो देखा कि एक व्यक्ति के ऊपर बैठे हुए दो पहलवान उसकी जीभ खींच रहे थे। बेटी ने पूछा-पिताजी! ये इसकी जिह्वा को क्यों खींच रहे हैं? बोले-बेटी! इस व्यक्ति ने झूठ बोला था, इसलिए इसकी जीभ खींची जा रही है। बेटी बोली-पिताजी! तो मैंने झूठ का ही तो त्याग किया है। बोला-बेटी! ये भी सही है, इसको तू रहने दे, चलो बाकी तीन व्रत छोड़ आयें। फिर जैसे ही आगे बढ़े, देखा-एक व्यक्ति के हाथ काटे जा रहे थे। बेटी बोली-पिताजी! इसके हाथ क्यों काटे जा रहे हैं? पिताजी बोले-बेटी! इसने चोरी की थी। बेटी बोली-पिताजी! तो मैंने चोरी का ही तो त्याग किया है। बोले-बेटी! चोरी करना पाप है, इस व्रत को रहने दो, शेष दो व्रतों को छोड़ देना। पर जैसे ही आगे बढ़े कि एक व्यक्ति को घसीट-घसीटकर उसके गुप्तांगों को काटा जा रहा था। बेटी ने पूछा तो पता चला कि इसने व्यभिचार किया था, इसलिए इसके गुप्तांगों को काटा जा रहा है। तो बेटी ने कहा-पिताजी! मैंने शील-व्रत ही तो लिया है। पिताजी बोले-बेटी! ये तो महान् व्रत है, सीता ने पालन किया, द्रोपदी ने पालन किया। इसको तो तू रहने दे। पर जैसे ही और आगे बढ़े, एक व्यक्ति को बैलगाड़ी में जोता जा रहा था और उसी गाड़ी में पत्थर भरे हुये थे और जबरदस्ती खिंचवाया जा रहा था। उसके पूरे धन को राजा ने छीन लिया था। बोली-पिताजी! यह क्या हो रहा है? बोले-इस व्यक्ति ने सेलटेक्स, इनकम टेक्स नहीं भरे और बिजली के मीटर में भी तार लगा दिये। इसने शासन के विरुद्ध धन-संग्रह कर लिया है, सो इसकी सम्पत्ति को राजा ने छीन लिया है। बेटी बोली-पिताजी! तो मैंने ये ही नियम लिया था कि आवश्यकता से ज्यादा परिग्रह नहीं रखूँगी, परिग्रह का परिमाण किया है। बेटी! तूने बहुत अच्छा किया। बोली-पिताजी! जब आप यहाँ तक आए ही तो महाराजश्री के दर्शन आप भी तो कर लो। हाँ, चलो दर्शन कर लेते हैं। आप एक काम कर लो, यह पाँच व्रत आप भी ले लो। ओहो! नमोस्तु करके और जो पिताजी व्रत छुड़ाने गये थे, वे ही व्रती बनकर आ गये।

ध्यान रखो, राग और द्वेष का परित्याग कर दो। सम्यक्दर्शन और सम्यक् ज्ञान-ये आत्मा के दो मुख्य धर्म हैं। दो गुण संयुक्त (अप्पाणि वसेई) जो आत्मा में निवास करता है, (जिणु सामिउ एमइँ भणइ) ऐसा जिन स्वामी कहते हैं; क्या? (लहु णिवाणु लहेह) वह शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त कर लेगा। यदि आपने दो छोड़ दिये और दो प्राप्त कर लिये अर्थात् रागद्वेष को छोड़ दिया और सम्यक्ज्ञान-दर्शन को प्राप्त कर लिया, तो निर्वाण की प्राप्ति होगी।

-भगवान् महावीरस्वामी की जय।

निश्चय से आत्मा ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र-संयम-शील-तप-प्रत्याख्यानस्वभावी है

योगसार

तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ।
सो सासय-सुह-भायणु वि, जिणवरु एम भणेइ ॥78॥

अर्थ-जो तीन (राग, द्वेष,मोह)से रहित होकर, तीन गुणों (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) से युक्त होता हुआ आत्मा में निवास करता है, वह शाश्वत् सुख का पात्र होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है।

चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ, चउ-गुण-सहियउ वुत्तु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ, जिम परु होहि पवित्तु ॥79॥

अर्थ-हे जीव! जो चार कषायें और चार संज्ञाओं से रहित होकर, चार गुणों (अनन्त दर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य) से सहित होता है, उसे तू आत्मा समझ; जिससे तू परम पवित्र हो सके।

बे - पंचहँ रहियउ मुणहि, बे-पंचहँ संजुत्तु।
बे-पंचहँ जो गुण सहिउ, सो अप्पा णिरु वुत्तु ॥80॥

अर्थ- जो दस से रहित, दस से सहित और दस गुणों से सहित है, उसे निश्चय से आत्मा कहा है।

अप्पा दंसणु णाणु मुणि, अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु सील तउ, अप्पा पच्चक्खाणि ॥81॥

अर्थ-आत्मा ही को दर्शन और ज्ञान समझो,आत्मा ही चारित्र है और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्मा ही को मानो।

अध्यात्म देशना

मनीषियो !

अंतिम-तीर्थेश भगवान् महावीरस्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर भगवान् की पावन पीयूष देशना जन-जन की कल्याणी है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने पूर्व कारिका में संकेत दिया था-अहो ज्ञानी ! उस तत्त्वज्ञान को निहारो, तत्त्व का निर्णय करो और निर्णय की चर्या में लीन हो जाओ। जब तक तत्त्व का ज्ञान नहीं है और निर्णय नहीं है, तब तक तत्त्वदृष्टि नहीं बनेगी। जिस जीव ने तत्त्व के निर्णय को प्राप्त कर लिया है, वह जीव

राग में लिप्त रहे, यह संभव नहीं है। जहाँ तत्त्व का निर्णय हो गया हो, वहाँ असत्य टिकेगा कैसे? जब तक तुम्हारे अन्तःपटल पर असत्य टिका है, तब तक तत्त्व निर्णय नहीं है। उस समय तत्त्व की जानकारी मात्र हो सकती है अर्थात् तत्त्व के बारे में जाना जा सकता है। तत्त्व के बारे में अबोध जीव भी जान लेता है, और इतना जान लेता है कि उसके जानने से लाखों करोड़ों भव्य सिद्धशिला को प्राप्त हो जाते हैं। ग्यारह अंग का ज्ञान एक अभव्य जीव को भी हो जाता है। उनके द्वारा प्रदत्त धर्मोपदेश को सुनकर अनेक भव्य-जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु स्वयं पर कोई ध्यान नहीं है।

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणोवि फासेदि य ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खय णिमित्तं ॥275॥ समयसार॥

आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी 'समयसार' में लिख रहे हैं-अभव्य जीव श्रद्धान करता है, प्रतीति करता है, स्पर्श करता है। किसका? धर्म का। आपने धर्म भी किया, धर्मक्षेत्र भी पहुँचे, चारित्र को भी स्वीकार कर लिया, तीर्थ-वन्दना भी की, लेकिन इससे भव ही की प्राप्ति होगी, यश मिलेगा, कीर्ति मिलेगी। अहो ज्ञानी ! जिसके निमित्त से धर्म किया है, वह धर्म मोक्ष का हेतु नहीं बना। जीवन में धर्म को धर्म मानकर करना, कर्तव्य के लिए धर्म कभी नहीं करना। जो व्यक्ति धर्म को कर्त्तव्य मानकर करता है, वह धर्म नहीं करता, क्योंकि कभी मन नहीं करता तो भी करता है। मुमुक्षु जीव धर्म को कर्त्तव्य मानकर नहीं करता है, धर्म को धर्म मानकर करता है। धर्म यानी कि आत्मा का स्वभाव अर्थात् ज्ञान-दर्शन कभी आपसे अलग नहीं होता, परन्तु अभव्य धर्म को धर्ममय नहीं करता है। जैसे आपको भूख लगती है तब भोजन वही करते हो, फिर भी अघाते नहीं हो। यदि आपने धर्म को कर्त्तव्य मानकर किया है तो अघा जाओगे। यदि स्वरूप मानकर किया, तो कभी नहीं अघाओगे। धर्म को कभी अपना कर्त्तव्य नहीं समझना, धर्म (स्वभाव) ही समझना। मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह अपने लिए कर रहा हूँ। कभी-कभी लोग धर्म भी धर्म के लिए करने लगते हैं। यदि मैं मंदिर नहीं आऊँगा तो हमारा धर्म कैसे चलेगा? जैसे हम ही पूरे धर्म को चला रहे हैं। अहो ज्ञानी ! आप नहीं चला रहे हो, अपितु आप जैनधर्म में चल रहे हो, इसलिए तुम महान् बन रहे हो। जीवन में ध्यान रखना। इस धर्म का आप निज स्वरूप स्वीकारो, आत्मसात् समझो, आपसे भिन्न न हो। देह भिन्न हो जायेगी, राग-द्वेष भिन्न हो जायेंगे, क्रोध भिन्न हो जायेगा, परन्तु धर्म कभी आत्मा से भिन्न नहीं होगा। काषायिक-भाव अभिन्न नहीं है, काषायिक भाव आत्मा से भिन्न हैं, क्योंकि स्वरूप नहीं है। इस अपेक्षा से क्षमा भिन्न नहीं है, अभिन्न है। क्या तेरी आत्मा का धर्म नहीं है? अज्ञान तेरी आत्मा का धर्म नहीं है। आचारत्व तेरी आत्मा का धर्म नहीं है, सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही तेरी आत्मा का धर्म है।

मनीषियो ! आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी 78 एवं 79वीं कारिका में शाश्वत-सुख

की प्राप्ति का उपाय बता रहे है।

हे जीव ! तुम तीन से रहित हो जाओ-मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम। लोक में सर्वश्रेष्ठ तो तीन ही हैं-सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से निकृष्ट/हीन कोई द्रव्य नहीं है। आचार्य भगवान् समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में लिखा है-तीनकाल में, तीनलोक में मिथ्यात्व के समान कोई अकल्याणकारी द्रव्य नहीं है और सम्यक्त्व के समान कोई कल्याणकारी द्रव्य नहीं है। इस संसार में आज तक विपरीत सिद्धान्त के कारण, विपरीत चर्या के कारण मेरा भ्रमण हुआ है। हमने कभी अदेव/कुदेव में देव-बुद्धि, अशास्त्र में शास्त्र-बुद्धि, कुगुरु में गुरु-बुद्धि रखी। यही मेरा संसार-भ्रमण का हेतु है। जहाँ देव का लक्षण नहीं था, वीतरागता नहीं थी, सर्वज्ञता नहीं थी, फिर भी राग-द्वेष भेषी को ही सच्चा वीतरागीदेव मान लिया। जो अस्त्र-शस्त्र से युक्त है, स्वयं की रक्षा नहीं कर पा रहा है, वह दूसरे का रक्षक कैसे होगा? जो निर्भय नहीं, वह मेरा भगवान् नहीं। जो अठारह दोषों से रहित है, वही सच्चा देव है। जिसमें अहिंसा को स्थान नहीं, सदाचार को स्थान नहीं, जिसमें अकर्त्तृत्व-भाव को स्थान नहीं, वह वीतरागवाणी नहीं, वह सच्चा शास्त्र नहीं। जिसमें हितोपदेशता है, अहिंसा है, करुणा है, जिसमें सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की चर्चा है, ऐसी जगत् कल्याणी वीतराग वाणी ही सच्ची वाणी है। जिसमें सरागता है, सपरिग्रहता है, विषयलीनता है, काषायिकता है, आरंभता है, भोगीपना है, ऐसा मेरे सच्चे गुरु का स्वरूप नहीं है। मेरे गुरु तो वह हैं जो विषयों से रहित हैं, आरंभ से रहित है, परिग्रह से रहित हैं और ज्ञान, ध्यान में लीन हैं। ऐसे विवेकशील ही साँचे गुरु हैं। ऐसे देव, शास्त्र, गुरु पर जो श्रद्धान है, उसका नाम व्यवहार-सम्यक्त्व है, अभी निश्चय नहीं है। इसका नाम व्यवहार-सम्यक्त्व है। वह आठ अंग से युक्त होगा, तीन मूढ़ताओं से रहित होगा, आठ मदों से रहित होगा, छः अनायतनों से रहित होगा।

आज आचार्य भगवान् गहरी बात कर रहे हैं कि आप अपने अन्तःकरण से पूछना कि वीतराग-सम्यक्दृष्टि कब बने? थोड़े में ही मन हिलने लगता है कि क्या सही है, क्या नहीं? अहो! धिक्कार हो। इतनी जिनवाणी पढ़ ली, सुन ली, परन्तु मेरा मन मेरु के समान अकम्प नहीं हो सका। जिनेन्द्र की वाणी में शंका कहाँ? अरहन्त देव पर शंका कहाँ? निर्ग्रन्थ गुरुओं पर शंका कहाँ? यह था सम्यक्त्व का पहला अंग। निःशंकितपना कैसा है? 'महाराज! कभी-कभी मन नहीं लगता धर्म में।' मन कब लगे, तुम धर्म में थे ही कहाँ? जो धर्म में होता है उसे मन थोड़े ही लगाना पड़ता है, उसका मन लगा होता है। 'हे भगवन्! मैं आपकी आराधना कर रहा हूँ, ऐसे कार्य की सिद्धि हो जाय।' अहो ज्ञानी! कार्य की सिद्धि भगवान् के अधीन नहीं है, सिद्धि तो कर्म के अधीन है, परन्तु तू भगवान् के अधीन कर रहा है, सर्वज्ञ को तू कर्त्ता बना रहा है। भो ज्ञानी! तू भगवान् की आराधना कर। पुण्य का द्रव्य तेरे पड़ले में होगा तो अपने आप कार्य सिद्ध होगा। विश्वास रखो, प्रभु के चरणों में कभी मत माँगना,

यह नि:कांक्षितअंग है। यह सम्यक्त्व की चर्चा है। तीन को छोड़ने की बात कर रहे हैं। आचार्य कुंदकुंद महाराज ने 'दर्शन-पाहुड़' में लिखा है- धर्म का मूल दर्शन है। जब मूल ही नहीं है तो कहाँ दीवाल, कहाँ मंदिर, कहाँ शिखर, कहाँ कलश? जिसका सम्यक्त्व खिसक चुका हो उसका ज्ञान, चारित्र क्या होगा? जिसका श्रद्धान ही डाँवाडोल है उसका ज्ञान, चारित्र क्या होगा? अहो ज्ञानियो! ज्ञान-चारित्र 'शून्य' के समान हैं और सम्यक्त्व 'अंक' है। यदि अंक है, तो शून्य की कीमत है और अंक नहीं, तो शून्य की कोई कीमत नहीं है। यदि अंक के बाद शून्य रखा तो दस गुना हो गया। अंक-से-रिक्त शून्य रखा तो कितने? जिसके पास श्रद्धा नाम की कोई वस्तु नहीं, उसका ज्ञान-चारित्र वंदनीय/पूज्यनीय होता ही नहीं है। जो कुछ है वह कर्म के वश है, मगर हम सोचते हैं कि मेरे वश में है अथवा परमात्मा के वश में है। इसलिए कभी माँगना मत, यह है नि:कांक्षित अंग।

धर्म-धर्मात्मा को देखकर किसी ने कान में कुछ सुना दिया तो हमारा मन उद्वेलित हो गया। अहो ज्ञानी! प्रयास करो, वहाँ जाकर पूछो। हमने प्रयास कब किया कि जाकर मिलूँ। हमने दूर से ही ग्लानि करना प्रारंभ कर दिया। जिस पर हम ग्लानि कर रहे हैं, वह ग्लानि के योग्य हो अथवा न हो। अहो! निंदा करने वाला हमेशा निन्दनीय होता ही है। क्यों तू नीच-गोत्र का बंध कर रहा है? अपने अन्तस में, हृदय के पुस्तकालय में 'तत्त्वार्थसूत्र' विराजमान कर आस्रव-बंध के अध्याय को समझ, फिर संवर-निर्जरा-मोक्ष की चर्चा करना। जिसने आस्रव-बंध को नहीं समझा, वह क्या संवर की बात करेगा? एक पल में कितना सोच लिया? आपको बंध हो चुका। हे भगवान्! जब पलकें आँसू से गीली होती हैं, तब मुझे वह क्षण नजर आता है जब पंचपरमेष्ठी की निंदा की थी। वे पल आज तुम्हें पल-पल रुला रहे हैं। वे दिन भी कहाँ चले गये, जब मैंने ताली बजा-बजाकर अट्टहास किया था। अहो! पूछ लेना उस ब्राह्मण की अवस्था में सीता के जीव वेदवती से। तुमने नगर में आकर क्या कहा था कि जंगल में मुनिराज को मैंने अकेली आर्यिका से बात करते देखा है। अहो! एक निर्ग्रंथ योगी का अपवाद किया था, फलस्वरूप आज सारे विश्व में सीता का अपवाद हो गया कि रावण के यहाँ होकर आई है सीता। कुलवंती होने पर भी कर्म किसी को कहाँ छोड़ता है? जीवन में ध्यान रखना, कभी ग्लानि-भाव मत रखना। किसी धर्मात्मा की मलिन देह को देखकर ग्लानि मत करना। उनकी रत्नत्रय से मंडित आत्मा को देखकर अपने सिर को झुका देना। यह निर्विचिकित्सा अंग है।

अहो ज्ञानियो! हम कितनी मूढ़ताओं में उलझे हैं। क्यों, अब बिल्ली कब तक ढ़ँकते रहोगे? बेटे की शादी थी, बिल्ली सामग्री बिगाड़ रही थी। सासू ने टोकनी के नीचे बिल्ली को बंद कर दिया। जब घर में नई बहू आती है, तो वह घूँघट के अन्दर से सब देखती रहती है। कालान्तर में वह भी सास बन गई। अपने पति से कहती है- स्वामी! अपने बेटे की शादी की विधि पूर्ण नहीं हुई है। पति बोले, क्यों? जब मैं आपके घर प्रथम दिन आई थी तो आपकी माँ

ने एक सफेद बिल्ली को टोकनी के नीचे ढँका था। लेकिन मेरी बहू आई और सफेद बिल्ली को टोकनी के नीचे अभी तक नहीं ढँका। नगर से सफेद बिल्ली को खोजकर लाओ तो बेटे की शादी पूर्ण हो जाये। अहो ज्ञानी आत्माओ ! बिल्ली क्यों ढँकी थी? सामग्री बिगाड़ रही थी, इसलिए उसकी सुरक्षा हेतु ढँकी थी। लेकिन अज्ञानता से ऐसी रूढ़ियाँ समाज में चल रही हैं। कोई लोहे को पूज रहा है, कोई ऊखली को, कुआँ, मूसर, तराजू को पूज रहा है। धन्य है, ये कौन-सा नवदेवता आ गया? अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनागम, जिनधर्म, चैत्य और जैन तीर्थक्षेत्र-ये हमारे जिनागम में नवदेवता हैं। यह मूसर कौन-सा परमात्मा आ गया ? हम लोग सम्यक्दृष्टि आत्मायें हैं। कैसे सम्यक्दृष्टि? किसी के यहाँ गौड़ बब्बा, तो कहीं कुलदेवता पुज रहा है। यहाँ प्रवचन सुनने एक घंटा को नहीं आ सकते, वहाँ चादर चढ़ाने जायेंगे। काहे का सम्यक्दर्शन है? भो ज्ञानी ! जिनेन्द्रदेव के समवसरण में किसी देवी-देवता का प्रवेश नहीं होता है और मिथ्यादृष्टि भाग जाते हैं। इनमें कोई ताकत नहीं। जो डरता है, उसे लोग डराते हैं। भय के भूत हैं तुम्हारे घर में। आचार्य भगवान् कह रहे हैं-जो कुछ जीवन में इस प्रकार का कर रहे हो, उन्हें छोड़ दो। छोड़ने की वस्तु है मिथ्यात्व, और ग्रहण करने की वस्तु है सम्यक्त्व। यह अमूढ़दृष्टि-अंग कहता है। अतः इन मूढ़ताओं में मत फँसो, अधर्म की उपासना मत करो। घर में नई बहू जब आयेगी तब दरवाजा पूजकर आवेगी, छापे बनायेगी, उल्टे सातिया बनायेगी। सोनागिर, अहिक्षेत्र, तिजारा जाकर देखना। जैन मंदिर में मिथ्यात्व कहाँ से आ गया?

कोई ज्योतिषी से पूछ रहा है कि बेटा/बेटी के नाम रखना है। आचार्य समंतभद्र स्वामी कहते हैं कि नामों के कुछ अर्थ निकलना चाहिए। यदि आपके बेटे का नाम महावीर है और बेटे में राग आया, तब धोखे से भगवान का नाम तो ले ही लिया। आचार्य जिनसेन स्वामी ने लिखा है कि पुत्र का नाम कैसे रखें, इस विधि को सीख लेना। तीर्थंकर भगवान् के 1008 नाम होते हैं। उन नामों को एक-एक चिट पर लिख लो और सारी चिटों को एक मटके में रख दो और मटका घुमा दो/हिला दो। जैसे आप ड्रा निकालते हो, वैसे ही उस बच्चे से एक चिट उठवा लो और जो चिट निकल आये उससे नामकरण कर दो।

भो ज्ञानी ! अमूढ़दृष्टि को मूढ़ता से दूर रहना चाहिए। कहीं अज्ञानतावश, प्रमादवश, वृद्धत्व के कारण, बालत्व के कारण किसी धर्मात्मा से भूल हो जाती है तो उसे छुपा लेना। अहो सत्यधारी! ऐसा सत्य मत कहना जिससे जैनधर्म की आलोचना हो। आज इतना अन्तर आ चुका है कि पहले के लोग धर्मात्मा की गलती को 'छुपाते' थे, आज के कथित सम्यक्दृष्टि 'छपाते' हैं और कहते हैं कि मैं महान् हूँ। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कहा है कि इसे आचरण में जरूर उतारना। एक बार क्या हुआ, एक सज्जन कुछ कड़वे शब्द मुझसे बोलकर चले गये। मेरे मन में कुछ अच्छा नहीं लगा, पर तुरन्त ही आचार्य पूज्यपाद स्वामी की 'इष्टोपदेश' की कारिका याद आ गई, फिर बहुत अच्छा लगा।

विराधकः कथं हंत्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन्पद्भ्यां, स्वयं दण्डेन पात्यते ।। 10 ।।

अहो ज्ञानी ! आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं-आप जैन हो? हाँ जैन हैं। कर्म-सिद्धान्त को मानते हैं? हाँ मानता हूँ। ये बताओ, भूसा खींचने वाला फावड़ा जब आप जमीन में डालोगे तो जमीन पर घसीटोगे। भो ज्ञानी ! जमीन पर डालते ही आपकी कमर टेढ़ी होगी। एक जीव आपको गाली दे, अशब्द बोले, तो तुम्हारा बिगाड़ जब होगा सो होगा, लेकिन उसकी वाणी तो बिगड़ ही गई है। अशुभ वचन हो ही गया है, तब उसको कर्म का बंध हो ही चुका है। क्यों परेशान हो रहे हो? वह भोग लेगा। यदि त्र्यंगुल को खड़ा रख दो और उस पर पैर रख दो तो क्या होगा? लकड़ी तुम्हारा सिर फोड़ देगी। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं कि आप क्यों परेशान होते हो। अगर कोई कुछ कहकर चला गया तो कर्म की सूची में उसका नाम लिखा गया। सूची ऊपर आने पर दण्ड स्वयमेव मिल जायेगा। कितना स्वतंत्र दर्शन है। हम आपका विरोध कर अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहते हैं। मैं क्यों अपना वचन नष्ट करूँ, कर्म-बन्ध करूँ, मनोबल नष्ट करूँ? जितना हम तुम्हारे बारे में सोचें, यदि उतना हम जिनवाणी पर सोचें तब हमारा कल्याण हो जायेगा। कभी विरोधियों का विरोध नहीं करना, क्योंकि कर्म सब देखता है कि तुम कहाँ हो? अहो ज्ञानी! कभी किसी की निंदा/अवहेलना नहीं करना। तुमने उसके दोषों को ढँक तो दिया, अब तुम्हारा धर्म बनता है कि एकान्त में जाकर उसे समझाना। मनीषियो! गाय को अपने बछड़ों पर क्या इसलिए प्रेम होता है कि बेटा बड़ा होकर कमाई खिलायेगा? क्या इनका स्वार्थ का प्रेम है? गाय का प्रेम निःस्वार्थ होता है। अतः ऐसा वात्सल्य रखना जैसा गाय का बछड़े पर होता है।

सम्यक्दृष्टि का आठवाँ अंग है ''प्रभावना'', जिनशासन की प्रभावना करना। सबसे बड़ी प्रभावना यह है कि तुम्हारे कारण अप्रभावना न हो। ऐसी प्रतिज्ञा आज करना कि मैं ऐसा काम नहीं करूँगा, जिससे मेरे द्वारा वीतराग धर्म पर कोई अंगुलि उठाये। तब समझो कि तुम सबसे बड़े प्रभावक हो। श्रावकों को ढोलक बजाना पड़ती है, बैनर लगाना पड़ते हैं, तब कहीं प्रभावना होती है। मनीषियो! एक बार तुम्हारे मुनिराज किसी गली से निकल जायें तो बिना बैण्ड के प्रभावना अपने आप होती है। जब तक आप मुनि नहीं बने, अपने जैनधर्म की प्रभावना करो। यह सम्यक्त्व का आठवाँ अंग है। इससे युक्त होकर सम्यक्त्व का पालन करो, यह पहला रत्न है। दूसरा सम्यक्ज्ञान है। संशय, विमोह, विपर्यय इन तीन दोषों से रहित जो शुद्धज्ञान है, वह सम्यग्ज्ञान है। न्यूनता से रहित, अधिकता से रहित, जैसा जिनदेव ने कहा वैसा ही बोलना। अपनी तरफ से लेश मात्र भी नहीं लगाना, इसका नाम सम्यक्ज्ञान है। जैसा सर्वज्ञ देव ने श्रावक और मुनियों के निर्दोष व्रतों का कथन किया है, उनका निर्दोष व निरतिचार पालन करना, सम्यक्चारित्र है। इनसे युक्त ही मोक्षमार्गी है। (जो अप्पाणि बसेइ) इन तीन गुणों से युक्त होकर जो आत्मा में निवास करता है, (सो

सासय-सुह-भायणु वि) आचार्यश्री कह रहे हैं-वही शाश्वत सुख का पात्र होता है। जब तक रत्नत्रय नहीं है, तब तक शाश्वत सुख के पात्र नहीं हो, (एम जिणवरु भणेइ) ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है। आचार्यश्री की भक्ति को तो देखो, अपनी प्रज्ञा से लिख रहे हैं, फिर भी कर्तृत्व-भाव नहीं आ रहे है। ये मैं नहीं लिख रहा हूँ, यह भगवान् जिनेन्द्र देव कह रहे हैं। भो ज्ञानी! मंदरमेरू चलायमान हो जाय, पर अपना विश्वास कायम रखना। प्रभु! मेरे प्राण जा सकते हैं, पर मेरी श्रद्धा नहीं जा सकती है, क्योंकि प्राण तो पुनः मिल जायेंगे। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी लिख रहे हैं-जिन जीवों का सम्यक्त्व नष्ट हो गया, वह भ्रष्टों-में-भ्रष्ट है, उसका निर्वाण होने वाला नहीं है।

'दर्शन पाहुड़' में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है-चार कषायों को हम शत्रु मानते हैं और कभी उनके पास जाते नहीं, फिर बाहर के शत्रु बने कैसे? उसने चाँटा मार दिया। बोले-महाराज! हमारी इनसे बनती नहीं है। क्यों? मार देते हैं। लेकिन क्यों? क्योंकि किसी के हाथ चले थे, किसी का मुख। अगर तुम्हारा मुख न चलता, गुस्सा न करते तो वह क्यों मारता? मनुष्य शत्रु नहीं है, शत्रु तुम्हारी कषाय है, यह क्रोध की महिमा है। नारकी को क्रोध, मनुष्य को मान, तिर्यंच को मायाचारी और देवों को लोभ-ये जन्मजात ही होता है, यह सिद्धान्त है। एक छोटा-सा बच्चा नीचे पड़ा था, क्या बोलता है? काँय-काँय, तुम लोग खड़े हो और हमें नीचे क्यों डाले हो? उसका अहंकार सता रहा है। तिर्यंचों में मायाचारी जन्म से होती है। जब क्रोध आये तो समझना मनुष्य स्वयं नारकी है।

संज्ञाएँ चार हैं-आहार, भय, मैथुन, परिग्रह। सारा विश्व इन चार के पीछे चक्कर लगा रहा है। छोटे से पेट के लिए कितना कमाना पड़ता है? अहो ज्ञानियो! तुम्हारी समस्त पर्यायों के परिग्रह को इकट्ठा किया जाये तो उसे रखने का स्थान नहीं मिलेगा। इतना पानी पी चुके कि सागर भर जायेंगे। चार संज्ञायों के पीछे व्यक्ति पाँच-पाप कर रहा है। परिग्रह-संज्ञा यदि शांत हो जाये तो शान्ति से प्रवचन सुनोगे। पर कुछ सोच रहे हैं कि दुकान का समय हो रहा है। यह कौन कह रहा है? परिग्रह-संज्ञा कह रही है। इन चार संज्ञाओं से रहित होकर (चउ-गुण) चार गुण (अनंतदर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य) से युक्त (सोअप्पा मुणि) ऐसी आत्मा को जानो। अहो ज्ञानी! ऐसा तूने समझ लिया तो परम पवित्र हो जायेगा। चार संज्ञायें अगर चली जायें और चार चतुष्टय मिल जायें, तब और कुछ नहीं चाहिए। भगवान् से बस इतना ही माँग लेना।

मनीषियो! भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ८० व ८१ वीं कारिका में समझा रहे हैं कि तुम दस को छोड़ दो और दस को पकड़ लो। आचार्य कुन्दकुन्द ने चौबीस तीर्थंकरों के लिये लिखा है कि दस, दस, दो, दो को नमस्कार। ये आचार्यों की शैली है, इसमें विनोद नहीं होता। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य-इन दस धर्मों को स्वीकार कर लो और इसके विपरीत दस कर्मों को छोड़ दो। पहले दस कर्मों

CC0.In Public Domain. Digitized by [illegible]/eGangotri

का नाश करे, फिर दसधर्म को अंगीकार करो। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि, अहो ज्ञानी! इस सिर को मुड़ाने के पहिले एक काम कर लो। हाथ, पैर, मन, वचन, काय ये पांच और पांच इन्द्रियों का मुण्डन कर दो अर्थात् दस को छोड़ दो, फिर सिर मुड़वाना, तो तुम शिवगति के पथिक हो जाओगे। मन, वचन, काय की चंचलता को छोड़ो, हाथ पैर की चंचलता को छोड़ो, फिर सिर के केशलोंच करना। छोड़ा कुछ नहीं, और केशलोंच कर लिये तो कुछ नहीं होगा। पहले राग-द्वेष का नाश करो। आचार्य भगवान् यहाँ कह रहे हैं-यदि किसी के सिर मुड़ाने के भाव आ रहे हैं, तो इस गाथा को ध्यान में रखना। जो दस गुणों से युक्त है, उसे निश्चय से आत्मा जानो। आत्मा ही दर्शन-ज्ञान स्वभावी है और चारित्र स्वभावी है। यह संयमशील आत्मा ही प्रत्याख्यान है। यह 'समयसार' की गाथा

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो॥277॥

अर्थात् निश्चय नय से आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही ज्ञान है,आत्मा ही चारित्र है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है,शील है, शिवपथ है। यह सभी आत्माओं में होगा। इसलिए तुम अपनी आत्मा को देखो, कहीं मत जाओ, अपने घर आ जाओ और आत्मा को निहारो। आप सम्यक्दर्शन को साथ लेकर चलना। पंचमकाल में घनघोर तपस्या कर नहीं पा रहे हो। क्षणिक ज्ञान के चक्कर में श्रद्धा को मत छोड़ देना। ज्ञान काम नहीं आयेगा। ज्ञान अगर श्रद्धान सहित हो, तब सम्यक्ज्ञान है। यदि नहीं है, तब मिथ्याज्ञान है। यदि महिमा गाना है तो सम्यक् चारित्र की गाओ। ज्ञान बीच में बैठा है। अगर देहरी पर दीपक रखते हैं तब वह कमरे में और आँगन में प्रकाश देगा। ऐसा ही ज्ञान जो होता है वह श्रद्धा को भी उज्ज्वल करता है, चारित्र को भी उज्ज्वल करता है, लेकिन हेतु सम्यक्दर्शन ही है। यदि यह गया, तब ज्ञान-चारित्र का भी सम्यक्पना गया। इसलिए अपने जीवन में श्रद्धा को दृढ़ करना और दीप जलाकर चलना।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय।

स्व-पर का निर्भ्रान्त-ज्ञान परम-सन्यास

योगसार

जो परयाणइ अप्प परु, सो परु चयइ णिभंतु।
सो सण्णासु मुणेहि तुहुँ, केवल-णाणिं उत्तु ।।82 ।।

अर्थ-जो निज को और पर को जान लेता है, वह भ्रान्ति-रहित होकर पर का त्याग कर देता है। हे जीव! तू उसे ही सन्यास समझ, ऐसा केवलज्ञानी ने कहा है।

रयणत्तय-संजुत्त जिउ, उत्तिमु तित्थु पवित्तु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु।।83 ।।

अर्थ-हे योगिन्। रत्नत्रययुक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है, और वही मोक्ष का कारण है। अन्य कुछ मन्त्र-तन्त्र मोक्ष का कारण नहीं।

दंसणु जं पिच्छियइ बुह, अप्पा विमल महंतु।
पुणु पुणु अप्पा भावियए सो चारित्त पवित्तु ।।84 ।।

अर्थ-जिसके द्वारा देखा जाता है, वह दर्शन है; जो निर्मल महान् आत्मा है, वह ज्ञान है तथा आत्मा की जो पुनः पुनः भावना की जाती है, वह पवित्र चारित्र है।

जहिं अप्पा तहिं सयल-गुण, केवलि एम भणंति।
तिहिं कारणएँ जोइ फुडु, अप्पा विमलु मुणंति ।।85 ।।

अर्थ- जहाँ आत्मा है, वहाँ समस्त गुण हैं-ऐसा केवलियों ने कहा है। इसलिये योगी लोग निश्चय से निर्मल आत्मा को पहिचानते हैं।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम तीर्थेश भगवान् महावीर स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने अलौलिक सूत्र प्रदान किये हैं। आत्मा की उस अवस्था का ज्ञान कराया, जिसे आज तक नहीं जाना। जीव तत्त्व को समझने के लिये अजीव तत्त्व का जानना आवश्यक है। जीव अजीव से विपरीत है। बहुत सुन्दर दृष्टांत दिया है। वट-बीज के मध्य वृक्ष विद्यमान है, ऐसे ही आत्मा के अन्दर भगवत्ता विराजमान है। अन्तर इतना है कि 'वे विराग, यह राग वितान'। आप विरागी हो, मैं रागी हूँ। परमेश्वर और आत्मा में विशेष अन्तर नहीं है। इतना मात्र अन्तर है कि परमेश्वर की आत्मा वीतरागी है, हमारी आत्मा रागी है। ध्रुव सत्ता की दृष्टि से निहारते हैं तो दोनों सत्य नजर आते हैं। हम स्कन्ध को

देखते हैं तो परमाणु छोटा नजर आता है, और स्कन्ध बड़ा नजर आता है। लेकिन पुद्गल-द्रव्य को निहारो। परमाणु से स्कंध बना है। स्कन्ध भी परमाणु से बना है। स्कन्ध के टुकड़े होते गये तो परमाणु बन गया। भेद से परमाणु की उत्पत्ति होती है। यदि संगठन हो गया, मिलन हो गया, तो स्कन्ध बन गया। अहो ज्ञानी आत्माओ! गड्ढा खोदकर समीकरण करना-ये अच्छी बात नहीं है। समीकरण अर्थात् जोड़ देना/भर देना। जैन-आगम में न्याय का महान् ग्रंथ प्रभाचन्द स्वामी विरचित 'प्रमेय-कमल-मार्तण्ड' है। भारतीय दर्शन शास्त्र की अपूर्व कृति है। जिसमें उन्होंने कहा है-तुमने भूमि का खनन किया, इसके उपरान्त समीकरण किया। जब भरना ही था तो गड्ढा किया क्यों? तूने कषायों के गड्ढे खोदे क्यों? तुम्हें मालूम है कि जब आत्मा भगवान् बनेगी तो समीकरण करना ही पड़ेगा। विषयों के गर्त का समीकरण करके अध्यात्म के गोते लगाना ही पड़ेंगे।

सन्यास की चर्चा आज कर रहे हैं योगीन्दु स्वामी। एक सन्यासी/योगी और भोगी में कितना अन्तर होता है, आज समझेंगे। संत द्रव्य सत्ता के ज्ञान से संबंधित होते हैं, असंत पर्याय ज्ञान से युक्त होता है। जो पर्याय में उलझा हैं, वह पल्लभ है। अज्ञानी श्वान वृत्ति से जीता है और ज्ञानी सम्यक् वृत्ति से जीता है। आपने कुत्ते को देखा? किसी ने उसे लाठी मारी तो वह क्या करेगा? जाति का दोष है, वह लाठी को पकड़ता है, जबकि लाठी पकड़ने से रक्षा संभव नहीं है। सिंह को कोई लाठी मारता है तो वह लाठी को झेल लेगा, परन्तु वह लाठी को नहीं पकड़ता है, वह लाठी मारने वाले को पकड़ता है। अज्ञानी यह सोचता है कि इन्द्रिय-विकार सता रहे हैं तो इन्द्रियों को भोगें,शायद शान्ति मिल जायेगी। यह श्वान-वृत्ति है। जिससे तू पीड़ित है, उसी को भोग रहा है। एक योगी सिंह के समान है। विकार कहाँ से उत्पन्न हो रहे हैं? यदि मैंने भोग लिया और शरीर की ताकत निकल गई, तब कहते हैं कि अब इच्छायें नहीं हैं। 10-15 दिन बाद जब शक्ति बढ़ती है तो वही विकार पुनः खड़े हो जाते हैं। सिंह कहता है-नहीं, मैं इन्द्रिय-स्वान की लाठी नहीं पकड़ना चाहता हूँ। मैं उस मन को पकड़ना चाहता हूँ जिस मन से लाठी प्रेरित की जा रही है। विकार कौन करा रहा है? योगी मन को पकड़ता है और भोगी इन्द्रियों को पकड़ता है, रागी और सन्यासी में इतना ही अन्तर है। मनीषियो! जीवन में एक बात याद रखना, उस श्वान को जरूर निहार लेना। हे प्रभु! आज जन्म हुआ तो भोगों की शय्या पर ही। हे भगवान्! आज जितने जन्मे हैं, वे भोगों की शय्या पर जन्मे हैं। लेकिन, प्रभु! जब भी मेरी मृत्यु हो तो भोगों की शय्या पर न हो। जन्म 'शय्या' पर लेटा है, पर मरण 'सेज' पर करता है। कितना भी पापी व्यक्ति होगा, मरण-समय जमीन पर लिटा देते हैं। इसमें जैनत्व छुपा है। दादा,परदादा की मृत्यु होती है तो चारपाई से उतार देते हैं, क्योंकि चारपाई प्राकृतिक नहीं है। वस्तु प्रकृति की है, इसे प्रकृति पर जाने दीजिए। एक वैद्य/डाक्टर भी अंतिम समय कहता है-भइया! हमारे बस की नहीं है, प्रभु की शरण में ले जाओ। इससे विदित होता है कि मानव कितना भी पढ़ा-लिखा हो, लेकिन जीवन में एक

समय प्रभु की याद आती ही है। जो सत्ता तुम्हें अन्तिम समय नजर आती है, वह सत्ता यदि पहले नजर आ जाती तो आप सन्त बन गये होते। मरण-समय जिस सत्ता का ज्ञान होता है, उस सत्ता का ज्ञान संसार के वरण के समय हो गया होता तो आज गृहस्थ न होते। क्या करूँ? बाद में क्यों जानकारी मिलती है? ये अपने साथ धोखा है। जब-जब आप प्रभु के चरणों में जाया करो, तब कह दिया करो-भगवन्! मुझे इतना विवेक दे दो। काम बिगाड़ने के पूर्व सोच लिया करें तो किसीको सिर न टेकना पड़े। कोई किसी को कुछ कह नहीं सकता। मेरी आत्मा के दोष न होते तो आज भगवानों को गाली देने की ताकत न होती।

रावण को प्रतिवर्ष जलाते हो। ये आत्मशक्ति नहीं जला रही है। लंकेश भावी-भगवान् हैं। पुतले को देखकर रोना आता है। कभी आपकी भगवान् पर्याय को देखता हूँ, कभी सीता हरण को देखकर सोचता हूँ। हैरान हूँ आपको देखकर। एक महासती का हरण और एक दिन समवसरण में बैठोगे तीर्थंकर बन। पापी की पाप-पर्याय को निहारो तो पाप का बंध होता है। सिद्धान्त पकड़ना। पापी के खराब परिणाम देखेंगे तो परिणाम खराब होंगे और पुण्यात्मा की पर्याय को निहारने से हमारे परिणाम निर्मल होते हैं। समवसरण में तीर्थंकर की प्रतिमा को क्यों निहारते हो? एकमात्र पुण्य-पर्याय को देखने आते हैं। पुण्य-पर्याय देखने से पुण्यबंध और पाप-पर्याय देखने से पापबंध। माँ जिनवाणी कहती है-बेटा! एक काम कर लो, तुम रावण की रौद्र-पर्याय को मत देखो, बनने वाले भगवान् की पर्याय को देखो। अब कैसे भाव आते हैं? भावी-भगवान् को नमस्कार हो। भविष्य की चौबीसी का अर्घ देते हैं। द्रव्य की सत्ता बड़ी विचित्र है।

आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव अपने अन्तस्-सूत्रों को समेटे बैठे हैं। आज उस प्रक्रिया को भी समझना कि कर्म का बंध कैसे हो रहा है? वर्तमान का कम्प्यूटर, सी.डी.क्या है? एक छोटी-सी प्लेट पर कितने शब्द भर जाते हैं? एक सी.डी. पर कई ग्रंथ भरकर वर्षों तक सुरक्षित रख सकते हैं। अहो ज्ञानी ! सी.डी./कैसिट, शब्द आदि सभी पुद्गल हैं। कैसिट से पूछो कि एक पुद्गल इतने शब्द को अपने पास कैसे रख लेता है? कितनी समर्थ है कि आँखों से शब्द दिखाई नहीं देते। हमारी आत्मा में सिम है जो कि इतनी कर्म-वर्गणाओं को रख लेती है और हजारों/लाखों वर्षों बाद उदय में आती है। जैसे केसिट को टी.वी.में फंसाते हैं तो चित्र आना प्रारंभ हो जाते हैं, ऐसे ही जब कर्म का उदय आता है तो तुम्हारे टेलीविजन पर एक चित्र आता है कि देखो बेटा, कितने कर्मों का बंध किया है। जब विज्ञान इतने आगे बढ़ सकता है तो जिनकी वाणी सुन रहे हो वह वीतराग-विज्ञानी हैं। पं. दौलतरामजी ने किसे नमस्कार किया है? 'त्रियोग सम्हारकै', तीन योगों से नमस्कार किया है। किसे? जो तीन- लोक में सारभूत है अर्थात् वीतराग विज्ञानता को। जब ऐंटीना खराब है, तब चित्र आते कहाँ हैं? इसी प्रकार, जब तक त्रियोग निर्मल नहीं होगा, तब तक वीतराग वाणी समझ में आयेगी कैसे? वीतराग विज्ञान में आत्म-तत्त्व की चर्चा है,शरीर के भोगों की नहीं। आत्मा के आनंदकंद की चर्चा

कर लेना विज्ञान है। यही वीतराग-विज्ञान है। वीतराग-विज्ञान यानी केवलज्ञान। छतरपुरवासियों के पुण्य का योग है कि सर्वज्ञ की देशना को आप सुन रहे हैं।

आचार्य भगवान् ने 82 वीं कारिका में संन्यास की चर्चा की है। सन्यास आत्मा को परमात्मा बनाने की शैली है। सम्पूर्ण संकटों का सहन, कषायों का उपशमन जहाँ हो जाता है, उसका नाम संन्यास है। न्यास यानी पृष्ठ/निक्षेप। जहाँ आत्मतीर्थ का निक्षेप हो जाता है, आत्मा को परमात्मा बनाने का निश्चय निर्मित हो जाता है, उसका नाम संन्यास है। निश्चित हो गया है कि जीव अब भगवान् बनेगा, जिसने वासनाओं को नाश दिया, जिसने कामनाओं को नाश दिया, कनक और कामिनी में कोई रागदृष्टि नहीं है। विश्व में रुलानेवाले दो ही रिश्ते हैं-कनक और कामिनी। महाभारत कनक और कामिनी के कारण हुआ। कामिनी यानी स्त्री, कनक यानी सोना। बड़ा आश्चर्य है कि कनक और कामिनी का राग इतना विराट होता है। उस भंवरे से पूछना जो सुख से स्कंद में छिपकर लेटा है। अपने मुख से विशालकाय वृक्ष में छिद्र कर लेता है। अहो! वृक्ष ज्यादा कठोर था कि कमल ज्यादा कठोर है? जितना कठोर वृक्ष नहीं लगता, उतना कठोर कमल लगता है। कठोर वृक्ष में छिद्र कर घुस गया और वापिस आ गया। भ्रमर तुम संध्या समय कमल में विराजो और पराग का पान करो। राग में इतना मस्त है और सोचता है कि रात्रि में पान करूँगा और प्रातः जब कमल खुलेगा तो निकल जाऊँगा। क्या राग की महिमा है? कोमल-कमल को नहीं छेद पाया और प्राणों का अंत हो गया, भंवरा कमल के अन्दर मृत हो गया। जिसने वृक्ष में छेद कर लिया, पर कमल को नहीं छेद पाया। ये राग की महिमा है। बड़े-बड़े सागरों को इन भुजाओं से पार कर लेते हो, लेकिन कमला की पांसों में फंसकर अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर पाते। सबसे कठोर कमल और कमला है। कमला यानी स्त्री। ये नर-भ्रमर समर-भूमि में रक्त बहानेवाले हैं, पर कोमल-कमला की भुजाओं से छूट नहीं पाये। धिक्कार है तुम्हारी प्रवृत्ति को। हँसने का समय नहीं, रोने का है। सन्यास कह रहा है-नस को परखो। जो स्वयंको स्वीकार ले, तथा पर को छोड़ दे, इसका नाम सन्यास है। दुनियाँ को जोड़ ले, जुड़कर रहे उसे, संन्यास नहीं कहते, उसे रागी कहते हैं। सन्यासियों का मार्ग लोकाचार नहीं है, व्यवहारिकता से परे है। किसका सम्मान ? फूल-माला, सत्कार सब मल है। धिक्कार उस तन के लिए, जिसके संयोग से माला भी मल हो जाती है। दूसरे के गले की माला को स्वीकार करोगे? नहीं। ऐसे शरीर की सेवा में लगे हो, जिसके सहयोग से सुभाषित माला भी मल के रूप में झलक रही है। तुम उसे पहिनना स्वीकार नहीं कर रहे हो। पवित्र द्रव्य भी उसके सहयोग से अपवित्र हो गया। कहीं मल पड़ा हो, वहाँ रहोगे? जिस बस्ती में घूरे पड़े हों, वहाँ निवास करना पसंद करोगे? नहीं करोगे। तो जिसमें तुम बैठे हो वह मल का पिण्ड है। उसमें से मल झरता है,फिर भी निकलने का विचार नहीं। थोड़ी-सी दुर्गंध आने पर नाक सिकोड़ते हैं, हाथों से नाक बंद कर लेते हैं। अब नेत्र बंद कर लेना और अन्दर देखना। सन्यास कह रहा

है-बाहर से देखना बंद कर दो, अन्दर से देखना प्रारंभ कर दो।

सन्यासी का अर्थ यहाँ किसी को उतारना नहीं है। तुमने त्याग किया है, लेकिन वर्ष में एक बार वृक्षों में पतझड़ होता है और आपके शरीर में भी पतझड़ होता है। जैन-आगम कहता है कि आपके शरीर में सात पर्तें हैं चमड़ी की और वर्ष में एक बार चमड़ी झड़ जाती है। ऐसे आप महसूस नहीं कर पाते, क्योंकि कपड़े पहने रहते हो। परमाणु आ रहे हैं, बिखर रहे हैं। सर्प साल में एक बार केंचुली को छोड़ देता है, आवरण को हटा देता है, पर उसकी जहर की थैली नहीं निकल पाती। अहो योगी! बाहर की सामग्री को छोड़ दो। वस्त्र के उतार देने मात्र से कुछ नहीं होता। ऐसे ही, मनुष्यो! विषय-कषायों के त्याग करने से आत्मा सन्यासी नहीं बन जाती। बाहर के द्रव्य छोड़ दिये, पर अन्दर के द्रव्य नहीं छोड़े। संन्यासी बनना चाहते हो तो केवल केंचुली बदलने से काम नहीं चलेगा, विष की थैली भी निकालकर फेंकना पड़ेगी। कालुष्य को छोड़ो, काषायिक-भाव को छोड़ो, कषाय के द्रव्य को छोड़ो और कषाय की परिणति को छोड़ो। आपने जिस पर गुस्सा किया, यह आवश्यक नहीं कि उसे भी गुस्सा आ जाय, लेकिन यह सत्य है कि आपको गुस्सा आया है तो नियम से आप कलुषित-भाव को प्राप्त हुए, उतने समय तक आपकी निर्मलता समाप्त हुई, मन की पवित्रता समाप्त हुई। गुस्सा के समय आप परेशान हो जाते हैं। धिक्कार है उन भावों को, स्वयं परेशान और दूसरा भी परेशान। सन्यास कहता है-परेशानियों का विमोचन हो जाय, वह सन्यास है। सन्यास जिसका हो जाता है, वहीं से समाधि प्रारंभ होती है। सन्यास के अभाव में समाधि त्रैकालिक संभव नहीं। जब तक तुम्हारे समकित-भाव हैं, समकित-परिणाम हैं, तब तक प्रभु/साधु हो और जैसे ही परिणाम काषायिक हुए, वैसे ही साधुपना समाप्त हो गया। 'परमार्थप्रकाश' में आचार्य योगीन्दुदेव का सूत्र है। कार्तिकेय स्वामी ने स्पष्ट कहा है कि जब तक उपशमभाव है, तब तक संयम-भाव है, उपशम-भाव का अभाव हुआ वहाँ संयम-भाव का भी अभाव हुआ। उस योगी को अवश्य नमस्कार कर लेना। प्रभु! हम तो तीर्थ तीर्थ में घूमते हैं, आप स्वयं तीर्थ हो। जब तुम साधु नहीं थे, तब कैसे कहा करते थे कि महाराज मिल जायँ तो उनके चरणों में माथा टेक दें। आज तुम्हारा सौभाग्य है कि महाराजों के बीच हो। संयम की महिमा देखो, जिन खुरों (पैरों) को कोई छूना नहीं चाहता था, उन पैरों के लिये आज वह कहता है कि, महाराज! छू लेने दो। तुम लोग हमारी पूजा कर रहे हो कि नहीं? जैन-आगम में व्यक्ति की पूजा नहीं है, गुणों की पूजा है। मेरी पहचान मैं नहीं करा रहा हूँ। यह पर की वस्तु है। परन्तु पिच्छी मेरी पहचान करा रही है। यदि पिच्छी न होती तो कोई नमोस्तु नहीं करता। ये पिच्छी की महिमा है, द्रव्यसंयम की महिमा है, द्रव्य-नियम की महिमा है, तीर्थंकर का चिह्न है। हे प्रभो! आपकी ध्वजा ने हमें इतना ऊपर उठाया है तो किसी भी कारण से यह ध्वज नीचा न हो। प्रभावना कर सको या न कर सको, परन्तु जब तक प्राण हैं तब तक सर्वज्ञ के शासन की अप्रभावना न हो, ध्वज नीचा न हो। मेरा नाश हो जाय, इसमें मेरी हानि

नहीं है, परन्तु आपके शासन पर किसी की कुदृष्टि न पड़े। मैं तो महावीरस्वामी से चर्चा कर लेता हूँ- प्रभु! यह सत्य है कि आपने संयम को महान् नहीं बनाया, पर संयम की महानता देखो-आपको भगवान् महावीर बना दिया। भगवान् महावीर ने महाव्रतों को महान नहीं किया। महाव्रतों ने महावीर को भगवान् महावीर बना दिया। आपने संयम को महान् बना दिया। जितनी विनय आपसे हम करते हैं, उससे कई गुणी, करोड़ों गुनी, अरबों गुनी विनय संयम की करना चाहिए। संयम की विनय से तात्पर्य निर्दोष संयम का पालन।

जिस समय युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डवों ने श्रीकृष्ण से कहा कि महाभारत युद्ध पूर्ण हो चुका है, हम पवित्र तीर्थवंदना कर गंगा में स्नान करना चाहते हैं, तब नारायण श्रीकृष्ण ने कहा-मुझे राजकाज से फुरसत नहीं, अतः मेरे एक सदस्य को ले जाओ। माधव कहते है-हे पाण्डव पुत्र! मेरी एक कड़वी तुमड़ी है, उसे आप ले जाइये। पाँचों पाण्डवों ने तुमड़ी को रथ के उच्च भाग पर विराजमान किया। स्वयं ने एक-एक बार स्नान किया और तुमड़ी को 108 बार स्नान कराया। ये हमारे इष्ट का सदस्य है। जब वापिस आते हैं तो अर्जुन कहते हैं-हे पार्थ! मैंने इसे 108 बार गंगाजल में स्नान कराया है। श्रीकृष्ण कहने लगे-इससे अधिक पवित्र द्रव्य विश्व में क्या होगा? तीर्थ से आये हो, मेरा सदस्य आपको भेंट है। इसका सेवन करिये। सभी बहुत खुश थे। चखने लगे और पाँचों थूकने लगे। श्रीकृष्ण की माया थी। कहने लगे-'क्यों? क्या हो गया?' पाण्डव बोले-'महाराज! बहुत कड़वी है।' अहो ज्ञानी आत्माओ! आप लोगों ने 108 बार स्नान कराया और तुमड़ी की कडुवाहट नहीं गयी। इससे विदित होता है कि पानी में डालने से विषय की कड़वाहट नहीं जाती है। गीता में इस प्रसंग का संकेत है। हे पाण्डु-पुत्र! आप कहाँ गये थे तीर्थों में भटकने के लिए? आपने संयम तोड़ा। आत्मा ही अखण्ड श्रद्धा है। इसमें संयम रूपी निर्मल नीर भरा है और चारित्र की उर्मियाँ हैं। अहो पाण्डु पुत्रो! इस शीतल स्वभाव में निर्मल होकर अवगाहन करो। बाहर के तीर्थों से कल्याण नहीं होगा, आत्मा का तीर्थ निर्मल नहीं होगा।

आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं-सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिस आत्मा में विराजता है, वह आत्मा ही परम्-तीर्थ है। अब अपनी आत्मा को निहारना और कहीं नहीं जाना। मन चंगा तो कठोती में गंगा। मन पवित्र है तो तीर्थ में मन लगेगा। पापी भी तीर्थ जाते हैं, वहाँ पिकनिक मनाते हैं। तीर्थ का अर्थ है जिसमें तेरा जाय। आप तो लौटकर आ गये। निश्चित-तीर्थ की चर्चा कर रहे हैं। इसका मतलब तीर्थ वन्दना करना मत छोड़ देना। तीर्थ में ये दृष्टि बनाये रखना-हे प्रभु! आपके चरणों में तिरने आया हूँ। और जहाँ जिनबिम्ब मिले, प्रतिमायें मिलें, तीर्थ के साथ साधु मिल जायँ, तो उनकी वन्दना अवश्य करें। ये तीर्थ मेरे बस के हैं, कभी भी आ जाऊँगा। पर ये तीर्थ मेरे बस के नहीं हैं। आपके नगर छतरपुर में किसी योगी की समाधि चल रही हो और आप सम्मेदशिखरजी जाना चाहते हों, तो सम्मेदशिखर फिर मिल जायेगा, परन्तु समाधि-तीर्थ मिलेगा नहीं। समाधि की वन्दना जरूर कर लेना,

जिससे समाधि के भाव आ जायें। द्रोणगिरि क्या है? सिद्धक्षेत्र यानी समाधिस्थल। जहाँ केवलियों का निर्वाण होता है, वह सिद्धक्षेत्र है। हमारे आगम में समाधिस्थलों का उल्लेख है। नसिया जी अर्थात् नसई जी रत्नत्रयक्षेत्र है।

तंत्र-मंत्र मोक्ष नहीं दिलायेंगे। टोटकों में मत पड़ जाना, ताबीज/गंडा में नहीं फंसना। इन रूढ़ियों में कब तक जियोगे? कण्ठ में वजन लटका लिया, इससे अच्छा भगवान् का नाम लेते कण्ठ से। 'एसो पंचणमुक्कारो, सव्व-पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं होइ मंगलम्' मात्र कहना पड़ता है, सोचना पड़ता है। तंत्र-मंत्र के चक्कर में मत पड़ना, एक मात्र रत्नत्रय धर्म ही आत्मकल्याण का सेतु है।

आचार्य महाराज 84-85 वें सूत्र में कह रहे हैं-पाँच पापों का त्याग, तीन गुप्तियों का पालन, पाँच समितियों का पालन - यह तेरह प्रकार का चारित्र है। निश्चय नय से निज शुद्धात्मा का श्रद्धान् तथा सिद्धात्मा का ज्ञान, सिद्धात्मा में रमण, इसका नाम निश्चय रत्नत्रय है। जब रत्नत्रय होगा, तभी आत्मा सिद्धि को प्राप्त कर सकेगी। जब तक रत्नत्रय नहीं, तब तक सिद्धि नहीं है। कारण के अभाव में कार्य कभी होता नहीं। निमित्त के अभाव में उपादान कभी प्रकट होता नहीं-ये पूर्णतः सत्य हैं। यथार्थ मानकर चलना। जैसे स्वर्ण पाषाण में है, तो पत्थर के आभूषण पहन लेना। क्यों? पाषाण में सोना है। अरे! जब तक सोने को निकालोगे नहीं, तब तक आभूषण नहीं बनते। ऐसे ही आत्मा में परमात्मा शक्ति है, लेकिन जब तक संयमाचरण का पालन नहीं करोगे, तब तक शुभाचरण को प्राप्त नहीं होगे, तेरा भगवान् प्रगट नहीं होगा।

हे विद्वान्! जिसके द्वारा तू देखा जाता है,जो निर्मल महान् आत्मा है, वह ज्ञान है और पुनः पुनः आत्मा का भाव है, वह पवित्र संयम है। अपने स्वरूप में विराजे जीव को असंयम कहाँ? और असंयमी को निश्चय-स्वरूप का भान कहाँ? और आत्मलीन आत्मा को असंयम दिखता कहाँ? इसलिए असंयम-भावों में शान्ति नहीं है। अपने हृदय से पूछो-किसी को गाली देने के बाद अच्छा लगता है कि बुरा? किसी को तेज बोलने के बाद अच्छा लगता है क्या? गालियाँ भी देना, गुस्सा भी करना, परन्तु सामने एक दर्पण में देखना। दर्पण कहेगा-अपना चेहरा देख, तू बन्दर बन चुका है। बन्दर यानी पशु। जिसकी पर्याय अभी दर्पण में पशु की दिख रही है,अब तेरा भविष्य क्या होगा? ज्ञान के दर्पण में चेहरा देखना प्रारंभ कर दो, जिससे अशुभ पर्याय न बन पाये। यदि कदाचित् भूल से अशुभ भाषण हो भी गया तो वह पश्चात्ताप की ज्वाला में झुलस रहा है। आप कुरेदना मत। वह अग्नि शांत हो जाती है जिस पर राख आ गई और आगे को कुरेद दें तो आग भड़कने लगती है। जीव के परिणाम हैं। किसी की कषायों पर राख आ रही हो उपशम भाव की और क्रोध कर दिया तो ज्वाला भड़कने लगती है। ज्ञानी पुरुष का काम अग्नि को शीतल करना होता है। पानी डाल दो, राख डाल दो, लेकिन चूल्हे को बार-बार कुरेदना नहीं, अन्यथा अहित होगा। शालीनता ही साधुता है।

आत्मा को ध्याओ। इस संसार में जितने गुण हैं वे सब आत्मा में हैं, ऐसा केवली भगवान् कह रहे हैं। इसी कारण से उस निर्मल आत्मा को निश्चय से ही जानो। आत्मा को ऐसे नहीं जाना/निहारा जाता, नहीं तो निकालकर देखने लगो। आत्मा बाहर से दिखने की वस्तु नहीं है, अनुभूति का विषय है। एक सज्जन आये, बोले-'महाराजश्री ! मेरी आत्मा को देख लिया मैंने ।' लगता है दुनियाँ में पहला असत्यवादी जन्मा है, क्योंकि वह कह रहा है कि मैंने अपनी आँखों से अपनी आत्मा को देख लिया है। कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं-आत्मा अरस, अरूपी, अगंध है। इसका कोई चिह्न नहीं है। आत्मा चाक्षुष नहीं है, अचाक्षुष है। यह अनुभूति का विषय है। पानी का स्वाद कैसा होता है? कोई नहीं जानता। 'महाराजश्री ! जाना तो है, पर कहूँ किन शब्दों में?' जब तुम इन्द्रिय-स्वादों की व्याख्या नहीं कर पा रहे हो, इन्द्रिय-योग की अनुभूति नहीं बतला पा रहे हो, तो आत्मा की अनुभूति को कैसे बोल सकते हो? पानी का स्वाद कैसा है? 'महाराजश्री ! पीकर देख लो।' आत्मा की अनुभूति एक गूँगे-की-मिठाई है। गूँगे को मिठाई खिला दो, फिर पूछो कि कैसी लग रही है, तो वह बतला नहीं पाता है, ऐसी अनुभूति है। संवेदन का विषय है। इसका व्याख्यान व्यावहारिक है, लेकिन यथार्थ तो, मनीषियो ! अवक्तव्य है। स्वरूप को बिल्कुल निश्छल होकर, एक समय योगी बनकर सेवन करो, तभी जान पाओगे कि निर्ग्रन्थता का स्वाद कैसा है। वह सग्रंथता में नहीं, निर्ग्रंथता में मिलेगा।

- भगवान् महावीर स्वामी की जय।

बन्ध को बन्ध स्वीकार निर्बन्ध की प्राप्ति के लिये

योगसार

एक्कलउ इंदिय-रहियउ, मण-वय-काय ति- सुद्धि।
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ, लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥86॥

अर्थ- हे आत्मन्! तू एकाकी होकर, इन्द्रियरहित होकर, मन-वचन-काय की शुद्धि से आत्मा के द्वारा आत्मा को जान, उससे तू शीघ्र ही मोक्षसिद्धि को प्राप्त करेगा।

जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि, तो बंधियहि णिभंतु।
सहज-सरूवइ जइ रमहि, तो पावहि सिव सन्तु ॥87॥

अर्थ- यदि तू बद्ध को मुक्त समझेगा, तो निश्चय से तू बँधेगा। तथा यदि तू सहज स्वरूप में रमण करेगा, तो सान्त निर्वाण पावेगा।

सम्माइट्ठी-जीवडहँ, दुग्गइ-गमणु ण होइ।
जइ जाइ वि तो दोसु, णवि पुव्व-क्किउ खवणेइ ॥88॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टिजीव कुगतियों में नहीं जाता। यदि कदाचित् वह जाता भी है तो इसमें सम्यक्त्व का दोष नहीं। इससे वह पूर्वकृत कर्म का ही क्षय करता है।

अप्प-सरूवहँ जो रमइ, छंडिवि सहु ववहारु।
सो सम्माइट्ठी हवइ, लहु पावइ भवपारु ॥89॥

अर्थ- जो सर्व व्यवहार को छोड़कर आत्मस्वरूप में रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव है और वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

अंतिम-तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी ने अभूतपूर्व सूत्र प्रदान किया है। यह आत्मा ही तीर्थ है, जो रत्नत्रय से मण्डित है। आत्मतीर्थ को छोड़कर जो बाहरी तीर्थों में विचरण कर रहा है, वह अपनी प्रज्ञा से हीन है। आत्मतीर्थ की प्राप्ति के लिए यह धर्मतीर्थ में जाये, तब श्रेष्ठ है; परन्तु आत्मतीर्थ को छोड़कर जो धर्मतीर्थ में भटक रहा है, वह श्रेष्ठ नहीं है। इसलिए तीर्थक्षेत्रों की वंदना की जाती है, जिससे वे पुण्यवर्गणायें मेरी आत्मा को स्पर्शित कर जायें, जो वर्गणायें भगवान् अरिहन्त के शरीर में व्याप्त हैं। वे पुण्य-परमाणु इस पाप-आत्मा को स्पर्शित हो जायें, तब इसके भी विचार बदल जायें। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव आत्मा पर पड़ता

ही है। जैसा क्षेत्र होगा, वैसी वर्गणाएँ वहाँ होंगी, वैसी तरंगे वहाँ होंगी और तुम्हारा मस्तक वहाँ वैसा घूमने लगता है। एक पुण्यात्मा के पास जाओगे, एक चारित्रवान् के पास जाओगे तो तुम्हारी भावना बनती है कि, अहो! यथार्थ मार्ग तो यही है। एक विकारी के पास जाओगे, तो तुम्हारा अंतःकरण विकार से भर जायेगा। एक भिखारी के पास जाओगे तो दीनता नजर आती है। एक धनिक के पास जाओगे तो तुम्हारा मन कहता है कि मैं भी धनिक बनूँ। दृष्टि का बहुत महत्व है। इसलिए जैनदर्शन में 45 दिन के बालक को सबसे पहले जिनेन्द्रदेव के दर्शन कराये जाते हैं। बेटा! तू आँख खोल और निहार, जो हमें आप देख रहे हो वह सत्य नहीं है। यह भी सत्य है कि मैं सत्य को प्राप्त नहीं कर सका। लेकिन एक पवित्र हृदय कहता है-बेटा! मैं तुझे सत्य से अपरिचित नहीं रखना चाहता। पैंतालीस दिन के बाद जब माँ अपने बेटे को लेकर जिनालय में पहुँचती है तो कहती है कि सत्यस्वरूप यही है। ये मेरी भूल थी कि मैंने सत्य को नहीं जाना। संसार कह रहा है कि तूने बेटे को जन्म दिया। लेकिन माँ उस सुत को गोदी में लिये जिनेन्द्र के सामने कह रही है-मेरे सुत! मैंने तुझे जन्म नहीं दिया। जन्म तो तेरे नियोग से, संयोग से हुआ, लेकिन यह सत्य है कि तेरे जन्मदिन से मैंने अपनी संसार की वृद्धि को जन्म अवश्य दिया है। पिताओ! आपकी समझ में ये आता है कि मैंने अपनी संतान को जन्म दिया है, लेकिन माँ भारती कह रही है कि, अहो तात! तुमने संतान को जन्म नहीं दिया, वरन् तुमने संसार की संतान को जन्म दिया है। एक बार की संतान को जन्म देने में नौकोटि जीवों की हिंसा होती है। एक जीव का घात हो जाय तो हिंसक कहलाता है, हत्यारा कहलाता है, हम उसका चेहरा नहीं देखना चाहते। अपने मन से पूछो, एक बार के कुशील-सेवन में नौ-कोटि पंचेद्रिय सम्मूर्च्छन मनुष्यों का घात किया है। वे सब जीव अशरीरी-भगवत्ता की शक्ति से सम्पन्न थे। एक मनुष्य के घात करने में कितना महान् पाप है, तो नव-कोटि जीवों की हिंसा करने में छुद्र पाप है क्या? अहो वासना! तुझे धिक्कार हो, तूने मुझे निज में वास नहीं करने दिया।

भो ज्ञानी! जिससे निज में वास ना, उसी का नाम है वासना। वह आत्मा तीर्थ-बोध है, जिसने वासना को तो नाश कर दिया और रत्नत्रय का वास निज में करा दिया। वह रत्नत्रय से मण्डित आत्मा ही जगत् पूज्य है, वही त्रिलोकीनाथ है, वही त्रिभुवनपति है। मत देखना किसी को, मत निहाराना किसी को। एक बार सोच बना लेना-प्रभु! इस पर्याय का वास छूटने के पहले वासना छूट जाये तो मैं भगवान् बन जाऊँ और मेरा निज में वास हो जाये। यदि मेरा निज में वास हो जाये तो, भो ज्ञानी आत्माओ! अनन्त सिद्धों से मिलन नियम से होगा, उसे सिद्ध भी नहीं रोक पायेंगे। मुझे इस बात का विश्वास है कि सिद्धों के साथ मिलन होगा। परंतु इतना ध्यान रखना कि तुम किसी से मत डरना, मात्र पाँच पापों से डरना। एक सम्यक्दृष्टि जीव को विश्व में विष से डर नहीं लगता, लेकिन विषय-विष से महान् डर लगता है; क्योंकि विष तो मात्र मेरे शरीर का नाश करायेगा, परन्तु विषय-विष मेरी आत्मा के धर्म

का नाश करायेगा। अहो ज्ञानी! पुद्गुल का नाश कराने वालों से कोई डरने की आवश्यकता नहीं है। जिनसे मेरी निर्मल परिणति का नाश होता है, ऐसे लोगों से जरूर डरना चाहिए। जिनके संयोग से, जिनके संसर्ग से तेरे विशुद्ध भावों का घात होता है, ऐसे संयोगों से तुम मौन हो जाना। जहर नहीं मारेगा, शस्त्र भी नहीं मार पायेगा और शत्रु भी नहीं मार पायेगा, लेकिन आत्मा के परिणामों का घात करनेवाला कोई अस्त्र है, तो तेरी अशुद्ध-परिणति है। इसलिए आचार्य भगवान् कार्तिकेयस्वामी ने 'कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा' ग्रंथ में कहा है-

अप्पाणं पि य सरणं खमादि-भावेहिं परिणदं होदि।
तिव्व-कषायाविट्ठो, अप्पाणं हणादि अप्पेण॥39॥

इस जीव का कोई शत्रु है तो आत्मा ही है। जब यह आत्मा कषाय से संयुक्त होता है, विषयों से संयुक्त होता है तो इस आत्मा का घात आत्मा के द्वारा ही होता है। विश्वास करो-जब भी चेहरा बदलता है तो स्वयं के द्वारा। चेहरा निर्मल होता है तो स्वयं के द्वारा। चेहरा आपके अंत:करण के भावों को बता देता है। बैरागी का चेहरा अलग दिखेगा, रागी का चेहरा अलग दिखेगा, कामी का अलग दिखेगा, क्रोधी का अलग दिखेगा। उन अंगों को तुम कपड़ों से ढँक सकते हो जिनमें विकार आ रहे हैं, किन्तु उस चेहरे को नहीं ढँक पाओगे जो विकार को बता रहे हैं। वह कह देता है- मेरी रेखाओं को देखो, मेरी चमड़ी को देखो। आप कल्पना करो। गोरे आदमी को मैंने काला देखा है और काले आदमी का चेहरा गोरा देखा है। यदि आप गोरे हैं परन्तु आपके मन में तनाव हो, विकल्प हो, विषय-कषाय भड़क रही हो, तो आप स्वयं दर्पण में देख लेना, चेहरे पर कालिमा होगी। शरीर से व्यक्ति भले ही काला हो, परन्तु जिसका अंत:करण निर्मल है उसके चेहरे पर दमक मिलेगी। इसलिए, मनीषियो! ध्यान रखना, काले या गोरे शरीरों से बंध या मोक्ष नहीं है, अपितु काली/गोरी परिणति से बंध/मोक्ष है। यदि परिणति तेरी गोरी है, शुक्ल-लेश्या है, तो मोक्ष होगा और शरीर तेरा सफेद और लेश्या तेरी कृष्ण है तो बंध होगा। पावडर लगाते हैं वे जिनकी लेश्याएँ काली होती हैं। वे ही सफेद बनना चाहते हैं, जो हृदय के काले होते हैं। जो हृदय से गोरे होते हैं, उन्हें शरीर से राग ही नहीं होता है। क्यों क्रीम लगायेंगे, क्यों पावडर लगायेंगे? अहो! एक बात बताऊँ- 'कोयला होय न ऊजरो, सौ मन साबुन लगाय'। ज्ञानी आत्माओ! तुम साबुन-पर-साबुन लगा दो, लेकिन कोयले को तुम सफेद नहीं कर सकते।

भो ज्ञानी! आज से तुम मन को माँजना प्रारम्भ कर दो, विषय-वासना की लगार लगी न रह जाये, जिससे कि तेरे शुद्ध उपयोग का वह निर्मल दुग्ध मलिन न होने पाये। ऐसी दृष्टि होती है ज्ञानी जीव की। क्योंकि योगसार है। लेकिन विश्वास करो, यदि आपको योगियों पर श्रद्धा है तो मेरा विश्वास बोलता है कि ऐसी भी पर्याय आयेगी, जिस पर्याय में आपके पास भी योगदशा होगी। भगवान् जिनेन्द्र की वाणी को भक्ति भाव से वही सुन पायेगा, जिसकी भवितव्यता नजदीक है, जो निकट-भव्य है, आसन्न-भव्य है। जिसका संसार दीर्घ है, उसके

अपवित्र अन्त:करण में कभी वीतराग की वाणी को सुनने के भाव नहीं आयेंगे।

मनीषियो! छियासीवीं और सतासीवीं कारिका में बहुत बड़े भ्रम को आचार्य महाराज ने पृथक् कर दिया। यानी आचार्यश्री की करूणा देखो कि आपको स्वरूप का ज्ञान भी करा दिया कि विपरीत स्वरूप को स्वीकार भी मत कर लेना। बद्धता में मोक्ष मानना ही मिथ्यात्व है। अबद्धता ही मुक्ति का पुरुषार्थ है। यह सम्यक्त्व है। यदि आपने बंध को ही मोक्ष मान लिया, तब मोक्ष का पुरुषार्थ क्यों? वह दिन भी याद आता है जब एक पिता अपने बेटे को अपने साथ बिठाकर अपनी थाली में भोजन कराता है। कितना दुलार है बेटे के प्रति। लेकिन मैं समझता हूँ कि उससे कई गुना दुलार उस पिता को है जो अपने बेटे को एक ही पुस्तक में अपने साथ जिनवाणी पढ़ा रहा हो। ऐसा पिता भी चाहिए जो यह कहे कि, बेटे! हम तुमको शरीर की पुष्टि के लिए भोजन एक ही थाली में करवाते हैं और चलो मेरे साथ तुम, आत्मा के पोषण के लिए जिनवाणी का पान भी करो। जब आर्यिका ज्ञानमती माताजी की माँ की शादी हो रही थी तो मालूम उनकी जननी ने उन्हें दहेज में क्या दिया था? अब तो क्रीम दे रहे हो, पावडर दे रहे हो, लिपिस्टक दे रहे हो, हिंसा की सामग्री दे रहे हो। उस माँ ने अपनी बेटी से कहा था-बेटी! ये आचार्य पद्मनन्दि स्वामी की महान् कृति ग्रन्थराज ''पद्मनन्दी पंचविंशतिका'' मैं तुझे दहेज में दे रही हूँ, तुम इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करना। जब तेरी गोद में संतान आये, तब पढ़ना। वही परिपाक देखो कैसा पका कि उस एक माँ ने जब 'पद्मनंदी पंचविंशतिका' का स्वाध्याय किया तो ज्ञानमती-जैसी बेटी को जन्म दिया। इसलिए ध्यान रखना, जिन माताओं को ये दोहला होता है कि मैं मिट्टी खाऊँ कि नमक खाऊँ, मिर्च खाना है- समझ लो इनके गर्भ में खोटी संतान बैठी है। एक वह माँ जो कहती है मुझे आज तीर्थराज सम्मेदशिखर की वन्दना के भाव आ रहे हैं। जब अभयकुमार गर्भ में आया, तब माँ को दोहला हो रहा है कि कैदियों को छोड़ दिया जाय। तभी तो बेटे का नाम अभयकुमार रखा और जब श्रेणिक के पुत्र कुणिक का जन्म हुआ तो जननी को दोहला हो रहा है कि मैं पति की छाती से लगकर रक्त का पान कर लूँ। क्योंकि गर्भ में शत्रु बैठा था। इसलिए संस्कार अपने ऐसे बनाओ कि जिनके उदर में संतान बैठी हो, वे मातायें रोज णमोकार महामंत्र की मालायें फेरें, निर्मल भाव बनाकर चलें। तब तुम्हारे घर में महावीर-जैसे पुत्र आ पायेंगे। आप नारे तो जरूर लगाते हैं कि 'पुत्र हो तो कैसे हों? आचार्य विद्यासागर जैसे हों, विरागसागर जैसे हों', लेकिन मेरे घर में न हों, पड़ोसी के घर में हो जायें। क्या कल्पनायें रहती हैं आप लोगों की? इतना महान् अवसर तुम पड़ोसी को देना चाहते हो। आप तो सोचो, विचार करो कि हमारा सोच कहाँ-कहाँ चला जाता है? एक सोच आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी का है, जो सभी आत्माओं में भगवान् देखना चाहते हैं। जिसकी दृष्टि में जो होता है, वही निहारता है। सज्जन को सर्वत्र सज्जन नजर आते हैं, दुर्जन को सर्वत्र दुर्जन ही नजर आते हैं। एक सिंह में एक जीव

भगवान् को देख रहा है। जब सिंह पंजा मार रहा है हिरण पर, तो आप क्या बोलते? देखो इस पापी को, इसने बेचारे जीव का घात कर दिया। और तुमने पापी कहा तो उसको बुरा लगा और मुड़के तुम्हारे ऊपर झपट पड़ता है। पापी को पापी नहीं कहा उन्होंने, उन्होंने तो पाप को ही पापी कहा है। तो मुनिराज क्या कह रहे थे वहाँ? 'अहो भावी भगवान्! अहिंसा का नाद करने वाले! ये आपको शोभा नहीं देता।' सिंह की आँखों से आँसू टपकने लगे। अहो! मैं भावी भगवान् हूँ। भगवान् जब बनेगा तब बनेगा, पर भगवत्ता ने जन्म तो ले लिया। पंजा मुड़ गया और पश्चात्ताप के अश्रु टपकने लगे। मुनिराज आशीष दे रहे हैं। हे मनीषियो! वह अब तिर्यंच नहीं रहा, अब वह सच्चा शिष्य खड़ा हो गया। जिस-जिस पर गुरु का आशीष आ गया, वह लोक के शीर्ष पर पहुँच गया। जैसे ही आशीष मिला गुरु का कि सम्यक्त्व प्रकट हो गया। अंत:करण से देखने वाला कह रहा है कि ये सम्यक्दृष्टि श्रावक खड़ा हुआ है, किन्तु चर्म चक्षु से देखने पर दिख रहा है कि हिंसक खड़ा हुआ है। हिंसक-पर्याय चली गई और प्रभु बनने वाली पर्याय आकर खड़ी हो गई।

अहो ज्ञानी! इन्द्रिय-भोगों के पीछे तूने योगों को विकृत किया है। मन को मलिन किया, तन को मलिन किया और वचनों को भी मलिन किया है। जबकि एक तिर्यंच भी समझदार होता है। आपने देखा हो या न देखा हो,मैंने देखा है कि एक गाय अथवा बैल को तालाब में पानी पिलाने ले जाते हो तो वह भी पैर तब रखता है, जब देख लेता है कि कीचड़ कहाँ ज्यादा है? यदि ज्यादा कीचड़ महसूस करता है तब वह बाहर आ जाता है, वह वहाँ पानी नहीं पीता है, दूसरे घाट पर जाता है। क्योंकि तृषा के पीछे फँस न जाए। अहो ज्ञानी आत्माओ! बिना पूँछ-सींग के बैलो! भोगों के दलदल में तुम फँसते चले जा रहे हो। एक बैल तो पीछे मुड़ गया, पर तुम मुड़ने का मन ही नहीं कर रहे हो।

भो ज्ञानी! पानी काम में नहीं आयेगा, एकमात्र वीतराग जिनवाणी ही काम में आयेगी। आचार्य-महाराज कह रहे हैं-यह आत्मा (एक्कलऊ) अकेली है, एकाकी है,(इंदिय रहियउ) इंद्रियों से रहित है। अब स्वभाव की दृष्टि से कह रहे हैं। एक योगी चिन्तन करता है कि मेरी आत्मा अकेली है, इंद्रियों से रहित है, इंद्रियातीत/अतीन्द्रिय है। (मण वय कायतिसुद्धि) मन, वचन, काय इन तीन की शुद्धिपूर्वक (अप्पा-अप्पु-मुणेहि) आत्मा को आत्मा से ही जानता है। ऐसा परम् योगी (तुहुँ लहु पावहि सिवसिद्धि) शीघ्र ही शिव-सिद्धि को प्राप्त कर लेगा। आचार्यश्री पुनः कह रहे हैं कि ये ध्यान रखना। (जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि) यदि तूने बन्ध को मोक्ष मान लिया तो (बंधियहि णिभंतु) निश्चय समझो कि नियम से बन्ध होगा। 'कार्तिकेय अनुप्रेक्षा' में आचार्य कार्तिकेय स्वामी लिख रहे हैं, अहो अज्ञानी आत्माओ! यदि आपने संसार में बद्ध-अवस्था में आत्मा को निर्बन्ध देखना प्रारम्भ कर दिया, ऐसी खोटी मान्यता लेकर बैठ गया, तो पूरे चरणानुयोग का विधान निष्फल हो जायेगा। साधु क्यों बना जाता है? संसार के भोग क्यों छोड़े जाते हैं? कर्मक्षय के लिये। जब

तू कर्म के क्षय से युक्त ही है, तब फिर साधना की क्या आवश्यकता है? यहाँ तू सदा शिवमति हो जायेगा अर्थात् मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। मैं तो शुद्ध बुद्ध ही हूँ- ऐसी जिसकी मान्यता है, वह अर्हत्-दर्शन में नहीं जी रहा है। हे मनीषियो! वह सदाशिव-दर्शन में जी रहा है। इसलिए भ्रांति में मत जीना। मेरी आत्मा सिद्धत्व शक्ति से युक्त तो है, लेकिन वर्तमान में मेरी आत्मा सिद्ध नहीं है। यदि आपने बन्ध को निर्बन्ध मान लिया तो बन्ध को तो नियम से बन्ध ही होगा, निर्बन्धता नहीं होगी। तो क्या करें? (सहज सरूवइ रमहि) तुम सहज हो जाओ, रत्नत्रय से मण्डिन्न सरल-स्वभाव आत्मा का सहज रूप है।

भो ज्ञानी! ''सब सहज है''-इतना सूत्र याद कर लो तो आप लोगों का घर वास्तव में ऐसा लगे जैसे साधना-स्थली हो। बेटे ने आँख से गुस्सा प्रकट किया, उसे देखकर हम भी आँख लाल कर दें तो क्या होगा? जब दो शक्तियाँ टकराती हैं तो तीसरी विसमता का ही उदय होता है। पाषाण पाषाण से टकरा जाये तो चिनगारी उत्पन्न होती है। दो अंहकार टकरा जायें तो चिंगारी उत्पन्न होती है। जंगल में खड़े सूखे बाँस में कहीं आग नहीं दिखती है, लेकिन जब उनमें घर्षण हो जाये तब अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। अहो ज्ञानी! आत्मा में दो दृष्टि देखना- भिन्न तेरी आत्मा, भिन्न तेरे परिवार की आत्मा। जब दोनों शुष्क-हृदय से टकराती हैं, तो वहाँ से राग-द्वेष, कषाय की अग्नि प्रज्ज्वलित होती है और पूरे परिवार को क्षत-विक्षत कर देती है और स्वयं के परिणामों को नष्ट कर देती है। यही भिन्न दो आत्माएँ वीतराग-भाग से टकरायें तो? आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं कि यदि अरिहंतदेव के सामने, उनकी प्रतिमा के सामने तेरा माथा टकराने लग जाये तो, भो ज्ञानी! वीतरागता की पावन ज्योति प्रकट होने लग जाये। संत के पास बैठोगे तो साधुता उदित होगी और असंत के पास बैठोगे तो वासना का उदय होगा। अब ये आपका निर्णय है कि आप कहाँ बैठना चाहते हो? यथार्थ है, इसे कोई टाल नहीं सकता है संस्कार काम करते हैं। अच्छा एक बात बताओ-दूध गरम है और आपको जल्दी पीना है तो ठंडा कैसे करोगे? पतीली आपके पास है नहीं, तो क्या करोगे? कहोगे कि, महाराज! मुँह से फूकेंगे, तो कहीं उसमें थूँक उचट जायेगा तो तुम कैसे पी पाओगे? भैया सुनो! दूध कितना ही गरम हो, मुख से न फूँकें। यदि आपने इस दूध के बर्तन को शीतल पानी के बर्तन में रख दिया तो वह सहज ठंडा हो जायेगा। ऐसे ही एक काम कर लो, जब आपको कषायें, वासनायें, क्रोधादि सतायें तब इन्हें ठंडे जल में डाल देना, सहज शांत हो जायेंगी। इतना धैर्य तो रखना ही पड़ेगा और यदि इतना धैर्य आ गया तो फिर देखो कि आपके घर की क्या व्यवस्था बनती है? यह सत्य है, कार्य सहज ही होता है। यदि सहजता के अभाव में आप आक्रोश कर लेते हैं तो काम बिगड़ जाता है। जब भी काम बने हैं, सहजता में बने हैं। मार्ग जितना भी है, सब ठंडे का ही है। इसलिए शीतलस्वभावी, समरसी-भाव-स्वरूपी कहा है आत्मा का स्वभाव। उष्ण-स्वभावी नहीं कहा, अग्निस्वभाव भी नहीं कहा। आत्मा की चर्चा जब भी आती है तो क्या आती है? सरल, शीतल स्वाभावी है आत्मा।

इसलिए, मनीषियो! शिव-सुख चाहते हो तो सरल-स्वभावी हो जाओ। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं कि सम्यक्दृष्टि जीव ने यदि अपने सहज भाव से एक क्षण के लिये भी सम्यक् की आराधना कर ली तो कुगति बंद हो गई। कितना सरल उपाय है। क्या जाता है? देखो, एक बात सुनाऊँ, यदि आप ज्ञान करना चाहें तो पुस्तक की, कलम की, कागज की जरूरत पड़ेगी। संसार के सुख भोगना चाहते हो तो उसमें भी सामग्री की जरूरत पड़ती है और यदि चारित्र धारण करना चाहो तो आपको घर छोड़ना पड़ता है। लेकिन ये बताओ कि श्रद्धा करने में तुम्हारा क्या जाता है? न किसी से कुछ माँगना पड़ता है, न किसी को कुछ देना पड़ता है। आप श्रद्धा करने लग जाओ तो आपके प्रति श्रद्धा बढ़ेगी। आज आपने घर जाकर पिताजी के पैर दबाये, चार दिन लगातार पैर दबाना आप और पाँचवे दिन आप घर का माहौल देखना। आपका बेटा कहेगा-पापा! मुझे भी दबाना है, आपके पैर मैं दबाऊँगा। पिताजी बोले-क्यों? बोला-आप दबाते हैं न दादाजी के। भो ज्ञानी! चरण छूने में वह शक्ति है कि कितना भी कुपित व्यक्ति हो उसके चरण छू लो आप, मुँह से कुछ नहीं कहना, वह शांत हो जायेगा। वंदना की यही तो महिमा है। इसलिए सम्यक्दृष्टि जीव झुका होता, नम्र होता है। जो मनुष्य नम्र हो जाता है, वह नभ में पहुँच जाता है। झुकने में जो आनंद है, वो खिंचने में नहीं है। खिंचेगा तो टूट जायेगा और झुकेगा तो बच जायेगा। बांस खिंचा रहा तो गिर गया और घास झुकी थी, अतः बच गयी। सम्यक्दृष्टि जीव की पहली पहचान है कि वह श्रद्धा से लबालब भरा होता है और एक ज्ञानी, सम्यक्दृष्टि, चारित्रवान् वहीं होता है जो निर्मलता, सरलता और सहजता से भरा होता है तथा श्रद्धा से झुका होता है। सुनो, इस पर्याय से तुम चाहे राग कर लो चाहे द्वेष कर लो, पर 'मैं' नष्ट नहीं होऊँगा, ये पर्याय नष्ट हो जायेगी। जिसे देखकर तुम द्वेष कर रहे हो, जिसे देखकर तुम राग कर रहे हो, उसका तो राख होना सुनिश्चित है, परन्तु आत्मा को तो नियम से भगवान् बनना ही है। उसे तो तुम सिर झुकाओगे ही। इसलिए राख के पीछे राग-द्वेष करके कर्म का बंध मत करो। सम्यक्दृष्टि जीव श्रद्धा से लबालब भरके चौबीस घंटे, चकोर की भांति, ज्ञान और चारित्र की ओर निहारता है। जीवन में ध्यान रखना। मनीषियो! एक चील होता है और एक चकोर होता है। चील महान् नहीं है, क्योंकि वह आकाश में उड़ती है, किंतु नीचे माँस के टुकड़े को देखती है। यदि आपने महानता के स्वरूप को प्राप्त कर लिया और दृष्टि तुम्हारी छिद्रान्वेषी है तो ध्यान रखना, तुम्हारी दृष्टि चील की है। एक चकोर जमीन पर बैठा होता है और आकाश में चाँद को देखता है। हमें चील नहीं बनना है, हमें चकोर बनकर चलना है। इस बात को आचार्य महाराज कह रहे हैं- यदि ऐसा चिंतन बन जाये, तब समझना कि संसार चुल्लू-प्रमाण रह गया है। चुल्लू में जल भर लो, कितने समय तक रहेगा? एक क्षण को भी यदि सम्यक्दर्शन हो गया, उनका संसार तो एक चुल्लू में रखे पानी के समान हो गया, जो नियम से एक-एक बूँद टपकते-टपकते नष्ट हो जायेगा। (सम्माइट्ठी-जीवडहँ) सम्यक्दृष्टि जीव का (दुग्गइ

गमणु ण होइ) दुर्गति में गमन किंचित भी नहीं होता है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में स्पष्ट वर्णन किया है कि सम्यक्दृष्टि जीव मरकर स्त्री नहीं होता, नपुंसक नहीं होता, नरक में नहीं जाता, तिर्यंच भी नहीं बनता और मनुष्य से मनुष्य भी नहीं बनता, नियम से देव ही बनता है। यदि कदाचित् उसने पूर्व में मिथ्यात्व-अवस्था में आयु का बंध कर लिया तो फिर भोगभूमि का तिर्यंच बनेगा, भोगभूमि का मनुष्य बनेगा। कर्मभूमि से कर्मभूमि में जन्म नहीं होता है और यदि बंध नहीं किया, तो नियम से देव होगा। लेकिन आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं- (जइ जाइ वि तो), यदि सम्यग्दृष्टि जीव दुर्गति में चला भी गया, तो इसमें सम्यक्त्व का दोष नहीं है। क्या चिंतन चल रहा? (पुव्व-क्किउ खवणेइ) यह तो जो मैंने पूर्व में बंध कर लिया था, उसका क्षय कर रहा हूँ। मैं सम्यक्त्व के कारण नरक में नहीं गया। राजा श्रेणिक क्षायिक-सम्यक्त्व की महिमा से नरक नहीं गया। सम्यक्दृष्टि जीव प्रथम-नरक तक जा सकता है, लेकिन कब? पूर्व में मुनि महाराज के गले में साँप न डाला होता तो, हे राजा श्रेणिक! आज तुम्हें नरक के साँपों के बीच नहीं जाना पड़ा होता। भैया! पाप-बंध करने से पहले जरा सोच लिया करो। अहंकार में डाल तो दिया गले में साँप, लेकिन कर्म का साँप तो पड़ गया। इसलिए यहाँ आचार्यश्री कह रहे हैं कि (अप्प सरूवहँ जो रमइ) आत्मस्वरूप में जो रमण करता है (सहु ववहारू छंडिवि) सभी व्यवहार-पक्ष को छोड़कर (सम्माइट्ठी हवइ) ऐसा वीतराग-चारित्र का अविनाभावी वीतराग सम्यक्दृष्टि जीव (लहु भवपारु पावइ) शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है।

भो ज्ञानी आत्माओ! उसी परम् सम्यक्त्व की आराधना की ओर बढ़ो, ज्ञान-चारित्र की ओर बढ़ो। कौन, कब, क्या है? ये विकल्प अनादि से किये हैं, और करते आ रहे हो। इनसे अभी तक सिद्धि नहीं मिली तो आगे क्या सिद्धि हो पायेगी? किसी के बारे में हम सोचें तो तत्क्षण अशांति होती है। यदि किसी ने वास्तव में गलती की है, किसी ने आज रात्रि में भोजन कर लिया और आपके सामने उन्होंने त्याग किया था। उनके बारे में आप सोचो, उन्होंने तो भोजन कर लिया, उन्हें तो बंध हो गया, लेकिन आप जो उनके बारे में गलत सोच रहे हैं, उस क्षण आपको भी अशुभ बंध हो रहा है। बल्कि आपको यह सोचना चाहिए कि हो सकता है कि कोई विसमता हो, तो हम चलकर उन्हें समझायेंगे कि आपको ऐसा नहीं करना था। यह तो उपगूहन हो गया, स्थितिकरण हो गया। यदि आपने चार लोगों में जाकर कह दिया-अरे भैया! हमने देखा था, उन्होंने छोड़ा था और खाने लगे। यह धर्मात्मा की हँसी हो गयी। मनीषियो! ध्यान रखना, हम परम्-तत्त्व की ओर बढ़ें, सम्यक्तत्व के आठ अंगों की ओर भी निहारें, तभी हम सम्यक्त्व के आठ अंगों को प्राप्त कर सकेंगे।

- भगवान् महावीर स्वामी की जय।

दृष्टि को निर्मल कर, तू है केवलज्ञानस्वभावी

योगसार

जो सम्मत्त-पहाण बुहु, सो तइलोय-पहाणु।
केवल-णाण वि लहु लहइ, सासय-सुक्ख-णिहाणु ॥90॥

अर्थ- जिसके सम्यक्त्व का प्राधान्य है, वही पंडित है और वही त्रिलोक में प्रधान है। वह जीव शाश्वतसुख के निधान 'केवलज्ञान' को भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

अजरु अमरु गुण-गण-णिलउ, जहिं अप्पा थिरु ठाइ।
सो कम्मेहिं ण बंधियउ, संचिय-पुव्व विलाइ॥91॥

अर्थ- जहाँ अजर-अमर गुणों की आधारभूत आत्मा स्थिर हो जाती है, वहाँ जीव कर्मों से बद्ध नहीं होता और वहाँ पूर्व में संचित किये हुए कर्मों का ही नाश होता है।

अध्यात्म देशना

मनीषियो!

आज हम सर्वज्ञ देशना का पान कर रहे हैं। श्रद्धा की महिमा देखो-व्रत नहीं, कोई संयम नहीं, फिर भी, मनीषियो! वह सम्यग्दृष्टि जीव है। आचार्य भगवान् समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरन्ड श्रावकाचार' में लिखा है -

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ् -नपुंसक-स्त्रीत्वानि।
दुष्कुल-विकृताल्पायुदरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥35॥

वह सम्यग्दर्शन से पवित्र आत्मा दुष्कुल में जन्म नहीं लेता, दरिद्री नहीं होता, पशु नहीं होता, तिर्यंच नहीं होता, स्त्री नहीं बनता, नपुंसक नहीं बनता, कभी भिखारी नहीं बनता। यह सम्यक्त्व की महिमा है। जीवन में अगर एक क्षण भी सच्ची आस्था ने जन्म ले लिया तो, मनीषियो! आस्था का रास्ता तैयार हो गया। बहुत कुछ पाया है, बहुत कुछ सीखा है, लेकिन ध्यान रखना कि श्रद्धा का पाना, श्रद्धा का सीखना बहुत कठिन है। यदि श्रद्धा है तब, मनीषियो! पाषाण में भी भगवान् हैं, आस्था है तो कागजों में भी जिनवाणी है। आस्था नहीं है तो मनीषियो! कहीं कुछ भी नहीं है। जब भी कोई काम करो तो श्रद्धा को देखो! बहुत बड़ा आश्चर्य है कि एक व्यक्ति को मिट्टी की प्रतिमा में गुरु झलक गए। जब साक्षात् गुरु पहुँचते हैं, तब भी कहता है कि मैं अपने गुरु से पूछकर आता हूँ, हमारे गुरु का जो आदेश होगा, वह मुझे स्वीकार होगा। यह श्रद्धा बोल रही थी, यह विश्वास बोल रहा था।

गोमटेश बाहुबली स्वामी का अभिषेक होने पर, मनीषियो! मैसूर-नरेश, गोमटेश के चरणों का अनन्य भक्त, गंधोदक नहीं लेता था वरन् दक्षिण की परम्परा के अनुसार वहाँ पर

जाकर गंधोदक को पी लेता था। शत्रु-सम्राट ने जानना चाहा कि इसकी मृत्यु किस प्रकार हो सकती है? बहुत प्रयास किया तब उसे मालूम चला कि यह बाहुबली के चरणों में जाता है और वहाँ के पुजारी से गंधोदक लेकर का पान करता है। बोले, इससे सुन्दर मौका और कोई नहीं होगा। संसार में जब भी तेरा कोई शत्रु होगा, तो वह लोभ ही होगा। लोभ जो है वह मित्र को शत्रु बना देता है। सबसे बड़ा कोई घातक द्रव्य है विश्व में तो उसका नाम है लोभ कषाय। इसलिये उसे पाप-का-बाप कहा जाता है। शत्रु-सम्राट ने उस पुजारी को लोभ दे दिया और कहा कि आप एक काम मेरा कर दो, भगवान् गोमटेश के गंधोदक में आप जहर मिला दो। ओफ हो! और जब मैसूर-नरेश प्रभु के चरणों के गंधोदक का पान करें, उसमें आप उसको मिला देना। लेकिन यथार्थ यह है कि तुम जहर मिला सकते हो, पर मार किसी को नहीं सकते। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जहर भी जीवन का हेतु बन जाता है। आस्था चाहिए, श्रद्धा चाहिए। अपने समय पर जब मैसूर-नरेश पहुँचता है, पुजारी से कहता है कि मुझे प्रभु के चरणोदक को दे दीजिये, तो पुजारी अन्दर जाता है, देर लगती है। कटोरे को लेकर आया तो सम्राट कहता है कि आप विलम्ब क्यों कर रहे हो? कुछ भी कहो, लोभ-परिणति पाप करा रही थी, परन्तु अन्तर का मन झकझोर रहा था कि यह तुम कौन-सा महान पाप करने जा रहे हो, जो अरहंत देव के चरणों में तुम एक सम्राट को जहर पिला रहे हो। 'पुजारी जी! कल तक तो आप एक सहज भाव से मुझे तुरंत दिया करते थे, आज आपने विलम्ब भी किया है, आपका हाथ क्यों काँप रहा है?' अपने बुंदेलखण्ड में एक कहावत है- पाप जो होता है न, वो मगरे पर चिल्लाता है, किसी का छुपता नहीं है। कहते हैं न कि, भैया! कितना भी कर लो, लेकिन ध्यान रखो, पाप मगरे पर चिल्लायेगा। राजा कहने लगा कि आप दीजिये न। पुजारी पाप को छुपा नहीं पाया,बोला- 'राजन्! क्षमा करना। रोज हम आपको प्रभु का चरणोदक देते थे, आज यह विष है, जहर है। मेरा क्रूर हृदय आपको जहर दे रहा, लेकिन मन गवाही नहीं दे रहा है, इसलिये हाथ काँप रहे हैं।' राजा बोले- 'जहर कहाँ है? जहर कहाँ? जहर है ही नहीं। मुझे तो प्रभु के चरण का गंधोदक चाहिये है, आप तो मुझे दीजिये।' वह कहता है- हम आपके लिये दूसरा कटोरा लेकर आते हैं। बोले-बिल्कुल नहीं, मेरी श्रद्धा गोमटेश पर है, वे मेरी आस्था के प्रभु हैं। यदि जहर का प्याला भी होगा तो वह अमृत का ही प्याला होगा और राजा ने जबरदस्ती कटोरे को छीन लिया और जहर को पी लिया। जैसे ही कटोरे को पिया, मनीषियो! कोई परिणमन नहीं हुआ, और सम्राट ने प्रसन्न होकर उस पुजारी को मुद्राएँ निकालकर दे दी। जहर तुमने नहीं मिलाया था, जहर लोभ ने मिलाया था। आप तो वही पुजारी हो जो रोज मुझे गंधोदक देते थे। आस्था थी तो जहर का प्याला पी लिया, लेकिन मृत्यु नहीं हुई। यह कोई पुरानी कथा नहीं है, यह कुछ ही समय पहले की कथा है। यह श्रद्धा का विषय है, यह आस्था का विषय है। इसलिये, जीवन में ध्यान रखना कि सर्वस्व न्यौछावर हो जाये, लेकिन प्रभु से प्रार्थना करना, भगवन! मेरे अंत:करण

से मेरा घर सूना हो जाये, मेरा परिवार सूना हो जाये, लेकिन मेरे घर के अंदर श्रद्धा का दीप न बुझ जाये। दीप जलता रहेगा तो, भो ज्ञानी! लोग आते रहेंगे। लेकिन दीप बुझ गया तो ध्यान रखो, अंधेरे में बगल का व्यक्ति भी नहीं दिखता है, ऐसे ही तुम प्रभु के बगल में बैठे होगे और श्रद्धा का दीप तुम्हारे पास में नहीं होगा तो अरहंत देव तुम्हें नजर नहीं आयेंगे।

मनीषियो! आज की घटना मैं बताऊँ कि जब हमने भगवान् नेमिनाथ की वंदना की तो इधर के नेमिनाथ दिख गये, छोटे मंदिर में नेमिनाथ दिख गये। हमने कहा-देखो, जिसने वेदी का निर्माण कराया होगा उसने कुछ विवेक तो लगाया है। भले ही दिशायें गलत हैं, लेकिन एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को देख रहे हैं, तब सब दिशायें शुद्ध हो गयीं। दृष्टि में दृष्टि है और इतनी सुन्दर झलक महसूस हुई कि वैसा तो सामने जाकर दर्शन करने पर भी आनंद नहीं आता। वह झलक एक क्षण को महसूस हुई। अचानक दृष्टि मुड़ गयी, भगवान् नेमिनाथ स्वामी और नेमिनाथ स्वामी। अहो मनीषियो! छतरपुर की आत्माओ! यहाँ पर नेमिनाथ ही नेमिनाथ का साम्राज्य है। नेमिनाथ का साम्राज्य यदि तुम्हारे हृदय में छा जाए तो तुम भी नेमिनाथ बन जाओगे। कैसे बनोगे? आस्था, श्रद्धा और विश्वास के साथ। इस बात को आज आचार्य महाराज नब्बे-वीं कारिका में सम्यक्त्व की महिमा को गाकर बता रहे हैं, जो कि धर्म-की-जड़/धर्म-का-मूल है, मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है। यदि मोक्षमहल का पहला कोई सोपान है तो, मनीषियो! ध्यान रखना, सम्यग्दर्शन है, निर्मल आस्था है।

विश्व में यदि कोई अभूतपूर्व रत्न है तो सम्यक्त्व है। जैसे आप एक जड़-रत्न की रक्षा के लिये उसे डिब्बी के अंदर डिब्बी में रखा करते हो, फिर मखमल के कपड़ों में रखते हो, कि कहीं गुम न जाए। जिसके गुम जाने पर तेरा कुछ भी नहीं जाएगा, उस जड़ रत्न की इतनी चिंता है, पर श्रद्धा की आपको किंचित- भी परवाह नहीं है।

जीवन में एक बात ध्यान रखना, यदि कोई तेरे नेत्र को भी फोड़ रहा हो, हाथ-पैर भी तोड़ रहा हो, तब इतना विकल्प नहीं करना, कह देना-भैया! तूने कम-से-कम मेरे शरीर के अवयवों का ही तो ह्रास किया है। पर यदि कोई तुम्हारी श्रद्धा को डिगाने आ जाए, तो जरूर चिंता करना। यह जीवन में ध्यान रखना, हाथ-पैर का घात करनेवाला उतना हिंसक नहीं होगा, पर वह जीव महान हिंसक, महान पापी होगा, जो दूसरे के सम्यक् श्रद्धान को चकनाचूर कर रहा हो। इस पंचमकाल में वैसे तो कितनी श्रद्धा है? कितने धर्मात्मा हैं? और फिर ऐसे निमित्त हम उपस्थित कर दें तो? अहो ज्ञानी! आपकी किसी वृत्ति से, आपकी किसी चर्या से यदि दूसरे के सम्यक्त्व में गड़बड़ी आती है तो ध्यान रखना, उसका दोष तुमको ही लगेगा, यह सुनिश्चित है, क्योंकि आपकी वृत्ति दूसरे के अश्रद्धान का हेतु बनी। कोई जीव रोज मंदिर आता था और आपने उसके साथ व्यवहार ऐसा किया कि बेचारे का मंदिर आना छूट गया। यह क्या किया आपने? बुलानेवाले बहुत कम मिलेंगे, भगानेवाले बहुत मिल

जाते हैं। एक जिनबिम्ब के दर्शन करने से पता नहीं किसके भाव बदल रहे थे। जिनबिम्ब के दर्शन करने में कभी किसी को बाधा नहीं डालना, बड़े प्रेम से बिठा लेना, बुला लेना, भैया! आओ। देव-दर्शन, जिनबिम्ब दर्शन, जातिस्मरण, धर्मोपदेश यह मनुष्य पर्याय में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के हेतु हैं। कहीं भी धर्मोपदेश चल रहा हो तो आप जिनेन्द्र की देशना को सुनने बैठ जाना, पता नहीं कौन शब्द हमारे अंदर के मिथ्यात्व को विगलित करके सम्यक्त्व को प्रकट करा दे। यदि एक जिनालय में हजार प्रतिमाएँ हैं, तुम हजार प्रतिमाओं की वंदना कर लेना, एक-एक भगवान् को निहार लेना, पता नहीं कौन प्रभु की दृष्टि मेरी दृष्टि खोल दे। भगवन्! हम आपको देखने नहीं आते, हम अपनी दृष्टि को निर्मल करने के लिये आते हैं। यह भाव कभी नहीं लाना कि, महाराजश्री! हम इसलिए छतरपुर के बाहर नहीं जाते कि यदि मैं चला जाऊँगा तो मेरी वेदी के भगवान् की पूजा कौन करेगा? ऐसा नहीं कहना। आप ऐसा कहना कि, महाराज श्री! मैं इसलिए नहीं जाता हूँ कि यदि मैंने अपने भगवान् को देखना बंद कर दिया, तब मेरी आँखों के पटल पर कोई मिथ्यात्व के देवता की दृष्टि न पड़ जाए।

मानतुंग स्वामी जेल में बंद हैं, किंतु श्रद्धा देखना, विश्वास था उन्हें, वह भी कर्म-सिद्धान्त को जानते थे। प्रभु! आप किसी के बंधन बांधते नहीं, आप किसी को बंधन में डालते नहीं, फिर भी भव्य आपकी अवन्दना करके बंधन से छूट जाता है। क्या कह रहे थे मानतुंग स्वामी? हे नाथ! आपसे बुरा तो संसार में कोई नहीं है। आचार्य की वंदना चल रही है। हे नाथ! आपसे बुरा संसार में कोई नहीं है। क्यों? वे आदीश्वर कहने लगे-मानतुंग! आप ऐसा क्यों कह रहे हो कि मेरे समान बुरा कोई नहीं है, हम तो विश्व में सबसे नीखरे हैं? बोले-महाराज! ऐसे नीखरे हो। बोले-कैसे? जो आपके पास एक बार भी आ जाता है, वह किसी दूसरे के पास जा नहीं पाता है, इसलिए आपसे खराब कौन होगा? यह ब्याज-स्तुति है, यह निंदा-स्तुति नहीं है। हे भगवान्! आपकी अपूर्व महिमा है। जो क्षीरसागर का पान कर लेता है, वह समुद्र का खारा पानी क्यों पीने जाएगा? इसलिए समुद्र का खारा पानी पहले जिसने पी लिया, वह तो क्षीरसागर पर आ जाता है; परन्तु जिसने क्षीरसागर के जल का ही पान कर लिया हो, वह खारे नीर को पीने कभी नहीं जाता है। इसलिए आप बुरे नहीं हो, आप अच्छे ही हो। यह आचार्य महाराज की भक्ति थी, यह विश्वास बोल रहा था, उसी का परिणाम देखो कि अड़तालीस ताले टूट गये।

भैया! भक्तामर वही है, भगवान् वही हैं, लेकिन मानतुंग-जैसी भक्ति मेरे पास नहीं है। भैया! एक-सौ-अड़तालीस ताले टूट जायेंगे, मगर करना पड़ेगी सच्ची भक्ति आपको। मेरी आत्मा में तो एक-सौ-अड़तालीस ताले लगे हुए हैं। किसके? कर्मों के ताले। और वादिराज सिंह सूरि ने तो 'एकीभाव स्तोत्र' में तो स्पष्ट लिख दिया है, भैया! ध्यान से समझना, कि हे भगवन्! यह परम् सत्य है कि तपस्या से मोक्ष होगा, लेकिन मेरा विश्वास कहता है कि कितनी ही घनघोर तपस्या कर लो, निर्मल साधना कर लो लेकिन, प्रभु! बात यह है कि चाहे

वह सोने की सलारवाएँ हों, चाहे बड़ी-बड़ी तलवारें हों, यदि भवन में गेट हो और गेट पर ताला लगा हुआ हो, तब तलवार काम नहीं आयेगी, वहाँ तो चाबी ही काम आयेगी। हे नाथ! यह मोक्ष का महल है। इस मोक्ष के भवन पर मोह का ताला पड़ा हुआ है। इस मोह के ताले को खोले बिना भवन में प्रवेश होगा कैसे? क्या करूँ? हे प्रभु! भक्ति कुजकेयं, भक्तिरूपी चाबी घुमा दो, तब मोक्षमहल का ताला खुल जायेगा और तेरी आत्मा मोक्षमहल में प्रवेश कर जायेगी। इसलिए उस चाबी की आवश्यकता है और, मनीषियो! यह चाबी है भक्ति। और भक्ति तभी होगी जब विश्वास होगा, जिसके पास निर्मल श्रद्धा होगी, सम्यग्दर्शन होगा।

इसलिए ध्यान रखना, दुनियाँ के लोग कुछ भी कहें, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, पर दुनियाँ में रहकर मुझे क्या करना है, इससे मुझे प्रयोजन है। दुनियाँ के लोग क्या कर रहे हैं, विश्व में क्या-क्या हो रहा है, इससे मेरा कल्याण नहीं होगा। विश्व में रहकर मुझे विषयों से बचना है, इससे मेरा कल्याण होगा। कौन कल्याण करेगा? निमित्त कुछ समय के लिये आवश्यक है, परन्तु अंत में तुम्हें अपना उपादान ही निर्मल करना पड़ेगा। यह सत्य है कि गुरु तुमको पिच्छी दे देगा, कमण्डल दे देगा, केशलुन्चन करा देगा, मुनि बना देगा, लेकिन ज्ञानी गुरु भी तुमको गुणस्थान नहीं दे पायेंगे। गुणस्थान आपकी स्वयं की परिणति होगी। ऐसे ही व्यवहार-सम्यग्दर्शन आपके लिए मंदिर ला सकते हैं, आपको जिनवाणी सुना सकते हैं, आपको गुरुओं के पास बिठा सकते हैं, लेकिन, भो ज्ञानी! श्रद्धा तो प्रकट आपको ही करना पड़ेगी। एक माँ अपने बेटे को अस्वस्थ देखकर बड़ी करुणाबुद्धि से उसको औषधि का पान कराती है, लेकिन बेटा दाँत बंद कर लेता है। वह कैसे पान कराये? लेकिन फिर भी माँ के हाथ में बात थी, वह नाक को पकड़ लेती है और जैसे ही बेटे की नाक को पकड़ा कि बेटे का मुख खुल गया और धीरे से माँ ने औषधि डाल दी। ओ माँ! आपकी यहाँ तक तो ताकत चल गयी कि तुमने नाक पकड़कर मुख खुलवा लिया और जैसे ही तुमने चम्मच डाली और जैसे ही छोड़ा, उसने धीरे से औषधि बाहर निकाल दी। मुख में तो औषधि डाल सकती हो, लेकिन गुटकना तो स्वयं को ही पड़ेगा। ऐसे ही निमित्तों के पास तो हम आपको बिठाल सकते हैं, पर उपादान तो आपको स्वयं ही जागृत करना पड़ेगा। श्रद्धा दूसरे का विषय नहीं है, यह आत्मभूत-दृष्टि है, अनात्म-लक्षण नहीं है, परदृष्टि नहीं है, यह निज की दृष्टि है।

इसलिये ध्यान रखना, कि आँख साफ नहीं है तो, भैया! क्या दिखेगा? आवश्यकता दीवाल को साफ करने की नहीं है, आवश्यकता आँख को साफ करने की है। आँख साफ है, तब दीवाल जैसी है वैसी ही दिखेगी और आँख साफ नहीं है तो सफेद चूने से पुती दीवाल भी तुमको पीली नजर आयेगी। यह दोष दीवाल का नहीं है, यह दोष तुम्हारी दृष्टि का है। ऐसे ही जिसकी दृष्टि पर मिथ्यात्व का कीचड़ लगा हुआ है, मिथ्यात्व का पीलियारोग हो चुका है, उसे साक्षात् अरहंतदेव भी दिख जाएँ तब भी उनमें दोष दिखेगा। और जिसकी दृष्टि निर्मल है उसे, मनीषियो! आठ वर्ष के मुनिराज में केवली भगवान् नजर आयेंगे। वह दृश्य कितना

अनुपम होगा जब आठ वर्ष के केवली भगवान् गंध-कुटी में बैठे होंगे और साठ वर्ष के 'नमोस्तु-नमोस्तु भगवान्' कह रहे होंगे, तब सोचो कैसा लगता होगा? क्या अनुपम दृष्टि है कि सम्यक्त्व की योग्यता एवं दीक्षा आठ वर्ष में हो जाती है। आठ वर्ष की उम्र में, मनीषियो! केवली भगवान् बनने की योग्यता है। इसलिए आप लोग घबराना नहीं, आप लोग तो बहुत लम्बी-लम्बी आयुवाले हो गये हो। कोई कहे कि अभी तो हम छोटे हैं। अभी हम छोटे नहीं हैं, अभी तो हम बहुत बड़े हैं। वास्तव में छोटा वह है जिसके अंतरंग में श्रद्धा के भाव नहीं जगते, जिसके अंतरंग में चारित्र के भाव नहीं जगते, जिसके अंतरंग में सम्यक्ज्ञान के प्रति ललक नहीं है। सबसे छोटा/बालक है वह, जो चारित्र से अनभिज्ञ है। उससे छोटा/बालक कोई विश्व में है नहीं। संयम की अपेक्षा से वह बालक है, उम्र से भले ही वह अस्सी साल के हो गये हों। जैन-आगम में एक या दो प्रकार के बालक की चर्चा नहीं है, अनेक प्रकार के बालकों की चर्चा है। ज्ञानबाल, दर्शनबाल, चारित्रबाल, और उम्रबाल। उम्रबाल से यहाँ प्रयोजन नहीं है। यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र बाल से प्रयोजन है। इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं (जोसम्मा-पहाण) जो जीव सम्यक् में प्रधान है, ऐसा ज्ञानी (बुहु सो तइलोय पहाणु) तीन लोक में प्रधान है। मालूम है-श्वान भी देव हो जाता है और देव भी श्वान हो जाता है। किसकी महिमा है?

श्वापि देवोऽपि देव:श्वा, जायते धर्मकिल्विषात्।
कापि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम्।।29।। रत्न.श्रा।।

अहो मनीषियो! इस सम्यक्त्व की महिमा से एक श्वान भी देव-पद को प्राप्त हो जाता है और मिथ्यात्व की महिमा से देव भी श्वान हो जाता है। यह कभी नहीं सोचना कि, महाराज श्री! हम लोग तो मुनष्य हैं, जो कुछ धर्म का ठेका है वह हमारे ही पास है। नहीं, नहीं, एक सुअर की पर्याय में भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है, एक तिर्यंच भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है। प्रतिमाधारी व्रती बालक पंचम गुणस्थान तक प्राप्त कर लेता है। भगवान् पारसनाथ की पर्याय से पहले जब वे हाथी की पर्याय में थे, तब उन्होंने बारह व्रतों को स्वीकार किया। अब आप कहेंगे कि महाराजश्री! अष्ठमी, चतुर्दशी का व्रत कैसे पालन करते होंगे, प्रायश्चित्त पर कैसे ध्यान रखते होंगे? मालूम है, जो जीव जैसा है, वैसी ही उसके लिये व्यवस्था है। जिस पानी पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं, जिस पानी में अन्य पशु निकल चुके हैं, उस पानी को पीता था, वह पानी उसके लिए प्रासुक था। सूखे पत्ते चबाता था, क्योंकि हरियाली नहीं खाता था। ओ हो! जब बैठता था, चलता था तो अपनी सूँड़ से फूँककर चलता था, फूँककर बैठता था। कैसे ईर्यापथ का पालन कर लेता था, कैसे संयम का पालन कर लेता था? यही तो प्रभाव है कि समाधिमरण करके स्वर्ग में देव होता है। वे ही भगवान् पारसनाथ बने थे। इसलिए ध्यान रखना, इस अहंकार में मत बैठे रहना कि मैं ही सबकुछ हूँ किसी जानवर के सामने। अभी वह बंदर या तिर्यंच के रूप में तुम्हारी सब परिणति देख रहा है कि, ओ हो! आप ऐसे रूप में हो

और ऐसी प्रवृत्ति कर रहे हो। उसकी श्रद्धा में दोष आ जाएगा।

मालूम, बंदर ने महाराज का आहार देखा, नेवले ने महाराज का आहार देखा, सिंह ने आहार देखा, सुअर ने महाराज का आहार देखा, सर्प ने मुनिराज का आहार देखा। क्या सोच रहे थे? हे भगवान्! इनकी आहार-चर्या निर्दोष हो जाए। वे ही तो चार जीव भरत, बाहुबलि आदि बने। आप कैसे कहते हैं कि, महाराज श्री! हम ही सब कुछ हैं? सुनो, कभी-कभी आपके मकान में बैठी चिड़िया भी आपकी प्रवृत्ति को देखकर कुछ सोच लेती है। वह गिद्धराज जटायु से पूछो न। उस दिन मुनिराज ने नियम लिया कि जंगल में कोई आहार देगा तो आहार करूँगा, अन्यथा उपवास करूँगा। यह कभी मत सोचना कि, महाराज श्री! मैं सब कुछ कर लेता हूँ। अरे तेरा और सामने वाले का पुण्य होना चाहिये। उस जंगल में कौन चौका लगाने जा रहा था, कौन उनको आहार दे रहा था? पर विधि देखो। यदि विधि है, तो सर्वत्र विधि है। विधि नहीं है तो विधि भी विधि नहीं होती है। उधर रसोई तैयार हो गई। मालूम है कि मिट्टी के बर्तनों में भोजन बना, पर आप नहीं बनाना, ध्यान रखना, एक दिन का ही उनका उपयोग होता है। और सीता कह रही थी राम से-स्वामी! जब हम सभी अवधपुरी में थे तब तो मुनिराज को आहार दिया करते थे, आज कोई पात्र नहीं मिल रहे। कैसे अपने व्रत का पालन करें? देखो भक्त की भावना। यहाँ तो तुमको सामान्यतया मुनि मिलते हैं। उधर मुनिराज प्रतिज्ञा लिए घूम रहे थे कि जंगल में विधि मिलेगी। मनीषियो! मुनिराज नियम लेकर आ गये कि मैं आहार करूँगा और वहाँ दूसरे बर्तन थे ही नहीं। उधर राम ने और सीता ने पड़गाहन कर लिया और मुनिराज की विधि मिल गई, क्योंकि विधि थी न, इसलिए विधि मिल गई और जैसे ही विधि मिली कि सामने जटायु बैठा है वृक्ष पर। ओ हो! काश मैं भी मनुष्य होता तो आज योगी के कर में ग्रास रख देता। यह हाथ हाथ नहीं है, साँप के फण हैं, जिन हाथों ने कभी मुनि के कर पर ग्रास नहीं रखा। वह शीश शीश नहीं है, वह तो सड़ा नारियल है, जो साधु परमेष्ठी के चरणों में झुका नहीं है। वे दो नेत्र नहीं, काँच के दो गोलक हैं, जिन्होंने कभी साधु संतों को देखने का मन न किया हो। जटायु बैठा-बैठा सोच रहा था- भगवन्! मै आहार दे तो नहीं सकता, लेकिन अनुमोदन तो कर ही सकता हूँ। देखो महिमा अनुमोदन की। अपनी भक्ति को रोक नहीं सका।

जैसे ही महाराज के आहार पूर्ण हुए कि पक्षीराज उड़कर उन बर्तनों के ऊपर जाकर बैठ गए और उसकी भक्ति के प्रभाव से उसके पंखों का वर्ण बदल गया, स्वर्ण-जैसे पंख लगने लगे। और मालूम है कि मुनिराज ने एकबार पक्षी को देखा तो दूसरी बार सीता को देखा। अब यहाँ आपसे जरूर चर्चा करेंगे। पर धन्य हो उस महान सती को, जिसने मुनिराज के मुख की मूक वाणी को समझ लिया। महाराज मालूम क्या सोच रहे थे? सोच रहे थे कि सीता चाहे तो इस गिद्ध को मैं मांस का त्याग करा दूँ। और मैंने त्याग करा दिया, पर इसका पालन किसी ने नहीं कराया तो इसका व्रत भंग हो जायेगा। अहो छतरपुर की सीताओ! धन्य हो उस सीता

के लिए। वह कहने लगी-महाराज! आप तो नियम दिला दो, इसका पालन मैं कराऊँगी, जब तक मेरा जीवन रहेगा, मैं इसको शुद्ध भोजन कराऊँगी। पर धिक्कार हो उस माँ को जो अपने पति और बच्चे को शुद्ध भोजन नहीं करा पा रही है। तुम गिद्ध हो क्या? गिद्ध-भोजन कराओगी? आप यदि शुद्ध भोजन बना देंगे तो वे फेंककर नहीं जाएँगे, विश्वास करो। मालूम है, एक माँ अपने बेटे से कह देती है कि बेटा, अभी तुम एक महीने के लिए अशुद्ध भोजन छोड़ना, महाराज तो एक साल का कह रहे हैं। तुम कहीं पार्टी में गए, तो क्या करोगे? धिक्कार हो ऐसी माँ को, जो संयम से भगा रही है। महाराज! आप तो नियम दिला दो, उसका पालन मैं कराऊँगी।

इसलिए, जीवन में ध्यान रखना, कम-से-कम आज इतनी शिक्षा तो ले ही लेना कि अभक्ष्य-द्रव्य का सेवन बच्चों को मत कराना। पता नहीं तुम्हारा कौन-सा बालक देश का महान् संत बननेवाला हो और तुमने कैसा उसको अभक्ष्य खिलाया। जिनसेन स्वामी ने लिखा है कि आठ वर्ष तक बेटे का जो पाप-पुण्य होगा वह माता-पिता के सिर पर है। यदि बेटा रो रहा है तो आपने उसको शराब पिला दी,मधु खिला दिया। ओ हो! आपको मालूम है वह महाव्रती बननेवाला हो और आपने जन्म से उसके व्रत को भंग करा दिया। अपनी परेशानी के पीछे, रोये न, सो नाम बर्दल दिया। पर है क्या वह वैद्यकवार? इसलिए जीवन में ध्यान रखो, किसी भी औषधि में, किसी भी परेशानी में ऐसे अभक्ष्यों का सेवन बच्चों को नहीं करायेंगे, यदि आप माता-पिता हो तब, और यदि नहीं हो तो मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ आप से। और सुनो, जिनवाणी सुन रहे हो। देव, शास्त्र और गुरु तीनों हैं यहाँ, जिनालय में बैठे हो। मन बनाकर वैसा नियम मन में ले लेना, आज से इतनी प्रतिज्ञा ले लेना, क्योंकि आपने योगसार पढ़ा है, समयसार पढ़ा है। लोग क्या सोचेंगे कि छतरपुर में योगसार जैसे ग्रन्थ की वाचना? लोग तो कल्पना करते हैं, काफी सोचना पड़ता है लोगों को, कि श्रावकों के बीच में योगसार चलाऊँ कि नहीं चलाऊँ। देखो तुम्हारे पुण्य का योग कि तुम योगी बनकर योगसार नहीं सुन पाये, कम-से-कम सच्चे श्रावक बनकर योगसार सुन लेना। तब आज से ध्यान रखना, आप लोग ऐसा नियम ले लो कि अपने जीवन में जब भी हम कहीं जाएंगे तो कम-से-कम एक व्यक्ति की शराब का त्याग करायेंगे। और यदि एक-एक व्यक्ति ने ऐसा नियम ले लिया तो पता नहीं कितने व्रती बन जायेंगे। क्योंकि महाराज की तो सीमा है, वे सीमित क्षेत्र में रहते हैं, परन्तु आप लोग तो असीमित क्षेत्र में जाते हो। और इतना ध्यान रखना, मैं तो यह कहता हूँ यदि आपके छतरपुर में पूजा करने का नियम है, तो आपको बाहर जाकर और ज्यादा पूजा करना चाहिए। यहाँ तो आप लोग पूजा करते ही हो और बाहर गये तो वहाँ साधन नहीं मिलते। नहीं-नहीं वहाँ साधन ज्यादा जुटाना, कम-से-कम आपकी पूजा से दूसरे का मन तो पूजा करने के लिए बने। ओ हो! इतनी दूरी से आया है श्रावक और ऐसी उम्र में आज पूजा कर रहा है। घर में तुमने आलू खा लिए हों, लेकिन वहाँ खाना नहीं। बाहर जब

भी तुम किसी के यहाँ निमंत्रण में जाना, नहीं खाना। देखो, भो ज्ञानी आत्माओ! एक सरदार अपने कड़े से अपनी पहचान बता देता है, कोई चोटी से, जूड़े से बता देते हैं। जैनियों से पूछो कि तुम्हारी क्या पहचान है धर्म की? रात्रिभोजन और पानी छानकर पीना और जिसने छन्ना लगाकर पानी पीना शुरू कर दिया तब दूसरों को समझ में आ गया कि जैन है। पर देखो, जब तुम्हारे ही मुख से कहा जाता हो कि नहीं-नहीं, हमारे लिए तो सब चलता है। ओ हो! पहले ही मुख में बाण घुस गए। यह कहाँ से तुमने ऐसा बोल दिया कि सामने वाले की श्रद्धा टूट गयी कि मैं तो सोच रहा था कि इनके लिए अलग से व्यवस्थाएँ बना दूँ। अपनी पहचान को मत भुलाओ।

आज एक बात मैं आपसे जरूर करूँगा। सम्यक्त्व की महिमा यहाँ बता रहे हैं। एक बार क्या हुआ, भैया! ग्रीष्म की बहुत तपन पड़ी, उस तपन से विह्वल एक चातक का बच्चा अपनी माँ से कहता है कि, माँ! प्यास लगी है। चातकी कहती है-बेटे! हमारे वंश की परम्परा है कि प्यास से प्राण छोड़ देंगे, लेकिन नदी नालों का पानी नहीं पियेंगे। तब, माँ! कौन-सा पानी पियेंगे? स्वाति नक्षत्र की बूँद को ही पियेंगे। बेटा नहीं माना, मचल गया, बोला-माँ! मैं तो पानी पीऊँगा। बेटा! तुम कहाँ जाओगे? क्या तुम गंगा नदी का पानी पीओगे? इसमें तो शव डाले जाते हैं। बोला-माँ! नहीं पीऊँगा। उस बेटे ने मान लिया कि मैं मानसरोवर ही का पानी पीऊँगा। माँ ने आशीष दिया-जाओ बेटा! पानी पी आओ, लेकिन कुल की आन-बान-शान का ध्यान रखना। बेटे! यदि तुम मेरी सन्तान होगे तो तुम पानी पी पाओगे। माँ को विश्वास था। साथ में यह कहा कि तुम जाओ, आशीष है, लेकिन धीरे से बोल दिया कि मेरे सुत! यदि तुम चातक-वंश के हो तो तुम किसी भी जलाशय का पानी नहीं पीओगे। जैसे ही पुत्र ने गमन किया, संध्या बेला हो जाती है, एक वृक्ष पर जाकर के रुक जाता है रास्ते में। वहाँ एक दृश्य देखा, उस वृक्ष के नीचे एक वृद्ध बाबाजी पड़े हुए हैं। गरीब परिवार था, बेटा प्रातः काल कमाने गया होगा। लेकिन संध्या को जब वापस आता है तो खाली हाथ पहुँचा। पिता पूछ रहा था-बेटे! आज तुम कमाकर क्या लाए हो? पुत्र कहता है-पिताश्री! क्षमा करना, आज मेरा दिन ऐसा ही खाली निकल गया। क्यों? रास्ते में मुझे बहुत बड़ी पैसों की एक थैली मिली। तब पिता को थोड़ा धक्का-सा लगा। थैली मिली? हाँ। फिर बेटे, तुमने क्या किया? पिताश्री! मैंने विचार किया कि मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। मेरा एक पैसा गिर जाता है तब बड़ी तीव्र वेदना होती है। जिसकी थैली की थैली गिर गई हो उसको कितनी पीड़ा होगी? मैंने खोज करना प्रारम्भ किया और पिताजी! एक घुड़सवार की वह थैली थी, मैंने दौड़कर उसकी थैली को उसे सौंप दिया। उस व्यक्ति ने मेरे लिए आधी थैली पैसे देना चाहे और कहा कि भाई! आपने मेरी थैली वापस की, इसलिए आधे पैसे आप ले लीजिए। बेटा! क्या तूने पैसे ले लिए? नहीं, पिताजी! मैंने उनसे कहा-यदि मुझे पैसे चाहिए होते तब थैली मेरे पास पूरी थी। अतः मुझे पैसे नहीं चाहिए। मेरे पिता ने मुझे ईमान दिया है, बस मैं ईमान का पानी पीकर सो

जाऊँगा, और पानी नहीं मिलेगा तो णमोकार का नाम लेकर मृत्यु प्राप्त कर लूँगा, लेकिन किसी के खून-पसीने की वस्तु को नहीं लूँगा। और जैसे ही बेटे ने कहा, वह अस्सी साल का पिता चारपाई से उछला और नीचे आ गया और बेटे को छाती से लगा लिया। बेटे! आज तूने चातक पक्षी के समान मेरे कुल की आन-बान-शान को बचा लिया है। उधर बैठा था चातक पक्षी का पुत्र, उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। ओ हो हो! मेरे कुल की ये महिमा है कि मनुष्य भी व्याख्यान कर रहे हैं। मैं अब पानी पीने नहीं जाऊँगा। मैं अपने कुल की आन-बान-शान की रक्षा करूँगा। बेटा वापस आ जाता है। प्रातः माँ चातकी देखती है और कहती है- बेटे! पानी पीकर आ गए क्या? बोला-नहीं, माँ! मेरे कुल की चर्चाएँ मनुष्य किया करते हैं। मैंने अपने कुल की आन-बान-शान का ध्यान रखा है। माँ! मैं पानी पीने आगे नहीं गया। चातकी ने अपने बेटे को सीने से लगा लिया।

अहो भगवान् अरहंत के बेटो! एक चातक के बेटे ने अपने कुल की रक्षा की और तुम तुम्हारे कुल की मर्यादाओं 'रात्रि में भोजन मत करना, बिना छना पानी मत पी लेना', की रक्षा नहीं करते हो। धिक्कार हो तुम्हें, तुम जाकर डगर-डगर भोजन पान कर लेते हो, भोजन में पता नहीं कितने जीवों की टाँगें चबा जाते हो। कम-से-कम इतना तो ध्यान रख लो कि जैनधर्म की बाहर विदेशों तक चर्चा है। ये भी सुनने में आया है कि हवाई अड्डे पर जैन भोजनालय की व्यवस्था है। ओहो! जैन की पहचान यह थी, पर आज तुम्हारी पहचान कहाँ गई? आज से ध्यान रखना कि चातक के बच्चे ने जैसे अपने कुल की रक्षा की है, वैसे ही जैनत्व की रक्षा आपको करना है। करोगे कि नहीं?

कभी-कभी मैं सोचने लगता हूँ कि कहूँ या न कहूँ सबके बीच में। स्वयंवर की रचना तो कर दी जनक ने, पर कोई धनुष की डोरी को नहीं चढ़ा सका। उस दिन की याद करो जब जनक की आँखों में आँसू थे कि काश मुझे मालूम होता कि अब पृथ्वी पर क्षत्रिय नहीं है, यह वसुधा क्षत्रियों से शून्य हो गई, तब मैं अपनी बेटी का स्वयंवर ही नहीं रचता। अहो! छतरपुर की आत्माओ! उस एक क्षत्रिय राम ने जनक की लाज को रख दिया, ऐसे ही महावीर की लाज को रखने वाले छतरपुर के क्षत्रियो! तुम तीर्थंकर महावीर के ध्वज को नीचे मत आने देना। कहीं भी जाना, कह देना कि मेरा त्याग है। कम-से-कम इतना तो कर ही लेना कि किसी सामूहिक भोज में रात्रि में भोजन करने नहीं जाना। कितने लोग हैं? आज बड़े प्रेम से तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी के चरणों में निवेदन करो कि मैं प्राण दे दूँगा, सम्बन्ध छूटे तो छूटे, मैं पुनः हाथ जोड़ लूँगा, लेकिन किसी के घर में रात्रि में सामूहिक भोजन करने नहीं जाऊँगा। सामूहिक भोज में सबके बीच में हम यह नहीं दिखाना चाहते कि ये जैन साहब रात्रि में भोजन कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि योगसागर की वाचना सार्थक हो गई है आज। लेकिन इतना और ध्यान रखना, जब इतना किया ही है तो कम-से-कम आपके घर में कोई ऐसा कार्यक्रम हो तब उसके पत्र में इतना मत लिखवाना कि 'आपके आगमन तक की व्यवस्था है।' इतना

नियम नहीं ले पाओगे आप? आप तो समय दे देना, इसके बाद विराम। लेकिन यह लिखाकर आप क्या परिचय देना चाहते हो कि हमारे यहाँ भगवान् जिनेन्द्र का शासन समाप्त हो गया है? तब ठीक है भैया, आज से यह नहीं लिखाओगे। योगीन्दुदेव स्वामी की वाणी को तुमने सुना है, तब आज हमें प्रसन्नता है कि जैसे चातकी को अपने बेटे पर प्रसन्नता हुई थी, वैसे ही कम-से-कम छतरपुर की आत्माओं ने इतना नियम तो ले लिया। कम-से-कम चातक पक्षी तो बन जाओ।

(जो सम्मत-पहाण) जो सम्यक्त्व में प्रधान है, वह तीनों लोक में प्रधान है (केवल-णाण वि लहु लहई) ऐसा जीव शीघ्र ही केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है (सासय-सुक्ख-णिहाणु) यह शाश्वत-सुख का निधान/खजाना है। और वह सिद्ध-परमात्मा कैसे होता है? (अजरु, अमरु, गुण-गण-णिलऊ) जहाँ अजर-अमर अवस्था प्राप्त हो जाती है, गुणों का आगार, गुणों का निलय, गुणों का घर बन जाता है। (अप्पा थिरु ठाइ) जो जीव अपनी आत्मा में स्थिर हो जाता है (सो कम्मेहिं ण बंधियऊ) वह जीव कर्म-के-बंध को प्राप्त नहीं होता है (संचिय पुव्व विलाइ) जो पूर्व में कर्मों का संचय कर लिया था उन कर्मों का विलय हो जाता है। किसका? जो निज-आत्मा में निज-आत्मा को स्थिर कर लेता है।

बस, मनीषियो! जब तक हम शुद्धोपयोग की दशा को नहीं प्राप्त कर पाए हैं, तब तक अपनी शुभ-परिणति को खोखली मत बना लेना और विश्वास रखना कि आज की सुनी जिनवाणी वर्तमान की तुम्हारी आस्था और श्रद्धायें ही आपको भविष्य में केवली भगवान् और अरहंत बनायेंगी। पूर्ण विश्वास के साथ सुनना, ध्यान से समझना। यदि अशुभ कर्म के योग से किसी जीव ने नरक आयु का भी बंध कर लिया हो, फिर भी आप चिंता नहीं करना। जैसे कोई व्यक्ति घर से बाहर चला जाए और साथ में कलेवा है तो उसे चिंता नहीं रहती है, क्योंकि एक आध दिन न भी मिले, अपने पास व्यवस्था तो है न। ऐसे ही यदि नरक भी चले गये हैं और तुम्हारे पास सम्यक्त्व का कलेवा है तो तुम चिंता नहीं करना, वहाँ भी तुम्हें दुःखी नहीं होना पड़ेगा, वहाँ भी तुम्हें समत्वभाव की प्राप्ति होगी। यदि यह जिनवाणी तुमने आज सुनी है तो वह नरक में भी देशना लब्धि का काम करेगी। ओ हो! मैंने ऐसी वाणी कभी सुनी नहीं थी, उस समय मैंने ध्यान नहीं दिया, तब मेरी यह दशा हुई है। परन्तु वीतराग वाणी सच्ची-वाणी थी, इसी से ही कल्याण होगा। वह उस भव के प्रवचन आज उसके सम्यक्त्व के कारण बन गए। इसलिए, मनीषियो! प्रवचनभक्ति तीर्थंकर प्रकृति के बंध का हेतु है। प्रवचनभक्ति भावना यह सोलहकारण भावना में एक भावना है। कभी भी श्रुत के पान में अनादर नहीं करना। जब समय मिल जाए, जैसा समय मिल जाए आप तो भगवान् जिनेन्द्र की वाणी का चिन्तवन प्रारंभ कर देना। इससे सुनिश्चित कल्याण होगा।

- भगवान् महावीर स्वामी की जय।

संसार में ज्ञानी रहता जल में कमलवत्

योगसार

जह सलिलेण ण लिप्पियइ, कमलणि-पत्त कया वि।
तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ, जइ रइ अप्प-सहावि ॥92 ॥

अर्थ- जिस तरह कमलिनि का पत्र कभी भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी तरह यदि आत्मस्वभाव में रति हो, तो जीव कर्मों से लिप्त नहीं होता।

जो समसुक्खणिलीणु बुहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ।
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥93 ॥

अर्थ- जो सम-सुख में लीन हुआ पंडित बारबार आत्मा को जानता है, वह निश्चय ही कर्मों का क्षय कर शीघ्र ही निर्वाण पाता है।

पुरिसायार-पमाणु जिय, अप्पा एहु पवित्तु।
जोइज्जइ गुण-गण-णिलउ, णिम्मल-तेय-फुरंतु ॥94 ॥

अर्थ- हे जीव! पुरुषाकार यह आत्मा पवित्र है, यह गुणों की राशि है और यह निर्मल तेज को स्फुरित करती हुई दिखाई देती है।

जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ, असुइ-सरीर-विभिण्णु।
सो जाणइ सत्थहँ सयल, सासय-सुक्खहँ लीणु ॥95 ॥

अर्थ- जो शुद्ध आत्मा को अशुचि शरीर से भिन्न समझता है, वह शाश्वत-सुख में लीन होकर समस्त शास्त्रों को जान जाता है।

अध्यात्म देशना

भव्य बंधुओ!

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की पीयूष देशना आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी के माध्यम से हम सभी सुन रहे हैं। बहुत ही करुणादृष्टि से आचार्य महाराज ने हम लोगों को सूत्र दिये हैं। अहो ज्ञानी! समदृष्टि ही सम्यग्दृष्टि है। यदि समदृष्टि ही नहीं है तो सम्यग्दृष्टिपना नहीं है। जिसके अन्तर में सम्यक्त्व का उदय हो जाता है और निज के ऊपर करुणा का भाव, दया का भाव आने लग जाता है, तो विश्व के प्राणी पर करुणा स्वयमेव होना प्रारम्भ हो जाती है। यदि, जीव इतना मात्र सीख ले कि किस क्रिया से बंध और किस क्रिया से अबंध होता है और जिन-जिन क्रियाओं से बंध होता है, उन-उन क्रियाओं को जीव छोड़ दे तो सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा स्वयमेव हो जायेगी।

कितनी अज्ञान दशा है? हमारी किसी भी वृत्ति से किसी का आंतरिक हृदय खिन्न होता है, लेकिन कभी-कभी मालूम नहीं चलता और हम समझते हैं कि मैंने किसी का वध नहीं किया, जबकि न जाने कितने जीवों का वध कर चुके होते हैं। एक व्यक्ति ने एकांत में बैठकर किसी के बालक को शराब पिला दी, जिससे उसकी आदत बिगड़ गई, उसका घर बरबाद होने लगा। आपको मालूम ही नहीं पड़ा कि मैंने हिंसा की, या नहीं की। लेकिन, भो ज्ञानी! उसके परिवार से तुम पूछो कि वे कैसे दाने-दाने को विलख रहे हैं। इस हिंसा में आप भागीदार थे कि नहीं? ऐसे ही बहुत से कार्य हैं, जिन्हें हम अपना व्यापार समझ सामान्य रूप से देख लेते हैं, लेकिन वास्तव में वह सब हिंसा है।

भो ज्ञानी! सातों ही व्यसन महा-हिंसा हैं। पाप को तो पाप ही कहा है, परन्तु सप्त-व्यसनों को महापाप कहा जाता है। अब हम एक-एक कर दृष्टिपात करेंगे। सम्यग्दृष्टि जीव का स्वरूपाचरण तो ठीक है, पहले सम्यक्त्वाचरण की दृष्टि से देखो। वह सप्त व्यसन, पाँच पाप और बाईस अभक्ष्य का त्यागी होता है। मनीषियो! वह आठ मद, षट् अनायतन, तीन मूढ़ताओं से रहित होता है, इसका नाम सम्यक्त्व है। अब विचार करो, आप जुआ खेल तो नहीं रहे थे, परंतु खड़े-खड़े देख रहे थे। उन खेलने वालों को आप सहयोग कर रहे थे कि नहीं? यदि आपने किसी के कार्यक्रम में भाग लिया है तो आपने उसको शक्ति दी है। जैनआगम कहता है-मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदन से अर्थात् नवकोटि से पाप लगता है। आप वहाँ खड़े क्यों हुए? क्या आवश्यकता थी? अहो ज्ञानी आत्माओ! एक व्यक्ति पाँच रुपये कमाकर लाया और उसने बाजी में लगा दिये। पाण्डवों से पूछ लेना, आप मुक्ति का वरण तो कर गये, लेकिन विश्व के इतिहास में तुम्हारा नाम अंकित है कि जुआ में अपनी स्त्री को बाजी पर लगा गए। कितने माता-पिता बिलख रहे होंगे, कितने पुत्र-पुत्रियाँ बिलख रहे होंगे, कि अहो! मेरे सगे ने पूरा गवाँ दिया। जीवन में ध्यान रखना, गरीबी की रोटियाँ खा लेना, पानी माँगकर पी लेना, परन्तु आप जुआ और दान का मत खा लेना।

भो ज्ञानी! निर्माल्य का दाना मत खा लेना। आगम में लिखा है कि जिस व्यक्ति ने एक दाना भी निर्माल्य का सेवन किया है, वह साठ हजार वर्ष तक विष्टा का कीड़ा बना है। एक क्षण को विचार कीजिए कि मेरे पास वह सब सुख सुविधाएँ हैं, मैं अपना मकान किराये पर दे सकता हूँ, लेकिन मंदिर की दुकान छोडूँगा नहीं, क्योंकि "मुफत का चंदन, घिस मेरे नंदन" और कहेंगे-महाराजश्री! मैं पाप का कुछ नहीं खा रहा हूँ, वह तो पुण्य की है, बस धर्म का तो है। मनीषियों! इस बात का ध्यान रखना कि जुआरी के हाथ का पानी तो पियो, किन्तु निर्माल्य का दाना जो खाता हो उसके घर का पानी तो बहुत दूर की बात है, उसका छुआ पानी भी नहीं पीना। क्यों? इसलिए कि एक ग्रंथ में लिखा है कि यदि माता-पिता के द्वारा दिये गये दान का सेवन पुत्र कर रहा है और दान की वस्तु को दे नहीं रहा है, तो उसे भगिनी के साथ विषय-सेवन में जो पाप पड़ता है, माता-पिता के द्वारा दिये गये दान के उपभोग में वह पाप

पड़ता है। इसलिए जीवन में ध्यान रखना, आपके पिताजी ने मंदिर के लिए दो मकान दे दिये थे, तुम अपनी नियत मत डिगा लेना। तुम्हारे भाग्य में जो होगा उसका सेवन करना, लेकिन पिता के दिये दान में तुम हड़पने का विचार मत कर लेना कि यह तो मेरी वस्तु है। अरे!, जो दिया, सो दिया। उस तरफ दृष्टि भी नहीं करना।

योगीन्दुदेव स्वामी कहते हैं-अभी तक हमने यह समझ लिया कि मैं रोज मंदिर आता हूँ, स्वाध्याय कर लेता हूँ, सो मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। नहीं। देशव्रती की चर्या क्या होगी? रेल्वे की यात्रा कर रहे एक विद्वान ने अपनी पत्नी से यह सहज पूछ लिया-क्यों, बेटे की उम्र कितनी हो गई? तब पत्नी कहती है अचानक-'आज ही तो अपना बेटा साढ़े पाँच साल का हो गया।' गाड़ी से उतरते ही बाबू के पास पहुँचते हैं। बोले-आप आधा टिकट बना दीजिये। क्यों, अभी कुछ देर पहले क्यों नहीं बनवाया? बोले-बात ऐसी थी मुझे कुछ क्षण पहले मालूम नहीं था कि मेरा बेटा साढ़े पाँच साल का हो चुका है, अभी-अभी पत्नी ने बताया कि मेरा बेटा साढ़े पाँच साल का हो चुका है। मैं शासन के विरुद्ध एक कदम भी नहीं रख सकता हूँ। बाबू देखकर कहता है- आप कैसे पागल हो? आपकी दृष्टि में मैं पागल हो सकता हूँ, लेकिन जिनेन्द्र की दृष्टि में मैं बहुत समझदार हूँ, आप मुझे टिकिट दे दीजिए। उस महान् व्यक्ति का नाम गोपालदास जी बरैया है, जिन्होंने गाड़ी से उतरकर अपने बेटे का टिकट बनवाया। और एक ओर आप हैं जो यह कहते हुए अपने दस वर्ष के बेटे को भी गोदी में लिटा लेंगे कि हमारा बेटा अभी छोटा ही है। अहो ज्ञानी आत्माओ! कभी-कभी लगने लगता है कि हमारी वृत्ति कहाँ जा रही है?

योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं-जितने हार जीत के काम हैं, मनीषियो! ध्यान रखना, सब जुआ के अन्तर्गत आते हैं, इनको आप व्यापार की दृष्टि से देखते हों, लेकिन परिणाम तो वास्तव में उचित नहीं होगा।

जीवन में ऐसे कार्य कभी नहीं करना जिन कार्यों के माध्यम से हमारी दृष्टि में खोट उत्पन्न हो। एक क्षण को जरा उस व्यक्ति से पूछना, जिसके लाखों करोड़ों चले गये हों, कि वह क्या कह रहा हैं? मैं एक बार रायचन्द्र जी को पढ़ रहा था। आपने भी पढ़ा होगा कि उन्होंने जवाहरात के व्यापार में एक मास पहले किसी से बातचीत कर सौदा कर लिया, कागजात भी पक्के हो गये। तभी यकायक बाजार के भाव बढ़ गये। जैसे ही बाजार के भाव बढ़ते हैं वह सज्जन उन कागजों को लेकर पहुँचे, बोले-रायचंद्र जी! आप अपना माल खरीद लीजिए। परन्तु हाथ काँप रहे थे। उससे उन्होंने पूछा-क्यों? आपका चेहरा उदास क्यों नजर आ रहा है? हाथ क्यों कम्पायमान हो रहे हैं? बोले-नहीं, नहीं, रायचंद्र जी! कुछ नहीं है। आप तो अपना माल रख लीजिए। उन्होंने कागज ले लिये और कागज लेकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये, बोले-जाओ। क्यों? बोले-'रायचंद्र दुग्ध पीता है, किसी के खून को नहीं। इन कागजों पर व्यापार की मुद्राऐं लगी हुई थी, और आज आपके माल के भाव बढ़ गये हैं सो आपका हृदय

फूट-फूट कर रो रहा है। मैं जिनेन्द्र का भक्त हूँ। हमारे जिनदेव ने कहा है कि यदि तुम किसी को प्रसन्न नहीं कर सकते तो तुम किसी को रुलाना मत। मैं तुम्हें दे तो कुछ नहीं सकता हूँ, मैं आपसे ले भी नहीं रहा हूँ।' ऐसे-ऐसे जीव हो गए, फिर लगता है कि जब एक श्रावक के ऐसे परिणाम हो गये तो, मनीषियो! जैन योगी के परिणामों की तो अभी चर्चा ही नहीं है, एक सामान्य श्रावक की चर्चा है। और वह भी श्रावक कैसा था? अविरत सम्यग्दृष्टि। व्रती नहीं थे, अव्रती थे।

माँस का सेवन नहीं करता, लेकिन, महाराजश्री! घर में रखे अचार मुरब्बे का सेवन तो मैं सालों तक कर लेता हूँ। आप क्या करते हैं, वह मुझे मालूम नहीं। यदि आपके घर में एक-एक वर्ष के अचार रखे हुए हैं और उनका सेवन चल रहा है तब, भो ज्ञानी! फिर छल मत करना। बड़े प्रेम से कहना कि मैं माँस-सेवन का त्यागी नहीं हूँ। क्यों? इसमें असंख्यात कीट पड़ रहे हैं। और, महाराजश्री! मैं दूध भी पी लेता हूँ। जिनवाणी कहती है कि दूध लगाकर लाओ, तो अड़तालीस मिनिट के अंदर तपाना चाहिए। तब बताओ कितने देर से लगा, और कितने मिनिट में तपाया, और फिर घी का तो कहना ही क्या। हम लोग तो बाजार से लाकर तपा लेते हैं। अहो ज्ञानी आत्माओ! चौबीस घंटे के अंदर की मर्यादा में यदि घृत नहीं निकलता है, तो उसमें उसी जाति के पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं और आपने गरम करके पूरे जीवों को उसी में निचोड़ दिया। अब बताओ कि सम्यग्दर्शन का पहला हेतु क्या है भैया? अहिंसा-दृष्टि होना चाहिए।

पण्डित आशाधरजी ने लिखा है-अन्याय, अभक्ष्य, अनीति से बचकर रहो। यदि अन्याय, अभक्ष्य, अनीति इनसे तुम्हारी दृष्टि नहीं हटी, अहो ज्ञानी! तब सम्यक्त्व पाना बहुत दूर है। माँस का सेवन सीधा नहीं, वह औषधियों के माध्यम से और ज्यादा घातक है। तो मनीषियो! इसके पीछे सिर्फ जीने का लोभ है। यदि जीने का लोभ समाप्त हो जाए तो, भो ज्ञानी आत्माओ! अनंत जीवों की रक्षा स्वयमेव हो जाये। कल रामनवमीं के दिन भी जो इतने जीवों की हिंसा होने वाली थी, वह मात्र जीने के लोभ के कारण। लोगों का भ्रम है, कि यदि मैं बलि नहीं दूँगा तो देव मेरा कुछ बिगाड़ न दें। इस व्यर्थ के भ्रमजाल के कारण ही इतने जीवों को होम रहे हैं। किसको मालूम नहीं है? कोई किसी का तेल लगा रहा है, कोई कुछ अन्य वस्तु सेवन कर रहा है। पर जरा सोचना, एक बार पूछ तो लिया करो कि इसमें है क्या?

कम-से-कम घर के द्वार पर पहले कुत्ते तो बैठे मिल जाते थे, अब तो वे भी नहीं मिल पाते हैं। हँसना मत आप, मैं तो बता रहा हूँ। घर में बासा सामान होता था तब आप सुबह नीचे डाल देते थे तो कुत्ते उठा ले जाते थे। अब क्या करें, महाराजश्री! हमारे घर में फ्रिज रखे हुए हैं, बासा हो ही नहीं पाता है। हम लोग तो चार-चार दिन का रखा-रखाया भी उपयोग करते रहते हैं। अब घर में स्वयं व्यवस्था हो चुकी है, इसलिए द्वारे पर कुत्ते की क्या आवश्यकता है? देखो हम आपसे कुछ नहीं कर रहे हैं। भैया! बुरा मत मानना। हम तो आपको बता रहे हैं कि सुबह की शाम, शाम की रोटी सुबह। ओ हो! क्यों? फ्रिज में रखी हुई है। पर ये ध्यान रखना,

गंध आए या नहीं आए, यदि आप जैन हो, जब जिनवाणी कहती है कि मर्यादा कितनी है और जिसकी मर्यादा का काल निकल चुका है, वह भले ही आपके फ्रिज में रखी हो, परन्तु वह अभक्ष्य ही है। क्यों भैया! है कि नहीं? अहो ज्ञानी! छह घण्टों की मर्यादा है। और आप कितने घण्टे की खाते हो, भैया? सुबह की शाम। इन महिलाओं से कह दिया करो कि ऐसा मत खिलाओ। विचार करो कि आज हमारी व्यवस्था क्या बन चुकी है।

यदि आप जिनवाणी के आधार से, द्रव्यानुयोग के आधार से नहीं मात्र चरणानुयोग के आधार से, खोजो तो सम्यग्दृष्टि नहीं मिलेंगे। फिर द्रव्यानुयोग के सम्यग्दृष्टि और करणानुयोग के सम्यग्दृष्टि को कोई मिथ्यादृष्टि कह ही नहीं सकता है, क्योंकि जो करणानुयोग ने सील लगा दी है, वह पक्की सील है। सात कर्मों की प्रकृतियों का क्षय या क्षयोपशम जिसके होगा, वह सम्यग्दृष्टि है। यह निर्णय कौन दे पायेगा? एक मात्र सर्वज्ञ देव अथवा अवधिज्ञानी मुनि महाराज। चरणानुयोग से सम्यग्दृष्टि देखे जा सकते हैं। आप अपने आप को निहारो कि श्रद्धायें कैसी हैं और हमारी वृत्ति कैसी है। कहीं अनंत जीवों का ह्रास तो नहीं हो रहा है।

तो ध्यान रखना, हम सीधे शराब नहीं पीते, परन्तु औषधियों में जो एल्कोहल पड़ा हुआ है अथवा भैया ने रस निकाला अंगूर का और तीन दिन का रखा हुआ रस पी रहे हैं। अहो ज्ञानी! माँ जिनवाणी कहेगी कि तू शराब ही पी रहा है। जितने मादक द्रव्य हैं, वह सब मद्य के रूप में है। वेश्या-व्यसन, शिकार, नगर-नारी पर दृष्टि जा रही। शिकार तो नहीं खेलते हैं आप, लेकिन जब भोजन करने बैठते हैं तो खाना चाहते एक रोटी, पर रखवा ली दस और उसी में फिर पानी डालकर और धीरे से चलते बने। उसमें आकर चीटियाँ गिरें, भोजन में मक्खियाँ गिरें। तुमने जाल नहीं फैलाया तो क्या किया? शिकार नहीं किया तो क्या किया? पहले के पुराने लोग अपनी थाली धोकर पी जाते थे। आप लोग ये सोचते हो कि बेचारे गरीब थे, खाने को नहीं मिलता होगा, इसलिए पी जाते थे थाली धोकर। सुनो, गरीब तुम हो, जो दया नहीं है। वे गरीब नहीं थे, वे विवेकी थे। उन्हें मालूम था कि एक अंतमुहूर्त तक थाली जूठी रह जायेगी तब उनमें सम्मूर्च्छन जीव पैदा हो जायेंगे, इसलिए उन्होंने उसमें पानी डाला और पी गये। बोले-महाराज! ऐसा करेंगे हम तो लोग हँसेंगे। धर्म देखना है, तब हँसी नहीं देखना और हँसी देखना है, तो धर्म नहीं कर पाओगे आप। पता है, जिस नगर से मुनि महाराज निकले, लोग बोले- नंगा गए, नंगा गए। रोने लगो अब तुम। अरे! जो कहने वाला है, उसे कहने दो। ये वेश्या-व्यसन, शिकार, पर-रमणी-रमण, अहो ज्ञानी आत्माओ! मैं कुछ नहीं जानता हूँ, अपने हृदयों से ही पूछो। इतना विवेक है? रावण के पास भी नियम था। कम-से-कम रावण-जैसा ही नियम ले लो। रावण ने अपने जीवन में एक नियम का पालन किया, कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसके साथ बलात् नहीं करूँगा और उसने अपने जीवन पर्यंत इस नियम का पालन किया। उसके एक नियम से ही सीता के शील की रक्षा हुई। अब सोचो

हमारी दशा क्या है? हमारे संबंध क्या हैं? हमारी भावनाएँ क्या हैं?

आप लोग एक घण्टे ग्रंथ पढ़ना और पाँच मिनिट उसका चिंतवन कर लेना, आँखों से आँसू टपक जायेंगे कि हाय मैं क्या कर रहा हूँ। कभी-कभी लगता है कि आपको जब कोई कहे कि आप बहुत धर्मात्मा हो, खूब प्रशंसा आपकी हो और आप ऐसे हो नहीं, तो कैसा लगता है? एकांत में जाकर रो लेना कि हाय मैं झूठा धर्मात्मा बना फिर रहा हूँ और मेरी परिणति यह है। तब सत्य यह है कि आपकी इस प्रशंसा से आप प्रशंसनीय कार्य प्रारंभ कर दोगे। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रशंसा करने से और प्रशंसा सुनने से हम वास्तव में प्रशंसनीय बन भी जाते हैं। लोग मेरे बारे में ऐसा सोचते हैं और मैं ऐसा हूँ नहीं। आज से ऐसा नहीं करूँगा। अभी तक तो आप दूसरे की श्रद्धा के पात्र थे, उसी दिन से आप स्वयं की श्रद्धा के पात्र बन जाओगे। पर यह अंतरंग से पूछ लेना कि वास्तव में श्रद्धा का पात्र कौन है? दुनियाँ प्रशंसा करे, मैं प्रशंसनीय हूँ या नहीं, यह कोई आवश्यक नहीं है। यदि तेरा मन कह दे कि तू प्रशंसनीय है, समझ लेना कि हाँ मैं प्रशंसनीय हूँ, क्योंकि दूसरे तो ऊपरी-ऊपरी देखेंगे, किंतु जो आप देखोगे वह सही देखोगे। एक बार अध्यापक गलत कॉपी को भी सही करके पास कर सकता है, लेकिन सत्य कापी जाँचनेवाला कोई होगा तो छात्र ही होगा। किसने लिखी थी, भैया? और हम पूछने किससे जाते हैं? बोले-सर! मैं फैल होऊँगा कि पास? अरे पागल! उनसे पूछने की क्या आवश्यकता है? मुझे तो उसी दिन मालूम था जिस दिन परीक्षा दी थी। इसलिए एक काम करना, छतरपुर के भव्यजनो! तुम तीर्थंकर को परेशान करने मत पहुँच जाना, न सीमंधर स्वामी के पास पहुँचना विदेह क्षेत्र में कि भगवन्! मेरी कौन-सी गति होगी? और नहीं तो हमसे ही पूछ लो कि क्या होने वाला है? बता दूँ आपको कि आपको कौन-सी गति होगी? बताते ही बुरा मान जाओगे। मान जाओ सो मान जाओ, हम तो बताए दे रहे हैं, क्योंकि सत्य तो सत्य है। बहुत आरंभ परिग्रह करते हो तो आपको नारकी बनना है और मायाचारी कर रहे हो तो सुनिश्चित तुम्हें तिर्यंच बनना है और कदाचित् आपने मनुष्य-आयु का बंध कर लिया हो, फिर मायाचारी करोगे तो स्त्री बनना पड़ेगा। सब समझते जाना अपने-अपने बारे में। और यदि स्वभाव निर्मल रहे, तब मनुष्य बन जाओगे। और सत्य-दृष्टि बन गए, सराग-संयम को प्राप्त हो गए तब, भो ज्ञानी! देव-आयु का आस्रव कर लोगे। अब बताओ, सबको मालूम चल गया न कि किनको कहाँ-कहाँ जाना है? अब यह आपकी व्यवस्था है कि आपकी आंतरिक अवस्था क्या चल रही है और क्या नहीं चल रही है। परन्तु उमास्वामी महाराज ने कह दिया कि अब कहीं मत जाना, बस इतना ही समझ लेना कि हमारी दशा क्या है? और यह मैं ही जान सकता हूँ। स्थूल अवस्था से तो हम जान ही सकते हैं कि मेरी क्या दशा है? और कभी-कभी यह विचार आ भी जाता होगा कि भगवन्! जीवन में एक बार झलक आ जाए उस सम्यक्त्व की। सम्यक्त्व की झलक की अनुभूति आपको बताऊँ कि जिस दिन तुम्हारे भावों में यह आ जाए कि मैं आज से अनर्थ नहीं करूँगा, यह

सहज भाव आयेंगे नियम से, मैं किसी को सताऊँगा नहीं, मैं किसी की आलोचना भी नहीं करूँगा, मैं अपना जीवन सहज रूप से जीऊँगा। ऐसे भाव जिस समय तुम्हारे मन में सहज आ रहे हों, समझ लेना कि मेरा प्रबल पुण्य योग चल रहा है, क्योंकि पाप के उदय में अच्छे परिणाम आते नहीं हैं।

रविषेणाचार्य महाराज ने 'पद्मपुराण' में लिखा है कि पाप के योग में व्रत नहीं पलते। व्रतों का पालन भी पुण्य के योग में ही होता है। अशुभ-आयु के बंध होने से संयम लेने के भाव नहीं होते हैं। उसका कभी मन नहीं करता, चाहे वर्षों-वर्षों रात्रि में भोजन न करे, लेकिन उससे कहना-भैया! नियम ले लो, तो बोलेगा-नियम नहीं ले सकते हैं। यानी कषाय अंदर में बैठी हुई है. अविरत दशा बैठी हुई है, राग बैठा है जो कह रहा है कि नहीं, नियम नहीं ले लेना। बस आज आप लोग अपने-अपने घर जाना और एकान्त में बैठकर दो मिनिट जरूर चिंतवन करना इस बात का कि कभी मेरे ऐसे भाव भी आते हैं कि नहीं?

'अध्यात्म अमृत कलश' में अमृतचंद स्वामी ने लिखा है-एक मुमुक्षु जीव छह मास तक एकांत में मौन बैठकर, सम्पूर्ण भोगों से परे होकर, शांत-चित्त होकर साधना करे तो छह महीने के अंदर वह भेद-विज्ञान को प्राप्त कर सकता है। स्वात्मानुभूति करने में यह शब्द मत बोल देना, यह लोगों ने अलग से जोड़ दिया है। उन्होंने यह लिखा है कि भेद-विज्ञान को प्राप्त कर सकता है। 'मैं भिन्न हूँ और पुद्गल भिन्न है' इस दशा का वेदन उसे होगा। पर होगा तभी, जब वह सबसे परे होकर देखेगा और जब तक हम दूसरे में लगे रहेंगे, तब तक वेदन तो बहुत मुश्किल है। ऐसा कर लो, कम-से-कम आज के दिन से हम पुरुषार्थ करेंगे, क्योंकि गृहस्थ हैं अतः अर्थ-पुरुषार्थ भी कर रहे हैं परन्तु हम अर्थ-पुरुषार्थ में अनर्थ नहीं करेंगे। इतना तो आप कर ही सकते हो, यह भी विश्वास है। जिनेन्द्र की वाणी पर विश्वास आपको है न? आना वही है, मिलना वही है, जितना तेरे भाग्य में है। अगर विश्वास है, तब भाई की विभूति को देखकर यह विकल्प नहीं लाना कि इनके पास इतना अधिक क्यों है? मेरे पास इतना कम क्यों है? पिताजी ने दोनों को बराबर दिया है न भैया? और आज हम कई घरों में ऐसा अनुभव भी कर लेते हैं, कई जगह अनुभव कर लेते हैं कि एक बेटे ने सौ के हजार कर लिये और एक ने सौ के दस कर लिये हैं। इसलिए हम बहुत ज्यादा हैरान इस बात पर न हों कि इनके पास इतना क्यों है? हम हैरान इस बात पर हों कि इनके पास बढ़ा कैसे है? पुण्य से कि पाप से? जो पाप करते हुए भी वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, उन्हें देख अपने मन से यह भ्रम दूर कर देना। वे पाप से नहीं बढ़ रहे हैं, वे पूर्व के पुण्य से बढ़ रहे हैं। अगर पाप से बढ़ने लग जाएँ तो पुण्य नरक ले जायेगा क्या? यह पूर्व का पुण्य रखा है जो वर्तमान में भोग रहे हैं। लेकिन ध्यान रखो, इस पाप का विपाक जिस दिन आयेगा उस दिन एक क्षण में धूल में मिल जायेंगे। इसलिए हिंसक प्राणियों की विभूति को देखकर कभी आप अपने मन में ऐसा विचार मत लाना। मैं आपको बार-बार इसलिए समझा रहा हूँ, क्योंकि हम सभी लोग पंचमकाल की आत्मा हैं न, जल्दी

प्रभावित हो जाते हैं। लोग अक्सर कहते हैं कि महाराज मैं इतनी ईमानदारी से रहता हूँ, फिर भी नीचे दिख रहा हूँ और मेरे सामने वाला इतना पापी है, फिर भी आज देखो इतना उन्नति शील है। भो ज्ञानी! वह हिंसा से नहीं बढ़ रहा है, उसने पुण्य का द्रव्य पूर्व में इतना कमाकर रखा कि आज उदय में आ रहा है और आपने इतना पाप कमाकर रखा था और तुम पुण्य कर रहे हो, इसलिए तुम जी पा रहे हो। फाँसी लगने वाले के पाप के योग में फांस से काम चल जाता है और जिनको राज्य मिलने वाला था, वह एक काँच के टुकड़े में निपट जाते हैं। इसलिए कभी इस बात को लेकर मत बिलखना कि, हाय! इनके पास इतना क्यों है और मेरे पास क्यों नहीं है? ये सब पुण्य-पाप का परिणाम है और यथार्थ तो यही है कि लक्ष्मी किसी की है ही नहीं। उसको तो मालूम नहीं कितनों को खुश करना है। ''नगर-नार को प्यार यथा।''

अहो मुमुक्षु आत्माओ! यह वैभव तो ऐसा है। अरे! आप लोग तो दुकान पर बैठे-बैठे समयसार पढ़ सकते हो। कोई तुम्हारी दुकान पर आया और एक नोट देकर बोला-लो भैया! हमें अमुक सामग्री दे दो। उस नोट ने तुम्हें खुश कर दिया और वहीं थोड़ी देर बाद तुम्हारा बेटा दुकान पर आ गया, पिताजी! पिताजी! मुझे कुल्फी खाना है। तो बेटा ले जाओ यह नोट। और उस नोट ने बेटे को खुश कर दिया। फिर वही कुल्फी वाले के पास जाता है। कुल्फी वाला खुश हो गया। ओ हो! जड़ नोट! तेरी क्या महिमा है? तूने सबको खुश किया, पर तू किसी से खुश नहीं हुआ है। एक नोट की महिमा देखो। सुनो, यह सब झूठी बातें हैं। हमारी मान्यता में खुशपना या दुःखपना महसूस हो रहा है, पर नोट किसी के हाथ में रुका ही नहीं है। वह दिन भर पता नहीं कितने हाथों में आकर और खुश करके चला गया और मालूम चला कि दूसरे दिन वह नोट तो बाजार में बंद ही हो गया। द्रव्य अपने चतुष्टय में था, लेकिन हमारी राग-दशा ने हमें कितना खुश किया, कितना मुस्करा दिया। कागज के ऊपर चैतन्य आत्माएँ कैसी दौड़ रही हैं ? क्या जादू है इसमें? बेचारे धूप नहीं देखते, छाँव नहीं देखते हैं। यदि इनसे कहें कि जाओ, डेरा पहाड़ी के दर्शन कर आओ, तो बोले-महाराज! अब तो बहुत धूप हो गई है। सुना भैया! वहाँ डेरा पहाड़ी पर अच्छी दुकानें चल रही हैं? बोले-हाँ महाराज! भगवान् की तूने कीमत नहीं की, कागज की कीमत की है।

कुछ समझ में आ रहा है? पूरा-का-पूरा आ रहा है। अरे आत्मन्! पूरा जिस दिन आ जाएगा न, वहाँ आप रह नहीं सकते, यहीं आना पड़ेगा। लेकिन कम-से-कम आ तो रहा है। यदि समझ में आ जाए, तब यथार्थ मानना। आप लोग भले कहो कि, महाराजश्री! समझ में नहीं आ रहा है, पर मुझे विश्वास है कि आपकी समझ में सब आ रहा है। भले आज काम में आये या नहीं आये। मैं यह नहीं मानता कि मेरे प्रवचन व्यर्थ हो रहे हैं। इतना संतोष है कि जैसे बारिश में जहाँ किसी ने बीज नहीं भी बोया होगा, वहाँ भी तुम्हें पौधे खड़े मिलेंगे। पर बीज किसी ने बोया कि नहीं बोया या फसल पुरानी थी उसके टपक गये थे बीज? बीच में धूप

भी पड़ी, पानी भी गिरा, लेकिन तब फलित नहीं हुए थे। जब उसका मौसम का पानी गिरा तो अंकुरित हो गये हैं। ऐसे ही, पंचमकाल की मुमुक्षु आत्माओ! मुझे विश्वास है कि ये बीज डल रहे हैं, जब तुम्हारा मौसम आयेगा तभी फलित होंगे। इसलिए मैं आप सबको सुना रहा हूँ। अच्छा बीज गिरेगा तो अच्छे फल तो आयेंगे ही और फल वही आयेंगे जो तुमको सिद्ध शिला पर भोगने को मिलेंगे। धूप में बीज धूल में छिपा रहा, तो ऐसे ही ये धूल में छिपे रहेंगे, लेकिन जब मौसम का पानी गिरेगा तो नियम से फलित होंगे।

मनीषियो! आचार्य महाराज यहाँ कह रहे हैं-अहो परम् योगी! निज शुद्धात्मा को देखो, अपने में स्थिर हो जाओ, अब श्रावकाचार को गौण कर दो, अब योगी की दशा को वेदन करो। कमल पत्र पर पड़ी वह ओस की बूँद आँखों से दिख रही है। पत्र पर है पर, मनीषियो! पत्र में बूँदपना नहीं है, बूँद में पत्रपना नहीं है। योगी निजात्म-ध्यान में बैठकर ऐसे ही वेदन करता है। कर्म-पत्र पर पड़ी मेरी आत्मा कर्मरूप नहीं है तथा कर्म आत्मरूप नहीं है। यह बंध-दशा है, स्वभाव-दशा नहीं है। कर्मबंध-दशा मेरी स्वभाव-दशा नहीं है। जिस तरह (जह सलिलेण ण लिप्पिय कमलणिपत्त कया वि) यह कमल का पत्र किसी भी अवस्था में सलिल से लिम्पित नहीं होता है, (तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ) ऐसे ही आत्मा कभी भी कर्म से लिम्पित नहीं होती है। कब? (ज रइ अप्प-सहावि) यदि तेरी रति आत्म-स्वभाव में है तो। और यदि रति पर स्वभाव में है तब, कर्म से लिम्पित होती ही है। अहो ज्ञानी! यदि पानी बढ़ जाए और कमल पत्र डूब जाए, तो उसी जल में कमल पत्र सड़ जाता है। अहो कमल! जब तक तू नीर के ऊपर है, तब तक नीर तेरे लिए प्रफुल्लित करनेवाला है और नीर कहीं ऊपर आ गया तो तुम सड़ जाओगे। ऐसे ही, अहो योगी! जब तक आपकी दृष्टि निजात्म-तत्त्व पर है, पर से परे है, तब तक मोक्ष तुम्हारे साथ में है, हाथ में है और जिस दिन तुम राग में पड़ गए, उस दिन तुम्हारी साधना सड़ जायेगी। यह जीवन की दशा है। इस परम् सत्य को टाला नहीं जा सकता है। यह ध्रुव सत्य है, कभी नहीं टाल सकते हो आप और यह विश्वास रखना। हालांकि इतने दिनों में आप वेदन तो कर ही चुके होंगे इस बात का कि योगीन्दुदेव स्वामी जो कह रहे हैं वह यथार्थ है, परम् भूतार्थ है। यह हमारी कमजोरी है कि हम उस पर चल नहीं पा रहे हैं। पर सत्य यही है, जो महाराज यहाँ कह रहे हैं। (जो सम-सुक्ख-णिलीणु) जो सम-सुख में लीन है, ऐसा विद्वान्/ज्ञानी/पण्डित (पुण पुण अप्पु मुणेइ) पुनः पुनः आत्मा को ही मानता है, (कम्मक्खउ करि सो वि) वही जीव कर्मों का क्षय करता है और (फुडु लहु णिव्वाणु लहेइ) शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। कौन? जो अपनी आत्मा को आत्मारूप से अनुभव करता है।

चौरानवे व पंचानवे दोहा-सूत्र में आचार्य भगवान् कह रहे हैं कि अब आपसे बाहर की कुछ नई बात नहीं करना चाहते, अब मैंने आपसे बहुत चर्चा कर ली है, अब मैं आपसे इतनी मात्र बात कर रहा हूँ कि यह जो भगवती आत्मा है, वह है क्या? कौन-सी बलाय है?

(पुरिसायार) अहो मनीषियो! मैं पुनः एक बार आपसे कहूँगा। भैया! यदि आपके नाती ने गलत काम कर दिया हो, तब सत्य बताना, आप समाज में क्या कहते हो? बोले-भैया! क्या बताऊँ, मेरे वंश को लजा दिया, मेरे वंश में ऐसा कोई जीव नहीं हुआ था, और तुम्हारा नाती कहीं मुनि बन जाए तब क्या कहोगे? मुख से कह नहीं पाओगे, पर मन-ही-मन मुस्कराओगे। राग का आँसू टपकेगा, पर धर्म का नीर अंदर में छलकेगा। यहाँ आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं-अहो मुमुक्षु आत्माओ! सिद्ध भगवान् हाथी के आकार के नहीं हैं, घोड़े के आकार के नहीं हैं, उन्होंने आकार भी चुना है तो पुरुषाकार ही। अहो! सिद्धों के आकार की आत्माओ! यदि तुम शरीर से कोई गलत काम करने जाओ, फिर कह देना। वे सिद्ध भगवान् कहेंगे कि बेटा! तुमने मेरे वंश को लजा दिया। एक जिनालय में उस पुरुषाकार की पूजा कर रहे हैं और वह पुरुष यहाँ पाप कर रहा है। ऐसा कर लो आप लोग कि जब तक इस पुरुषाकार में रहो, तब तक कोई पाप नहीं करना। ठीक है न? क्यों नहीं मान लेते हमारी जरा-सी बात? नहीं मान सकते, हमने आपकी इतनी बातें तो मान ली हैं? अहो ज्ञानी! इतना मान लो कि महाराज! जब तक मैं पुरुषाकार में रहूँगा, तब तक पाप-पर्याय में लिप्त नहीं रहूँगा, पाप-पंक को स्पर्श नहीं करूँगा। यदि पुरुषाकार में रहते-रहते तुम पाप से बच गए तो, मनीषियो! परम् पुरुष रूप तुम उत्पन्न हो जाओगे। अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं-

''अस्ति पुरुष चिदात्मा'' विवर्जितिः स्पर्श रस गन्ध वर्णेः ।।पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय।।9 ।।

जो चैतन्य आत्मा है, वही तो पुरुष है। जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित है, वह पुरुष-आत्मा है। इस पुरुष के आकार में यानी सिद्धों के आकार में गलत काम नहीं करना, इतना सोचना तुम। अच्छा, इतना नियम ले लो, महाराज! हम पाप करने जायेंगे तो एक बार जरूर सोचेंगे। इतना भी नियम नहीं ले सकते हो? ओ हो! अब क्या करें? इतना भी नियम नहीं ले सकते कि पाप करने जायेंगे, इससे पहले सोचेंगे जरूर? पर सोचना कि इसका परिणाम क्या होगा? इसका विपाक क्या होगा? दूसरे की पाप-पर्याय आपको अच्छी लगती है? तब सोचो कि हमारी पाप-पर्याय दूसरे को अच्छी कैसे लगेगी? विश्वास रखना, क्रूर-से-क्रूर व्यक्ति दूसरे की अशुभ-वृत्ति को अच्छा नहीं मानता है। जब तुम दूसरे की अशुभ-वृत्ति अच्छी नहीं मानते, तब तुम्हारी अशुभ-वृत्ति अच्छी कैसे हो सकती है? इसलिए ऐसा कर लो, एक पुरुषाकार जो आत्मा है उसकी ओर निहारो।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि (जिय अप्पा एहु पवित्तु) वही आत्मा पवित्र है (जो इज्जइ) जो दिख रही है, (गुण-गण-णिलउ) जो गुणों का समूह है, (णिम्मल-तेय-फुरंतु) तो कैसी परम ज्योति है आत्मा? निर्मल तेज जिसमें स्फुरायमान हो रहा है। वह उज्ज्वलवान् कैवल्य-ज्योति से युक्त है। (जो अप्पा सुद्ध वि मुणइ) जो आत्मा को शुद्ध मानता है, (असुइ-सरीर-विभिण्णु) जो अशुचिमय/अपवित्र शरीर है, इससे पृथक् मानता है, (सो जाणइ सत्थहँ सयल) वह समस्त शास्त्रों को जान जाता है। मनीषियो! सम्पूर्ण आगम-ग्रंथों को घोट-

घोटकर पी लिया और शरीर आदि से ममत्व नहीं छूटा, तब योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं, अभी तुमने कुछ नहीं जाना। जिस दिन तुमने जान लिया कि यह चर्म का शरीर मेरा धर्म नहीं है, चैतन्य आत्मा ही मेरा धर्म है, उस दिन एक भी शास्त्र नहीं पढ़ना, फिर भी तुम सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता कहलाओगे।

सम्पूर्ण आगम का सार आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने 'इष्टोपदेश' में लिख दिया है-

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य, इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ।।50।।

जीव भिन्न है, शरीर भिन्न है, यही सम्पूर्ण आगम का सार है और इसको जिसने जान लिया, समझो उसने सम्पूर्ण आगम को जान लिया।

वही योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं (सो जाणइ सत्थहँ सयल सासय सुक्खहँ लीणु) जो जीव शाश्वत् सुख में लीन हो जाता है, वह समस्त शास्त्रों को जान जाता है। बस, मनीषियो! जब शुद्ध तत्त्व की चर्चा करते हैं, तब आप लोगों के चेहरे देखता हूँ, शान्त हो जाते हैं आप। जब परम तत्त्व की चर्चा में इतना आनंद है, जब भोगियों को आत्म-तत्त्व की बात में इतनी शान्ति मिलती है तो, मनीषियो! योगी बनकर उस तंत्त्व की क्या अनुभूति होगी। एक दिन तो बन जाओ तुम। विश्वास है, तुम एक दिन के लिए यदि सच्चे साधु बन गये तो फिर तुम जाओगे नहीं असाधु बनने को। मनीषियो! अनुभूति एक रसास्वादन, है यदि एक बार हो जावे। मैं तो यह कहता हूँ कि कोई स्वाध्याय नहीं करता है, मन नहीं लगता है, एक दिन प्रेम से लिवा लावो और एक दिन वह स्वाध्याय का रस ले ले तो फिर वह छोड़ नहीं पायेगा। लेकिन आना चाहिए रस। ऐसे ही जब समीचीन शास्त्र को पढ़कर, समीचीन शास्त्री बनकर, सच्चा मुमुक्षु बनकर, योगी बनकर जो आनंद आयेगा, मनीषियो! भोगों में वह आनंद हो नहीं सकता है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी ने स्वयं लिखा है कि तराजू पर एक ओर इन्द्रों के सुख को रख दीजिये और दूसरी ओर योगी के सुख को रख दीजिये, वजनदार कोई होगा तो योगी का सुख ही होगा, भोगी का सुख नहीं होगा। मनीषियो! उस योग-दशा की ओर बढ़ो।

- भगवान् महावीर स्वामी की जय।

परभाव को छोड़े बिना शास्त्रज्ञान शिवत्व का कारण नहीं

योगसार

जो णवि जाणइ अप्पु परु, णवि परभाउ चएइ।
सो जाणउ सत्थइँ सयल ण हु, सिवसुक्खु लहेइ ॥96॥

अर्थ - जो न तो परमात्मा को जानता है और न परभाव का त्याग ही करता है, वह भले ही समस्त शास्त्रों को जान जाये, परन्तु वह मोक्षसुख प्राप्त नहीं करता।

वज्जिय सयल-वियप्पइँ परम-समाहि लहंति।
जं विंदहिँ साणंदु क वि से सिव-सुक्ख भणंति ॥97॥

अर्थ - जो समस्त विकल्पों से रहित होकर परम समाधि को प्राप्त करते हैं, वे आनन्द का अनुभव करते हैं, वह मोक्षसुख कहा जाता है।

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह, रूवत्थु वि जिण-उत्तु।
रूवातीतु मुणेहि लहु, जिम परु होहि पवित्तु ॥98॥

अर्थ - हे बुध! जिन भगवान् के कहे हुए पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान को समझ, जिससे तू शीघ्र ही परम-पवित्र हो सके।

सव्वे जीवा णाणमया, जो सम-भाव मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, जिणवर एम भणेइ ॥99॥

अर्थ - समस्त जीव ज्ञानमय हैं, इस प्रकार जो समभाव है, उसे निश्चय से सामायिक समझो, ऐसा जिन भगवान् ने कहा है।

अध्यात्म देशना

भव्य बन्धुओ!

अनेक बार नहीं, एक बार तो उससे आप मिल लो, जिससे अभी तक मिलन नहीं किया। देह से मिले हो, देह के सम्बंधियों से मिले हो, राग से मिले, रागियों से मिले हो, पर, मनीषियो! वीतराग और वीतरागियों से आज तक तुम नहीं मिले। रोने वाले से मिले हो, हँसने वालों से मिले हो, रुलाने वालों से मिले हो, लेकिन, मनीषियो! शांत चिद्रूप उस भगवत् स्वरूप से आज तक नहीं मिले जहाँ रोना नहीं, हँसना नहीं; वहाँ तो एक मात्र मध्यस्थ परम प्रशांत मुद्रा है। वीतरागी हँसता भी नहीं, वीतरागी रोता नहीं। जहाँ हँसना और रोना है, मनीषियो! वहाँ दोनों जगह भगवत् नहीं है। रो रहा, है वह दुःखी है;, हँस रहा है, वह रागी है और रागी/दुःखी भगवान् कैसा? जो परम ज्ञायक स्वभावी है, जो परम

आत्मधर्म से युक्त है, उस प्रभु से आज तो मिलन करो। अपनी दृष्टि को सम्यक् बनाओ, विशाल बनाओ। हे वर्द्धमान! आप भगवान् जब बने थे, उससे पहले, दृष्टा-सृष्टा बनने के पूर्व, आप समदृष्टा बने थे। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति समत्व भाव रहे, यह जीवन में ध्यान रखना। समकित भाव, श्रमणत्व भाव इन दोनों के पहले कोई आता है तो उसका नाम है समत्व भाव। भेदभाव की दृष्टि ही अधर्म है, भेदभाव की दृष्टि ही पाप है। जहाँ भेदभाव का उदय होता है वहीं, मनीषियो! धर्म का विनाश हो जाता है। जहाँ संकल्प का उदय होता है वहाँ, मनीषियो! शांति का विनाश हो जाता है। संकल्प-विकल्प ये आत्मा के दो शत्रु हैं। ''अहमेदं संकल्पम्, ममेदं विकल्पम्''। ये मेरे हैं, ऐसा भाव संकल्प और मैं ऐसा हूँ, ऐसा भाव, यह संकल्प-विकल्प है और दोनों जब तक रहेंगे तब तक आप चाहो कि मैं शांति से बैठ पाऊँ, यह कभी संभव नहीं है। इस भाव को आचार्य महाराज ने बड़े सहज भाव से कहा है। कर्म के क्षय के लिये बड़े सहज भाव से आज समझना है। आचार्य महाराज बहुत अंदर में बैठकर आज आपको कुछ नई बातें कहने वाले हैं।

अहो ज्ञानी! सबको जाना, सबको समझा, लेकिन अपने को और पराये को नहीं जाना। पराये में अपनी मान्यता ही बहिरात्म भाव है। कितने-कितने जीवों के शरीरों को आपने अपना माना है, जबकि वे शरीर आपके सामने से जाते दिखे हैं श्मसान की ओर और जिन शरीरों पर तुमने पूरी पर्याय न्यौछावर की थी, वे शरीर आज झुलसते देखे जा रहे हैं। जब राग ही था तुझे उससे, तब उस राग की आग में तू ही क्यों नहीं बैठ गया? सम्हलकर सुनना। इस शरीर के राग के कारण आप माँ को माँ नहीं कह पाये, जिसने तुझे जन्म दिया था। आज तू दूसरे की चमड़ी के पीछे जन्म देने वाली जननी को भूल गया। उस माँ से पूछ लेना आज जाकर, हे माँ! तूने मुझे नौ मास रखा था, तब क्या-क्या सोचा था? उस जननी ने कभी नहीं सोचा होगा कि जब मैं तुमसे एक गिलास पानी माँगूंगी तो तू पीछे मुड़कर चला जायेगा। मनीषियो! कल्पना करना, जो व्यथा एक कसाई के द्वारा छुरी भोंकने पर एक तिर्यंच को नहीं होती है, उससे अधिक व्यथा उस माँ को उस क्षण होती है, जब बेटा पीछे मुड़कर चला जाता है। तेरी दो माँ हैं, एक वह माँ भारती, जो अपने बेटे से कहती है-बेटा! तुम संयम के सलिल का पान कर लो। परन्तु जब तुम भोगों में डूब जाते हो, तब माँ जिनवाणी रो पड़ती है कि, ओ हो मेरे लाल! मेरे देखते-देते तुम विषयों के गड्ढे में गिर रहे हो। और एक माँ वह जिसने तुम्हें जन्म दिया है, राग की माँ है। जिनवाणी माँ को भी तुम भूल रहे हो, जन्म देनेवाली माँ को भी तुम भूल रहे हो। किस कारण से? एक मात्र शरीर के कारण। स्वयं के शरीर के राग के द्वारा नहीं, दूसरों के द्वारा उत्पन्न कराये गये शरीर को तू अपना भोग्य-स्थान बना बैठा है, इसलिए तू रो रहा है। एक छोटी-सी बात समझना, एक युवक अपनी प्रेमिका के पास जाता है। प्रेमिका ने कहा, मैं तुमसे प्रेम कर लूँगी, लेकिन इतना ध्यान रखना कि आप अपनी माँ के कलेजे को लाकर मुझे दे देना। सुनना, एक रागी, जिसे जननी ने जन्म दिया है, आँचल का

पान कराया है, अहो ! वासनाओं की मार देखो, जन्म देने वाली माता के कलेजे को लेने चल दिया । पहुँचता है घर पर । माँ! आज मुझे अपनी इच्छाओं की पूर्ति करना है और पूर्ति तब संभव होगी जब आपका कलेजा मुझे मिल जायेगा । जननी कहती है- 'बेटे! जी भी मैं तेरे लिए रही थी, तेरे लिए मर भी जाऊँ तो भी कोई दिक्कत नहीं है । जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर लो ।' जिसका चित्त विषयों में आसक्त है, उसके सम्पूर्ण गुण समाप्त हो जाते हैं । न मनुष्यता बचती है, न सत्यता बचती है, न देवत्व बचता है । कोई गुण बचता ही नहीं है । जैनदर्शन के महान् सिद्धान्त-ग्रन्थ 'गोम्मट-सार (जीवकाण्ड)' में कहा है-

वेदस्सुदीरणाए परिणामस्स य हबेज्ज संमोहो ।
संमोहेण ण जाणदि जीवो हु गुणं व दोसं वा ।।272 ।।

जब वेदकर्म की उदीरणा सताती है तब, हे भगवन्! अग्नि में कूदकर झुलस जाना उतनी पीड़ा नहीं देता है जितनी काम की अग्नि में कूदे व्यक्ति को पीड़ा होती है । चाँद की चाँदनी तपाती है, कोई छतरी काम में नहीं आती है, कोई छत काम में नहीं आती है, चंदन के छींटे काम में नहीं आते हैं । (परिणामस्स य हबेज्ज सम्मोहो) जीव के परिणाम सम्मोहित हो जाते हैं (सम्मोहेण जीवो ण गुणं व दोसं वा) फिर वह नहीं जानता कि इसका गुण क्या होगा, दोष क्या होगा । मेरे से मत पूछना, अपने हृदयों से पूछना कि, अहो! मेरे जीवन में क्या विडम्बनाएँ हुई हैं । योगीन्दुदेव स्वामी से पूछ लेना ।

बेटा माँ के हृदय को चीर करके चलने लगा और दौड़कर जा रहा था कि विलम्ब न हो जाए । रास्ते में ठोकर लगती है एक पत्थर की, माँ का हृदय जमीन पर गिर जाता है । हृदय से आवाज आती है-बेटे! कहीं तेरे लग तो नहीं गई? माँ का हृदय अभी भी कह रहा है-कहीं तेरे को लग तो नहीं गई? तुम कहीं भी होगे, माँ यही कहेगी कि, बेटे! कहीं लग तो नहीं गई है? जैसे ही पहुँचता है प्रेमिका के पास, कहता है-लीजिए, ये मेरी माँ का हृदय है । चीख पड़ती है, कहती है-पापी, दुष्ट! तू यहाँ से, मेरे सामने से भाग जा । क्यों? जब मेरे राग में तू अपनी माँ के हृदय को चीर सकता है, तो कल किसी दूसरे के राग में मेरे हृदय को भी चीर सकता है । ओहो! सिर फोड़ लिया । धिक्कार हो मेरी वासनाओं को । न मैं माँ का बचा, न इसका बचा ।

ये वासनाएँ, ये कामनाएँ ऐसे दुष्ट प्रेमिकाएँ हैं जो तुझे लगती हैं कि मेरी-मेरी हैं और इसके पीछे तू चारित्र की जननी के हृदय को चीर रहा है । यह विश्वास करो कि चारित्र चला जायेगा, संयम चला जायेगा, लेकिन वासनाएँ कभी तेरा साथ नहीं देंगी । लिख लेना आज आप अपने अंतःकरण में, कोई साथ नहीं देगा । (जो णवि जाणइ) जो नहीं जान रहा है । क्या? (परु अप्पु) अपने और दूसरे को (णवि परभाउ चएइ) वह ऐसे अशुभ भावों को नहीं छोड़ पा रहा है, परभावों को नहीं छोड़ पा रहा है । अहो छतरपुर की आत्माओ! यदि कुशील का संसर्ग हो जाए, दुष्ट व्यक्ति का संयोग हो जाए, तब आप छोड़ते ही नहीं, तुरंत भागते हो । तो

जो कुशील-परिणाम हैं, उन्हें क्यों नहीं छोड़ देते हो? अशुभ व्यक्ति के संयोग में आप भी अशुभ गिने जाते हो। मद्यपायी के साथ रहोगे तो कितने ही सज्जन होंगे, भैया! मदिरालय में तुम भले ही दूध पीना, पर शराबी कहलाने लगोगे। गिलास में दुग्ध था, लेकिन स्थान उचित नहीं था। अहो ज्ञानी! कितने ही सयाने होगे तुम, यह काजल की कोठरी है, कलंक तो लगेगा ही। समझ में आ रहा है? यह राग-समाज महा अघकारण है, बैर बढ़ावन हारा है, वेश्या-सम लक्ष्मी है, फिर भी हम पीछे पड़े हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं कि पर को पर क्यों नहीं मान रहे आप? राग, समाज काम में नहीं आयेगी। समितियाँ, गुप्तियाँ, चारित्र ही काम आयेगा, विश्वास है न? तो दूसरे के पीछे मत भागो, ज्ञानी आत्माओ! ध्यान से समझना। श्रद्धा कितनी ऊँची वस्तु है, यदि कोई तुमसे माँगना चाहे तो अपना घर लुटा देना, यदि कहीं कोई आपत्ति आ जाए तो पूरा घर दे देना आप, लेकिन हाथ जोड़ लेना कि हम अपने देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा तुमको नहीं दे पायेंगे। हम तुम्हें सब कुछ दे सकते हैं, लेकिन जो शीश जिनेन्द्र के चरणों में झुका रहता है, वह शीश पाखण्ड पर नहीं झुकेगा, मिथ्यात्व पर नहीं झुकेगा, पर भावों में नहीं झुकेगा। सबसे बड़ा पर भाव मिथ्यात्व है। ध्यान से समझना कि जो कुछ कोई माँगे, सब दे देना, लेकिन बड़े प्रेम से कह देना। रावण ने सीता को क्या-क्या नहीं दिखाया था। सीते! तुम मेरी इस स्वर्ण लंका की महारानी कहलाओगी, मेरी अट्ठारह हजार रानियाँ आपकी चेली बनकर रहेंगी, दासी बनकर रहेंगी, आप मुझे स्वीकार कर लीजिए। धन्य हो शीलवती नारी को, जिसने क्या सुंदर बात कही- लंकेश! 'केयर मोच भुजंग मणि, पतिव्रता का गात्र। सूर कटारी कृपण धन, प्राण गये, तब हाथ।'

(केयर मोच) यदि कोई सिंह की मूँछ लाना चाहता है तो तुम नंगे हाथों से जीवित उसकी मूँछ नहीं ला पाओगे। सर्प का मणि और क्षत्रिय के हाथ से कटार छीनकर लाओ, हे लंकेश! और कंजूस के धन को निकलवाओ, कैसे निकाल पाते हो? शूर-कटारी, विप्र का धन, पतिव्रता का गात्र, ऐसे ही पतिव्रता नारी के शरीर को तुम तभी छू सकते हो जब उसके तन से प्राण निकल जायें, इसके पहले तुम छू नहीं सकते और आप मुझे सोने की लंका का लोभ दे रहे हो? सीता ने कहा-

कुशीलस्य वैभवं केवलं मलम्।
साधुजन शीलस्य दरिद्रतामपि भूषणम्॥

कुशील का वैभव केवल मल है और शीलवंत की दरिद्रता भी आभूषण है। तेरे मल से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। यह कौन बोल रहा था? यह सीता नहीं बोल रही थी, यह शील की शक्ति बोल रही थी। सीता में बोलने की क्या ताकत थी? वह तो अबला थी। बल था तो किसका? यह शील का बल था। और यह यथार्थ है कि जिसके पास बल होता है, वह बहुत अच्छे से बोल लेता है और जिसके पास बल नहीं होता, वह म्याऊँ-म्याऊँ करके भाग जायेगा। क्या करें? यदि कोई व्यक्ति रात्रि-भोजन करता है तो उसको स्टेज पर खड़ा कर देना, कहना-बोलो रात्रि

भोजन के बारे में आप। वह कहीं-न-कहीं से घुमा-फिरा कर कह देंगे-हाँ, भैया! रात्रि में फल-फूल तो चल ही सकता है। अपने यहाँ 'पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय' की वाचना हुई थी न? इसी 'पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय' ग्रंथ में आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने कहा है-

नैवं वासरभुक्तेर्भवति हि रागोऽधिको रजनिभुक्तौ।
अन्नकवलस्य भुक्तेर्भुक्ताविव मांसकवलस्य॥132॥

जितना राग दिन के भोजन करने में नहीं होता है, उससे अधिक राग रात्रि के भोजन करने में होता है। जो व्यक्ति रात्रि में अन्न के ग्रास को खाता है, वह माँस खाता है। एक सा तो लिख रहे हैं अमृतचन्द्र स्वामी और वहीं पर कुछ लोग...... । अब आप लोग समझ गये होंगे। वहाँ से प्रकाशित ग्रन्थ हैं। उन्होंने उसके नीचे लिख दिया है : फल-फूल, लोंग-इलायची आदि तो चल सकते हैं। अब उन ग्रन्थों को यदि आप लोग पढ़ोगे और जिसे संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं है, वह तो यही कहेगा कि अमृतचन्द्र स्वामी ने लिखा है कि रात्रि में ऐसी-ऐसी सामग्री खा सकते हैं। जबकि आचार्यों ने कहीं भी यह नहीं कहा है। ऐसी जिनवाणी में मिलावट कर दी तो, जीवन में ध्यान रखना, ऐसी मिलावट का पान करके कहीं अपनी आत्मा की विडम्बना मत कर लेना। यह यथार्थ है कि हर व्यक्ति समझदार नहीं होता है। उसे तो शास्त्र नजर आता है, लेकिन शास्त्र में क्या और लिखा है, यह उसे समझ में नहीं आता है।

अमृतचन्द्र स्वामी और योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं-ज्ञानी! उस तत्त्व को समझो। जितने विषय भाव हैं, सब पर भाव हैं। वैभव को देखकर, विभूति को देखकर और ऊपर की अच्छाई को देखकर जो जीव प्रभावित हो जाता है, भो ज्ञानी आत्मा! वह अपनी आत्मा की वंचना कर लेता है। विषय ऊपर से मीठे ही तो लगते हैं न? विषफल कितना सुन्दर होता है, लेकिन फल क्या होता है उसका? विषफल का स्वाद चखा है किसी ने? चखकर बताना। अच्छा, भैया! चख मत लेना, नहीं तो कल बताने नहीं आ पाओगे। भो ज्ञानी आत्माओ! यथार्थ तो यह है कि आप रोज चख रहे हो, पर किसी को बता नहीं रहे हो। उसमें दूसरों को और फंसा रहे हो। एक सच्चा पिता होगा तो अपने बेटे से कह देगा शादी के पहले-बेटा! पहले मेरे अनुभव पूछ लो, फिर आज हम तुम्हारी शादी कर देते हैं। लेकिन आप लोग कितने स्वार्थी हो जो अपना अनुभव बेटे को कभी नहीं बताते हो। यदि पिताजी वास्तव में बेटे को अपना अनुभव बता देंगे, तब वह कहेगा-पिताजी! हमें शादी नहीं कराना है। लेकिन आप उसको हवा नहीं लगने देते हो अपने अनुभवों की, ऊपरी-ऊपरी बातें ही बताते हो। इसलिए पर भाव जो हैं ये वास्तव में आत्मा के गुणों का अभाव करने वाले हैं।

(सो जाणउ सत्थइँ सबल) यह बहुत बड़ी आपको सूचना दे रहे हैं आचार्य महाराज, हे आत्मन्! सम्पूर्ण शास्त्रों को तुम जान रहे हो, परन्तु पर भावों को नहीं छोड़ पा रहे हो। जान लो सब शास्त्रों को, रट लो, कण्ठ में धर लो, विद्वान् बन जाओ, लेकिन, भो ज्ञानी आत्माओ! (ण हु सिवसुक्खु लहेइ) आत्मा का कल्याण तब तक संभव नहीं, जब तक चारित्र तेरे पास में

नहीं है। आचार्य महाराज यह सहज भाव से कह रहे हैं, अध्यात्म में पराकाष्ठा पर जा रहे हैं। जिन्हें अब ग्रंथ भी ग्रंथि जैसे लगने लगें, वे ही परम निर्ग्रन्थ हैं। ये ग्रंथ अवलम्बन है, यह कोई मेरी आत्मा का रचा भाव नहीं है। यह मैं तभी तक पढ़ रहा हूँ, जब तक निज को पढ़ना नहीं सीखा। हे भगवन्! जिस दिन मैं निज को पढ़ने लग जाऊँगा, उस दिन इनको भी मैं बंद करके रख दूँगा। परम् लक्ष्य वही है। उस वीतराग योगी को निहारना। भैया! जिसे ग्रंथ भी परिग्रह के रूप में नजर आते हों, उसे संसार के परिग्रह कैसे भा सकते हैं? इसका नाम है परम-अध्यात्म-योगी। हे भगवान्! वह घड़ी कब आये जब मैं पिच्छी, कमण्डल से भी रहित हो जाऊँ, इनका भी विकल्प न रहे। फिर नहीं देखना पड़ेगा कि कहाँ जा रहा हूँ, कहाँ नहीं जा रहा हूँ और वह दिन कब आये जब पैर भी न उठाना पड़े। बस, चलते-चलते ही चला जाऊँ। यही अरहंत का विहार है। अरहंत देव पैर नहीं उठा रहे हैं, चले जा रहे हैं, कमलों की रचना होती चली जा रही है। पर यह ध्यान रखना, कमलासन पर तभी बैठोगे जब तुम अनलासन और कमलाओं के आसन को छोड़ दोगे। भो आत्मन्! कमलासन पर बैठना चाहते हो, तो पहले कमलाओं के राग को छोड़ो और कामनाओं की आग को छोड़ो। अहो ज्ञानी आत्माओ! कमलासन पर बैठना चाहते हो तो पहले कमल जैसा कोमल हृदय बनाओ। जिसका हृदय कोमल नहीं होगा, वह कमलासन पर क्यों बैठेगा? कमलासन पर बैठना है? अहो ज्ञानी! चित्तों में तुम कितने ही कमलों पर नहीं, महाकमलों पर बैठ जाना, लेकिन कमलासन पर तो वह तीर्थंकर अरहंत ही विराजता है जो, मनीषियो! क्षायिक लब्धियों से पवित्र पावन होता है। इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं कि तुम शिव-सुख चाहते हो तो जिनवाणी को पढ़ो, जानो, समझो; लेकिन जानते ही मत रहना, कुछ करना भी। (वज्जिय सयल-वियप्पइँ) और सम्पूर्ण विकल्प समाप्त हो जाते हैं (परम-समाहि लहंति) विकल्पों में समाधि कहाँ और समाधि में विकल्प कहाँ? निर्विकल्प जानते हो न आप लोग? एक काम तुम्हारा बन जाए तब बड़े प्रेम से कहते कि अब तो हम निर्विकल्प हो गए। ओ हो! जरा-सा काम बनने लगे तो आप निर्विकल्प होना प्रारम्भ कर देते हो। अहो ज्ञानी! काम बना कहाँ है? उस योगी से पूछना जिसने सब काम ही छोड़ दिये हों, तो विकल्प ही नहीं है। अच्छा आप लोग निर्विकल्प होना चाहते हो न, तो जैसा हम कहेंगे, वैसा करोगे? अहो ज्ञानी आत्माओ! संसार की अवस्था में कभी नहीं कहते कि महाराजश्री! कोशिश करूँगा और जहाँ मोक्षमार्ग पर चर्चा प्रारम्भ हो जाए तो यह कहते कि महाराज! कोशिश करेंगे। ठीक कह रहे हो भैया, यह यथार्थ है, क्योंकि बात ऐसी है कि जो चुनरिया रंगबिरंगी हैं, उसमें कोई दाग दिखते भी कहाँ हैं। सफेद चुनरिया में दाग तुरंत दिखता है।

ब्रह्मगुलाल मुनि की कथा सुनी है आप लोगों ने। ओ हो! यूँ तो बहुरूपिया थे, नाना रूप बना रहे थे, अनेक रूप बनाकर दिखा रहे थे। एक दिन सम्राट ने कह दिया-मैं तब मानूँ आपको जब आप शेर का रूप बनाकर आ जाओ। राजन्! मैं शेर तो बन जाऊँगा, लेकिन एक

जीव की आपको छूट देना पड़ेगी, खून माफ करना पड़ेगा। नहीं सोच पाया कुछ, भावुकता में बोल पड़ा-हाँ, छूट है। और जैसे ही वह सिंह बनकर आया, राजकुमार पर पंजा मार दिया। सम्राट कुछ कह नहीं सके, पर अंदर में प्रतिशोध की भावना थी। उन्हें कुछ नहीं दिखा, बोले-तब मैं आपको मानूँ जब आप दिगम्बर मुनि बनकर आ जाओ, दिगम्बर मुनि बनकर दिखा दो मुझे। अभी तक तो जो रूप कहा, तुरंत बनाकर आ गया, परन्तु अब कहता है-महाराज! आठ दिन चाहिए? राजा भी सोच रहा था- आज आठ दिन क्यों? मनीषियो! संसार के नाना रूपों को धारण करके बदला जा सकता है, परन्तु यह जिनरूप है, यह जिनमुद्रा है। आठवें दिन निर्ग्रन्थ योगी बनकर पहुँच गए, सभा खड़ी हो गई, नमोस्तु निवेदित किए और वीतरागी मुनिराज के धर्मोपदेश होने लगे। कोई कह नहीं सकता था कि यह वही बहुरूपिया बोल रहा है। शुद्धात्म तत्त्व की चर्चाएँ प्रारंभ हो गईं। जब समय हो गया, तब परिवार के लोग कहते हैं-अब तुम्हारा खेल हो चुका है, समय पूरा हो गया है, राजा प्रसन्न हैं, अब घर चलो। 'अहो तात! घर में आये व्यक्ति को तुम बाहर कहाँ ले जाना चाहते हो? अब मैं घर में ही तो आ गया हूँ।' नहीं बेटा! यह मुनिवेश है, अब तुम घर चलो। 'नहीं, पिताजी! यह मुनिवेश नहीं, निज के घर में जाने का प्रवेश-द्वार है।' तो क्या नहीं चलोगे? 'पिताश्री! खेल-खेल में मुनिराज तो बना जा सकता है, पर मुनि बनकर खेल नहीं होता है।'

ब्रह्मगुलाल मुनि की कथा अचरजकारी है। 'हँसी-खेल में स्वाँग रचायो, जिनपद की दीक्षा धारी।' मैं तो सोचता हूँ कि छतरपुर में ऐसा कोई बहुरूपिया हो जाए जो एक दिन मुनि तो बन जाए। ध्यान रखना, फिर घर में नहीं आने देना। आप नाटक करते हो। भो ज्ञानी आत्माओ! यह निर्ग्रन्थ-वेश नाटक का नहीं है। नाटक में मुनि बन जाए तो कोई दिक्कत नहीं है, पर मुनि बनकर नाटक मत कर बैठना। या तो बनना मत, और बने तो फिर बिगड़ना मत। ठीक है न? ब्रह्मगुलाल की पत्नी समझाती है, पिता समझाते हैं, जन-पुरजन समझाते हैं, लेकिन अब नहीं, अब तो जो है सो है। पिच्छी- कमण्डल लेकर जंगल की ओर चले गए। देखो एक बहुरूपिया मुनि बन गया। पर देखो-देखो, ये कैसे बहुरूपिया हैं, जो रोज-रोज रूप लेकर आ जाते हैं, फिर भी एक दिन मुनि बनने का मन नहीं करता है। एक दिन तो सोचो। अच्छा, एक दिन बनकर तो देखो। यह अनुभव करो कि लगता कैसा है? यथार्थ है कि जो अनुभूति आपको जीवन में कभी नहीं हुई है, वह अनुभूति आपको निश्चित होगी। वही तो आचार्य महाराज कह रहे हैं (परम-समाहि लहंति) परम् समाधि को प्राप्त कर लेता है (जं विंदहिं साणंदु क वि सो) ऐसी परम्-सम्पत्ति परम्-आनंद को प्राप्त कर लेता है (सो-सिव-सुक्ख भणंति) वही, मनीषियो! शिव-सुख है। जिसका कभी अंत नहीं है, यह परम्-सुख है।

मनीषियो! आचार्य भगवान् कह रहे हैं-वह परम्योगी निर्ग्रन्थ दशा को प्राप्त कर लेता है। अब गहन तत्त्व की चर्चा कर रहे हैं। जब तक हम व्रती नहीं होते हैं, तब तक ही विकल्प करना

CC0.In Public Domain. Digitized by ... Trust/eGangotri

कि मैं व्रती बन जाऊँ। आगम में अव्रती के लिये यह कहा है कि व्रती बनने का विकल्प करो। ज्ञानी बनने का विकल्प मत करना। ज्ञान एक बहुत बड़ा तनाव है जो कि मानसिकता को कुण्ठित कर देता है, हीन भावना को जन्म दे देता है कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। यह कभी मत सोचना कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। अरे तू विश्व को जानने वाला भगवान् है। हम नहीं जान पा रहे हैं चर्म इन्द्रियों से तो कोई दिक्कत नहीं है। अब मैं इनसे और नहीं जानना चाहता हूँ। मैं नेत्रों को बन्द कर उस दृष्टा को देखना चाहता हूँ, जो विश्व को देखने वाला है। वह दिखेगा कैसे? पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं 'समाधि शतक' ग्रन्थ में, 'अविरति व्रतमादाय', हे अव्रती! तुम व्रत को स्वीकार करो और जब व्रत को स्वीकार करोगे तो जो तेरे ज्ञान-तंतु विषयों में झुलस रहे थे उनको विश्राम मिलेगा और विश्राम मिलने से आप कल्पना करना कि जो कभी कालेज और स्कूलों के चेहरे देखने नहीं गये, वे आज बड़े-बड़े ग्रन्थों की टीकाएँ कर रहे हैं। यह सब संयम का प्रभाव है। संयम से आपके क्षयोपशम में अपने-आप वृद्धि होती है और आपके पास ताकत तो है। तुम्हारे पास वह परम् शक्ति है कि जिसको उपयोग में लाकर जेम्स वाट ने रेलगाड़ी को चला दिया। पर अंतर इतना है, यदि बटलोई के अन्दर छेद हो जाये तो पूरा पानी नीचे बह जाये और बटलोई के नीचे अग्नि जलती रहे और बटलोई ढँक जाये, तब भाप बन जाये। अहो ज्ञानी! यदि तू इस ध्यान की अग्नि से अपने शरीर के अन्दर की धातु, अधातु, वीर्य आदि को वाष्पित कर ले तो शरीर में ओज बन जाये और यह आत्मा उठकर सिद्धालय में विराजमान हो जाये। परन्तु तुमने भोगों की नाली में उस परम् द्रव्य को छोड़ दिया है, इसलिए तुम्हारा ज्ञान/विवेक काम नहीं कर रहा है। यथार्थ यही है कि एक तपस्वी उसे वाष्पित कर लेता है और एक भोगी उसे विषयों की नाली में बहा देता है। वाष्पीकरण होने की विद्या कोई है तो उसका नाम है ध्यान। ज्ञान से मोक्ष नहीं होता है, मोक्ष ध्यान से होता है। ज्ञान से ध्यान होता है और फिर ध्यान से मोक्ष होता है। तो पहले संयम और जब संयम होगा तब ज्ञान होगा। पाँच कल्याणक आपके कभी मनते देखे हैं? तीर्थंकर के पंचकल्याणक देखे हैं? पहले कौन-सा कल्याणक मनाते हो, तप-कल्याणक कि ज्ञान-कल्याणक? पहले तप-कल्याणक होता है, फिर केवलज्ञान कल्याणक होता है। पहले दीक्षा होना चाहिए, फिर शिक्षा होना चाहिए-यह जिनवाणी का विधान है।

जो पुराने होंगे उन्हें मालूम होगा। पाटी पढ़े कि नहीं आप लोग? कि स्लेट पढ़े? पाटी आप पढ़े हो। मालूम, उस पाटी के ऊपर लिखा जाता है 'ओ न म सि धं' जिसका मतलब है 'ओम नमः सिद्धम्'। पहले बेटे की दीक्षा कराइये, सिद्धों की पूजा करके। आगम में देखो आप लोग। ध्यान रखना, जब भी अपनी संतान को तुम पढ़ाने बैठाओ, तो सबसे पहले तुम मंदिर में लाना, उसको तिलक करना और तिलक करके उससे सिद्धों की पूजा करवाना, अरहंत की पूजा कराके उसके हाथ से लिखवाना 'ओं नमः सिद्धेभ्यः' और वह दिन हो आपका सोमवार/चन्द्रवार/सोमदिन। उस दिन अपने बेटे को आप अध्ययन कराने बैठाना और

सबसे पहले उसको संस्कार देना-आज से तुझे पच्चीस वर्ष के लिये ब्रह्मचर्य दीक्षा दी जाती है। पच्चीस वर्ष के लिये विद्यार्थी-जीवन, यह ब्रह्मचर्य-जीवन कहलाता है। पच्चीस वर्ष तक जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, उसके ज्ञान की महिमा कि उस कुमार ब्रह्मचारी के लिये देवों ने भी नमस्कार किया है। अब सोचो-ब्रह्मचर्य दीक्षा हमारी हो ही नहीं पाती और हम पिताजी बन जाते हैं, तो अब कहाँ ज्ञान बढ़ेगा?

आचार्य महाराज कह रहे हैं-चित्त की एकाग्रता का नाम ध्यान है। उसके चार भेद हैं- पिडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत।

पदस्थं पिण्डस्थ स्वात्म चिन्तनम्।
रूपस्य चिदरूपः रूपातीतं निरन्जनम्।। द्रव्यसंग्रह टीका।।

पदस्थ यानी जो मन्त्र-अक्षरों का ध्यान किया जाता है, 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।' यह पैंतीस-अक्षरीय महामन्त्र का ध्यान है, यह पदस्थ ध्यान है। इसको आप सीधा भी पढ़ सकते हो, उल्टा भी पढ़ सकते हो और जहाँ से बने वहाँ से पढ़ लो, लेकिन पूरे पद होना चाहिए। पूर्वानुपूर्वी यानी सीधा पढ़ना, पश्चातानुपूर्वी यानी उल्टा पढ़ना, यथातथ्यानपूर्वी यानी जहाँ से बने वहाँ से पढ़ना। क्यों? चित्त की एकाग्रता के लिये। चित्त भ्रमित न हो, क्योंकि आप लोग कह रहे हो न कि णमोकार मुख में चलता है और मन बाजार में घूमता है। जिनवाणी कहती है-सुनो, पढ़ो 'णमो लोए सव्व साहूणं, णमो उवज्झायाणं, णमो आइरियाणं, णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं', कहीं से भी पढ़ो, यह यथातथ्यानुपूर्वी है। अब पश्चातानुपूर्वी 'णमो लोए सव्व साहूणं, णमो उवज्झायाणं, णमो आयरियाणं, णमो सिद्धाणं, णमो अरहंताणं।' दोष नहीं मानना, ऐसे भी माला आप फेर सकते हो चित्त की एकाग्रता के लिये। यह पदस्थ ध्यान है। (पिण्डस्थ स्वात्म चिंतनम्) जो निज शरीर में बैठा निज आत्मदेव है, उसका चिंतवन करना, यह, मनीषियो! पिण्डस्थ ध्यान है। (रूपस्थं सर्व चिदरूपः) सकल-परमात्मा/अरहंत परमात्मा के स्वरूप का चिंतवन करना, समवसरण में विराजे तीर्थंकर को निहारना, यह, मनीषियो! रूपस्थ ध्यान है। आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी समझा रहे हैं (रूपातीत निरंजनम्) निरंजन, कर्म-कलंक से रहित सिद्ध परमेश्वर का जो ध्यान है, इसका नाम, मनीषियो! रूपातीत ध्यान है।

ऐसे चार ध्यान करो (जिण अत्तु) ऐसा भगवान् जिनदेव ने कहा है। (रूवातीतु मुणेहि लहु जिम परु होहि पवित्तु) यदि आप शीघ्र ही पवित्र होना चाहते हैं तो यह चार प्रकार का ध्यान करो। (सव्वे जीवा णाणमया) विश्व में कोई भी जीव अज्ञानी नहीं है। सुनो, कभी अपने ज्ञान का अहंकार मत करना- अरे! ये अज्ञानी बैठा है। ओ हो हो! जिस दिन अज्ञानी हो जायेगा न, उस दिन जीव द्रव्य ही नहीं बचेगा। लब्ध अक्षर-ज्ञानावरण होता है। कम-से-कम जो ज्ञान होता है वह लब्ध अक्षर-ज्ञान ही है। इस पर कभी आवरण नहीं पड़ता है। यदि

इस पर आवरण पड़ जायेगा, तो जीवत्व का ही अभाव हो जायेगा । इसलिए विश्व में जितनी आत्माएँ हैं, वे सब ज्ञानी ही हैं । चैतन्य की अपेक्षा से कोई भी जीव अज्ञानी नहीं है । तुम क्यों अहंकार कर रहे हो?

जब तुम्हें अहंकार आने लग जाए कि ज्ञानी हूँ, तब, भो ज्ञानी! केवली भगवान् को देखना, कि तू कितना ज्ञानी है? कुछ भी तेरे पास ज्ञान नहीं है । छद्मस्थ-ज्ञान की दृष्टि से देखोगे तो बड़े-बड़े ज्ञानी भी अज्ञानी हैं । एक मात्र केवली भगवान् ही ज्ञानी हैं और जब हीन भावना आ जाये तो ज्ञानत्व दृष्टि से देखोगे, तो विश्व में निगोदिया भी ज्ञानी है । इसलिये तो मैं आपसे कहता हूँ ज्ञानी आत्माओ! हमें कोई अज्ञानी दिखता ही नहीं है । अहो ज्ञानी! ध्यान रखो ।

परन्तु यहाँ जिस ज्ञानी की बात कर रहे हैं, वह विषय-कषाय में लिप्त ज्ञानी की बात नहीं है, यह वीतराग-ज्ञानी की चर्चा है ।

(सव्वे जीवा णाणमया) यह सभी जीव ज्ञानमयी हैं (जो समभाव मुणेइ) जो साम्य भाव से युक्त हैं (सो सामाइउ जाणि) आचार्य महाराज कह रहे हैं कि वही सामायिक चारित्र है ।

समता सर्व भूतेषु, संयमे शुभभावना।
आर्तरौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम् ।।पद्मनंदि पंचविंशतिका ।।

अब मालूम है-आप बैठ गए, आँखें बंद कर ली हैं । ध्यान में बैठे हैं और अंदर में चल रहा है कि कल देखेंगे इनको कि क्या करते हैं? इन्होंने हमसे परसों ऐसा क्यों कहा था? और णमो अरिहंताणं । हाँ, ऐसे बैठे हैं ।

अहो ज्ञानी! सामायिक का अर्थ होता है-जहाँ आर्त और रौद्र दोनों ध्यान भाग जाएँ, धर्मध्यान और शुक्लध्यान विराज जायें और प्राणि मात्र के प्रति साम्य भाव हो । इसका नाम सामायिक है और माँ सामायिक करने बैठी, वहाँ कह रही है-बहू दूध गर्म कर लो और सामायिक कर रही है । ऐसे स्थान पर नहीं बैठना, जहाँ दूध गर्म कराना पड़े । दूध गर्म हो या न हो, लेकिन तुम्हारी परिणति तो गर्म हो ही जाती है । ऐसी सामायिक न करना कि भैया! सुनो हम जाप कर रहे हैं, तुम ग्राहक चला लइयो । और भूल गये कि कब एक ग्राहक भग गया और णमो अरिहंताणां । अरे ज्ञानी आत्मा! यह छल क्यों कर रहे हो? अच्छे से करो सामायिक । इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं कि साम्य भाव (सो सामाइउ जाणि) इसको तुम सामायिक जानो । (जिणवर एम भणेइ) भगवान् जिनेन्द्र देव ने ऐसा निश्चय से कहा है । जहाँ प्राणि मात्र के प्रति निर्मल भाव है, साम्य-परिणाम है, इसका नाम सामायिक है और जिसके जीवन में सामायिक चारित्र आ गया, मनीषियो! नियम से वह जीव बत्तीसवें भव से मोक्ष जायेगा ।

इसलिए, छतरपुर के ज्ञानी आत्माओ! आप ज्यादा सीख सको या न सीख सको, परन्तु आप यदि दो घण्टे स्वाध्याय करते हो तो कम-से-कम पन्द्रह मिनिट सामायिक करो ।

अड़तालीस मिनिट से कम सामायिक होती नहीं है। यदि आपने अड़तालीस मिनिट सामायिक कर ली तो धन्य है। अपने आपसे मिलने का, अपने आपसे चर्चा करने का यदि कोई समय है तो उसका नाम सामायिक है। जैसे बही खाता बनाते हैं न आप? कितने रोकड़ गए, कितने आये, सब बही खाता बना लेते हो। ऐसे ही जीवन में पुण्य-पाप की, शुभ-अशुभ की बही खाता बनाने का स्थान सामायिक है। देखो, आज हमने ऐसा पाप कर लिया, आज हमसे ऐसा दोष हो गया है, अब आज से ऐसा नहीं करेंगे। यह सारे-के-सारे भाव जिसमें आ रहे हैं, बस उसका नाम सामायिक है। मनीषियो! पहले आप सामायिक-प्रतिमाधारी बनो, फिर सामायिक चारित्र वाले बनो, तब नियम से परम् यथा ख्यात चारित्र को प्राप्त करोगे।

- भगवान् महावीर स्वामी की जय।

CC0.In Public Domain. Digitized by ... Trust/eGangotri

पंचमगति का पाथेय है सम्यक्चारित्र

योगसार

रोय-रोस बे परिहरिवि, जो समभाउ मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, केवलि एम भणेइ ।। 100 ।।

अर्थ - राग और द्वेष इन दोनों को छोड़कर जो समभाव होता है, उसे निश्चय से सामायिक समझो, ऐसा जिन भगवान् ने कहा है।

हिंसादिउ-परिहारु करि, जो अप्पा हु ठवेइ।
सो नियऊ चारित्तु मुणि, जो पंचम-गइ णेइ ।। 101 ।।

अर्थ - हिंसादिक का त्याग कर जो आत्मा को स्थिर करता है, उसे दूसरा चारित्र (छेदोपदस्थापना) समझो-यह पंचम गति को ले जानेवाला है।

मिच्छादिउ जो परिहरणु, सम्मद्दंसण-सुद्धि।
सो परिहार-विसुद्धि मुणि, लहु पावहि सिव-सिद्धि ।। 102 ।।

अर्थ - मिथ्यात्व आदि के परिहार से जो सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है, उसे परिहार विशुद्धि समझो, उससे जीव शीघ्र ही मोक्ष-सिद्धि प्राप्त करता है।

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ, जो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि, सो सासय-सुह-धामु ।। 103 ।।

अर्थ - सूक्ष्म लोभ का नाश होने से जो सूक्ष्म परिणामों का अवशेष रह जाता है, वह सूक्ष्म चारित्र है, वह शाश्वत् सुख का स्थान है।

अध्यात्म देशना

भव्य बन्धुओ!

अंतिम् तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी की पावन पीयूष देशना हम सभी सुन रहे हैं। आचार्य भगवान् योगीन्दुदेव स्वामी 'योगसार' ग्रन्थ में कहते हैं कि सामायिक जिसे समझ में आ गई, अब उसे कुछ करने को शेष नहीं है। जो सामायिक होता है, वही सामायिक कर पाता है। साम्य भाव जहाँ नहीं हैं, सम्यक्भाव नहीं है, वहाँ सामायिक नहीं है। उस सामायिक के ऊपर ध्यान प्रारम्भ होता है। आज के लोगों ने उस परम् विद्या का उपयोग, उस महान् योग का उपयोग इस शरीर के स्वस्थ होने के लिए लगा दिया है, जिस विद्या का उपयोग कर्म-निर्जरा के लिए था। यह ध्यान रखना, जिससे आत्मा स्वस्थ होती है, उससे शरीर स्वयमेव स्वस्थ हो जाता है। एक योगी को सिद्धियाँ प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। उसे बाहर साधना

करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ध्यान भी अपने आप में एक सिद्धि है, ध्यान ही परम-साधना है, ध्यान ही आत्म-आराधना है। उत्तम संहनन से युक्त जीव यदि उत्कृष्ट ध्यान करे तो, मनीषियो! अड़तालीस मिनट से ज्यादा नहीं होता है। यदि ऐसा कोई कहता है कि मैं दो-दो घण्टे ध्यान कर लेता हूँ, तो यह मिथ्या है। आप दो-दो घण्टे क्या, चौबीस-चौबीस घण्टे चिन्तवन कर सकते हो, लेकिन ध्यान नहीं कर सकते हो। चिन्तवन और ध्यान में महान अन्तर है। जहाँ जल्प है, विकल्प है, वह चिन्तवन है। जहाँ चित्त की एकाग्रता है, उसका नाम ध्यान है। निर्वाण की सिद्धि उस ध्यान से ही होती है। धर्म-ध्यान और शुक्ल-ध्यान ये दो ध्यान तो मोक्ष के हेतु हैं। आर्त-ध्यान और रौद्र-ध्यान ये दो ध्यान संसार के हेतु हैं। परिवार को चलाने के लिए, परिग्रह को जोड़ने के लिए, हिंसा करने के लिए और झूठ बोलने के लिए कितना चिन्तवन किया है? और, मनीषियो! आत्मतत्त्व के लिए कितना चिन्तवन किया है? कोई हिंसा में आनन्द मना रहा है, कोई झूठ में आनन्द मना रहा है, कोई परिग्रह में आनन्द मना रहा है और कोई चोरी में आनन्द मना रहा है। ये सब रौद्र-ध्यान हैं।

पीड़ा-चिन्तवन, निदान यह आर्तध्यान है। आज्ञाविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय और अपायविचय ये धर्मध्यान के भेद हैं।

एकत्व-वितर्क, पृथकत्व-वितर्क, सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाती और व्युपरत-क्रिया-निवृत्ति ये चार शुक्ल ध्यान के भेद हैं।

पंचम काल में शुक्ल ध्यान नहीं होता है और जो जीव इस कलयुग में राजभोग-अवस्था में, गृहस्थ-अवस्था में यदि निर्विकल्प-ध्यान की बात करता है तो उसको भी आचार्यों ने बड़े कटु शब्दों में कह दिया है-

खपुष्पमथवा श्रृङ्गं खरस्यापि प्रतीयते।
न पुनर्देशकालेऽपि ध्यानसिद्धिर्गृहाश्रमे ॥ 17/4 ॥ज्ञानार्णव॥

जैन वाङ्मय में ध्यान का सबसे महान् ग्रन्थ 'ज्ञानार्णव' है। उसमें लिखा है-आकाश का फूल और गधे के सींग किसी भी क्षेत्र में, किसी भी काल में नहीं होते हैं, ऐसे ही निर्विकल्प शुद्धात्म तत्त्व की सिद्धि गृहस्थ-अवस्था में नहीं होती है। यहाँ सविकल्प धर्मध्यान होता है। पंचम काल में आज भी निर्ग्रन्थ योगी उस ध्यान की सिद्धि करके लोकान्तिक देव बन सकते हैं और वहाँ से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए भयभीत नहीं होना। उस परम् सामायिक की चर्चा आज हम प्रारम्भ कर रहे हैं कि वास्तव में सामायिक यानी क्या? पहले तो बैठना सीखना है। ध्यान-ग्रन्थों में सबसे पहले चर्चा है आसन की। आसन और असन, जिसके ये दो निर्मल हैं, उसका ध्यान हो सकता है। असन यानी भोजन। भइया! इतना भोजन किया, इतना भोजन किया कि कण्ठ के बाहर जा रहा है, वह ध्यान करेगा कि सोयेगा? सोयेगा। इसलिए यदि ध्यान करना है तब असन पर आपको विवेक रखना पड़ेगा, भोजन पर विवेक रखना पड़ेगा और आसन का विवेक रखना पड़ेगा। जिसका आसन

चलायमान है, उसका चित्त स्थिर नहीं हो सकता है। इसलिए आचार्य उमास्वामी महाराज ने पहले यह नहीं लिखा कि मन को वश में करो। यह भ्रम अलग कर देना कि किसी के करने से मन वश में होता है। पहले तन को वश करो। यद्यपि आपको उल्टा नजर आ रहा होगा। लेकिन आयेगा क्यों? मैं तो आपको सूत्र बता रहा हूँ न। कायवाङ्मनःकर्मयोगः। जब तक योग तुम्हारा निर्मल नहीं होगा, तब तक उपयोग निर्मल हो ही नहीं सकता है और पहला योग काय-योग है। काय-योग जिसका चलायमान है, वह ध्यान नहीं कर पायेगा। योग कहता है कि कर्म योग नहीं, आत्म योग पर दृष्टि डालना है, कर्म योग आत्म सिद्धि नहीं दे पायेगा। लोक में कहा जा सकता है कि यह देश का कर्मठ व्यक्ति है, समाज का कर्मठ व्यक्ति है, पर अध्यात्म योग कहेगा कि तुम आत्मा के शत्रु हो। क्यों?

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्॥19॥इष्टोपदेश॥

यदि जीव का उपकार करना चाहते हो, तो शरीर का अपकार होगा और शरीर का उपकार चाहते हो, तो आत्मा का अपकार होगा। एक साथ दो काम नहीं हो सकते हैं। यहाँ जिस योग की चर्चा कर रहे हैं यह कर्म योग नहीं है, अध्यात्म योग है। 'अधि' यानि पास। आज यह चर्चा योगसार के शिखर की चल रही है। जैसे मन्दिर तो विशाल होता है, पर शिखर ऊँचा होता है, संकुचित होता है, जो सबको दिखता है, वह कलश ही है। यह योगसार का सामायिक-अधिकार एक कलश है। 'अधि' यानी निकट और जो तत्त्व आत्मा के पास ले जाये, उसका नाम अध्यात्म-तत्त्व है। आत्मा के नजदीक ले जाये, वह अध्यात्म योग है। उस अध्यात्म योग की प्राप्ति का यदि कोई संयोग है, उसका नाम ध्यान है, सामायिक है। सम+इक=सामायिक, जो आत्मा में एकीकरण हो जाये उसका नाम सामायिक है। तो पहले हम शरीर की चर्चा कर लें, फिर आगे चलते हैं। यदि आप कहें कि मैं शरीर से तो पाप कर रहा हूँ, पर मेरा मन स्वच्छ है, मेरी वाणी स्वच्छ है, अहो! झूठ बोलने में बिल्कुल भी शर्म नहीं आती है? जिसके शरीर से पाप झलक रहा हो, उसकी वाणी और मन में कितना पाप होगा? एक व्यक्ति एक गली से निकलता है और जैसे ही निकलता है, उसको गर्म वायु के थपेड़े लगते हैं गाल पर और वह अनुमान लगा लेता है कि यहाँ कहीं भट्टी जल रही है, इतनी गर्म लू इस क्षेत्र से आ रही है। जब स्पर्शित वायु इतनी ऊष्ण है, तो वह स्थान कितना गर्म होगा? जब हम किसी जलाशय से निकलते हैं तो शीतल वायु बहती निकलती है तो अनुमान लगाते हैं कि, अहो! वायु इतनी शीतल है तो नीर कितना शीतल होगा? अहो ज्ञानी आत्माओ! जिसका शरीर इतने पापों से भरा हुआ है, उसका चैतन्य मन कितना पापी होगा? और जिसके शरीर में धर्म झलक रहा है, उसकी आत्मा कितनी धर्मात्मा होगी? यह अनुमान लगा लो।

पहले आप आसन की बात करो। ध्याता के लिए दृढ़-आसन होना चाहिए। जब तक वासनाओं पर विजय नहीं है, आसन कितने ही लगा लोगे, तुम तो सिर के बल खड़े हो जाना,

लेकिन आत्मसिद्धि नहीं होगी। सबसे पहले ध्याता के लिए 'गुप्त इन्द्रिय मनः ध्याता' सूत्र नोट कर लेना। ध्याता वही हो सकता है, जिसका मन और इन्द्रियाँ गुप्त हैं। जिसका मन और इन्द्रियाँ स्वच्छन्द हैं, वह ध्याता होता ही नहीं है। स्वाध्याय आप चार घण्टे कर सकते हो, पूजन आप दो घण्टे कर सकते हो, पर एक घण्टे की सामायिक नहीं कर सकते। चौबीस घण्टे की पूजा में जो फल मिलेगा, एक घण्टे की सामायिक में उससे ज्यादा फल मिलेगा। पूजा मत छोड़ देना आप लोग, क्योंकि भक्तिधारा और ज्ञानधारा, अध्यात्म योग और कर्मयोग, इन दोनों में महान् अन्तर है। जो लोग आत्मतत्त्व से बहुत दूर होते हैं, उनके लिए पूजन-पाठ की बात की जाती है। आपने कभी देखा है मुनि महाराज को अभिषेक/पूजा करते हुए? नहीं करते। क्यों? क्योंकि अब उनका स्थान बहुत ऊँचा हो चुका है, वे कभी पूजा नहीं करते हैं, अभिषेक नहीं करते हैं। वे सामायिक करते मिलेंगे आपको, स्वाध्याय करते मिलेंगे और जाप करते मिलेंगे, क्योंकि उनको बढ़ना आगे की ओर है। जब हमारा मन अद्वैत में नहीं जा पाता है, तो द्वैत का आलम्बन लेना पड़ता है। द्वैत यानी दो, परमात्मा और भक्त। अद्वैत यानी एक आत्मा में ही परमात्मा। यह निश्चय दृष्टि है। जिसे वैदिक दर्शन में द्वैत-अद्वैत कहा जाएगा, उसे जैन दर्शन निश्चय और व्यवहार कहेगा। द्वैत यानी व्यवहार, अद्वैत यानी निश्चय। हम द्वैतवादी भी हैं, अद्वैतवादी भी हैं। जो मात्र द्वैतवादी हैं, वे अज्ञानी हैं; जो मात्र अद्वैतवादी हैं, वे भी अज्ञानी हैं। अद्वैत से द्वैत की ओर नहीं जाया जाता है, द्वैत से अद्वैत की ओर जाया जाता है। निश्चय से व्यवहार की ओर नहीं जाया जाता है, व्यवहार से निश्चय की ओर जाया जाता है।

तो यह 'कायवाङ्मनः कर्मयोगः' सूत्र कह रहा है कि पहले तन स्वच्छ हो जाये, तन निर्मल हो जाये। अब आप विकल्प नहीं करना, दो दिन बैठकर देखना, फिर सोचना कि सामायिक कैसी होती है। एक व्यवस्थित पद्मासन से आप बिल्कुल सीधे बैठ जाना और जैसे ही आप सीधे बैठोगे, ध्यान जब लगेगा तब लगेगा, शांति आपको उसी क्षण मिलेगी। दो पर दृष्टि डालना, रीढ़ की हडी तुम्हारी सीधी हो और श्वासोछ्वास को देखते रहना। जो कुछ हो रहा है, सब श्वासों की महिमा है। श्वासें निर्मल हैं, तो चारित्र निर्मल है। जिसकी श्वासें विकृत हैं, उसका चारित्र सुनिश्चित बिगड़ने वाला है। श्वासें सब कुछ बता देती हैं। शुभचन्द स्वामी कह रहे हैं कि श्वासें इतना बता देती हैं, जिसने ध्यान का अभ्यास किया है, तुम क्या सोच रहे हो और क्या सोचनेवाले हो? यह तुम्हारी श्वासें बता देंगी। जब लम्बी श्वासें आयें तो या तो काम से पीड़ित है या क्रोध से पीड़ित है या भय से पीड़ित है। मन्द-कषायी की श्वासें मन्द-मन्द होती हैं। ध्याता की श्वासें बहुत स्थिर और मंद होंगी और व्यसनी की श्वासें बहुत लम्बी खिचेंगी, यह आप अनुभव करके चलना। बस, बैठ जाना, कुछ भी नहीं करना और धीरे-धीरे श्वास लेना। ध्यान रखना, फिर श्वास का विकल्प भी छोड़ देना, क्योंकि वह भी निश्चय-ध्यान नहीं है, यह भी रागदशा है। अब जिनवाणी कहेगी-

संग त्यागा कषायाणाम् निग्रहे धारणम्।
मनोक्षम्‌जय चयेति सामग्री ध्यान जनमने ।।तत्त्वानुशासन ।।

पेन्ट-शर्ट पहनकर कभी सामायिक करने मत बैठ जाना। जितने मोटे वजनदार कपड़े पहनकर बैठोगे, उतने तुम वजन में रहोगे। भारतीय संस्कृति के किसी भी दर्शन में, खास करके वैदिक और जैनदर्शन में पूजन पाठ के समय धोती-दुपट्टा आपको नहीं मिलेंगे। कहीं भी कोई अनुष्ठान होता है तो धोती-दुपट्टा ही क्यों पहने जाते हैं? उत्तरीय वस्त्र और अधो वस्त्र। पर यह ध्यान रखना, ऐसा नहीं कि आधी धोती पहन ली, आधी ओढ़ ली। अहो ज्ञानी! नूपुर पैरों में ही अच्छे लगते हैं, कुण्डल कानों में अच्छे लगते हैं। कानों का आभूषण पैरों में, पैरों का आभूषण कानों में नहीं पहना जाता। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि भगवान् की पूजन कर रहे हैं, आधी धोती कमर में और आधी धोती ओढ़ लिए हैं। यह बिल्कुल विपरीत काम कर रहे हैं। अधो वस्त्र को नीचे ही रहने दो, उत्तरीय वस्त्र यानी दुपट्टा ऊपर ही होना चाहिए। किसी के यहाँ मेहमानी करने जाते तब कितने सुन्दर वस्त्र पहनकर जाते हो? और तीन लोक के नाथ के चरणों में? वस्त्र नहीं हैं, तो हमारे-जैसे आया करो। पर पिच्छी-कमण्डल साथ में लेकर आना। और यदि आप वस्त्र पहनते ही हो तो, ध्यान रखना, टूटे-फूटे बर्तन और सड़ी द्रव्य और फटे वस्त्रों से कभी तीर्थंकर देव की पूजन मत कर लेना। नहीं हो, तब भाव-पूजा कर लेना, लेकिन ऐसे द्रव्य से पूजा नहीं करना, अन्यथा दरिद्री हो जाओगे अगले भव में। उत्कृष्ट मार्ग यह है कि स्वयं के घर की द्रव्य, घर के वस्त्र होना चाहिए। राजमार्ग, भक्ति का मार्ग तो यही है। 'मुफ्त का चन्दन घिस मोरे नन्दन' नहीं करना। जब आप सामायिक करने बैठो, तब बिल्कुल हल्के वस्त्रों में बैठना, बहुत चुस्त वस्त्रों में कभी नहीं बैठना। फिर आप अनुभूति करना।

अब कह रहे हैं योगीन्दुदेव स्वामी कि सामायिक में आप करेंगे क्या? दोनों भुजाओं के मध्य का स्थान, ललाट, नेत्र, नासिका, कपोल ये सब तुम्हारे ध्यान के स्थान हैं। अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु-ये तुम्हारे ध्यान के स्थान हैं और यह ध्यान आपको सर्वांग में करना है। वर्णमाला के 'अ' से लेकर 'ह' पर्यंत प्रत्येक अक्षर को आप एक-एक अंग पर लिखो और फिर ध्यान करो। मातृका यंत्र का ध्यान कर लिया, उसका अभूतपूर्व आनन्द आता है। ओंकार (महाप्रणव), ह्रीं (मायावरण), श्रीं (लक्ष्मी) ऐसे महान् पदस्थ-ध्यान की चर्चा की है आचार्य भगवान् ने। पिंडस्थ-ध्यान में कहा था कि निज स्वरूप में स्थित आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन करना पिंडस्थ ध्यान है। रूपस्थ ध्यान में अरहंत देव का चिन्तवन करना। समवसरण में तीर्थंकर विराजे हैं और वहाँ ऐसे ध्यान करना कि बारह सभाओं में मनुष्यों की सभा में बैठा हुआ भगवान जिनेन्द्रदेव की वाणी सुन रहा हूँ। फिर चिंतन करना और कहीं दीक्षा लेकर बैठ जाओ, तब मुनियों की सभा में बैठने मिल जायेगा। (रूपातीत निरंजनम्) उन एक मात्र निष्कलंक सिद्ध परमेश्वर का ध्यान करना, यह रूपातीत ध्यान

है। अब आप सामायिक में बैठकर और क्या करोगे? वही 100वें एवं 101वें दोहा में आचार्य महाराज कह रहे हैं।

मनीषियो! जब योगी काययोग को स्थिर कर लेता है, फिर वचन योग के लिए मौन हो जाता है। निज आत्मशक्ति को सुरक्षित रखना है तो मौन का अभ्यास जरूर करना। महान् आचार्य 'अमितगति' स्वामी राजा भोज की राज्यसभा में नवरत्नों में एक थे। इन्होंने 'अमितगति श्रावकाचार' ग्रन्थ में लिखा है-

वाणी मनोरम तस्य.............।
..........क्रियते मौन भुज्जवलम्॥अमितगति श्रावकाचार॥

उस जीव की वाणी मनोहर होती है, जो यद्‌वा-तद्‌वा नहीं बोलता है, शास्त्रों के सन्दर्भ युक्त बोलता है, जिसने अपने जीवन में मौनव्रत का पालन किया है। जो ज्यादा बोलता है, उसे पिंजड़े में फंसना पड़ता है। तोते को क्यों पिंजड़े में बैठना पड़ा? दूसरों की नकल उतारता है, वह मनुष्यों की आवाज बोल लेता है, इसलिए बेचारे तोते को पिंजड़े में बैठना पड़ता है। आपको पिंजड़े में बैठना हो तो खूब बोलो, नहीं बैठना हो तो आज से ही मौन ले लो। भगवान् महावीर स्वामी तब तक नहीं बोले, जब तक पूर्ण सत्य को प्राप्त नहीं कर लिया। बारह वर्ष तक उन्होंने मौन का पालन किया। कह दिया उन्होंने मौन होकर-किसको बोलूँ? किससे बोलूँ? जो बोलन हारा है, वह बोल नहीं पा रहा है और जो बोलता है, वह बोलन हारा नहीं है। अब मैं किससे बोलूँ? किसको बोलूँ? जो वचन हैं, वे पौद्‌गलिक हैं, जो वक्ता है, वह पुद्‌गल का संयोगी है; परन्तु जो ज्ञाता-दृष्टा है, वह वचन आदि से रहित है। बारह वर्ष तक मौन साधना, फिर दिव्यदेशना खिरी तो मुख से नहीं बोले, सर्वांग से वाणी खिरी। अंतरंग की शक्ति को इकट्ठा करने का उत्तम मार्ग है-मौन। अब वचन योग पर गये हैं, मौन ले लिया है। वचन योग को साधो। योगी किसे कहते हैं? मन, वचन, काय को एक कर लिया हो जिसने, यानी जोड़ना, उसका नाम योगी है। जिसने निज को, निज के द्वारा, निज से, निज में जोड़ लिया है, उसका नाम योगी है। जितनी ज्यादा चर्चा करोगे, उतना ज्यादा मन स्पंदित होगा। जिनका मन योगी बनने का कर रहा हो तो, भैया! इस बात को ध्यान से समझना, उन्हें जनसम्पर्क से बहुत दूर रहना चाहिए। जनसम्पर्क जो होता है, वह योगी को योग में बैठने नहीं देता है। एक व्यक्ति एक बात को बोलकर चला गया। वह तो चला गया, लेकिन अब आपके मन में यह बात गूँज रही है। कब तक गूँजेगी? और जब तक गूँजेगी तब तक क्या आप ध्यान कर पाओगे? इसलिए जनसम्पर्क ध्याता के लिए बहुत घातक है। जब वचन योग तुम्हारे बस में हो जाते हैं, तब जिनवाणी कहेगी-अब तुम मनयोग की ओर जाओ। मन से कहो-हे मन! (राय रोस बे परिहरिवि) तू राग और द्वेष को छोड़ दे तो सब सहज है। सब सहज है? हाँ। हम समझा तो पायेंगे, लेकिन आप विश्वास करो कि हम आपको सुधार नहीं पायेंगे। ज्ञानी जीव जगत् को समझाने का विचार तो रखता है, पर ज्ञानी जीव जगत् को

सुधारने का विचार कभी नहीं रखता है। दूसरे को यदि सुधारने लग गया तब पर का कर्ता हो जाएगा। 'नियमसार' जी ग्रन्थ में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है-

णाणाजीवा णाणाकम्मं, णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्जो ।।156।।नियमसार।।

अहो ज्ञानी आत्माओ! विश्व में जीव कितने हैं? (णाणा जीवा) नाना जीव हैं, उन सबके नाना कर्म हैं। सभी का क्षयोपशम भिन्न-भिन्न है। एक पिता की पाँच संतानें हैं, उन पाँचों सन्तानों में देख लीजिए-एक कुछ है, दूसरे कुछ हैं। जीव का अपना निज का क्षयोपशम है, निज का पुण्य-पाप है। निमित्त कुछ सीमा तक अपना स्थान रखता है। निमित्त के साथ में निज का उपादान ही कार्यकारी होता है। होता है कि नहीं? इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं कि आप लोगों को समझाने का विचार तो रखना, लेकिन यह मत सोचना कि मैं सबको अपने अनुसार चला पाऊँ। ध्यान रखो, तीर्थंकर महावीर भी सभी को अपने अनुसार नहीं चला पाये। यदि चला लिए होते, तब हमारे विश्व में 'अहिंसा परमो धर्मः' ही गूँजता। उन्होंने भी कहा-जीव की स्वतंत्र सत्ता है। मैंने आपको उपदेश दिया है, आदेश किसी को नहीं दिया है। उपदेश मित्रवत् होता है और आदेश शत्रुवत् होता है। कभी आपने सुना या कहा है कि महाराजश्री के आदेश सुन आये हैं? आप जब भी प्रवचन सुनने आते हो, तब क्या कहते हो? चलो, महाराजश्री के उपदेश सुन आयें।

राग-द्वेष का परिहार करके (जो समभाउ मुणेइ) जो साम्यभाव को प्राप्त होता है (सो सामाइउ जाणि) वही सामायिक है। मनीषियो! ध्यान रखना, साधुओं का सामायिक चारित्र होता है और श्रावकों का सामायिक व्रत होता है। आपकी सामायिक घण्टे दो घण्टे की होती है और साधुओं का जीवन पर्यन्त का चारित्र होता है। आप कहेंगे कि, महाराजश्री! आप भी तो सामायिक करते हो। नहीं। मुनिराज जो सामायिक करते हैं, वह उनकी कालिक देव-वन्दना है। जिस दिन दीक्षा ली थी, उसी दिन से सामायिक चारित्र धारण कर लिया था। अब मैं कभी राग-द्वेष नहीं करूँगा, काषायिक भावों से दूर रहूँगा। इनका जीवन पर्यन्त का व्रत होता है। ऐलक, क्षुल्लक अवस्था तक तो सामायिक व्रत है और जैसे ही मुनिदीक्षा होती है, वहीं से सामायिक चारित्र प्रारम्भ हो जाता है। (सो सामाइउ फुडु) वह सामायिक है। इसलिए ध्यान रखना, जीवन में सबसे कठिन व्रतों का पालन नहीं है, सबसे कठिन है सामायिक करना। आप तो कह देंगे-महाराज श्री! मैं बैठ जाता हूँ आँख बन्द करके। नहीं, नहीं, वह बैठना भिन्न विषय है। यहाँ तो सामायिक की चर्चा कर रहे हैं। (राय रोस परिहरिवि) इष्ट में राग नहीं है और अनिष्ट में द्वेष नहीं है। जहाँ कंचन और कांच, कामिनी में साम्यवृत्ति होती है, उसका नाम सामायिक चारित्र है। कंचन, काँच और कामिनी इन तीन में ही तो आप रो रहे हो। जहाँ कंचन, काँच, कामिनी से कोई राग-द्वेष नहीं है, इसका नाम सामायिक चारित्र है। यदि कदाचित् सामायिक व्रत में दोष लग जाता है, तब वे योगी क्या करते हैं? (हिंसादिउ

परिहारु) जिन्होंने हिंसा आदि का त्याग कर दिया है (जो अप्पा हु ठवेई) जो अपनी आत्मा को उसमें स्थापित किए हैं, उसके (सो वियऊ चारित्तु) दूसरा चारित्र छेदोपस्थापना है। छेद यानी खण्डित हो जाना, उपस्थापना यानी पुनः स्थापित हो जाना। ओ हो हो! सामायिक कर रहे थे। देखना, साधु का मन कितना निर्मल होता है और कितना निर्मल मन होना चाहिए ? आप क्या साधना देखते हो हमारी? क्या देख पाओगे? जो तुम देख रहे हो, वह सत्य नहीं है। तुम देख भी नहीं पाओगे, किसी की भी नहीं देख पाओगे। आप तो इतना देख सकते हो कि भोजन क्या करते हैं? पीते क्या हैं? खाते क्या हैं? बैठते कहाँ हैं? सोते कहाँ हैं? ये सब देख लोगे। लेकिन, भो ज्ञानी! इनका मन कहाँ जाता है, क्या यह तुम देख पाओगे? नहीं देख पाओगे। तो तुम कुछ भी नहीं देख पाओगे। तुम तन देख सकते हो, परन्तु मन नहीं देख सकते हो और मन को देखनहारा स्वयं का मनवा ही है। मन को देखनहारा, हे मनवा! तू ही है। मनवा यानी आत्मा, यह मनवा ही है और यह मनवा ही जानता है कि तू मुनि है कि मानव है। कौन जानता है? निज का मनवा ही जानता है।

जब एक योगी बैठा है, लम्बी श्वास ली, गंध अच्छी आ रही है। ओ हो! माँ जिनवाणी कह रही है कि आप संयम से च्युत हो गये। क्यों? जब आपने महाव्रतों को स्वीकार किया था, तो आप एक इन्द्रिय मात्र के जितेन्द्रिय नहीं बने थे, पाँचों इन्द्रियों के जितेन्द्रिय थे। रागदृष्टि से तुम लम्बी श्वास लेकर आनंदित हो रहे हो, तो योगसार कह रहा है कि आपके संयम में दोष लग गया। धन्य हो उज्ज्वल परिणति को, गुरु ने कहाँ देखा कि दोष किया है,परन्तु शिष्य जाकर निवेदन कर रहे हैं-महाराज! आज मेरे मन में ऐसा भाव आया है, लम्बी श्वास ली है। जब लम्बी श्वास ली, कितने जीव अन्दर से बाहर, बाहर से अन्दर हो गये हैं। इसलिए जैनागम में प्राणायाम का निषेध किया जाता है। तुमने जब विलोम-अनुलोम किया, खींचा, इसी बीच में मच्छर या अन्य सूक्ष्म जीव अंदर चला गया। तुम शिथिलीकरण कर रहे थे, ऊपर मुख किया और ऊपर से खिंचा, जीव आ गया। यह सब गृहस्थों तक तो ठीक है, पर योगियों को योग के राग में जाने का भी निषेध है। क्या गजब का तत्त्वचिंतन है ? अहो योगी! तुम निजयोग में बैठे हो, अब तुम्हें योग की क्या आवश्यकता है? आत्मयोग ही परमयोग है। कितनी गहरी बात कर रहे हैं। ये कह रहे हैं कि हिंसादि दोष कहीं लग गया हो, तो उसका परिहार करने जा रहे हैं गुरु के चरणों में-प्रभु! मेरे से ऐसा अपराध हो गया है। प्रायश्चित्त महत्वशाली नहीं है, वास्तव में महत्वशाली तो अपराध का बोध है और उस बोध का शोध करने की जो भावना है वही महत्वशाली है। प्रायश्चित्त भले ही तुमको एक उपवास का मिले, चाहे णमोकार की एक माला फेरने को मिले, लेकिन जो तुम्हारे मन में दण्ड लेने के भाव स्वयं उत्पन्न हुए हैं, वह सबसे महत्वशाली वस्तु है। ओहो! मेरे व्रत में दोष लगा है, मैं इस दोष से युक्त नहीं रह सकूँगा। यह सबसे बड़ी शोध की वस्तु है। यह छेदोपस्थापना नाम का दूसरा व्रत है। अहो ज्ञानी! क्या कह रहे हैं आचार्य-महाराज? इन्सान हैं, दोष हो सकते

हैं। पर, मनीषियो! ध्यान रखना, 'भूल होना' कोई बहुत बड़ी भूल नहीं है, तुम भूल को भूल मानना ही नहीं चाहते, यह सबसे बड़ी भूल है आपकी। यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि भूल तो हो गई है, लेकिन गुरु-चरणों में कूल नहीं रहे हैं। ध्यान रखना, भूल कर रहे हैं, ऐसा न कहकर 'प्रभु! हमें बड़ी ठेस लगी है कि मेरे से ऐसा दोष कैसे हो गया है?' जब एक आचार्य अपने शिष्य को दीक्षा देते हैं, तब क्या कहते हैं? सुन! यह निर्ग्रन्थ मुद्रा है। अट्ठाइस के अट्ठाइस मूलगुण पालना चाहिए, एक भी कम न हो। सौ टन्च का सोना है। इसमें छूट नहीं होगी। ये यमरूप होते हैं, कोई नियम रूप नहीं है। ये जीवन पर्यंत की साधना है। मूलगुण अट्ठाइस ही होंगे। ऐसा नहीं है कि कुछ कम ले लें। अहो ज्ञानी! महाराज कितना सम्बल दे रहे हैं। क्या कह रहे हैं? जो दूसरा चारित्र है, यानी दोष होने पर पुनः उपस्थित हो रहा है, यह पंचम-गति यानी मोक्ष को ले जाने वाला है। जो भूल को सुधार लेता है, वह भगवान् बन जाता है और जो भूल पर भूल करे, सो आप स्वयं कहो, हमें नहीं कहना है। अशुभ शब्द क्यों बोलूँ? भूल-पर-भूल करे सो क्या कहलायेगा? अहो ज्ञानी! अब समझ गये न, भूल-पर-भूल नहीं करना, भूल को भूल मानकर सुधार लेना।

यहाँ आचार्य महाराज पाँच संयमों की क्रम से चर्चा कर रहे हैं। सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमों की चर्चा कर दी है। अब परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात चारित्र की चर्चा करेंगे। परिहार विशुद्धि-संयमी पंचमकाल में नहीं होते हैं। इस काल में कोई भी मुनि/साधु परिहार विशुद्धि वाला नहीं है। परिहार विशुद्धि वाला मुनि उत्कृष्ट साधक होता है, जिसके द्वारा किसी भी जीव का कदाचित् भी वध नहीं होता है। जो जीव तीस वर्ष तक राजसुख भोगता है, जब तक तीस वर्ष की आयु नहीं होगी, तब तक दीक्षा नहीं लेगा और जैसे ही तीस वर्ष की उम्र होगी, वह शीघ्र ही जैनेश्वरी दीक्षा ले लेंगे। तीर्थंकर भगवान् के पादमूल में जाकर वह प्रत्याख्यान पूर्वक अध्ययन करेंगे। दो गति-प्रमाण रोज विहार करेंगे। जिस नगर में आज आहार लिये, उस नगर में कल नहीं लेंगे, इतना विरक्त भाव होता है। क्यों? दाता को देख कर राग भी आ सकता है। हम आपसे कोई समझौता नहीं चाहते हैं। रुकेंगे तो राग बढ़ेगा, श्रावक चले आ रहे। चातुर्मास भी नहीं करेंगे। परिहार विशुद्धि वाले मुनि महाराज के लिए चातुर्मास करने का नियम नहीं है। चातुर्मास वे करें, जिनसे हिंसा होने की संभावना हो। उनसे हिंसा की संभावना ही नहीं है, इसलिए वह चातुर्मास नहीं करते हैं। ऐसे महायोगी के चरणों में नमोस्तु तो कर ही लेना। आज मुझे दर्शन तो नहीं हो पायेंगे लेकिन, भगवन्! कभी न कभी, या तो मैं ही बन जाऊँ या कोई बने दिख जाएँ तो कम-से-कम माथा तो टेक ही लूँ। हम लोग वास्तव में इतने अभागे हैं कि न तीर्थंकर हैं यहाँ, न केवली हैं, न महामुनि हैं, न ऋद्धिधारी मुनि हैं, कुछ भी नहीं है। फिर भी हम लोग इतने भाग्यशाली हैं कि हमारे लिए इनके प्रति आस्था जरूर है। आस्था ही तो है, तभी तो ढाई हजार वर्ष के बाद हम महावीर को अपने सामने ही देखते हैं। कौन कहता है कि

महावीर स्वामी हो चुके हैं? हमें तो ऐसा लगता है कि भगवान् महावीर स्वामी मेरे साथ रहते हैं। श्रद्धा ऐसी ही होती है। (मिच्छादिउ जो परिहरणु) जिन्होंने मिथ्यात्व आदि का परिहार कर दिया है, (जो सम्मद्दंसण सुद्धि) जो विशुद्ध सम्यक्त्व में विराजते हैं, (सो परिहार-विसुद्धि) ऐसे परिहार-विशुद्धि संयमी होते हैं । (लहु पावहि सिव-सिद्धि) अब बहुत संसार नहीं बचा है इनका, शीघ्र ही इनको निर्वाण की प्राप्ति होगी।

चौथा चारित्र है सूक्ष्म-साम्पराय। यह दसवें गुणस्थान में होता है। परिहार विशुद्धि संयम छठवें, सातवें गुणस्थान में होता है और सूक्ष्म-साम्पराय संयम दसवें गुणस्थान में होता है, क्योंकि सूक्ष्म लोभ-कषाय बैठी हुई है। सुनो, भैया! अंतिम समय तक कषाय यदि कोई बचती है तो वह है लोभ। सबसे घातक कोई कषाय है तो लोभ। यह लोभ की महिमा है कि इतने पाप हो रहे हैं। अच्छा आप बताओ, भैया! सत्य बोलना, यहाँ की वस्तु यहाँ से वहाँ कर दी, किसके कारण? लोभ के कारण। इतने पाप आप कर रहे हो, दूसरे की चाकरी कर रहे हो, दूसरे की नौकरी कर रहे हो, किसके कारण? लोभ के कारण। आप जिनवाणी सुन रहे हो। कुछ ऐसे भी अभागे बेचारे जीव होंगे, जो सुबह से ठिलिया लगाकर चले गये। क्या करें बेचारे? कुछ ऐसे होंगे जो मुख बाँधकर गाँव निकल गये होंगे। ओ हो! मुख बाँधकर हमने कहा, आप ध्यान रखना। जिनवाणी नहीं सुन रहे, पैसा के पीछे मुख बाँधना पड़ता है। कान भी बांधकर गये थे। मुख ही नहीं बाँधा था, कान भी बाँधे थे। अब बेचारे क्या करें? कान में जिनवाणी पड़ जाएगी तो व्यापार नहीं कर पायेंगे और मुख खुल गया तो भगवान् का नाम लेना पड़ेगा। कान भी बाँध लिए और मुख भी बाँध लिया। भो ज्ञानी आत्माओ! जीवन में ध्यान रखना, पैसा तो मिल जाएगा, लेकिन भगवद्-भजन पुनः नहीं मिल पायेगा। वीतराग-वाणी नहीं मिलेगी, यह जिनवाणी नहीं मिलेगी।

(सुहुमहँ लोहहँ) दसवें गुणस्थान तक लोभ की महिमा है। मुनि महाराज को भी लोभ आ जाता है- 'महाराज! जल्दी मोक्ष हो जाये।' जिनवाणी कहती है कि सुनो, यह भी लोभ मत करो। वह तो होगा ही, आप साधना मात्र करो। 'शिष्य मिल जायें' -यह भी एक लोभ है। लोभ पाप का बाप है न? हाँ। ध्यान रखना। (सुहुमहँ लोहहँ विलउ सहुमु वि परिणामु) ऐसे सूक्ष्म परिणाम जिसके हैं (सो सुहुम वि चारित्त मुणि) ऐसे सूक्ष्म चारित्र को समझो। जिसने सूक्ष्म लोभ का भी परिहार कर दिया है, ऐसे परिहार विशुद्धि वाले संयमी मुनिराज नियम से (सो सासय सुहधामु) शिव-सुख के खजाने हैं, नियम से निर्वाण को प्राप्त करेंगे। आज जरूर चिन्तवन करना-हे वर्द्धमान! आप महावीर कैसे बन गये? वीर वह नहीं जिन्होंने समर-भूमि में खून बहा दिया है। महावीर वे हैं, मनीषियो! जिसने काम, क्रोध को जीत लिया है। वे महावीर हैं, जितेन्द्रिय हैं और जो जितेन्द्रिय हैं, वही जिन हैं और ऐसे जितेन्द्रिय की जो आराधना कर रहे हैं, वे ही जैन हैं। जितेन्द्रिय बनने का प्रयास करो। जब जितेन्द्रिय बन जाओगे, तब जिन बनने में देर नहीं लगेगी।

-भगवान् महावीर स्वामी की जय

CC0.In Public Domain. Digitized by eGangotri Trust/eGangotri

आत्मसिद्धि का साधन है आत्मदर्शन

योगसार

अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु, सो आयरिउ वियाणि।
सो उवज्झायउ सो जि मुणि, णिच्छइँ अप्पा जाणि ।।104।।

अर्थ - निश्चय नय से आत्मा ही अर्हत् है, वही निश्चय से सिद्ध है और वही आचार्य है और उसे ही उपाध्याय तथा मुनि समझना चाहिए।

सो सिउ संकरु विण्हु सो, सो रुद्द वि सो बुद्धु।
सो जिणु ईसरु बंधु सो, सो अणंतु सो सिद्धु ।।105।।

अर्थ - वही शिव है, वही शंकर है, वही विष्णु है, वही रुद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, वही ईश्वर, वही ब्रह्मा है, वही अनन्त है और सिद्ध भी उसे ही कहना चाहिए।

एव हि लक्खण-लक्खियउ, जो परु णिक्कलु देउ।
देहहँ मज्झहिं सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ।।106।।

अर्थ - इन लक्षणों से युक्त परम-निष्कल-देव जो देह में निवास करता है, उसमें और आत्मा में कोई भी भेद नहीं है।

जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिं जे सिज्झहिं जिण-उत्तु।
अप्पा-दंसणि ते वि फुडु, एहउ जाणि णिभंतु ।।107।।

अर्थ - जो सिद्ध हो चुके हैं, भविष्य में होंगे और वर्तमान में रहे हैं, वे सब निश्चय से आत्मदर्शन से ही सिद्ध हुए हैं-यह भ्रान्तिरहित समझो।

संसारह भय-भीयएण जोगिचंद-मुणिएण।
अप्पा संबोहण कया दोहा इक्क-मणेण ।।108।।

अर्थ - संसार के दुःखों से भयभीत ऐसे योगीन्दुदेव मुनि ने आत्मसम्बोधन के लिये एकाग्र मन से इन दोहों की रचना की है।

अध्यात्म देशना

भव्य बंधुओ!

योगीन्दुदेव स्वामी ने योगसार जी ग्रन्थ में परम्-अध्यात्म-योग की चर्चा की है। जिसके लिए जैन-आगम में प्रारब्ध-अवस्था में सविकल्प-धर्मध्यान कहा और वही योगी जब अभ्यस्त हो जाता है, तो निर्विकल्प-धर्मध्यान को प्रारम्भ कर देता है। जहाँ एक गृहस्थ

के योग का निषेध किया है, वहाँ आचार्यों ने कहा है कि जैसा उत्कृष्ट ध्यान एक योगी को लगा करता है, वैसा उत्कृष्ट ध्यान गृहस्थों को नहीं होता है। लेकिन सविकल्प-धर्मध्यान गृहस्थ-अवस्था में भी होता है। वज्र वृषभ नाराच-संहनन के धारी महायोगी ही उस परम् ध्यान की साधना में लीन होते हैं। मनीषियो! कर्म की क्षपणा में सबसे अधिक कोई महत्वशाली योगदान है, तो उसका नाम है ध्यान। ध्यान एक ऐसी विद्या है, कि कभी-कभी आश्चर्य लगने लगता है। जैन-सिद्धान्त के अनुसार साधना का सार कोई है तो ध्यान। जबकि आप लोग उससे बहुत दूर हटते चले जा रहे हो। आज जगह-जगह ध्यान की चर्चाएँ हैं, योग की चर्चाएँ हैं, जबकि पूरा जैन सिद्धान्त और मोक्ष की शिला ध्यान पर टिकी है। हम पूजा व स्वाध्याय को बहुत महत्व देते हैं जबकि, भैया! जो आपकी अंतिम साधना बचेगी, उसका नाम है ध्यान। उसी ध्यान को आचार्य भगवान् ने दो धाराओं में विभाजित किया है- सविकल्प ध्यान और निर्विकल्प ध्यान। गृहस्थ श्रावक सविकल्प ध्यान का पात्र है। धर्म ध्यान के दो भेद हैं-सविकल्प और निर्विकल्प। आर्तध्यान और रौद्रध्यान ये दो ध्यान संसार के हेतु हैं। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ये दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं। लेकिन पंचम काल में वर्तमान में शुक्ल ध्यान होता ही नहीं है, क्योंकि इतनी साधना नहीं है, इतना संहनन नहीं है और परिणामों में इतनी विशुद्धि नहीं है। ध्यान का मूल बिन्दु तो आपके परिणामों की विशुद्धि है। विशुद्धि के अभाव में, ध्यान तो बहुत दूर है, आप भगवान् का नाम भी नहीं ले पाओगे। नाम लेना भिन्न विषय है और वास्तव में उस नाम में लवलीन हो जाना अलग बात है। एक शब्द-वर्गणा इतनी विशाल हुआ करती है कि शब्दों के प्रभाव से अन्दर की आत्म शक्ति जागृत हो जाती है। णमो अरिहंताणं-ये शब्द ही तो हैं और एक गाली सुना दो, वह भी शब्द है। समझना, एक व्यक्ति ने गाली दी, वह भी मंत्र है और जो मंत्र कहा जा रहा, वह भी मंत्र है। जिसके माध्यम से सामने वाले के भावों को उद्वेलित या शान्त किया जा सके और आपने स्पर्श किया नहीं है, बहुत दूर से बोला है- इसको आगम कहता है-शब्द शक्ति अर्थात् शब्द वर्गणा की शक्ति। जब आपको किसी ने गाली दी तो आप उद्वेलित हुए कि नहीं? और किसी ने आपको प्रेम से बोला तो आप शान्त हो गए।

शब्द वर्गणा की क्षमता महास्कन्ध से विशाल है। कारण? महास्कन्ध के पास जब पहुँचोगे, तब कुछ प्रभाव दिखेगा, लेकिन शब्द वर्गणा दूर से ही आपको प्रभावित कर लेती है। एक शब्द आपने बोला कि व्यक्ति प्रसन्न हो गये और एक शब्द बोला कि रोने लगे और कुछ ही देर बाद झगड़ा होने लगा। आश्चर्य है, एक पौद्गलिक शब्द के पीछे तुमने अंतस्-परिणामों की परिणति को विकृत कर लिया है। और गहरे में जाओ। मैंने शब्दों को स्वीकार कर लिया है, जबकि वह पौद्गलिक था, मेरी आत्मा से अत्यंत भिन्न था और तुमने इतनी अच्छी तरह से स्वीकार किया है कि आपने मुझे ऐसा क्यों कहा? एक शब्द प्रसन्न करा रहा है, एक शब्द रुला रहा है और एक शब्द हँसा रहा है। यह सब शब्दों का परिणमन चल रहा है,

परन्तु उधर आत्मा कर्म से बंध रही है और छूट रही है। 'णमो अरिहंताणं' उसी मुख से कहा है और गाली भी उसी मुख से दी है। ज्ञानी जन निर्बन्ध दशा का पुरुषार्थ करते हैं, जबकि अज्ञानी जन बन्ध दशा का पुरुषार्थ करते हैं। ऐसा मत समझ लेना कि बन्ध दशा का पुरुषार्थ न किया जाता हो। नरक में जाने के लिये भी जीव पुरुषार्थ करता है। क्यों, आप लोग इस बात को स्वीकारोगे कि नहीं? काम चेष्टा विकारी भाव है, यह भी बुद्धि पूर्वक करता है। आगम कहता कि इन-इन को तुम करोगे, तो ऐसे कर्म का आस्रव/बन्ध होगा और उसका परिपाक तुमको नरक में ले जाएगा। बहुत बड़ा आश्चर्य होता है कि इतना जानने के बाद भी जीव अपना हित क्यों नहीं कर पाता है? जबकि उसे मालूम है कि इससे नियम से अशुभ-बन्ध होगा। अतः इतना चिन्तवन मात्र कर लेना-

उत्तमा स्वात्म चिंतास्यान्मोह-चिंता च मध्यमा।
अधमा कामचिंता स्यात्, परचिंताऽधमाधमा ॥4 ॥परमानंद स्तोत्रम् ॥

उत्तम पुरुष आत्मतत्त्व का चिन्तवन करते हैं, स्वात्म कल्याण की चिन्ता करते हैं। मध्यम पुरुष वे होते हैं, जो शरीर की चिन्ता करते हैं। जघन्य पुरुष वे होते हैं, जो विषय-कषायों की चिंता करते हैं और अधम-से-अधम वे पुरुष होते हैं, जो दूसरे की चिंता में अपने परिणामों को कलुषित करते हैं। आचार्य महाराज योगीन्दुदेव स्वामी यहाँ कह रहे हैं कि तुम चिंता मत करो, अब तुम चिन्तवन करो। सामायिक, छेदापस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात इन पाँच चारित्र-संयमों की चर्चा की है। अब यहाँ पंचपरमेष्ठी के स्वरूप पर विचार कर रहे हैं कि वास्तव में परमेष्ठी हैं क्या?

मनीषियो! जैनदर्शन में धर्म के कुछ पद होते हैं और वे धर्म के पद प्रतिष्ठा के लिए नहीं हैं। वे तो साधना और साध्य की सिद्धि के लिए होते हैं। उनमें पहला पद अरहंत का पद है, जो णमोकार मंत्र की अपेक्षा से है, परन्तु षट्खण्डागम की पुस्तक नम्बर आठ में आचार्य वीरसेन स्वामी ने सबसे पहले 'णमो लोए सव्व साहूणं' की वन्दना की है। जैसे ही उन्होंने साधु-परमेष्ठी की वन्दना की, तो शिष्य ने प्रश्न कर दिया-भगवन्! अभी तक आपने यह क्रम रखा है कि पहले अरहंतों की वन्दना, फिर सिद्धों की वन्दना, फिर आचार्य, उपाध्याय, साधु की वन्दना; लेकिन आज आपने क्रम-भंग क्यों कर दिया? नहीं मैंने क्रम भंग नहीं किया। जो साधना पर उतरा होता है, वही साधु होता है। जो साधु अपनी प्रज्ञा से ज्ञान की सिद्धि कर अन्य साधुओं को अध्यापन कार्य कराता है, स्वयं अध्ययन करता है, शास्त्रार्थ करता है और पच्चीस मूलगुणों का पालन करता है, वह उपाध्याय कहलाता है। जब साधु-पद नहीं होगा, तब उपाध्याय पद कहाँ से आयेगा? इसलिए मैंने साधु को पहले नमस्कार किया है। जो आचार्य हैं वह भी मुनि हैं, जो उपाध्याय हैं वह भी मुनि हैं और जो मुनि है वह तो मुनि है ही। मनीषियो! ध्यान रखना, ये जो मैं आपको उपदेश दे रहा हूँ, यह आचार्य का आदेश मानकर चलना। मुनि महाराज को उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है, यह जैन-आगम

की निर्मल व्यवस्था है। साधु का काम मात्र ज्ञान-ध्यान-तप में लीन रहना है, अपनी साधना में तल्लीन रहना है। प्रवचन करने का अधिकार यथार्थ में तो सर्वज्ञ के बाद उपाध्याय परमेष्ठी को है।

जैन दर्शन में 'उपाध्याय-परमेष्ठी को अध्यापक कहा जाता है।' उपाध्याय-परमेष्ठी का एक नाम है-पाठक। जो सम्पूर्ण साधुओं को पाठ पढ़ाये, वे पाठक कहलाते हैं। उपाध्याय-परमेष्ठी को हम चतुर्वेदी भी कहते हैं। आपको कुछ बातें आज आश्चर्यकारी लगेंगी। हमारे यहाँ भावसेन त्रिवेदाचार्य हुए हैं। आप लोग समझ रहे होंगे कि वैदिक-दर्शन में ब्राह्मणों के नाम के आगे द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी है, लेकिन हकीकत यह है कि यह वंश-परम्परा से हो गया है। वास्तविकता कुछ और थी। प्रथमानुयोग और चरणानुयोग ये दो वेद हैं अथवा द्रव्यानुयोग और करणानुयोग इन दो वेदों (अनुयोगों) का ज्ञाता जो मुनि अथवा श्रावक है-वह द्विवेदी है। जिन्होंने तीन वेदों (प्रथमानुयोग, चरणानुयोग और करणानुयोग) का ज्ञान कर लिया है, वे त्रिवेदी कहलाते हैं और जिन्होंने चारों अनुयोगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, ऐसे साधक को, मनीषियो! चतुर्वेदी कहा है। एक और बात को ध्यान में रखना, हमारे यहाँ शब्दागम, परमागम और तर्कागम, इन तीनों आगमों में सारा श्रुत आ जाता है। शब्दागम में व्याकरण-शास्त्र आते हैं, परमागम में सिद्धान्त, द्रव्यानुयोग आदि सभी ग्रन्थ आ जाते हैं और तर्कागम में दर्शनशास्त्र आता है। ऐसे चारों अनुयोगों के ज्ञाता विशेष मुनि होते हैं, जो यतियों में श्रेष्ठ होते हैं और वे उपाध्याय पद से अधिष्ठित होते हैं।

जो मुनिराज पंचाचार का पालन स्वयं करते हैं और दूसरे यतियों से करवाते हैं, ऐसे मुनि को आचार्य-परमेष्ठी कहा है। इस दोहा सूत्र में आचार्य निश्चय-परमेष्ठी की बात कर रहे हैं और जब तक व्यवहार परमेष्ठी का ज्ञान नहीं होगा, आप निश्चय-परमेष्ठी का ज्ञान कैसे करोगे? इसके अलावा स्थविर, प्रवर्तक और गणधर ये तीन पद हैं, ये मुनियों के ही पद हैं। जो गण की रक्षा करें, गण का पालन-पोषण करें, गण यानी यतियों का समूह, ऐसे मुनि को गणधर कहा है। तीर्थंकर के गणधर अलग होते हैं और मुनि-संघ में भी गणधर होते हैं। हाँ, अब कहीं गणधर नाम मुनि के आगे लिखा हो तो आप लोगों को आश्चर्य लगता है। गणधर का मतलब है कि जो आचार्य से छोटे होते हैं और जब आचार्य महाराज धार्मिक अथवा सामाजिक किसी कार्य में व्यस्त होते हैं तो यति-संघ का संचालन वह गणधर करते हैं। कौन साधु कहाँ पर कौन-सी वृत्ति कर रहा है, इस बात का जो ध्यान रखते हैं, वे प्रवर्तक कहलाते हैं। स्थविर जो मुनिराज होते हैं, वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि हमारी आचार्य परम्परा में किस प्रकार की व्यवस्थाएँ थीं? पूर्व में जो मुनिसंघ रहे होंगे, उन सबकी जानकारी रखेंगे। यह स्थविर मुनि की कर्तव्य निष्ठता है। प्राचीन काल में भी साधक ही साधक का ध्यान रखते थे। जब श्रावक को धर्म से वैराग्य हो जाता है, तब साधु को ही रागी बनना पड़ता है। जब-जब धर्म पर संकट आये तो श्रावकों ने तो हाथ ऊपर किये हैं। रावण जब कैलाश पर्वत

को गिराने का प्रयास करने लगा था, उस समय कोई श्रावक नहीं पहुँचा था। उस समय मुनिराज बाली को ही विचार करना पड़ा था। ले लूँगा प्रायश्चित, लेकिन मेरे देखते-देखते इतने विशाल जिनबिम्बों का घात कैसे हो सकता है? जब सात सौ मुनियों पर उपसर्ग आया था, तो उस समय सब श्रावक शान्त हो गये थे, कुछ भी नहीं कर सके। तब विष्णुकुमार मुनिराज को ही अपना रूप बदलकर आना पड़ा।

आचार्य योगीन्दु देव स्वामी कह रहे हैं-यह ठीक है कि परमेष्ठी के पाँच पद हैं-आचार्य, उपाध्याय, साधु, अरहंत और सिद्ध। निश्चय नय की दृष्टि से जो अरहंत है, वह भी आत्मा है। जिस आत्मा ने चार घातिया कर्मों का अभाव कर दिया है, वह आत्मा अरहंत है। एक बहुत अच्छी बात है, विश्व में जहाँ ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया जाता है, वहाँ ईश्वर भी रहता है, भक्त भी रहता है, भगवान् भी रहते हैं। लेकिन जैनदर्शन की एक विशाल सहृदयता है कि वह यह नहीं कहता कि भक्त हमेशा भक्त ही रहेगा। बल्कि यह भक्त मोक्ष-पुरुषार्थ करे तो भगवान् भी बन सकता है। इसे हम सैद्धान्तिक दृष्टि से कथन करें तो आत्मा के क्रमिक विकास का नाम अरहंत/सिद्ध अवस्था है। जब बहिरात्म भाव का विनाश किया, तब अन्तरात्म-भाव को प्राप्त किया और पश्चात् परमात्म-भाव को प्राप्त हुआ है। यह आत्मा का क्रमिक विकास है। यदि आप से संक्षेप में प्रश्न करें कि जैनदर्शन का मौलिक सिद्धान्त क्या है? तो बड़े प्रेम से आप कहेंगे कि हमारे यहाँ आत्मा ही क्रमिक विकास कर परमात्मा बनता है। जैसे कि एक पत्थर में प्रतिमा कब से है? आपकी दृष्टि से जब से प्रतिमा बनी तब से है, लेकिन सिद्धान्त कहेगा-जब से पत्थर है, तब से उस पाषाण में प्रतिमा है, लेकिन अन्तर इतना है कि उसे कोई निकालने वाला नहीं मिला। ऐसे ही इस आत्मा में ईश्वर कब से है? जब से यह आत्मा है, तब से शक्ति रूप परमात्मा विराजा है। पाषाण से व्यर्थ के पत्थर को हम छैनी से निकाल देते हैं तो एक सुन्दर प्रतिमा निकल आती है। बनाई है कि निकाली है? व्यवहार रूप में आप कहेंगे कि बनाई है, पर वास्तव में बनाया उसे जाता है जिसमें कुछ जोड़ा हो। आपने उसमें जोड़ा कुछ नहीं, मात्र हटाया-हटाया ही तो है। ऐसे ही भेद विज्ञान की छैनी से यह आत्मा व्यर्थ के कर्म के उपल को विखण्डित कर देता है और वहाँ से एक परमात्म तत्त्व रूप शुद्ध-आत्मा प्रकट हो जाती है। इसी का नाम भगवान् है, वही ईश्वर है, वही शिव, वही शंकर है, जिसको 105वीं कारिका में कह रहे हैं। (अरहंत वि सो सिद्धू) जो सिद्ध है, वह अरहंत है, (सो आयरिउ वियाणि) उसे ही तुम आचार्य जानो।

अब निश्चय नय से पंच परमेष्ठी को समझना है। जिन्होंने निज के कर्मशत्रु को जीत लिया है, वे अरहंत हैं। जिन्होंने आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है, वे सिद्ध हैं। ये सब कौन कर रहा है? आत्मा। जो निज पंचाचार अभेद-रत्नत्रय में लवलीन हैं, वे ही आचार्य-परमेष्ठी हैं। वहाँ कोई दूसरा विकल्प नहीं है, न शिष्यों का विकल्प है, न शिष्याओं का विकल्प है। वे निज के परिणामों को सम्हाल कर चलते हैं। योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं कि यथार्थ में जो दूसरों को

संयम का पालन कराये, वे आचार्य हैं; परन्तु वे संयम से निज की आत्मा को जोड़ते हैं, इसके उपरान्त दूसरे को देखते हैं। जो स्वयं ही संयम से जुड़ा हुआ नहीं होगा, वह दूसरे को नहीं जोड़ सकेगा। आचार्य-परमेष्ठी की क्या परिभाषा है? जो मुनि स्वयं पंचाचार का पालन करते हैं। जो निज आत्मा को और दूसरे को धर्म में लगाये हुए हैं, वे आचार्य-परमेष्ठी हैं। (सो उवज्झायउ) व्यवहार नय से जो चारों अनुयोगों के ज्ञाता वे चतुर्वेदी और निश्चय नय से जिन्होंने निज शुद्धात्म को जान लिया है, वे ही सम्पूर्ण तत्त्वों के ज्ञाता उपाध्याय परमेष्ठी हैं।

अन्यथा वेद पाण्डित्यं, शास्त्र पाण्डित्य मन्यथा।

वेदों का पाण्डित्य भिन्न है और शास्त्रों का पाण्डित्य भिन्न है और स्वात्म-तत्त्व को जानना, यह पाण्डित्य भिन्न है। व्याख्यान का पाण्डित्य भिन्न है, व्याख्या का पाण्डित्य भिन्न है और स्वात्मानुभूति का पाण्डित्य भिन्न है। यह सहज समझना। जब आप पाण्डित्यपने से बोलोगे, तो अलग झलकेगा और जब आप अंदर से बोलोगे, तो अलग झलकेगा। वहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि उपाध्याय-परमेष्ठी व्यवहार नय से शास्त्र के ज्ञाता हैं और निश्चय नय से स्वात्म-तत्त्व के ही ज्ञाता हैं। (सो जि मुणि णिच्छइँ अप्पा जाणि) अहो ज्ञानी! इनको निश्चय से तुम आत्मा ही जानो।

(सो सिउ) वही शिव है। अब कहीं नहीं जाना है, मुझे किसी को नहीं खोजना है। पर्वत पर शिव नहीं है, गुरु में शिव नहीं है, मन्दिर में शिव नहीं है और तालाब के किनारे शिव नहीं है। अहो ज्ञानी! वह शिव तो तेरे अंदर विराजा हुआ परमात्मा है। (सो सिउ संकरु) जिसने कषायों का शमन कर दिया है, वही शंकर है। जिसने शान्ति को प्राप्त कर लिया है, वही शिव है। अन्तिम कारिका आचार्य महाराज ने कितनी गहराई से लिखी है। (सो विण्हु) और विष्णु कौन है? जिसने सारे विश्व को अपने ज्ञान में देख लिया है, वही विष्णु है। नाम कितने ही रख दो, पर यथार्थ यह है कि जब तक दूरियाँ रहती हैं, तब तक लोगों को पता नहीं चलता है। जहाँ वैदिक दर्शन यह कहता है कि सब ब्रह्मा ने उत्पन्न किये हैं, विष्णु ने रक्षा की है, शंकर ने संहार किया है, तहाँ जैन-सिद्धान्त कह रहा है कि परमात्मा रागी नहीं है, परमात्मा द्वेषी नहीं है। यदि वे किसी की रक्षा करेंगे तो वह राग होगा, रचना करेंगे तो सामग्री रखना पड़ेगी और नष्ट करेंगे तो हिंसा का दोष लगेगा। अब इसको समझना है। इस पेन का जो उत्पन्नपना हुआ है, जिसे उत्पाद कहा जाता है, यही ब्रह्मा है। इसकी पर्याय का जो विनाश हुआ है, यह व्यय है, शंकर है। द्रव्य का विनाश कभी नहीं होता है, यह ध्रौव्य है, विष्णु है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य। सद् द्रव्य लक्षणम्। द्रव्य का लक्षण सत् है। जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त है वह सत् है। यह हो सकता है कि कोई व्याख्या को समझ न सके, परन्तु समझाने का तरीका तो समझ में आता है। आप जब बालक थे, तो कोई दूसरे थे? नहीं, वही थे। आप जो आज यहाँ बैठे हो, कौन हो? जिस शिशु ने जन्म लिया था वही आज प्रौढ़ के रूप में बैठा है। शिशु-पर्याय का विनाश हो गया, प्रौढ़ पर्याय का उत्पाद हो गया और जीव-द्रव्य ध्रौव्य है। बस यही

त्रिदेवता तुम्हारे हैं। यह कह रहे कि (सिउ संकरु, विण्हु सो सो रुद्द) और वही रुद्र है। (सो वि बुद्धु) जिसने सम्पूर्ण पदार्थों को जान लिया है, ऐसा बुद्ध है! यानी जिसने रौद्र आदि ध्यानों का अभाव कर दिया है, ऐसा परम-रुद्र है। (जो जिणु ईसरु बंभू सो) वह जिन है, ईश्वर है, ब्रह्मा है (सो अणंतु सा सिद्धु) अहो ज्ञानी! वे ही अरहंत हैं और वे ही सिद्ध हैं। कौन? यदि कोई है तो एक तेरी निज-शुद्धात्मा है। यानी कितनी दूरियों से आपको बचा लिया है।

ध्यान रखना जो 'समयसार' जी में उदाहरण दिया है। शिष्य ने कहा-महाराज! मेरे से ध्यान लगाते नहीं बनता है। उन्होंने कहा-कोई बात नहीं, आप विकल्प मत करो, ध्यान का तनाव मत पालो। तो क्या करूँ? यह सामने गुफा दिख रही है, तुम इसमें जाकर बैठ जाओ और वहाँ आप ध्यान करो। किसका? जो आपने देखा हो और जो तुमको सबसे अच्छा लगे। महाराज! हमारे घर में तो भैंसा है और उसी की हम सेवा करते हैं, वही हमें अच्छा लगता है। कोई बात नहीं, आप उस भैंसे का ही ध्यान करो, पर अनुभव करके करना। उस शिष्य ने ध्यान प्रारम्भ किया। भैंसोऽहं, भैंसोऽहं, भैंसोऽहं.... । वह अनुभव कर रहा है कि मेरे भैंसे के सींग हैं, लम्बी पूँछ है। थोड़ी देर बाद पहले वाली आवाज बन्द हो गई, दूसरे प्रकार की आवाज आती है-गुरुदेव! गुरुदेव! गुरुदेव! शीघ्र करो। मैं गुफा से निकल नहीं पा रहा हूँ। गुरुजी बोले-बेटा! क्या हो गया? मेरे सींग अड़ रहे हैं। गुरु प्रसन्न होकर बोले कि मेरे बेटे ने ध्यान की सिद्ध कर ली है। 'बेटा! कोई बात नहीं, मैं आ रहा हूँ।' और जैसे ही गुरु पहुँचे....... । सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं,..... सींग गायब हो गये, पूँछ गायब हो गई। सोऽहं यानि सः अहं। प्रभु! जो आप हैं, वह मैं हूँ। बस, अब ध्यान सही है। प्रारब्ध अवस्था में बैठकर सिखाया जाता है कि तुम बैठो। अन्त में जितने ध्येय पदार्थ हैं, वे सब भी गौण कर दिये जाते हैं। इसी बात को आचार्य महाराज कारिका 106 एवं 107 में कह रहे हैं-

(एक हि लक्खण-लक्खियउ) इस प्रकार के लक्षण से लक्षित (जो परु णिक्कलु दु) जो परम् निष्कलंक देव हैं, जिन्होंने कर्ममल को नष्ट कर दिया है, कर्म कालिमा का अभाव कर दिया है। यह ध्यान रखना कि जो पदार्थ से लिप्त होता है,वह सुनिश्चित नीचे जाता है। आचार्य उमास्वामी महाराज ने तुमड़ी का उदाहरण दिया कि तुमड़ी मिट्टी के लेप से लिप्त है, उसे पानी में डाल दो तो डूब जाती है। परन्तु जैसे-जैसे लेप हटता चला जाता है, वह तुमड़ी ऊपर आ जाती है। बस, इससे सुन्दर दृष्टान्त क्या होगा? यहआत्मारूपी तुमड़ी है, इसमें कर्म का लेप है। जैसे-जैसे लेप हटता चला जाता है, वैसे-वैसे आत्मा ऊपर उठती चली जाती है।

आप लोग नीचे बैठे हैं, आपने ब्रह्मचारी जी को कुछ ऊपर बैठा दिया है एवं ब्रह्मचारी जी से ऊपर आपने क्षुल्लक जी को बिठाल दिया है। क्षुल्लक जी से ऊपर मुनिराज को बैठा दिया है। क्यों? महाराज! हम लोग इतने सयाने हैं, हम वन्दना भी करते हैं तो वन्दनीय को देख-देखकर करते हैं। जैसे वन्दनीय की योग्यता है, उसी अनुसार हमारी वन्दना भी वैसी होती है। इसलिए जैन-दर्शन में सभी को एक-जैसा नमस्कार नहीं किया है। यदि कोई ब्रह्मचारी

जी आ जायें तो 'वन्दना' कहते हैं और कोई विद्वान् गृहस्थ आये, तब 'जय जिनेन्द्र' कहते हैं। यानी यहाँ से प्रारम्भ हो गया कि आपने ज्ञान को विशेष महत्व कहीं नहीं दिया है। एक विद्वान् को आपने मात्र 'जय जिनेन्द्र' बोला है और त्यागी को देखकर आपने उनको 'वन्दना' कहा है। क्षुल्लक जी मिल जायें, तब आप 'इच्छामि' कहोगे, एक आर्यिका माता मिल जायें तो आप 'वन्दामि' कहोगे और जब परमेष्ठी मिल जायें तब 'नमोस्तु'। बोले-मेरी वन्दना बन्ध के लिए नहीं है, परन्तु अज्ञानी जीव वन्दना बन्ध के लिए कर लेता है। वन्दना वही होती है, जिसमें बन्ध न हो। इसलिए विवेक से करना तुम वन्दना, जिससे बन्ध न हो। और जैसे तुमड़ी का लेप हट रहा है, वैसा ही अगर तुम्हारी कषायों, कामनाओं और वासनाओं का लेप हटता चला जाय तो संसार-सागर से तरना हो जाये।

'योगसार' की इस कारिका को समझ लेना। यदि मैंने पाप का बन्ध किया है, तभी आप मुझे गाली दोगे। आपने मुझे गाली दी है तो आपने कोई आश्चर्य नहीं किया, क्योंकि कर्मबन्ध मेरा था। यदि कदाचित् मेरे कर्म का बन्ध न भी हो और फिर भी मुझे आप गाली देते हो तो, भो ज्ञानी! उसमें भी मुझे भय नहीं है, क्योंकि मेरी कर्मनिर्जरा होगी और कर्म का बन्ध तुझे होगा। पर करुणा जरूर है कि मेरे निमित्त से तू कर्म का बन्ध कर रहा है। ज्ञानियों का चिन्तवन ऐसा निर्मल होता हैं। यहाँ कह रहे है कि-(एक लक्ख) ऐसे लक्षण को जानकर (जो परुमक्कलु देउ) जो निष्कलंक देव हैं (देहहँ मज्झहिं सो वसइ) वह देह में निवास कर रहा है। तुझे अपनी वस्तु का पता नहीं है, अपनी विभूति का ज्ञान नहीं है। वह ही परम्देव है। (सो वसई तासु ण विज्जइ भेउ) उसमें, भो ज्ञानी! कोई भेद मत करो। जो निष्कलंक देव है, वह तुम्हारी देह में विराजा है। (जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिं) जो सिद्धि को प्राप्त हुए हैं और हो रहे हैं तथा (अप्पा-दंसणि ते वि फुडु) वे एक मात्र स्वात्म दर्शन से ही सिद्ध होंगे।

मनीषियो! आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी अंतिम दोहा सूत्र में कह रहे हैं कि यह ग्रंथ मैंने अपनी विद्वत्ता को बघारने के लिए नहीं लिखा है। इस विषय में आचार्य अमृतचन्द स्वामी का स्मरण जरूर कर लेना। जैन वाङ्मय में प्रौढ़ संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य अमृतचन्द स्वामी हैं, जिन्होंने 'लघु तत्त्व-स्फोट' जैसा ग्रन्थ लिखा तथा समयसार जी ग्रन्थ पर 'आत्म ख्याति टीका' लिखी है। वे 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' ग्रन्थ में लिख रहे हैं-अकर्तृत्व भाव की दृष्टि से देखो। वर्णों से अक्षर बने, अक्षरों से वाक्य बने, वाक्यों से एक अध्याय बना, अध्यायों के मिलन से एक ग्रन्थ बना, (मया किं कृतः) मैंने क्या किया? मैंने कुछ नहीं किया है। इतना विशाल ग्रन्थ लिखने के बावजूद आचार्य महाराज कह रहे हैं-मैंने क्या किया है? वैसा आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी कह रहे हैं। धर्म में आना बहुत बड़ी बात नहीं है, लेकिन संसार से भयभीत होकर धर्म के वेश को स्वीकार करना बहुत बड़ी बात है। लिख लेना अपने हृदय में, यदि आप संसार से भयभीत हो तो आपको लगेगा कि कहीं मैं बंध न जाऊँ। आचार्य महाराज कह रहे हैं कि (संसारह भय-भीयएण) संसार से भयभीत होकर (जोगिचन्द

मुणिएण) योगीचन्द नाम के मुनिराज ने यानी योगीन्दुदेव ने क्यों लिखा है यह ग्रन्थ? किसी को ज्ञान कराने के लिए नहीं। (अप्पा-संबोहण कया) यह ग्रन्थ तो मैंने अपनी आत्मा को संबोधन करने के लिए लिखा है। यथार्थ है।

आदहिदं का दव्वं, जं सक्कइ तं परीहदं च कादव्वं।
आदहिदं परहिदादो, आदहिदं सुट्ठू कादव्वं ॥275॥

आत्महित ही करना चाहिए। यदि आपके पास सामर्थ्य हो तो पर का हित भी करो, कोई पाप नहीं है, लेकिन इतना विशेष ध्यान रखना कि स्वहित और परहित इन दोनों में श्रेष्ठ आत्महित ही है। आत्महित को छोड़कर यदि आप परहित करने जा रहे हो तब, भो ज्ञानी! न स्वहित कर पाओगे, न परहित कर पाओगे। जीवन में ध्यान रख लेना कि जब भी हम धर्म की प्रभावना करने का मन बनायें तो पहले स्वयं को धर्म से प्रभावित करने जाना। अगर स्वयं को श्रद्धा नहीं होगी, स्वयं भीगे नहीं होंगे, तो वह प्रभावना दूसरे में श्रद्धा जागृत नहीं कर पायेगी। अहो ज्ञानी! भगवान् का अभिषेक किया, प्रक्षालन किया, यदि कपड़ा गीला होगा तो भगवान् गीले हो पायेंगे। तुम्हारा वस्त्र गीला है नहीं और प्रतिमा को तुम गीला करना चाहते हो। पहले आपको वस्त्र गीला करना होगा, फिर दूसरे को गीला कर पाओगे। इसी प्रकार से पहले आप स्वयं की चादर को भगवान् जिनेन्द्रदेव की वीतराग वाणी से भिगो लो, फिर तुम दूसरे को भिगा पाओगे, अन्यथा मालूम चला कि हम दूसरे को तो बहुत कुछ देना चाहते थे और स्वयं सूखे-के-सूखे रहे।

योगीन्दुदेव ने क्रम का बड़ा ध्यान रखा-(अप्पा संवोहण) अपने भावों के संबोधन के उद्देश्य से (दोहा इक्कमणेण) एकाग्र मन से इस दोहा-सूत्र ग्रन्थ को लिखा है। आचार्य योगीन्दुदेव महाराज ने एक-सौ-आठ ऐसे परम् बिन्दु प्राप्त किए हैं, ऐसे मोती प्रदान किए हैं और एक-एक दोहा सूत्र में अनुपम विवेचना की है। यह आचार्य महाराज की परम् करुणा थी कि आज यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है, समाप्त नहीं हुआ है। मनीषियो! आज माँ भारती, भगवान् सर्वज्ञ देव और आचार्य योगीन्दुदेव स्वामी के चरणों में विनम्र भाव से क्षमा-प्रार्थना कर लेना कि भगवन्! आपके द्वारा प्रदत्त महान् ग्रन्थ-सागर में अवगाहन करना बहुत कठिन था। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश इन भाषाओं के ज्ञान के अभाव में भी, हे भारती! यदि आपकी वाणी के कहने में मेरे से कोई त्रुटि हो गई हो, तो सबसे पहले आप मुझे क्षमा कर देना, क्योंकि 'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे', इस शास्त्र रूपी समुद्र में कौन ऐसा जीव है जो भटक न सके? साथ में यह भी मैं आपसे कहूँगा कि इतने दिन के प्रवास में यदि आप लोगों के मन में कोई विकल्प हुआ हो, तो आप लोग भी क्षमा कर देना। सोचना कि महाराजश्री क्षमा क्यों माँग रहे हैं? बात यह है कि अभी-अभी हम लोग प्रतिक्रमण करके आये हैं। उस पाक्षिक प्रतिक्रमण में एकेन्द्रिय जीव तक को क्षमा किया गया है। आप लोग तो पंचेन्द्रिय जीव हो और भावी भगवान् हो। कल्मष को धोने के लिए जिनवाणी को सुना है, अतः जिनवाणी को

सुनकर कल्मष को बांधकर मत चले जाना। पुनः मैं आपसे एक बार कहूँगा कि, भैया! यदि शत्रु के पिता शत्रु क्यों न हों, आप कुछ नहीं कहना। क्यों? हम भगवान् नहीं हैं। फिर भी, हे पारस प्रभु! वह शक्ति मुझे भी प्रदान करो। दस-भव तक आपके ऊपर उपसर्ग चलता रहा और आप क्षमा ही क्षमा करते चले गये। यदि घर की देहरी के बाहर कहीं जाना हो तो देहरी से बाहर पैर बाद में रखना, पहले घर के लोगों से क्षमा माँग लेना और उनसे कह देना यदि मैं वापिस आ गया तो तुम्हारा हूँ, नहीं आया तो कोई विकल्प नहीं करना। कषाय बांधकर मुझे मत जाने दो। मनीषियो! सबसे क्षमा एक बार माँग ही लेना और कोई क्षमा न भी करें, इसकी चिन्ता नहीं करना। क्षमा दूसरे का धर्म नहीं होता, क्षमा तुम्हारा धर्म है। कुछ लोग इसलिए शोक में बैठे रहते हैं कि हमने तो क्षमा माँग ली, उन्होंने की या नहीं इससे हमको क्या लेना देना। आपको तो यह ध्यान रखना चाहिए कि क्षमा धर्म दूसरे का नहीं है, धर्म तो स्वयं का है और उसका परिणाम उसके हाथ में है। लेकिन आप ध्यान रखना कि तीन लोक में इतने प्राणी हैं, हमारी किसी परिणति से, संघ के माध्यम से किसी को कोई विकल्प आया हो तो बहुत अच्छा होगा कि आप बता देना और अंतरंग में कोई विकल्प नहीं रखना।

यह ग्रन्थ यहाँ पूर्णता को प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ का पारायण आपने किया है तो मैं समझता हूँ कि अब कहीं भी आप जिनवाणी का पाठ कर सकते हो। जब कोई मुनिराज, त्यागी, व्रती, आचार्य महाराज विराजमान होते हैं तो उनसे एक ही प्रार्थना करना-महाराज! मेरे जीवन में एक कोई ग्रन्थ विस्तार दो। एक ग्रन्थ के माध्यम से पता नहीं कितने ग्रन्थों का ज्ञान हो जाता है।

- भगवान् महावीर स्वामी की जय।

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री महावीरजी पाटनी, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री माँगीलालजी किशोरजी पहाड़िया, हैदराबाद

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर,
श्री राजेशजी जैन, (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर,
श्री संतोषकुमारजी जैन, (पटनावाले), सागर
श्री टी.के. वेद जी, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारायण जी, नागपुर
श्री हेमचंद मीना जैन (सिरमोर), इंदौर

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन, (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन, (जैनको), इंदौर
श्री चक्रेशकुमार जी जैन, (बड़कुल) इंदौर,
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. जैनेन्द्रजी जैन, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक परिवार, इंदौर,
श्री पी.सी. जैन सा. (बैंकवाले), इंदौर
श्री प्रमोदकुमार जी जैन, (बारदाना) सागर
श्री भागचंदजी कंछेदीलालजी जैन, सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू मोना जैन, सिहोरा
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पंकलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशजी, सुखलिया, इदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाड़िया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोंदिया
श्री राकेशजी सिंघई (पत्रकार), भोपाल
श्री मनोजजी प्रधान, भोपाल
श्री अजयजी (ज्योतिषी), भोपाल
श्री राजेन्द्रजी आम्रपाली, भोपाल
श्री संदीपजी (हर्ष सेनीटेशन), भोपाल
श्री मनोहरलालजी टोंग्या, भोपाल
श्री हरीशकुमार प्रियंकजी अजमेरा, भोपाल
श्री संजीवजी संदीपजी (गेहूँ वाले), भोपाल
श्री जितेन्द्रजी जैन, भोपाल
डॉ. सुभाषजी जैन (लखारिया), भोपाल
श्री प्रमोद नील चौधरी, लालघाटी, भोपाल
श्री शैलेन्द्रजी बांझल, विदिशा
श्री शैलेन्द्रजी जैन (शिल्पा), अजीराजपुर
श्री स्वप्निलजी मेघाजी (बड़जात्या मार्बल), इंदौर
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर

श्री केतनकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी जैन, झाँसी
श्री राजकुमारजी स्नेहलताजी चंदौरिया, भिलाई
श्री सनतकुमारजी अरविन्द सतभैया परिवार
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी लुहाड़िया, भिलाई
श्री अरुण मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री पवन-अल्काजी, अपूर्व भावीनजी कोठारी, भीलवाड़ा
श्री शशिकान्त धीरजकुमारजी अजमेरा, भीलवाड़ा
श्री प्रदीपजी मनोजजी वेद, भीलवाड़ा
श्री सुगनचंदजी विजयजी झांझरी, भीलवाड़ा
श्री सोहनलालजी गंगवाल, भीलवाड़ा
श्री पी.के. जैन कावाखेड़ा, भीलवाड़ा
श्री संजय राजू जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री किशोर अमित जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री वेदप्रकाश भाईजी, मरोरमागंज, सागर
श्री धनकुमार संजय गंगवाल, वैशाली नगर, भिलाई

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री रिषभ जैन शाहगढ़ (भोपाल)
श्री वीरेन्द्र कुमार जी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीड़ी वाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्रीमती पुष्पाजी निर्मलजीकाला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री अनिलजी कासलीवाल, भिलाई
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री रज्जीलाल मोदी (सुपारी वाले), सागर
श्री प्रवीणकुमारजी जैन (वर्द्धमान), दिल्ली
श्री पन्नालाल जी जैन, कलकत्ता
श्री अरुणजी जैन, दिल्ली
श्री शैलेन्द्र कुमारजी जैन, बुंदी
श्री दिनेश-सीमा जैन, कोटा
श्री विशाल-नीतू जैन, मुलतान वाले, जयपुर
मुनि विश्वनाथसागर चातुर्मास समिति, भीलवाड़ा
दिगम्बर जैन समाज, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इन्दौर

श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो.श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमार जी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरुजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्रीमती गुणमालाजी ए.के. बड़जात्या, इन्दौर
श्री प्रदीप कुमारजी नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर
स्व. श्री महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, इन्दौर

श्री सनत कुमारजी, अरविन्दजी (सतभैया), इन्दौर
श्रीमती इंदिराजी सेठी, इन्दौर
श्री विकासजी राजीवजी जैन, इन्दौर
श्रीमती सीमा एस.सी. जैन, इन्दौर
श्री डॉ. राजेशजी जैन, इन्दौर
श्री अरविन्द जैन, इन्दौर
श्री राकेश कुमार, इन्दौर
श्री संतोष जैन गुरुजी, इन्दौर
श्री जे.के. चौधरी, सुदामा नगर, इन्दौर
श्री संजीव जैन, मेगनम टॉवर, इन्दौर
श्री मनोजजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री प्रसन्नकुमारजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री अरविन्दजी जैन, सुदामानगर, इन्दौर

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री राकेश कुमारजी किशनचंदजी जैन, उज्जैन
श्री विद्युतजी करणमलजी डोसी, उज्जैन
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया), उज्जैन
श्री कैलाशचंद रवीन्द्रकुमारजी जैन, उज्जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी, उज्जैन
श्री महावीरप्रसादजी जैन, उज्जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन, उज्जैन
श्रीमती वीणाजी जैन, उज्जैन
श्री विमल कुमारजी राजमलजी जैन, उज्जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन
श्री विद्युतकुमारजी करणमलजी डोसी
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया)
श्री कैलाशचंदजी रवीन्द्रकुमारजी जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी
श्री महावीरप्रसादजी जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन
श्रीमती सुधादेवी इंदरचंदजी जैन
श्रीमती वीणाजी जैन
श्री विमलकुमारजी राजमलजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमार जी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसाद जी जैन
श्री नरेन्द्र कुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरूपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड लाईन्स)

श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमार जी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईटइंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंद बजाज
श्री श्रीपालजी बड़कुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

भीलवाड़ा...
श्री सुरेन्द्र कुमारजी वीरोमलजी
श्री पवन अल्काजी, अपूर्व भावीन कोठारी
श्री शशिकान्तजी धीरज कुमारजी (अजमेरा)
श्री प्रदीपजी (वेद परिवार)
श्री सुगनचंदजी विजयकुमारजी झांझरी
श्री सोहनलालजी गंगवाल (पाटीदार)
श्री पी.के. जी जैन (कावाखेड़)

अन्य शहर....
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन
(नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी टेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्रीमती विमलाजी सिंघई, लालघाटी, भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली
श्रीमती सुनीता भरतकुमार जैन, चौक, भोपाल
श्रीमती अर्मलशीलकुमार, हरियाणा
श्री मनोज कुमार, हरियाणा
श्री मनोज जैन, भोपाल
श्री गोतम जैन, इन्दौर
श्री निर्मलकुमार जैन, नोयडा
श्रीमती देवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्री संजय जैन, दिल्ली
श्री बाबूलालजी ईश्वरलालजी पाटोदी, छिन्दवाड़ा
श्री भूपेन्द्रकुमारजी इन्द्रमलजी जैन, गाजियाबाद
श्री सुशील कुमार जी शोमितजी जैन, ग्यासपुर
श्रीमती सुनीताजी भरतकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती स्नेहलताजी एस.के. जैन, सोनीपत
श्रीमती ममताजी जैन, पानीपत
श्रीमती मालादेवीजी जैन, करोली
श्री जेठालालजी कुबेरदासजी शाह, मुंबई
श्री प्रदीप प्रभाकरजी जैन, मुंबई
श्री विशालजी नीतूजी जैन, जयपुर
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी (लुहाडिया) भिलाई
श्री अरुणजी मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री रतनलाल जी जैन, अलवर (राज.)
श्री जेठालाल कुबेरदास शाह, मुंबई
श्री आकाश जैन, शांतिविहार, दिल्ली
श्री सुनीलकुमार दिलीपकुमार जैन, भोपाल
श्री वीरेन्द्र शशि जैन, हिसार
श्री व्ही.एस. जैन द्वारा आर.के. जैन, मुजफ्फर नगर
श्री बाबूलालजी पाटोदी परिवार, छिन्दवाड़ा

कृतियाँ :

- चिन्ता रहस्य
- गुरवो भवन्ति शरणं
- प्रवचन प्रदीप
- दिव्य वयणं
- बोधि संचय
- अमृत बिन्दु
- अर्हत् सूत्र
- देशना बिन्दु
- देशना संचय
- तत्त्व-बोध
- आइना
- विशुद्ध काव्यान्जलि
- विशुद्ध वचनामृत
- अध्यात्म प्रमेय
- आत्माराधना

साहित्य पर आधारित अन्य कृतियाँ :

- समाधि तंत्र इष्टोपदेश समीक्षा
- पुरुषार्थ देशना अनुशीलन
- अध्यात्म देशना अनुशीलन
- तत्त्व देशना समीक्षा
- स्वरूप सम्बोधन परिशीलन विमर्श
- सर्वोदयी देशना समीक्षा
- समय देशना समीक्षा
- समय देशना मीमांसा
- स्वरूप देशना विमर्श
- नियम देशना विमर्श

जीवन वृत्त :

- आदर्श श्रमण
- अध्यात्म का सरोवर
- प्रत्यग् आत्मदर्शी
- अध्यात्मयोगी
- स्वसंवेदी श्रमण
- विशुद्ध दर्शन
- विशुद्धोदय महाकाव्य

।। जीवन बिन्दु ।।

दिगम्बर जैन श्रमण - संस्कृति के सम्प्रति नामचीन अध्यात्म योगियों की शृंखला में परम पूज्य अध्यात्मयोगी श्रमणाचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज की कीर्ति पताका सम्प्रति साहित्य - संसार में सकल रूप से फहरा रही है।

आप श्रमण-संस्कृति के परिचायक निर्लेप, निष्काम, दिगम्बर मुद्राधारी, श्रमण साधना के शुभ्राकाश में अध्यात्म के ध्रुव तारे, पंचाचार- परायण, शुद्धात्मध्यानी, शुद्धोपयोगी - श्रमण, स्वात्म - साधना के सजग प्रहरी, अलौकिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी, आगमोक्त श्रमण-चर्या पालक, समयसार के मूर्तरूप, निष्प्रह श्रमण - भवनाओं से ओत - प्रोत तीव्र अध्यात्मिक अभिरूचियों, वीतराग परिणतियों एवं वात्सल्यमयी प्रवृत्तियों से पूरित प्रत्यग् - आत्मदर्शी चलते - फिरते चेतन्य - तीर्थ, 18-12-1971 को राजेन्द्र नाम से म.प्र. के भिण्ड जिले के ग्राम रूर में पिता श्री रामनारायण (समाधिस्थ मुनि श्री विश्वजीतसागर जी), मातु श्रीमती रत्तीबाई की कुक्षि - कक्ष से उद्भूत, 21-11-1991 को श्रमणाचार्य श्री विरागसागर जी से मुनि दीक्षा धारी, 31-03-2007 (महावीर जयंति) औरंगाबाद (महा.) में आचार्य पद से अलंकृत हैं।

सहयोग राशि : ₹ 100/-